जवाहरलाल नेहरू

जीवन, कृति एवम् कृतित्व

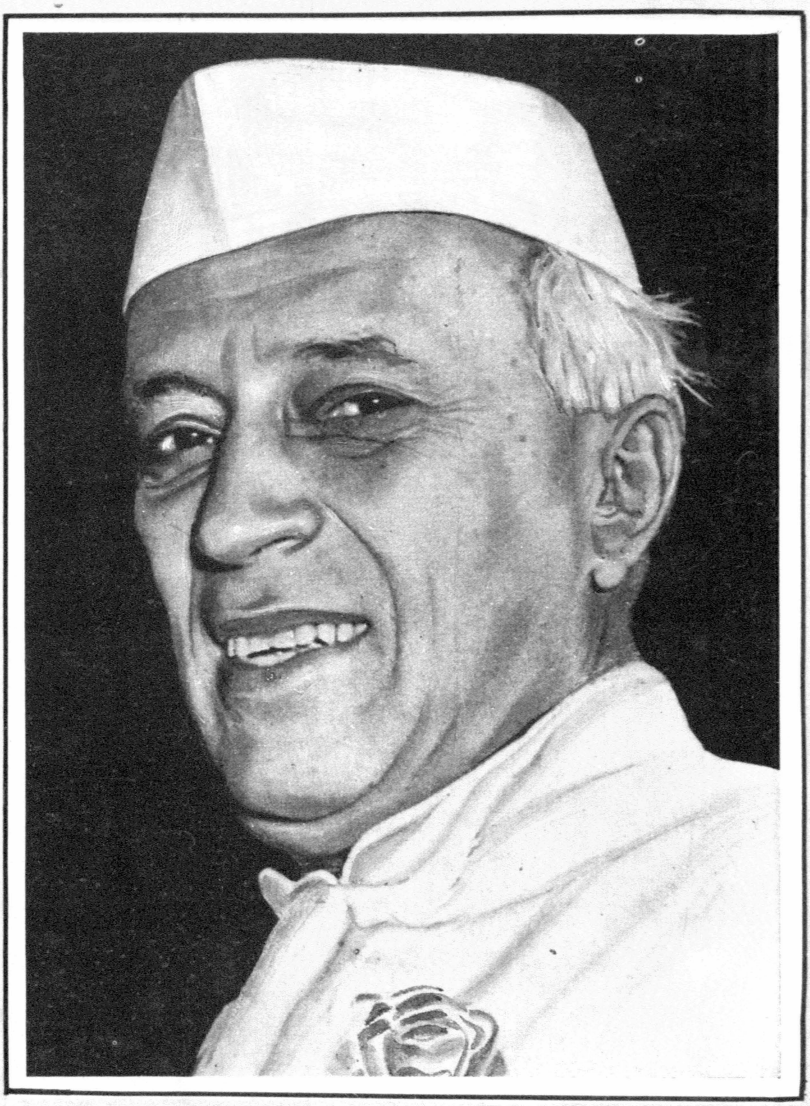

सुभाष काश्यप
संपादक

लोकसभा सचिवालय

जवाहरलाल नेहरू

जीवन, कृति एवम् कृतित्व

जवाहरलाल नेहरू

जीवन, कृति एवम् कृतित्व

सुभाष काश्यप
महासचिव, लोक सभा
द्वारा सम्पादित

एस. चन्द एण्ड कम्पनी लि.

एस० चन्द एण्ड कम्पनी लि०
मुख्य कार्यालय : रामनगर, नई दिल्ली-110055
शोरूम : 4/16-बी, आसफ अली रोड, नई दिल्ली-110002
शाखाएँ :

महावीर मार्केट, 25 म्वाइन रोड, अमीनाबाद, लखनऊ-226001
285/जे, विपिन बिहारी गांगुली स्ट्रीट, कलकत्ता-700012
सुल्तान बाजार, हैदराबाद-500195
ब्लैकी हाउस, 103/5, वालचन्द हीराचन्द मार्ग, बम्बई-400001
खजांची रोड, पटना-800004
माई हीरां गेट, जालन्धर-144008
152, अन्ना सलाए, मद्रास-600002
3, गांधी सागर ईस्ट, नागपुर-440002
के० पी० सी० सी० बिल्डिंग, रेसकोर्स मार्ग, बंगलौर-560009
613-7, महात्मा गांधी रोड, एर्नाकुलम कोचीन-682035
पान बाजार, गुवाहाटी-781001

भारतीय संसदीय ग्रुप, लोक सभा सचिवालय
नई दिल्ली-110001 के लिये प्रकाशित

लोक सभा के प्रक्रिया तथा कार्य संचालन सम्बन्धी नियमों के नियम 382 के अन्तर्गत प्रकाशित।

इस पुस्तक का कोई अंश लोक सभा सचिवालय से लिखित रूप में पूर्व अनुमति प्राप्त किये बिना समीक्षा के प्रयोजन के अतिरिक्त किसी भी रूप में पुनः उद्धृत नहीं किया जा सकेगा।

© लोक सभा सचिवालय
पहला संस्करण : 1990

एस० चन्द एण्ड कम्पनी लि०, रामनगर, नई दिल्ली-110 055 द्वारा प्रकाशित तथा राजेन्द्र रवीन्द्र प्रिंटर्स (प्रा०) लि०, रामनगर, नई दिल्ली-110055 द्वारा मुद्रित।

प्रस्तावना

भारत में उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में अनेकों कल्पनाशील वीरों और वीरांगनाओं का जन्म हुआ। यदि महात्मा गांधी उनमें सबसे अधिक देदीप्यमान सितारे थे तो जवाहरलाल नेहरू एक ऐसे सितारे थे जिनके बारे में महात्मा ने कहा था कि मेरे बाद वही मेरी विचारधारा को आगे बढ़ायेंगे। नेहरू जी ने यह कार्य निस्संदेह अपूर्व प्रतिभा और पूरी तत्परता के साथ किया। नेहरू जी की दूरदर्शिता और गतिशीलता तथा गांधी जी के संकल्प और नैतिक नेतृत्व ने मिलकर भारत में ब्रिटिश राज की जड़ें हिला दीं तथा देश की स्वतंत्रता के लिये मार्ग प्रशस्त किया। हम भारत में इस महान देशभक्त और चमत्कारी नेता को सदैव कृतज्ञतापूर्वक याद करते रहेंगे जिन्होंने गांधी जी और अन्य बीसियों महापुरुषों के साथ मिलकर हमारे उपमहाद्वीप के इतिहास को एक नया मोड़ दिया और हमारी जनता के भाग्य को ही पलट दिया।

नेहरू जी आधुनिकता के पुजारी थे तथा विवेक और विज्ञान में आस्था रखते थे। उनके जीवन का उद्देश्य न केवल लोगों में सदाचार की भावना पैदा करना और उनके नैतिक मूल्यों को ऊंचा उठाना था बल्कि उनके जीवन स्तर में भी सुधार करना था। वह अदम्य साहस और दृढ़ विश्वास के प्रतीक थे तथा अपने देशवासियों की सहायता और उद्धार करने के लिये अपूर्व उत्साह रखते थे। वह एक ऐसी नई व्यवस्था की स्थापना करना चाहते थे जिस पर भारतीय समाज का पुनर्गठन किया जा सके। उन्हें भारत की समृद्ध सांस्कृतिक विरासत पर सदैव गर्व रहा। पंडित जी अतीत के अध्येता थे, भविष्य-दृष्टा, विचारक और कर्मशील व्यक्ति थे जिन्होंने न केवल इतिहास का अध्ययन किया था बल्कि इसे बदला भी था।

एक विचारक, लेखक, स्वतंत्रता सेनानी, संसद्विद्, प्रशासक और लोक सभा के नेता के रूप में पंडित जी ने जिस भी क्षेत्र में पदार्पण किया उसी में उन्होंने अपनी अमिट छाप छोड़ी और इस प्रकार उन्होंने हमारे इतिहास में अपने लिये एक स्थायी स्थान बनाया। उन्होंने देखा कि हमारे देश के लोग नंगे, भूखे, दलित और अत्यंत दयनीय स्थिति में हैं। उनके लिये नेहरू जी ने अनेकों छोटे और बड़े काम किये। हम आज जो भी कर लें किन्तु हम उनके इस ऋण से सम्भवतः कभी मुक्त नहीं हो सकते। उनकी लेखनी की शक्ति और शालीनता तथा उन की सर्वतोमुखी प्रतिभा एवं श्रेष्ठता के आगे समूचा साहित्य फीका है, जिसके लिये हमारा राष्ट्र उन का ऋणी है। वह प्रखर एवं कुशाग्र बुद्धि के स्वामी थे तथा उन्होंने हमारे गौरवपूर्ण अतीत का गहन अध्ययन किया था। पण्डित जी की चिन्तन शक्ति अन्तर्जात थी। उन का असाधारण ज्ञान, जीवन में श्रेष्ठता लाने का प्रयास, विश्व के संबंध में उनकी अन्तर्भेदी दृष्टि और वे महान आदर्श जो वह पीछे छोड़ गये, आने वाली पीढ़ियों के लिये प्रेरणास्रोत होंगे।

यह पुस्तक सार्वजनिक जीवन में पण्डित जी के कुछ समकालीन विद्वानों तथा प्रतिष्ठित व्यक्तियों द्वारा लिखे गये लेखों का संग्रह है। ये लेख व्यक्तिगत संस्मरणों एवं वर्णनात्मक घटनाओं पर आधारित हैं और सम्भवतः वे पहली बार ही प्रकाशित किये जा रहे हैं। जो लोग नेहरू जी के जीवन तथा कार्यों में रुचि रखते हैं उन्हें इन लेखों में उनके जीवन की स्पष्ट झांकी देखने को मिलेगी। इन लेखों में अपने भाई के प्रति बहन के संस्मरण, नेताओं की अपने आदर्श नेता की स्मृति तथा नये गणतंत्र का निर्माण करने वाले व्यक्ति का शिक्षाविदों द्वारा मूल्यांकन सम्मिलित किया गया है। ये लेख पुरानी तथा नई पीढ़ियों के लिये समान रूप से रुचिकर होंगे। कुछ लेख पिछले कुछ वर्षों में नेहरू की जन्म/पुण्यतिथियों के अवसरों पर भारतीय संसदीय ग्रुप के तत्वावधान में आयोजित किये गये समारोहों में लेखकों द्वारा दिये गये भाषणों पर आधारित हैं। कुछ अन्य लेख महत्वपूर्ण राष्ट्रीय दैनिक समाचार पत्रों अथवा निजी प्रकाशनों में पहले प्रकाशित हो चुके हैं। हम आशा करते हैं कि उन्हें इस प्रकाशन में शामिल करने से इस प्रकाशन का महत्व बढ़ जायेगा।

हमें इस ग्रन्थ को तैयार करने में विभिन्न स्रोतों से पर्याप्त सहायता तथा प्रोत्साहन मिला है। हम निरन्तर प्रेरणा और मार्गदर्शन के लिये माननीय अध्यक्ष, डा. बलराम जाखड़ के अत्यंत आभारी हैं। इस पुस्तक में जिन महानुभावों के लेख प्रकाशित किये गये हैं उनके प्रति भी हम अपना आभार प्रकट करते हैं। अपनी भारी व्यस्तताओं के बावजूद उन सभी ने हमारे अनुरोध को स्वीकार करते हुए अपने बहुमूल्य लेख भेजे हैं।

यह पुस्तक जवाहरलाल नेहरू की जन्म-शताब्दी समारोह के अवसर पर भारतीय संसदीय ग्रुप की उनके प्रति एक विनम्र श्रद्धांजलि है। हम पूरी विनम्रता के साथ इस ग्रन्थ को पण्डित जी को समर्पित करते हैं और आशा करते हैं कि यह ग्रन्थ आधुनिक भारत और संसदीय लोकतंत्र के इस महान निर्माता की स्मृति को बनाये रखने में राष्ट्र के प्रयासों में सहायक सिद्ध होगा।

सुभाष काश्यप,
महासचिव।
लोक सभा।

नई दिल्ली,
14 नवम्बर, 1989

लेखक परिचय

श्री आर. वेंकटरमण
भारत के राष्ट्रपति

डा. शंकर दयाल शर्मा
भारत के उपराष्ट्रपति

श्री पी.वी. नरसिंह राव
विदेशी मंत्री

श्री बूटा सिंह
गृह मंत्री

श्री पी. शिवशंकर
मानव संसाधन विकास मंत्री

श्री वसन्त साठे
ऊर्जा मंत्री

श्री दिनेश सिंह
वाणिज्य मंत्री

श्री एम.एस. गुरुपदस्वामी
संसद सदस्य तथा राज्य सभा में विपक्ष के नेता

श्री नारायण दत्त तिवारी
मुख्यमंत्री, उत्तर प्रदेश

श्री सत्येन्द्र नारायण सिंह
मुख्यमंत्री, बिहार

प्रो. एस. नुरुल हसन
राज्यपाल, उड़ीसा

डा. गोपाल सिंह
राज्यपाल, मेघालय

श्री फ्रैंक एन्थनी
संसद सदस्य

श्री बी. ए. मासोदकर
संसद सदस्य

श्री मोहम्मद युनूस
संसद सदस्य

डा. सुभाष काश्यप
महासचिव, लोक सभा

श्री बी.एन. पांडे
भूतपूर्व राज्यपाल, उड़ीसा

श्रीमती विजय लक्ष्मी पंडित
भूतपूर्व राज्यपाल, उड़ीसा एवं भूतपूर्व संसद सदस्य

श्री राज बहादुर
भूतपूर्व केन्द्रीय मंत्री

श्री वी.के.आर.वी. राव
भूतपूर्व केन्द्रीय मंत्री, भूतपूर्व संसद सदस्य
एवं प्रतिष्ठित शिक्षाविद्

श्री ई.एम.एस. नम्बूदिरीपाद
भूतपूर्व मुख्यमंत्री, केरल
तथा भारतीय मार्क्सवादी कम्युनिस्ट पार्टी के महासचिव

श्री वी.आर. कृष्ण अय्यर
भूतपूर्व न्यायाधीश, उच्चतम न्यायालय

प्रो. हीरेन मुखर्जी
भूतपूर्व संसद सदस्य

डा. रफीक जकारिया
भूतपूर्व संसद सदस्य

श्रीमती रेणुका राय
भूतपूर्व संसद सदस्य

श्रीमती अरुणा आसफ अली
प्रतिष्ठित स्वतंत्रता सेनानी एवं समाज सेवी

श्री जी. पार्थसारथी
चेयरमैन, रिसर्च इंफार्मेशन सिस्टम,
नान एलाइंड एंड अदर डेवलपिंग कंट्रीज, नई दिल्ली

प्रो. बिमल प्रसाद
प्रोफेसर, इंटरनेशनल रिलेशन्स
जवाहरलाल नेहरू यूनिवर्सिटी

प्रो. वी.पी. दत्त
प्रोफेसर चाइनीज़ एंड जापानीज़ स्टडीज़, दिल्ली विश्वविद्यालय
एवं संसद सदस्य

प्रो. डी.डी. मल्होत्रा
प्रोफेसर, भारतीय लोक प्रशासन संस्थान

विषय-सूची

प्रस्तावना
लेखक परिचय

जवाहरलाल नेहरु : जीवन झांकी

1

नेहरू : एक सच्चे लोकतंत्रवादी
आर. वेंकटरमण
(1)

2

जवाहर लाल नेहरू : आधुनिक राष्ट्रमंडल के निर्माता
डा. शंकर दयाल शर्मा
(12)

3

जवाहर लाल नेहरू तथा समाजवाद
पी.वी. नरसिम्हा राव
(19)

4

पंडित नेहरू तथा राष्ट्र निर्माण
बूटा सिंह
(26)

5

नेहरू : सामाजिक न्याय के मसीहा
पी. शिवशंकर
(31)

6

जवाहर लाल नेहरू और भारत में योजना
वसंत साठे
(43)

7

पंडित जवाहरलाल नेहरू की गुट निरपेक्ष संबंधी विदेश नीति

दिनेश सिंह

(50)

8

नेहरू : व्यक्तित्व का विश्लेषण

एम.एस. गुरुपदस्वामी

(55)

9

विदेश मंत्री के रूप में जवाहरलाल नेहरू

नारायण दत्त तिवारी

(59)

10

जवाहर लाल नेहरू : एक बहुमुखी प्रतिभा

सत्येन्द्र नारायण सिंह

(69)

11

जवाहर लाल नेहरू और राष्ट्रीय एकता

नूरुल हसन

(72)

12

आदर्श लोकतंत्रवादीःजवाहर लाल नेहरू

डा. गोपाल सिंह

(77)

13

कुछ संस्मरण

फ्रैंक एंथोनी

(85)

14

पंडित जी : एक प्रतिभाशाली समाजवादी दार्शनिक

बी.ए. मासोदकर

(88)

15

पंडित जवाहर लाल नेहरू के साथ यात्रा

मोहम्मद यूनुस

(107)

16

संसदीय लोकतंत्र का स्वर्णिम युग

सुभाष कश्यप

(119)

17

एक बहिन के संस्मरण

विजय लक्ष्मी पंडित

(141)

18

जवाहर लाल नेहरू : कुछ संस्मरण

बी. एन. पाण्डे

(146)

19

पंडित जवाहरलाल नेहरू : आधुनिक भारत उनका सबसे बड़ा स्मारक

राज बहादुर

(160)

20

जवाहरलाल नेहरू तथा विकासात्मक आयोजना

वी.के.आर.वी. राव

(163)

21

जवाहर लाल नेहरू मेरी दृष्टि में
ई.एम.एस. नम्बूदरीपाद
(174)

22

जवाहर लाल नेहरू : मानवता की देन
वी.आर. कृष्ण अय्यर
(177)

23

महान सांसद
हीरेन मुखर्जी
(182)

24

कुछ स्मृतियाँ
रफ़ीक ज़कारिया
(188)

25

पंडित नेहरू और लोकतांत्रिक मूल्य
रेणुका राय
(204)

26

जवाहर लाल नेहरू : विदेशी मित्रों की निगाह में
अरुणा आसफ अली
(211)

27

लोकतंत्र, समाजवाद, राष्ट्रीय एकता एवं शांति
जी. पार्थसारथी
(223)

28

जवाहरलाल नेहरू और भारतीय विदेश नीति की नींव

बिमल प्रसाद

(232)

29

जवाहरलाल नेहरू और भारत में सामाजिक परिवर्तन

वी.पी. दत्त

(241)

30

जवाहरलाल नेहरू : विज्ञान और प्रौद्योगिकी तथा लोक प्रशासन पर उनका दृष्टिकोण

डी.डी. मल्होत्रा

(259)

जवाहरलाल नेहरू : जीवन झांकी

जवाहरलाल नेहरू का जन्म 14 नवम्बर, 1989 को हुआ था। उनके कुल का उपनाम नेहरू कैसे पड़ा, इस विषय में उन्होंने अपनी आत्मकथा में लिखा है :

> "राज कौल* को एक नहर के किनारे पर स्थित एक हवेली जागीरी में दी गई थी और इस निवास स्थान से ही "नेहरू" (नहर से) उनके नाम के साथ जुड़ गया। उनका पारिवारिक नाम कौल था। यह बदलकर कौल नेहरू हो गया और परवर्ती वर्षों में मात्र नेहरू रह गया।"[1]

उनके पिता मोतीलाल नेहरू बहुत पहले कानपुर से इलाहाबाद चले गये थे जहां उन्होंने स्वयं के लिये अपना एक महत्वपूर्ण स्थान बना लिया। व्यवसाय से वे एक वकील थे और अपने अथक परिश्रम से उन्होंने स्वयं को एक नामी वकील के रूप में स्थापित कर लिया। वे एक प्रबुद्ध शिक्षित व्यक्ति थे और वे पश्चिमी जीवन शैली का अनुसरण करते थे। जवाहरलाल की माता स्वरूप रानी भारतीय नैतिकता और मूल्यों में शिक्षित थी। जवाहरलाल के ही शब्दों में "उन्होंने उन्हें अत्याधिक स्नेह एवं प्यार दिया।" समृद्ध दम्पती के वैवाहिक जीवन के ग्यारह वर्षों बाद जन्मे पुत्र के रूप में जवाहर का लालन पालन अत्याधिक समृद्धि में हुआ।

फारसी और अरबी के ज्ञाता मोतीलाल चाहते थे कि उनका पुत्र स्वयं उन्हें प्राप्त हो चुकी पारम्परिक और सांस्कृतिक शिक्षा से अधिक शिक्षा प्राप्त करे। अतः स्वाभाविकतः उन्होंने अपने पुत्र को पश्चिमी शिक्षा ही देनी चाही। उन्हें तथा उनकी दो बहनों विजय लक्ष्मी पंडित और कृष्णा को घर में ही शिक्षित करने के लिये निजी शिक्षक और गवर्नस नियुक्त कर दी गई। मोतीलाल नेहरू की पश्चिमी शिक्षा के प्रति ललक को देखकर श्री बी.आर. नन्दा ने जवाहरलाल नेहरू की जीवनी में लिखा है :

> "संभव है मोतीलाल ने यह निर्णय कुछ अपने अभिजात्य अहं, कुछ अंग्रेजी-मोह से प्रेरित पूर्वाग्रहों एवं कुछ यह सोच कर लिया हो कि वे अपने बच्चों को सर्वोत्तम और सर्वाधिक व्ययशील शिक्षा दिलाने में समर्थ है।"

---

* उनके पूर्वज

1. जवाहरलाल नेहरू, एन आटोबायोग्राफी (आक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, 1982 पृ.)।

जिन निजी शिक्षकों ने जवाहर लाल पर अपनी अमिट छाप छोड़ी, उनमें एक थे फर्डिनान्डे टी. ब्रुक्स, जो एक थियोसोफिस्ट थे। ब्रुक्स के माता-पिता फ्रांसीसी और आयरिश थे। मोतीलाल को इनके नाम की संस्तुति एनी बेसन्ट ने की थी। वह एक कुशाग्र बुद्धि युवक था जिसने जवाहरलाल में अध्ययन के लिये अदम्य रुचि पैदा की। नेहरू ने स्कॉट डिकिन्स एवं थैकरे के उपन्यास, एच.जी. वेल्स की रूमानी कृतिया और मार्क ट्वेन और शरलाक होम्स की कहानियों का अध्ययन किया। ब्रुक्स ने इतिहास के अतिरिक्त उनमें प्रकृति विज्ञानों के प्रति रुचि भी पैदा की। आनन्द भवन के परिसर में ही वैज्ञानिक प्रयोगों के लिये एक प्रयोगशाला बनाई गई थी। इस प्रकार जवाहरलाल को ज्ञान लोक का सही समय पर सही परिचय प्राप्त हुआ।

ब्रिटेन यात्रा

जब घर पर अध्यापकों द्वारा शिक्षण को अपर्याप्त समझा गया तो मोतीलाल नेहरू ने बालक नेहरू का इंग्लैंड के एक पब्लिक स्कूल में दाखिला करा दिया। अतः 1905 में वे अपने परिवार के साथ इंग्लैंड गये और उन्होंने पन्द्रह-वर्षीय जवाहरलाल को हैरो में प्रवेश करा दिया। जवाहरलाल ने हैरो में लैटिन का परिशीलन किया। जवाहरलाल की विश्व-कोशीय मेधा थी और इसलिये उनकी पठनगत रुचियां बहुत व्यापक थीं। उनका सामान्य ज्ञान बहुत ही अच्छा था। उन्होंने गहरी रुचि से आस पास घट रही राजनीतिक घटनाओं पर भी गौर किया। राजनीति के अतिरिक्त वे विमानन के प्रारंभिक विकास के प्रति आकर्षित थे क्योंकि उन दिनों राइट बन्धुओं की ही सर्वत्र चर्चा थी।

जिन दिनों जवाहरलाल इंग्लैंड में थे, भारत में स्वतंत्रता संघर्ष तेज होता जा रहा था। बंगाल-विभाजन, स्वदेशी आन्दोलन और लाला लाजपत राय और सरदार अजीत सिंह के देश से निष्कासन के समाचारों ने उनके मस्तिष्क को काफी उद्वेलित कर दिया। वे भारत से आये अपने मित्रों और सम्बन्धियों से प्रायः देश की राजनीतिक घटनाओं पर चर्चा किया करते। उन्हें हैरो और उसकी बौद्धिक परिधि अपने राजनीतिक अथवा अन्य विचारों की अन्योन्यक्रिया और अभिव्यक्ति के लिये बहुत संकरी लगने लगी। इसलिये उन्होंने दो वर्षों बाद अपने पिता की अनुमति से हैरो छोड़ दिया और अक्तूबर, 1907 में सतरह वर्ष की आयु में ट्रिनिटी कॉलेज, कैम्ब्रिज में प्रवेश लिया।

कैम्ब्रिज में ही बौद्धिक अनुसंधान के लिये जाग्रत हो चुकी उनकी जिज्ञासा को बड़ा प्रोत्साहन मिला। यद्यपि उन्होंने रसायन विज्ञान, भू विज्ञान और वनस्पति विज्ञान जैसे विषय लिए थे, किन्तु उन्होंने अर्थशास्त्र, इतिहास और साहित्य का भी गहरा अध्ययन किया। जवाहरलाल को जिन पुस्तकों ने राजनीतिक दृष्टि से प्रभावित किया, उनमें मेरे-डिथ-टाउन-सेन्ड की "**एशिया एण्ड योरुप**" भी एक है। कैम्ब्रिज में उनका सारा समय अध्ययन, खेलों और मनोविनोद में व्यतीत होता था। किन्तु बालगंगाधर तिलक और अरविन्द घोष के नेतृत्व में चल रही राजनीतिक उथल पुथल से उनका मानस आन्दोलित हो उठा। उन दिनों जवाहरलाल की सहानुभूति आतिवादियों के साथ अधिक थी। कैम्ब्रिज में भारतीय विद्यार्थियों द्वारा गठित मजलिस भारत में चल रही राजनीतिक

उथल पुथल पर चर्चा करने का एक अच्छा मंच सिद्ध हुआ। वे प्रायः मजलिस में भाग लेते थे किन्तु यदा कदा ही वहां बोलते थे। ऐसा विशेष रूप से इसलिये था कि वे स्वभाव से ही "शर्मीले और अड़ियल" थे।

जवाहरलाल के लिए भी किसी अन्य महत्वाकांक्षी शिक्षित और प्रबुद्ध युवक की तरह कैम्ब्रिज स्पृहणीय सिविल सेवा ज्वाइन करने के लिए कमानी की तरह हो सकती थी परन्तु लगता है कि विदेशी शासन के अधीन सुखद, अरामदेह और सुरक्षित भविष्य की सम्भावनाएं उनको आकर्षित नहीं कर पाईं। अंततोगत्वा उन्होंने सिविल सेवा की परीक्षा में न बैठने का निर्णय किया और कानून में प्रवेश लिया। इस प्रकार अपनी अंतिम प्रावीण्य परीक्षा से पहले ही उन्होंने "इनर टेम्पल" ज्वाइन कर लिया था। कानून के पेपरों में अधिक समय नहीं लगा और जवाहरलाल कानून की एक के बाद दूसरी परीक्षा पास करते गये जैसाकि उन्होंने स्वयं लिखा है इसके दौरान न तो उनकी विशेष योग्यता प्रदर्शित हुई और न अपकीर्ति ही फैली।

'जवाहरलाल भारत लौटने से पहले थोड़े दिनों लन्दन स्कूल ऑफ इॅकानामिक्स में भी रहे। उनके भारत लौटने से पहले के इन दो वर्षों के दौरान वे थोड़ा बहुत फेबियन और समाजवादी विचारों की तरफ आकर्षित हुए थे। 1910 की गर्मियों में आयरलैंड की एक यात्रा के दौरान वह "सिन फेन" आन्दोलन से भी प्रभावित हुए "वास्तव में भारत में उस आन्दोलन की समानान्तरता स्पष्ट थी और प्रतीत होता है कि जवाहरलाल की आयरलैंड की यात्रा और इनकी राजनीति की सूझ-बूझ ने उनकी अतिवादियों के प्रति सहानुभूति को बढ़ावा दिया।"[2] जवाहर लाल राजनीतिक रूप से समाजवाद की ओर सम्मान और कुछ-कुछ अतिवादिता के पुट के साथ 1912 की गर्मियों में उस समय भारत आये जब स्वतंत्रता आन्दोलन नरम और गरम दलों के बीच बंटा हुआ था।

भारत वापसी

इंग्लैंड से 1912 में वापस आने पर जवाहरलाल ने अपने पिता के जूनियर के रूप में इलाहाबाद उच्च न्यायालय में वकालत शुरू की। सात साल विदेश में रहने के बाद शुरू के महीनों में इन्होंने पुराने संबंधों को पुनःस्थापित करने में बिताया तथापि व्यवसाय की नीरस और उबाऊ मांगों से धीरे-धीरे वह खिन्न हो गये। भाग्यवश, घर का वातावरण पर्याप्त अनुकूल था। इस पृष्ठभूमि में उन्होंने कांग्रेस की गतिविधियों में भाग लेने के लिए कांग्रेस ज्वाइन करने का निर्णय किया। जब भारतीय मजदूरों के लिए फिजी अनुबंध प्रणाली अथवा दक्षिण अफ्रिकी भारतीय प्रश्न जैसे विशेष अवसर आये तो वे उनमें डूब गये और उन्होंने लगन और निष्ठापूर्वक कार्य किया। इस प्रकार पूरी निष्ठा और उत्साह से अपने कार्यों में संलग्नता, विदेश नीति और अंतर्राष्ट्रीय संबंधों के प्रति उनकी गहन रुचि का संकेतक थी जो बाद में कांग्रेस पार्टी के स्वतंत्रता संग्राम की खेवनहार बनी।

जहां राजनीति और वकालत ने उन्हें व्यस्त रखा उनके बीच भी उन्होंने पढ़ने, घूमने और शिकार के लिए समय निकाला। 8 फरवरी, 1916 को **वसंत पंचमी** के दिन, जो

---

2. सर्वपल्ली गोपालः जवाहर लाल नेहरू एक जीवनी (खण्ड-एक) आक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, 1981, पृष्ठ 22

भारत में बसंत के आगमन का पूर्व सूचक है कश्मीरी मध्यवर्गीय ब्राहमण परिवार की एक सत्रह वर्षीया युवा लड़की कमला कौल के साथ विवाह हो गया। चूंकि मोती लाल नेहरू ने दुल्हन का चुनाव स्वयं किया था इसलिए यह विवाह मां-बाप की सहमति से हुआ था।

राजनीति में प्रवेश

लोकमान्य तिलक के जेल से छूटने पर भारत के राजनीतिक आन्दोलन में एक उग्र मोड़ आया। जवाहर लाल ने तिलक और श्रीमती ऐनी बेसेंट द्वारा शुरू की गयी "होम रूल लीग" ज्वाइन कर ली। 1916 के क्रिसमस के दौरान लखनऊ कांग्रेस में उनका परिचय महात्मा गांधी से भी हुआ था। तथापि उन्होंने 1915 में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के बम्बई अधिवेशन में गांधी जी को देखा था। दक्षिण अफ्रीका में रंगभेद की घृणित प्रथा के विरुद्ध गांधी जी की लड़ाई से वे काफी प्रभावित थे। यद्यपि गांधी जी के राजनीतिक दर्शन से कुछ हद तक हैरान थे फिर भी जवाहरलाल उनके व्यक्तित्व और व्यावहारिक राजनीतिक समझबूझ से अभिभूत थे। वे विशेष रूप से जमींदारी आंदोलन से प्रभावित थे जिसका नेतृत्व गांधी जी ने बिहार में 1917 में किया था। युवा नेहरू को उनकी जो बात सबसे अच्छी लगी वह थी गांधी जी की शक्ति, भारत की स्वतंत्रता के प्रति उनकी चट्टान सी सुदृढ़ता और वह तरीका जिससे उन्होंने अपने चरित्र-व्यक्तित्व का निर्माण किया था ताकि भारत में राजनीतिक परिवर्तन के प्रभावी तंत्र की तरह स्वयं को ढाल सकें।[3]

प्रथम विश्वयुद्ध के पश्चात भारत में स्वायत्त सरकार के संबंध में राजनीतिक आशाएं बढ़ गई थीं। किन्तु इन बढ़ती हुई आशाओं पर उस समय तुषारापात हो गया जब ब्रिटिश सरकार ने दमनकारी और क्रूरता भरा रालेट बिल पास किया। इसके विरोध में महात्मा गांधी के आह्वान पर सत्याग्रह के रूप में सारे भारतवर्ष में भारी विरोध और प्रदर्शन हुए। पंजाब में अमृतसर में जलियांवाला बाग में नरसंहार की भयावह घटना घटी। इन सब घटनाओं से जवाहरलाल इतने अधिक आन्दोलित हुए कि उन्होंने वकालत छोड़ दी और उनकी जीवन शैली का कायापलट हो गया। वे कांग्रेस के सक्रिय कार्यकर्त्ता बन गये। जीवन में आराम को छोड़कर वे गांधी जी के सिपहसालार बन गये।

इस उग्र स्वतंत्रता आन्दोलन के दौरान उनका पत्रकारिता के प्रति भी लगाव था। इलाहाबाद के प्रमुख नरमपंथी अखबार "दि लीडर" से असंतुष्ट मोतीलाल नेहरू ने इलाहाबाद से 1919 के प्रारम्भ में एक दूसरा दैनिक पत्र "दि इंडिपेंडेंट" शुरू किया। जवाहरलाल इसके निदेशकों में से एक थे।

फरवरी, 1920 में जवाहरलाल नेहरू ने बहादुर गंज में इलाहाबाद जिला सम्मेलन में भाग लिया तथा जुलाई में वे इलाहाबाद जिला कांग्रेस समिति के उपाध्यक्ष चुने गए।

---

3. वही पृष्ठ 40

उन्होंने उत्तर प्रदेश के आंतरिक इलाकों का दौरा किया जिससे उन्हें भारत के गांवों की गरीबी के संबंध में जानकारी मिली। उन्होंने राजनीतिक संघर्ष के रोमांच तथा व्यथा का अनुभव किया था। इन वर्षों के दौरान वे कई बार जेल गए, जिसका उन पर बहुत अधिक प्रभाव पड़ा। उनकी जीवन शैली गंभीर तथा उनका दृष्टिकोण सुधारवादी हो गया।

पुनः यूरोप में

फरवरी, 1922 में चौरी-चौरा की दुर्भाग्यपूर्ण घटना के बाद महात्मा गांधी ने सविनय अवज्ञा आंदोलन को जारी न रखने का निर्णय लिया। कुछ वर्षों के लिए स्वतंत्रता आंदोलन की गति मंद पड़ गई। इस गतिरोध के दौरान मार्च, 1926 में अपनी पत्नी कमला तथा 8 वर्षीय पुत्री इंदिरा के साथ उन्होंने बंबई से स्विटज़रलैंड के रास्ते वेनिस के लिए प्रस्थान किया। विदेश जाने का मूल प्रयोजन अपनी पत्नी का उपचार करवाना था, जिन्हें यक्ष्मा हो गया था। जेनेवा में रहते हुए उन्होंने बहुत ही साधारण जीवन व्यतीत किया। वे तीन कमरों के अपार्टमेंट में रहते थे।

कमला नेहरू की बहुत अच्छी चिकित्सा होने के बावजूद स्विटजरलैंड में उनकी हालत में सुधार नहीं हुआ। धन उनके लिए कोई बाधा नहीं था क्योंकि मोतीलाल नेहरू अपनी बहू के उपचार के लिए जितने अधिक धन की आवश्यकता थी उसे खर्च करने के संबंध में काफी उदार थे। जवाहरलाल अपनी पत्नी के गिरते हुए स्वास्थ्य से काफी चिंतित थे तथा उन्होंने अत्याधिक अध्ययन में शांति तथा आराम पाया। अंतर्राष्ट्रीय राजनीति के केन्द्र जेनेवा ने उन्हें बहुत आकर्षित किया। इससे उन्हें भारत में चल रही राजनीतिक गतिविधियों को आंकने का अवसर भी मिला। इस संबंध में अंतर्राष्ट्रीय तथा राष्ट्रीय राजनीति को साथ-साथ रखकर जवाहरलाल ने भारत के संबंध में अपना एक अलग दृष्टिकोण बनाया। ये वे वर्ष थे जब उनके विश्व संबंधी दृष्टिकोण तथा राजनीतिक चिंतन के बीज पड़े जिनसे वे परवर्ती वर्षों में आंतरिक तथा बाहरी विश्व के संदर्भ में राष्ट्र की नियति के कर्णधार बने।

1926 के अंत में बर्लिन की एक लघु यात्रा में उन्हें फरवरी, 1927 में ब्रुसल्स में पददलित राष्ट्रों की प्रस्तावित कांग्रेस के संबंध में पता चला। इस विचार ने उन्हें तत्काल आकर्षित किया। लैटिन अमरीका तथा यूरोप में औपनिवेशिक-लोगों के लिए सुधारवादी नेताओं की इस असाधारण बैठक के लिए जवाहरलाल नेहरू को कांग्रेस पार्टी का प्रतिनिधि नियुक्त किया गया। नेहरू पर ब्रुसल्स कांग्रेस के व्यापक प्रभाव के संबंध में, माईकल ब्रेखर ने निर्भीक रूप से लिखाः

> "ब्रुसल्स कांग्रेस नेहरू के राजनीतिक चिंतन विशेषतया उनकी समाजवादी प्रतिबद्धता तथा अंतर्राष्ट्रीय दृष्टिकोण के विस्तार के लिए एक मील का पत्थर सिद्ध हुई। यहां पहली बार वे एशिया तथा अफ्रीका के कट्टर साम्यवादियों, वामपंथी

समाजवादियों तथा उदारवादी राष्ट्रवादियों के संपर्क में आए। यह वही स्थान था जहाँ पर राष्ट्रीय स्वतंत्रता एवं सामाजिक सुधार के ध्येय किसी अज्ञात कारण से उनकी भावी राजनीतिक विचारधारा में समाविष्ट हो गए। यहीं पर अफ्रीकी-एशियाई राष्ट्रों में परस्पर सहयोग के विचार ने आकार ग्रहण किया। वस्तुतः 1955 का बडंग सम्मेलन ब्रुसल्स में लगभग 30 वर्ष पहले जन्मे एक विचार की परिणति के रूप में देखा जाना चाहिए।[4]

ब्रुसल्स सम्मेलन में जवाहरलाल पहली बार जार्ज लांसबरी, अलबर्ट आइंस्टीन, रोमां रोलां तथा मदाम सन यत सेन जैसे अंतर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त व्यक्तियों के संपर्क में आए थे। कांग्रेस ने औपनिवेशक तथा आश्रित देशों की समस्याओं को समझाने में उनकी सहायता की। बाद में जब कमला नेहरू के स्वास्थ्य में सुधार हुआ तो जवाहरलाल नेहरू ने अपनी पत्नी के साथ फ्रांस, इंग्लैंड, जर्मनी तथा इटली की लघु यात्रा की। इन यात्राओं से उन्हें मदाम भीखाजी कामा, एम.एन. राय, वीरेन्द्रनाथ चट्टोपाध्याय, मौलवी ओबेदुल्ला राय, वीरेन्द्रनाथ जैसे अनेक भारतीय क्रांतिकारियों से मिलने का अवसर प्राप्त हुआ।

अपनी यूरोप यात्रा के अंतिम चरण में जवाहरलाल अपनी पत्नी, बहन कृष्णा तथा उस वर्ष ग्रीष्म ऋतु में यूरोप आए अपने पिता के साथ नवम्बर, 1927 में मास्को पहुंचे। उनकी सोवियत संघ की चार दिवसीय यात्रा से उनके मानस पर एक अमिट छाप पड़ी।

इससे वे रूसी लोगों की कार्यपद्धति, समाजवादी व्यवस्था तथा समाज से परिचित हुए। वे दिल्ली में अंग्रेज अधिकारियों के मोटे वेतन, भौतिक सुख तथा ठाट-बाट की तुलना में सोवियत अधिकारियों तथा कम्युनिस्ट पार्टी के सदस्यों की सादगी को देखकर आश्चर्यचकित रह गए। स्टेट ओपरा हाउस की यात्रा पर वे दर्शकों, जिनमें अधिकतर साधारण कामगार थे की साधारण ड्रैस देखकर आश्चर्यचकित हो गए थे।[5]

उनकी पत्नी का स्वास्थ्य यद्यपि पूरी तरह से ठीक नहीं हुआ तथापि उसमें पर्याप्त सुधार हुआ था। इसलिए यूरोप में उनका कोई काम शेष नहीं था। वे स्वयं भी लम्बी छुट्टी के बाद शारीरिक तथा मानसिक रूप से काफी स्वस्थ महसूस कर रहे थे। उनकी विदेश यात्राएं, विशेषतया ब्रुसेल्स कांग्रेस सम्मेलन में उनका भाग लेना तथा तत्पश्चात् उनकी मास्को यात्रा से उन्हें विश्वास हो गया कि भारत के लिए समाजवादी समाज की आवश्यकता है।

---

4. माइकल ब्रेखर, नेहरू — ए पोलिटिकल बायोग्राफी, आक्सफोर्ड युनिवर्सिटी प्रेस, 1959, पृ. 109
5. वही, पृ 117

राष्ट्रवाद का पुनः जागरण

इस प्रकार के मनोभाव के साथ जवाहरलाल दिसम्बर, 1927 में अपने परिवार सहित भारत के लिए रवाना हुए। स्वतंत्रता संघर्ष की तीव्रता जो उनके यूरोप जाने के समय कम हो गई थी नवम्बर, 1927 में साइमन कमीशन के आगमन से पुनः उग्र हो गई। दिसम्बर, 1927 में जवाहरलाल मद्रास उस सुअवसर पर पहुंचे जब वहां कांग्रेस का अधिवेशन किया जा रहा था।

भारत के लिए पूर्ण स्वतंत्रता अथवा डोमीनियन दर्जा दिए जाने के विवाद को जवाहरलाल ने एक नई दिशा दी जब उन्होंने मद्रास में कांग्रेस की बैठक में 27 दिसम्बर, 1927 को उस प्रसिद्ध प्रस्ताव को प्रस्तुत किया जिसमें कहा गया था कि 'कांग्रेस घोषणा करती है कि भारतीय जनता का ध्येय पूर्ण राष्ट्रीय स्वतंत्रता होगी।' प्रस्ताव वस्तुतः क्रांतिकारी था। उस समय जब अधिकांश कांग्रेसी नेता स्वतंत्रता संघर्ष के लिए शनैःवाद ही से सन्तुष्ट थे, पूर्ण राष्ट्रीय स्वतंत्रता के लिए यह आह्वान एक चौंकाने वाली बात थी।

जवाहरलाल ने इसे और बल देने के लिए युवकों, किसानों और मजदूरों का आह्वान किया। 1928 की शरद ऋतु में वह अखिल भारतीय युवा कांग्रेस के अध्यक्ष चुने गए। उनकी संगठनात्मक क्षमता को मान्यता देते हुए दिसम्बर, 1928 के उत्तरार्द्ध में कलकत्ता में कांग्रेस अधिवेशन में उन्हें कांग्रेस के महासचिव के रूप में पुनः नियुक्त किया गया। अगले वर्ष सितम्बर में वह सर्वसम्मति से कांग्रेस के अध्यक्ष चुन लिए गए। जवाहरलाल के कांग्रेस के अध्यक्ष पद के लिए चुने जाने पर महात्मा गांधी ने टिप्पणी करते हुए कहा:

> "उनमें अदम्य साहस है। देश प्रेम उनके लिए सर्वोपरि है। यदि उनमें एक योद्धा का जोश और हठ है तो उनमें एक राजनेता की दूरदर्शिता भी है। अनुशासनप्रिय होने के कारण वे उसका कठोरता से पालन करते हैं वे स्फटिक के समान स्वच्छ और निस्संदेह एक सच्चे व्यक्ति हैं। निश्चित रूप से वे एक सच्चे योद्धा हैं। राष्ट्र उनके हाथों में सुरक्षित है।"[6]

दिसम्बर, 1929 के अन्त में लाहौर में हुए कांग्रेस के ऐतिहासिक अधिवेशन में पुत्र ने पिता से पदभार लिया। जवाहरलाल का समाजवादी रूप कांग्रेस के इस अधिवेशन में सार्वजनिक रूप से मुखर हुआ। किन्तु व्यावहारिक और सौम्य जवाहरलाल अपने निजी विचारों के समक्ष झुके नहीं। वे जानते थे कि उस समय भारत में जो परिस्थितियां थीं वे पूर्ण समाजवादी कार्यक्रम अपनाने के अनुरूप नहीं हैं। इसीलिए उन्होंने ब्रिटिश साम्राज्य से पूर्ण स्वतंत्रता के आह्वान को दोहराया। पूर्ण राष्ट्रीय स्वतंत्रता के प्रस्ताव को दोहराया गया और कांग्रेस के लाहौर अधिवेशन में 31 दिसम्बर, 1929 की आधी रात को इसे पारित किया गया। रावी के किनारे स्वतंत्रता का ध्वज फहराया गया जिसने जवाहरलाल को राष्ट्रीय राजनीति में अग्रणी नेता बना दिया।

---

6. बी. एन. पांडे, **नेहरू**, मेकमिलन, पृ. 139
   तेंदूलकर, **महात्मा**, खण्ड दो, पृ. 490

पूर्ण राष्ट्रीय स्वतंत्रता के आह्वान ने संपूर्ण देश को झकझोर कर रख दिया। इसने विदेशी दासता से राष्ट्रीय मुक्ति का नारा बुलंद कर दिया। इसी संबंध में गांधी जी ने **नमक सत्याग्रह** करने का निर्णय लिया जो सविनय अवज्ञा का एक अनोखा तरीका था। अतः उन्होंने 12 मार्च, 1930 को अपने अहमदाबाद के साबरमती आश्रम से दांडी के लिए लंबी पैदल-यात्रा शुरू की। इस लंबी पैदल यात्रा में पूरा राष्ट्र उमड़ पड़ा। इस दृश्य से जवाहरलाल इतने अधिक अभिभूत हुए कि वह और मोतीलाल दोनों महात्मा की पैदल यात्रा में शामिल हो गए। दांडी मार्च के महत्व के बारे में बोलते हुए जवाहरलाल ने कहा :

> "आज यह यात्रा अपने लंबे सफर पर निकल पड़ी है। महान संकल्प की ज्वाला उनके दिल में है और अपने दुखी देशवासियों का अटूट प्रेम उनके हृदय में है। सच्चाई की ज्वाला और स्वतंत्रता की प्रेरणा उनके दिल में है। जो भी उनके संपर्क में आता है उनसे प्रभावित हो जाता है और साधारण मनुष्य उनसे प्रेरणा लेता है।"[7]

मोतीलाल नेहरू ने अपना आलीशान घर **आनंद भवन** राष्ट्र को समर्पित कर कांग्रेस को दे दिया। इसका नाम रखा गया **स्वराज भवन** अर्थात् स्वतंत्रता भवन। यह त्याग की महान गाथा है। नेहरू की जय और पराजय स्वतंत्रता संग्राम के उतार-चढ़ाव के इतिहास और राष्ट्रीय भाग्य में अनुस्यूत हो गई। जेल, जहां उन्होंने 1930 और 1935 के बीच चार वर्ष बिताए, जवाहरलाल का घर बन गया।

साहित्य की ओर रुझान

कारावास के एकाकीपन से उन्हें चिंतन, आत्म-मंथन और विगत घटना चक्र पर मनन करने के अवसर के साथ-साथ स्वाध्याय के लिये भी काफी समय मिल जाता। उनकी सरल और प्रवाहमयी लेखनी और प्रखर एवं प्रबुद्ध मानस ने "ग्लिम्पसिज ऑफ वर्ल्ड हिस्ट्री" (1934), "लेटर्स फ्रॉम ए फादर टू ए डाटर" (1929) और "आटोबायोग्राफी" (1936) जैसी कुछ गौरव कृतियों का सृजन किया। इनके अतिरिक्त, उन्होंने अनेक लेख, निबंध और भाषण लिखे जो दो संग्रह — "रिसेन्ट एसेज एंड राइटिंग्स" (1934) और "इंडिया एंड द वर्ल्ड" (1936) में संकलित किये गये। इस समृद्ध साहित्यिक योगदान ने उन्हें अनायास ही श्रेष्ठतम दार्शनिक राजनीतिज्ञों की श्रेणी में ला खड़ा किया। इन प्रकाशनों से प्राप्त रायल्टी ने उन्हें वित्तीय संकट के दौरान सहारा दिया।

उनकी गौरव कृति "ग्लिम्पसिज ऑफ वर्ल्ड हिस्ट्री" पर विचार व्यक्त करते हुए जवाहर लाल की जीवनी लेखक माइकेल ब्रेसर लिखते हैं:

> "इस कृति की मौलिकता एवं विलक्षणता इस बात में है कि इसकी रचना विश्व के अन्य स्तरीय इतिहासकारों से बिलकुल हट कर विशेषतया एशिया को केन्द्र में रखकर की गई। इसमें संतुलन की कमी दूर की गई है। यूरोप और अमरीका को

---

7. ब्रेखर उद्धृत कृति पृ. सं. 150

"विश्व इतिहास" के परिप्रेक्ष्य में रखकर देखा गया है और पाठक को इस तथ्य से अवगत कराया गया है कि गैर-यूरोपीय लोगों का इतिहास यूरोप की सागरपारीय संस्कृति का विस्तार मात्र नहीं है।" वे आगे लिखते हैं, "ग्लिम्पसिज ऑफ वर्ल्ड हिस्ट्री" उनके राजनीतिक निष्कर्षों के विकास में एक मील का पत्थर है, इसमें उनका अन्तर्राष्ट्रीय आदर्शवाद विशुद्धतम रूप में मूर्तिमान हुआ है।"[8]

6 फरवरी 1931 को पिताश्री मोतीलाल नेहरू के निधन ने उन्हें एकाकी कर दिया। युवक नेहरू के लिये यह एक बहुत बड़ी क्षति थी क्योंकि मोतीलाल उनके पिता ही नहीं एक सतत साथी भी थे। उनकी मृत्यु से पैदा हुए शून्य को आगे चलकर महात्मा गांधी ने पूरा किया।

कराची कांग्रेस

मोतीलाल नेहरू की मृत्यु के करीब दो महीने बाद ही मार्च के अंतिम सप्ताह में कराची में कांग्रेस का अधिवेशन आयोजित किया गया। कांग्रेस का लाहौर अधिवेशन पूर्ण राष्ट्रीय स्वाधीनता की उद्घोषणा के लिये उल्लेखनीय था, किन्तु मार्च 1931 में कराची में हुए कांग्रेस अधिवेशन में जवाहरलाल का समाजवादी चिंतन उनके मौलिक अधिकारों संबंधी संकल्प में साकार हुआ। वस्तुतः यह संकल्प स्वतंत्र भारत के संविधान में प्रतिष्ठापित आदर्शों और उद्देश्यों का पूर्वाभास था और यह एक धर्मनिरपेक्ष समाजवादी और लोकतांत्रिक राज्य की रूपरेखा का आधार बना। समाजवाद के प्रति उनकी प्रतिबद्धता आगे चलकर उस समय परिलक्षित हुई जब उन्होंने 1934 में स्थापित कांग्रेस समाजवादी दल को जेल में रहकर ही समर्थन और संरक्षण प्रदान किया। किन्तु वे कोरे सिद्धांतवादी नहीं थे। उनकी पूंजीवाद एवं समाजवाद के गुणों से युक्त मिश्रित अर्थव्यवस्था के सिद्धांत में अटूट आस्था थी और उन्होंने उसका स्पष्ट रूप से निरूपण किया। इसके पीछे सोच यह थी कि लाभ के प्रेरकत्व का शमन कर शासन तंत्र को आर्थिक क्रियाकलाप विनियमित करने के लिये प्रयुक्त किया जाये।

फरवरी 1931 में कमला के स्विटजरलैंड में असामयिक निधन से जवाहरलाल के निजी जीवन में यह एक बहुत बड़ी त्रासदी घटी। कमला की अन्त्येष्टि के पश्चात् स्वदेश लौटते समय जवाहरलाल ने लंदन के एक प्रकाशक को, जो उनकी आत्मकथा प्रकाशित कर रहा था, अनुरोध भेजा कि वह इस कृति को "कमला, जो अब नहीं रही" को समर्पित कर दे।[9]

विदेशी मामलों में रुचि

जवाहर लाल नेहरू भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के लखनऊ अधिवेशन में वर्ष 1936 के लिये उसके अध्यक्ष निर्वाचित हुए। कांग्रेस दल के संचालन में वामपंथियों और दक्षिण

---

8. तत्रैव, पृ. 163-165
9. पांडे, उद्धृत कृति, पृ. 187

पंथियों को राजी करने की चुनौती भरा दायित्व उनके कन्धों पर आ पड़ा। उन्होंने अत्यंत निपुणता से अपने कर्तव्य का निर्वहन किया।

इस बीच में वे अंतर्राष्ट्रीय मामलों में गहरी रुचि लेते रहे। उन्होंने कांग्रेस दल की विदेश नीति के ध्येय एवं उद्देश्य निर्धारित किये। 1936-37 में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के अध्यक्ष के रूप में उन्होंने, जिन्हें भारतीय लक्ष्यों से सहानुभूति थी विदेशों में रहने वाले ऐसे व्यक्तियों और पार्टियों से सम्पर्क बनाये रखने के लिये अपने दल के सचिवालय में "विदेश विभाग" का गठन किया। 1937 में उन्होंने बर्मा और मलाया की सद्भावना यात्रा की और 1939 के ग्रीष्म में प्रवासी भारतीयों और सिंहलियों के बीच वैमनस्य को कम करने की कोशिश में सीलोन (अब श्रीलंका) की यात्रा की।

1938 में यूरोप जाते हुए उनकी मिश्र की वफ्द पार्टी के नेता नहास/कमाल पाशा से भेंट हुई। स्पेनी गृह युद्ध ने उन्हें काफी उद्वेलित कर दिया। उन्होंने इसे लोकतंत्र और अधिनायकवाद के बीच चल रहा युद्ध माना और लोकतंत्र के लिये संघर्षरत सहानुभूति दिखाई।[10] अगस्त 1939 में उन्होंने राष्ट्रवादी चीन की यात्रा की किन्तु दूसरा विश्वयुद्ध छिड़ जाने के कारण उन्हें अपनी यात्रा बीच में ही छोड़कर लौटना पड़ा।

स्वाधीनता और परवर्ती काल

जहां तक भारत का संबंध है जवाहरलाल जानते थे कि युद्ध में शामिल होने के क्या अपरिहार्य परिणाम होंगे। यदि ब्रिटेन ने भारत के स्वतंत्रता के दावे को स्वीकार किया, तो भारत महायुद्ध में समर्थन देने को और विश्व स्तरीय मामलों में एक मित्र और सहयोगी होने के लिये तैयार था। किन्तु यदि ब्रिटेन ने शासन जारी रखने का रास्ता अपनाया तो यह सोचना मूर्खता होगी कि भारतीय राष्ट्रवादी विदेश नीति में लंदन के नेतृत्व को समर्थन करेंगे।[11]

इस पृष्ठाधार में ब्रिटेन के युद्ध मंत्रिमंडल ने 1942 में क्रिप्स मिशन भारत भेजा। "प्रारूप घोषणा" में संविधान निर्माण हेतु संविधान सभा बुलाने के भारत के अधिकार को मान्यता दी गई। किन्तु इसमें निहित 'फूट डालो और राज करो' के बीज थे जिससे कांग्रेस और जवाहरलाल क्रुद्ध हो उठे। अन्ततः उन्होंने इस प्रस्ताव को ठुकरा दिया और इसी के कारण 8 अगस्त, 1942 को "भारत छोड़ो" आंदोलन छेड़ा गया।

ब्रिटिश सरकार ने जवाहरलाल जैसे अग्रणी नेताओं को जेल में डाल कर इस जन विद्रोह को कठोरतापूर्वक कुचलने की कोशिश की। यह जवाहरलाल के जीवन की दीर्घतम कारावास अवधि थी। उन्हें जून, 1945 में, ठीक उस वक्त रिहा कर दिया गया जब वाइसराय लार्ड वेवल ने गतिरोध को दूर करने के लिये शिमला में एक सम्मेलन

---

10. नन्दा, उद्धृत कृति, पृ. 35-36
11. ब्रेखर, उद्धृत कृति, पृ. 258

आयोजित किया।[12] इन वार्ताओं और बाद में 1947 में लार्ड माउंटबेटन से हुई वार्ताओं में नेहरू की महत्वपूर्ण भूमिका से उनका महान नेतृत्व परिलक्षित होता है। 14-15 अगस्त, 1947 में, भारत उपनिवेशी आधिपत्य से मुक्त हुआ, स्वतंत्रता संग्राम भारत की स्वाधीनता में परिणत हुआ।

महाद्वीपीय स्वरूप के इस नवोदित राष्ट्र का संचालन करने का दुष्कर कार्य जवाहर लाल नेहरू के कंधों पर आ पड़ा। उन्हें तत्काल जो कार्य करना था वह था देश के भीतर व्यवस्था कायम करना। संक्रमण के आघात ने अनेक समस्याएं खड़ी कर दीं जिनको उन्होंने बड़ी योग्यता से सुलझाया। एक दूरदर्शी राजनेता के रूप में उन्होंने इस राजनीतिक, आर्थिक और सामाजिक भवन की नींव रखी। उन्होंने गुट निरपेक्षता की नीति और पंचशील के सिद्धांतों के साथ विश्व समुदाय में भारत की भूमिका के संबंध में एक स्पष्ट दिशा भी प्रदान की। इन नीतियों के फलस्वरूप बाद के वर्षों में बहुत लाभ पहुंचा।

जवाहरलाल नेहरू ने विज्ञान और प्रौद्योगिकी के विकास में भी काफी रुचि ली। जैसाकि उन्होंने स्वयं स्पष्ट किया है : "राजनीति मुझे अर्थशास्त्र की ओर ले गई और उसने मुझे अपरिहार्य रूप से विज्ञान और अपनी सभी समस्याओं तथा जीवन के प्रति वैज्ञानिक दृष्टिकोण अपनाने की ओर उन्मुख किया। एकमात्र विज्ञान ही भूख और गरीबी की समस्याओं का समाधान कर सकेगा।[13] दो प्रतिष्ठित वैज्ञानिकों, होमी भाभा और शान्ति स्वरूप भटनागर, जिनमें पर्याप्त शक्ति, उत्साह और संगठनात्मक क्षमता थी, ने वैज्ञानिक और औद्योगिक अनुसंधान परिषद के तत्वावधान में प्रयोगशालाओं की कड़ी निर्मित कर वैज्ञानिक आधार ढांचा बनाने में उनकी सहायता की। 1958 में उन्होंने संसद में "विज्ञान नीति संकल्प" पारित करा के देश में हर कीमत पर विज्ञान और वैज्ञानिक अनुसंधान का पोषण करने, उसे बढ़ावा देने और अक्षुण रखने का संकल्प किया।

जवाहरलाल नियोजित आर्थिक विकास में विश्वास करते थे। उन्होंने 1950 में योजना आयोग की स्थापना की जिसने उनकी आर्थिक नीति को ठोस रूप प्रदान किया। संगठन सीमित होने से, जवाहरलाल का मुख्य जोर एकतरफा विकास से बचते हुए इससे अधिकतम लाभ प्राप्त करना था। उन्होंने योजना आयोग और राष्ट्रीय विकास परिषद् की अध्यक्षता की। विकास में लगे रहने पर उन्होंने जनजातियों और पिछड़े वर्ग की कभी भी अनदेखी नहीं की। जहां उन्होंने उन लोगों को राष्ट्रीय मुख्यधारा में लाने के सभी प्रयास किये, वहीं उन्होंने उनकी पहचान और समृद्ध सांस्कृतिक विरासत को बनाए रखने और उसे उभारने के लिए ईमानदारी से प्रयास किए। उन्होंने कला, संस्कृति और साहित्य को भरपूर संरक्षण प्रदान किया।

---

12. नन्दा, उद्धृत कृति, पृ. 42

13 वही, पृ. 48

राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय मामलों में व्यस्त रहने के बावजूद जवाहरलाल नेहरू बच्चों के प्रति बेहद स्नेह रखते थे और बच्चे उन्हें स्नेहपूर्वक "चाचा नेहरू" कहते थे। उन्हें भलीभांति ज्ञात था कि आज के बच्चे ही कल के नागरिक हैं। इसलिए, उन्होंने बच्चों के मानसिक और शारीरिक विकास में बेहद रुचि ली। नेहरू का चालीस वर्ष से अधिक का घटनापूर्ण सार्वजनिक जीवन 27 मई, 1964 को समाप्त हो गया। उनकी मृत्यु से एक अभाव और शून्य पैदा हो गया। तथापि, वह हमारे लिए एक समृद्ध विरासत छोड़ गए जो आज भी हमारे लिए सहायक है। यद्यपि उन्होंने अपने देशवासियों और कुल मिलाकर विश्व के लिए काफी कुछ किया, फिर भी उन्हें संतुष्टि नहीं थी। अपने अधूरे कार्य को ध्यान में रखने के लिए वह रॉबर्ट फ्रास्ट की कविता की निम्नलिखित चार पंक्तियों का छन्द अपने पास रखते थे :-

"जंगल सुन्दर सघन और विस्तृत है
किन्तु मुझे उनके वायदे पूरे करने हैं,
और सोने से पहले मीलों तय करना है,
और सोने से पहले मीलों तय करना है।"

यद्यपि स्वभाव और प्रवृत्ति से नेहरू विश्व बन्धुत्व में विश्वास रखते थे, फिर भी अपने देश की मिट्टी और लोगों से वह बेहद प्यार करते थे। वह उनके सुख-दुःख के साथी थे तथा राष्ट्र की मुख्यधारा में सचमुच आत्मसात हो गए थे। उनकी इच्छा थी कि उनकी मृत्यु के बाद उनके नश्वर अवशेष उनकी प्यारी मातृभूमि की मिट्टी और पानी में मिला दिये जायें। उनका इच्छापत्र और वसीयत भारत के प्रति उनकी पूर्ण प्रतिबद्धता देशवासियों के प्रति उनके सतत प्यार और स्नेह को बड़े भावपूर्ण ढंग से दर्शाता है जिनसे वे अपने देशवासियों के बड़े प्रिय बन गए थे :-

"मुझे भारत के लोगों से इतना अधिक प्यार व स्नेह मिला है कि मैं कुछ भी करूं वह उसके छोटे से अंश की भी बराबरी नहीं कर सकता और वास्तव में स्नेह जैसी अमूल्य वस्तु के ऋण से उऋण हुआ भी नहीं जा सकता। अनेकों की प्रशंसा की गई है, कुछ के प्रति सम्मान प्रदर्शित किया गया है, परन्तु भारत के सभी वर्गों के लोगों का जो असीम प्यार मुझे मिला है, उससे मैं आत्मविभोर हो गया हूं। मैं केवल यह इच्छा कर सकता हूं कि जीवन के शेष वर्षों में मैं अपने लोगों और उनके स्नेह के अयोग्य न होऊं।"

उनकी इच्छा का सम्मान करते हुए उनके निधन के बाद उनकी राख को हिमालय सहित देश भर में आकाश से बिखेर दिया गया और थोड़ी सी राख उनकी प्रिय नदी गंगा में प्रवाहित कर दी गयी।

1

आर. वेंकटरामन

नेहरू—एक सच्चे लोकतंत्रवादी

बाइस वर्ष पूर्व, आज के दिन, एक महान व्यक्ति हमें छोड़कर चला गया। हम सब स्तब्ध रह गये। मैं और असंख्य अन्य लोग जवाहरलाल नेहरू को एक नेता और ध्रुवतारे के रूप में मानते थे। जवाहरलाल नेहरू हर ऐसी बात के बारे में, जो तर्कसंगत रूप से स्पष्ट नहीं होती थी, जानने के लिये व्यग्र हो जाते थे। परन्तु जिस दिन उनके पार्थिव शरीर को अग्नि को समर्पित किया गया, दिल्ली में दो बार भूकंप आने की वास्तविकता को नजरअंदाज नहीं किया जा सकता। हमें इस प्राकृतिक घटना की मीमांसा करने की आवश्यकता नहीं थी। इसने हमें यह महसूस करा दिया कि भारत भूमि, जिसकी नेहरू ने सत्यनिष्ठा से उत्कृष्ट सेवा की, हमारे साथ कम्पायमान हो उठी। असीम दुःख की इस पुण्य तिथि के अवसर पर प्रतिवर्ष भारत के लोग जवाहरलाल नेहरू को अपनी श्रद्धांजलि अर्पित करते हैं और उनके प्रति सम्मान प्रदर्शित करते हैं। हालांकि, सम्मान और श्रद्धांजलि तो अनेकों को अर्पित की जाती है, परन्तु भारत के लोग उन्हें उससे कहीं अधिक और कुछ विशिष्ट अर्पित करते हैं। वे उन्हें आराधना के पुष्प अर्पित करते हैं।

जवाहरलाल नेहरू ने अपनी वसीयत में लिखा था :

> "अनेकों की प्रशंसा की गई है, कुछ के प्रति सम्मान प्रदर्शित किया गया है, परन्तु भारत के सभी वर्गों के लोगों का जो असीम प्यार मुझे मिला है, उससे मैं आत्म-विभोर हो गया हूं।"

यह कहना कठिन है कि नेहरू अथवा भारत, किसने किसको अभिभूत किया। यदि नेहरू को भारत के लोगों के मत में उनके प्रति प्यार का पूर्ण अहसास था, तो भारत के लोगों को भी अपने प्रति उनके स्नेह का समान रूप से अहसास था। भारत के लोगों के प्रति उनका प्यार अपने आप में अनूठा था। वास्तव में, यह कहा जा सकता है कि भारत उन पर मुग्ध था। गांधी जी ने अपनी हत्या से कुछ दिन पूर्व यह अनायास ही नहीं लिखा था :

बहुत वर्ष जियो और हिन्द के जवाहर बने रहो।

मनुष्य नश्वर है और गांधी जी जवाहरलाल के लिये अमर जीवन की आकांक्षा नहीं कर सकते थे; परन्तु मनुष्य की आत्मा अमर है और इसीलिये गांधी जी ने उनके एक रत्न के रूप में सदा चमकते रहने की कामनां की थी। वह हर प्रकार से "भारत रत्न" थे।

आधुनिक भारत के निर्माता के रूप में नेहरू और जवाहरलाल नेहरू तथा भारत के लोगों के बीच अनूठे गठबंधन, इंग्लैण्ड में इसके आरम्भ से लेकर मानव इतिहास की अनुभूति के जरिये भारत की अक्षुण्ण महानता में विश्वास में परिणति के बारे में कुछ विचार इस प्रकार हैं। यह विकास वास्तव में एक गाथा है, एक ऐसी गाथा जो न केवल रोचक है वरन भारत के लिये अनादि काल तक प्रासंगिक रहेगी। यह भारत के लोगों की सार्थकता में विश्वास रखने वाले लोगों के लिये सदा प्रेरणा का स्रोत रहेगी।

भूत, वर्तमान और भविष्य का मिश्रण और उसका जो सद्प्रयोजन जवाहरलाल नेहरू में देखने को मिला, वैसा वह कदापि ही देखने में आता है। जहां एक ओर इलाहाबाद में आनन्द भवन में उनका पालन पोषण होने से जवाहरलाल नेहरू में पुरातन परम्पराओं के प्रति आस्था उत्पन्न हुई, वहीं दूसरी ओर इंग्लैंड में विद्यार्थी के रूप में युवा नेहरू को फेबियन समाजवाद की लहर ने भविष्यद्रष्टा बना दिया। इंग्लैंड यात्रा पर और वहां कानून का अध्ययन करने के लिये जाने पर जवाहरलाल ने पाया कि उनकी वास्तविक रुचि राजनीतिक अर्थव्यवस्था में है। उस समय इंग्लैंड में बुद्धिजीवियों पर फेबियन समाजवाद का प्रभाव था। राजनीतिक विचारधारा में रुचि रखने वाला कोई भी व्यक्ति इस राजनीतिक विचारधारा की ओर ध्यान दिये बिना नहीं रह सकता था, जो कालान्तर में हेराल्ड लास्की के नाम से जुड़ गई। जवाहरलाल "लन्दन स्कूल ऑफ इकॉनामिक्स" में दाखिला लेने के पश्चात इस विचारधारा की ओर आकर्षित हुए। जैसा कि नेहरू ने कहा, मार्क्सवादी विचारधारा के आधारभूत सिद्धांतों से परिचित होने पर उनके मस्तिष्क में अनेक ज्ञानदीप जल उठे। उदाहरणार्थ, लास्की की निम्नलिखित विशिष्ट टिप्पणी जवाहरलाल जैसे संवेदनशील व्यक्ति के मन में घर कर गई :

> जीवन की तरह, कानून भी कुछ अवधि तक रहता है और फिर परिवर्तनशील है। यह शाश्वत नियमों से बंधी कोई प्रणाली नहीं है जिस पर समय और देशांतर का कोई प्रभाव न पड़े। इसके प्रति आस्था को इसमें निहित न्यायसंगतता से मापा जा सकता है और इसकी निहित न्यायसंगतता की शक्ति इसकी अपेक्षाओं को पूरा करने में इसकी कुशलता पर निर्भर करती है।

नेहरू ने एकदम यह जान लिया था कि भारत में कानून के अनुसार शासन का अर्थ ब्रिटिश राज के कानून के अनुसार शासन है। उन्होंने यह भी देखा कि इस कानून से और न ही इस राज से उनके देश के करोड़ों लोगों का कोई भला हो रहा है। ब्रिटिश राज में कोई न्याय नहीं था; इसके विपरीत, अत्यधिक अन्याय था। नेहरू ने महसूस किया कि जिस कानून का वह अध्ययन कर रहे हैं उसे जीवन का एक भाग माना जाना चाहिए और

इसे सामाजिक, राजनीतिक सभी अस्तित्वों और सर्वोपरि आर्थिक क्षेत्र से सम्बद्ध किया जाना चाहिए। कोई भी दो व्यक्ति इतने अधिक भिन्न नहीं हो सकते जितने कि हैराल्ड लास्की और मोतीलाल नेहरू थे। फिर भी उनके विचारों में समानता थी। मोतीलाल नेहरू ने उस समय अपने पुत्र को लिखे गए एक पत्र में कहा था, "राजनीति को कानून से अलग नहीं किया जा सकता और अर्थशास्त्र राजनीति की आत्मा है।" नेहरू जी ने अपने पिता की सीख और लास्की के इस मंतव्य की सच्चाई को स्पष्टतः और विश्वासपूर्वक ग्रहण किया कि कोई भी व्यक्ति अर्थशास्त्र के गहन अध्ययन के बिना कानून को नहीं समझ सकता है। इस अवस्था पर नेहरू जी को एक मार्ग नजर आने लगा, जिस पर आगे बढ़ने का लोभ वह संवरण नहीं कर सकते थे।

1912 में भारत वापस आने पर इलाहाबाद में उच्चमध्यवर्गीय समाज में रहते हुए भी जवाहरलाल नेहरू विश्व की घटनाओं को बड़ी उत्सुकता और विवेकपूर्ण दृष्टि से देखने से परोन्मुख नहीं हुए। इससे भी महत्वपूर्ण बात यह थी कि जवाहरलाल विश्व में हो रही घटनाओं और प्रवृत्तियों का भारत में स्थिति के सुस्पष्ट तारतम्य बैठाने की अद्‌भुत योग्यता रखते थे। उदाहरण के लिए 1917 में रूस में क्रांति हुई और 1917 में ही डा० एनी बेसेंट के नेतृत्व में स्वराज आंदोलन छेड़ा गया। पहले बम्बई और फिर मध्य भारत से निष्कासित किये जाने के बाद अंततः उन्हें नजरबंद कर दिया गया। जवाहरलाल नेहरू उत्तर प्रदेश में "होम रूल लीग" के एक संयुक्त सचिव बने और मोती लाल नेहरू इसके अध्यक्ष। नेहरू ने "लीडर" समाचारपत्र को लिखे गए एक पत्र में कहा, "स्वराज अब दूर नहीं यदि हम मानवोचित मर्यादा का परिचय देते हुए संघर्ष करें और यदि हमारे कदम नहीं लड़खड़ाते"। जवाहरलाल को अपनी युवावस्था में ही एक अवसर मिल गया। उन्हें केवल एक माध्यम की जरूरत थी। यह माध्यम उन्हें अकस्मात ही मिल गया। चार वर्ष बाद, 1929 में प्रतापगढ़ के किसानों के साथ भेंट होने पर पंडित जी की भी वही प्रतिक्रिया हुई, जो 1916 में चम्पारन में श्रमिक अशांति की सूचना मिलने पर गांधी जी की हुई थी। पंडित जी के प्रतिष्ठित जीवनीकार प्रो० एस० गोपाल के अनुसार इस भेंट से "उनके दृष्टिकोण को एक नवीन और चिरस्थायी दिशा मिली।" इससे गांधीजी और नेहरू एक दूसरे के करीब भी आए। जहां लास्की और फेबियन समाजवाद ने नेहरू को एक निश्चित ध्येय और उद्देश्य प्रदान किया, वहां नेहरू की प्रतापगढ़ के किसानों से हुई भेंट से उन्हें उस ध्येय को प्राप्त करने के लिए साधनों का बोध हुआ। चलपति राव ने नेहरू की जीवनी में कहा है :

> उन्होंने गांवों का भ्रमण करते हुए, विशेषकर रायबरेली, प्रतापगढ़, और सुलतानपुरी जिलों में भारत का एक नया रूप, विद्रोह के लिए तत्पर भारतीय किसानों का भयावह रूप देखा। यही असली भारत था। पर्दा हट चुका था। जवाहरलाल को किसानों के बीच स्पंदन का भान हुआ और उन्हें न केवल भारत की जनता बल्कि अपने आप में कठोर परिश्रम और अनथक कार्य करने की प्रचुर क्षमता का बोध

हुआ।

नेहरू ने देखा कि ईस्ट इंडिया कम्पनी के शासन काल के दौरान तथा इसके बाद ब्रिटिश सरकार के शासनकाल के दौरान देहातों को अनेक प्रकार से क्षति पहुंचाई गई। ग्रामीण पूंजीपतियों और जमींदारों के एक नए वर्ग का उदय हुआ जो किसानों से निष्ठुरता से लगान वसूल करता था। इसी प्रकार एक अन्य शोषक वर्ग, बिचौलियों का जन्म हुआ जो कृषि-ऋणों पर कमरतोड़ ब्याज पर पलता था। इतना ही नहीं, देश के देहात जो "मातृभूमि" के आधार स्तंभ हैं उनका शोषण किया जा रहा है। भारत में प्रायः अकाल की स्थिति बनी रहने लगी थी। यह स्पष्ट था कि प्रकृति या वर्षा का न होना ही इस विपदा के लिए जिम्मेदार नहीं ठहराये जा सकते। और इन सबसे बढ़कर था करों का बोझ। इस माहौल में दादाभाई नौरोजी ने अपनी स्मरणीय प्रताड़ना—"पावर्टी एण्ड अन-ब्रिटिश रूल इन इण्डिया" लिखी। फेबियन समाजवाद ने नेहरू की विचारधारा को आधार स्तम्भ प्रदान किया और प्रदीप्त भारतीय जनमत ने इसे पुष्ट किया। दादा भाई के निम्नलिखित अविस्मरणीय शब्दों में उन्हें किसानों की दशा के बारे में अपनी आंखों देखी जानकारी की प्रतिध्वनि मिली :

> क्या यह ब्रिटेन द्वारा भारतीय धन के व्यय की वर्तमान व्यवस्था के लिए अत्यधिक निन्दाजनक नहीं है कि भारत की जनता कोई धन-सम्पत्ति पैदा न कर सके..... इससे भी बदतर बात यह है कि लाखों लोग काल का ग्रास बन जायें, करोड़ों लोगों को भरपेट भोजन भी न मिले, बहुत कम फसल पैदा करें और उसमें से भी कोई और इन्हें हिस्से से वंचित कर दे ?

गांधी जी के नेतृत्व में कांग्रेस के असहयोग आन्दोलन में भाग लेकर जवाहरलाल नेहरू ने अहिंसा के मार्ग को एक चिरकालीन सिद्धान्त के रूप में नहीं अपितु उस समय उपलब्ध एकमात्र व्यावहारिक साधन के रूप में चुना। इसका अनुसरण राष्ट्र की विशिष्ट परिस्थितियों के भी अनुकूल था। उन्होंने अहिंसा को मुख्य रूप से गांधी जी द्वारा दिए गए स्पष्टीकरण को ध्यान में रखते हुए स्वीकार किया। गांधी जी का कथन था :

> शक्तिसम्पन्न होते हुए भी (हिंसा के प्रयोग के प्रति) संयम बरतना ही क्षमा है। एक असहाय प्राणी द्वारा ऐसा किया जाना अर्थहीन है।

नेहरू इस प्रकार के असहाय प्राणियों में से तो नहीं थे। उन्हें सत्याग्रह में अन्तर्निहित साहस और प्रेम की भावना ने आकर्षित किया। सब बातों से बढ़कर उन्हें इस बात का यकीन हो गया था कि भारतीय किसान अहिंसक क्रांति के पक्ष में हैं।

उन्हें इस बात का पूरा यकीन हो गया था कि जनता क्रांति चाहती है। नेहरू ने एक सुप्रशिक्षित कुशल राजनीतिज्ञ की भांति वास्तविकता पर आधारित सिद्धान्त स्थापित करने और वास्तविक जीवन में अपने अनुभवों से सैद्धान्तिक आधार प्रदान करने का सदैव प्रयास किया। जब उन्होंने भारत के गांवों में किसानों में असंतोष बढ़ता हुआ देखा, तब

उन्होंने यह भी ध्यान दिया कि इसका कारण देश का भूमि पर उत्तरोत्तर अधिक निर्भर होते जाना है। यह अविश्वसनीय किन्तु सत्य है कि उन्नीसवीं शताब्दी के मध्य में केवल 55 प्रतिशत जनसंख्या कृषि पर आश्रित थी जबकि बीसवीं शताब्दी के आरम्भ में लगभग 74 प्रतिशत जनसंख्या भूमि पर आश्रित हो गयी। ब्रिटेन चाहता था कि भारत उसका एक विशाल ग्रामीण उपनिवेश बन जाये जिससे कि उसे आत्म-निर्भर बनने का कोई मौका न मिले। दूसरे शब्दों में, ब्रिटेन ने ऐसी कूटनीति अपनाई कि इस महत्वपूर्ण शताब्दी के अधिकांश भाग में उसके उपनिवेश औद्योगिक क्रांति से अछूते रहें जबकि वह स्वयं औद्योगीकरण कर ले और उसका कोई प्रतियोगी न हो। परन्तु यह ब्रिटेन की नासमझी थी। फेबियन समाजवाद के सिद्धांत और क्रांतिकारी कार्यों के व्यावहारिक ज्ञान में पारंगत जवाहरलाल नेहरू अब विचारधारा के क्षेत्र में एक नई उपलब्धि की ओर अग्रसर हो रहे थे। 1927 में, वे अपने पिता के साथ मास्को गए और वहां "प्रावदा" ने कांग्रेस के वामपंथी नेता के रूप में उनका स्वागत किया।

नेहरू ने सोवियत संघ में एक ऐसी प्रक्रिया कार्यरत देखी जिसे उनकी न्यायपूर्ण और ऐतिहासिक दृष्टि से भारत में अपनाने की आवश्यकता थी। वह इस बात से पूरी तरह परिचित थे कि क्रांति की कोई नकल नहीं हो सकती; क्रांति की जड़ें देश में ही होना और वहीं पनपना जरूरी है। परन्तु यदि समय ने भारत में क्रांति के लिए आधार तैयार कर दिया था, तो क्या एक सफल प्रयोग का किसी अन्य कार्यस्थली से सूत्र लेकर इसका यहां बीजारोपण नहीं किया जा सकता ? उन्हें पता था कि भारत की राजनीतिक क्रांति महात्मा गांधी के चामत्कारिक हाथों मूर्त रूप ले रही थी। इसके साथ ही जवाहरलाल ने भारत में आर्थिक क्रान्ति की आवश्यकता को अन्य किसी भी राजनीतिक नेता से अधिक महसूस किया। इस क्रान्ति द्वारा भारत को इसके कृषि ढांचे के पिछड़ेपन और वास्तव में कृषि पर इसकी निर्भरता से मुक्त कराना था। सोवियत संघ में उन्होंने औद्योगिक विकास की शक्ति को आकार ग्रहण करते देखा था। सोवियत संघ द्वारा कृषि तथा उद्योग की योजना के प्रयत्नों के बारे में नेहरू द्वारा दिए गए निम्नलिखित विवरण में प्रगतिवाद की झलक देखने को मिलती है :

> किसानों को बड़े आकार के आदर्श सरकारी फार्म और सहकारी फार्म स्थापित करके उद्योगों के नजदीक लाना होगा तथा विशाल कारखानों एवं पनबिजली संयंत्रों की स्थापना, खनन कार्यों आदि के द्वारा सम्पूर्ण देश का औद्योगीकरण करना होगा और इसके साथ-साथ शिक्षा, विज्ञान, सहकारी विपणन, लाखों कामगारों के लिए मकानों का निर्माण तथा उनके जीवन-स्तर को ऊंचा उठाने जैसी अनेक गतिविधियां भी आरम्भ करनी होंगी।

इसी यात्रा के दौरान नेहरू ने पंचवर्षीय योजनाओं की कल्पना की, जिसे रूस के लोगों ने "पिएतीलेतका" का प्रसिद्ध नाम दिया। रूस के अलावा नेहरू ने ब्रूसेल्स में भारतीय

राष्ट्रीय कांग्रेस के प्रतिनिधि के रूप में उपनिवेशवादी दमन और साम्राज्यवाद विरोधी अंतर्राष्ट्रीय कांग्रेस में भी भाग लिया। वहां वह चीन, अफ्रीका, मैक्सिको और लातीनी अमरीका के प्रतिनिधियों के अलावा जार्ज लैंसबरी, एलेन विल्किंसन, फैन्नर ब्राकवे, हैरी पालिट, अर्नस्ट टालर, मोहम्मद हट्टा, रोजन बाल्दविन जैसे विश्व के अग्रणी वामपंथियों से भी मिले। किन्तु हमारे लिए इस बात को ध्यान में रखना आवश्यक है कि यदि नेहरू इस बात से प्रभावित हुए कि भारत की सामाजिक-आर्थिक समस्याओं का हल समाजवाद में है, तो इसका कारण साधारण मानवता मात्र नहीं था बल्कि इसका युक्तिसंगत आर्थिक आधार था। नेहरू ने देखा कि योजना समाजवाद का ही हिस्सा है। इसीलिए कांग्रेस ने राष्ट्रीय योजना समिति की स्थापना की, जिसका अध्यक्ष जवाहरलाल नेहरू को बनाया गया। जवाहरलाल नेहरू ने दूरदर्शिता का परिचय देते हुए इसमें न केवल राजनीतिज्ञों को बल्कि वैज्ञानिकों, अर्थशास्त्रियों, व्यापारियों और उद्योगपतियों को भी शामिल किया। उस समय इसके संबंध में संकोच था और इसकी आलोचना भी हुई। "समाजवाद" शब्द बहुत से लोगों के लिए बहिष्कृत शब्द था और कांग्रेस कार्यकारिणी समिति में भी कुछ ऐसे लोग थे। किन्तु नेहरू ने समाजवाद का बीड़ा उठा लिया था। लगभग इसी समय उन्होंने लिखा :

> पंचवर्षीय योजना की सफलता या असफलता के बारे में तर्क-वितर्क करना निरर्थक है। आज, "योजना" और पंचवर्षीय योजना शब्द हर व्यक्ति की जिह्वा पर है। रूस के लोगों ने इन शब्दों में जादू फूंक दिया है।

किन्तु इस बात को समझने की आवश्यकता है कि उनके अनुसार भारत में आर्थिक लोकतंत्र का मार्ग भारतीयों द्वारा भारतीयों के सहयोग से बनाना होगा। हालांकि, यह समाजवाद का रास्ता होगा। इसका अर्थ यह था कि भारत का समाजवाद निरंकुश नहीं होगा। इस बारे में नेहरू शुरू से ही स्पष्ट थे। शासन द्वारा या उसके विरुद्ध हिंसा उन्हें पसंद नहीं थी। इसलिए भारत में समाजवाद मुक्त, शिष्ट और सम्मानजनक वातावरण में पनपा।

नेहरू को इस शताब्दी के चौथे दशक में स्पेन के गृह युद्ध में योरुप में नाजीवाद की शुरुआत के आसार नजर आ गए थे और आज हमें गर्व है कि उस समय कांग्रेस कार्यकारिणी समिति ने एक संकल्प पारित करके तानाशाह शासकों के उभरने की निन्दा की थी। यह भी स्मरणीय है कि नेहरू ने योरुप की अपनी एक यात्रा के दौरान हिटलर का निमंत्रण अस्वीकार कर दिया था। यह हिटलर के राष्ट्रीय समाजवाद के हश्र के बारे में उनके पूर्वानुमान का बढ़िया उदाहरण है।

भारत को तब समाजवाद का अपना रास्ता खोजना था। आखिर इस भारत भूमि पर ही गौतम बुद्ध ने मध्यम मार्ग का संदेश दिया था। यह भारत का महान सौभाग्य था कि हमारे बीच एक और विभूति अवतरित हुई, जिसने अधिकारों और कर्तव्यों में संतुलन

स्थापित करने और साधनों और साध्य को समान महत्व देने का प्रयास किया। क्या लोकतंत्र और समाजवाद का सम्मिश्रण नहीं हो सकता ? एक विशुद्ध राजनीतिक जरूरत के रूप में भारत में मात्र लोकतंत्र से कोई प्रयोजन सिद्ध नहीं हो सकता था। समाजवाद अपने उस समय के किसी भी स्वरूप में भारत की अपेक्षाओं के लिए उपयुक्त नहीं था। किन्तु नेहरू ने पाया कि लोकतांत्रिक समाजवाद साध्य और साधन के रूप में अत्यंत उपयुक्त है। महान योजनाकार, सांख्यिकीविद और अर्थशास्त्री पी० सी० महलनोबिस ने वास्तव में कहा है, "योजना के प्रति नेहरू के दृष्टिकोण को मध्यम मार्ग कहा जा सकता है।" नेहरू ने लोकतांत्रिक समाजवाद की विचारधारा की निम्नलिखित शब्दों में व्याख्या की :

> विगत समय में लोकतंत्र का अर्थ मुख्यतः राजनीतिक लोकतंत्र लगाया जाता था, जिसके अनुसार मोटे तौर पर प्रत्येक व्यक्ति को एक वोट देने का अधिकार था। यह स्वाभाविक है कि एक दलित और भूखे व्यक्ति के लिए वोट का अपने आप में कोई महत्व नहीं है।.....इसलिए राजनीतिक लोकतंत्र अपने आप में पर्याप्त नहीं है सिवाय इसके कि इसका धीरे-धीरे अधिकाधिक आर्थिक लोकतंत्र प्राप्त करनें के लिए उपयोग किया जा सकता है।

उन्होंने अपनी मुख्य सिफारिश बिल्कुल स्पष्ट शब्दों में की : गरीबी, बेरोजगारी, राष्ट्रीय सुरक्षा और आर्थिक प्रगति की समस्याओं को औद्योगीकरण किये बिना हल नहीं किया जा सकता और औद्योगीकरण विज्ञान और प्रौद्योगिकी के बिना हासिल नहीं किया जा सकता।

यह स्वाभाविक ही था कि जब इतिहास ने नवोदित राष्ट्र के शासन की बागडोर जवाहरलाल नेहरू को सौंप दी, तो उन्होंने इस अवसर को "नियति से भेंट" माना। संसद को राजनीतिक लोकतंत्र प्राप्त करने का माध्यम मानकर उन्होंने आर्थिक लोकतंत्र प्राप्त करने के लिए योजना आयोग की स्थापना की। पहली योजना में कृषि पर बल दिया गया। दूसरी योजना में उद्योगों को प्राथमिकता दी गई। भारी मशीनों के निर्माण, भारी विद्युत उपकरणों, इस्पात और अलौह धातुओं और ऊर्जा पर बल दिया गया। सोवियत संघ, जर्मनी और ब्रिटेन के सहयोग से भिलाई, राउरकेला और दुर्गापुर में तीन इस्पात संयंत्र लगाए जाने का प्रावधान किया गया।

1955 में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के ऐतिहासिक आवडि अधिवेशन में जबकि नए लोकतंत्र में स्थायित्व आ गया था, कांग्रेस ने औपचारिक रूप से समाज के समाजवादी ढांचे को अपनाया। यह महत्वपूर्ण है कि आवडि अधिवेशन दूसरी योजना के प्रारम्भिक वर्षों में हुआ। नेहरू ने संविधान के प्रारंभ में ही राज्य के नीति-निदेशक तत्वों के अधिनियमन द्वारा देश को समाजवादी मार्ग की ओर अग्रसर कर दिया था। किन्तु, आवडि अधिवेशन और दूसरी योजना के बाद से ही हमारे संसाधनों का अधिक तेजी से

उपयोग, त्वरित औद्योगीकरण और सबसे अधिक महत्वपूर्ण बात समुदाय के संसाधनों का सम्यक वितरण करना, देश की औपचारिक रूप से घोषित नीति और ध्येय बन गया। मिश्रित अर्थव्यवस्था और कल्याणकारी राज्य की एक कारगर मूर्त विचारधारा बन गई। कानून बनाने की प्रक्रिया ने राष्ट्रनिर्माण का स्वरूप ले लिया और "अर्थव्यवस्था का चरमोत्कर्ष" जैसे शब्द हमारी राजनीतिक शब्दावली तक सीमित न रहकर वास्तव में सम्पूर्ण विकासशील विश्व में छा गये। सरकारी क्षेत्र, भूमि की अधिकतम सीमा, औद्योगिक एकाधिकार पर नियंत्रण, राज्य व्यापार का प्रादुर्भाव रूसी नीति के विभिन्न पहलू हैं।

उसी समय विश्व में विज्ञान और प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में महान परिवर्तन हो रहे थे, जिनका भारत में जन-जीवन तथा विचारधारा पर प्रभाव पड़ना अवश्यंभावी था। वैज्ञानिक अनुसंधान और विज्ञान तथा प्रौद्योगिकी के विकास में हमेशा रुचि रखने के कारण नेहरू के कहने पर ही विभिन्न क्षेत्रों में अनुसंधान कार्य करने के लिए बड़ी संख्या में राष्ट्रीय प्रयोगशालायें अस्तित्व में आईं। इसी प्रकार, नेहरू के कहने पर ही परमाणु ऊर्जा के विकास और सरकारी क्षेत्र के माध्यम से हमारे तेल तथा खनिज भण्डारों की खोज के लिए धन उपलब्ध किया गया। किन्तु, समाजवाद के बारे में उनकी विचारधारा के समान उनका वैज्ञानिक दृष्टिकोण भी यह अपेक्षा करता था कि भारत में विज्ञान का उपयोग हमारी विशिष्टताओं और परम्पराओं के अनुरूप किया जाना चाहिए।

विकास के अनेक चरणों और समस्याओं की भारी जटिलता को ध्यान में रखते हुए भारत में जरूरत इस बात की थी कि राज्य न केवल स्वयं संतुलित हो बल्कि वास्तव में वह संतुलन लाने वाला तथा सामान्य हितों का संरक्षक और प्रवर्तक हो।

नेहरू ने इन हितों को मूल रूप से क्षेत्रीय और विभाजक माना। इस समस्या से निपटने के लिए उन्होंने राष्ट्रीय मसलों पर राष्ट्रीय मतैक्य का तरीका निकाला। उन्होंने मूल सिद्धांतों के संबंध में व्यापक सहमति प्राप्त करने का प्रयास किया और तब इस प्रकार सम्मत प्रस्तावों को कार्यान्वित किया। नेहरू ने राष्ट्रीय विकास परिषद् नामक संस्था की रचना की, जिसने कार्यक्रमों के संबंध में अन्तर-क्षेत्रीय सहमति प्राप्त की। इस परिषद् के कार्यकरण में वास्तविक संघवाद देखने को मिला। क्षेत्रीय भाषाओं के आधार पर राज्यों का पुनर्गठन भी एक लोकतांत्रिक प्रक्रिया थी, जिसका उद्देश्य उप-राष्ट्रीय आकांक्षाओं को पूरा करना था। अंग्रेजी के प्रयोग के बारे में गैर-हिन्दी भाषी राज्यों को नेहरू का आश्वासन भी इसी श्रेणी में आता है और इसे लोकतांत्रिक संघवाद की सर्वोत्तम परम्पराओं के अनुरूप कार्यवाही के रूप में देखना चाहिए।

नेहरू ने आदिवासी लोगों के बारे में जो चिन्ता व्यक्त की, उससे पिछड़े क्षेत्रों और अल्पसंख्यक समुदायों की आवश्यकताओं के प्रति उनका दृष्टिकोण जाहिर है। उन्होंने कहा :

मैं भाईचारे की भावना से उनके पास गया, उनसे अलग एक भिन्न व्यक्ति के रूप में नहीं, जो उन्हें देखने, परखने, तौलने, उनके बारे में रिपोर्ट देने अथवा उनके जीवन के तौर-तरीके बदलने के प्रयास करने के लिए आया हो।

कांग्रेस के वार्षिक अधिवेशनों और गणतंत्र दिवस समारोहों में आदिवासी लोगों को आमंत्रित करना नेहरू के इस दृष्टिकोण का परिचायक है। भूमि और वनों के संबंध में आदिवासियों के अधिकारों के संरक्षण के पीछे भी मूर्त रूप में यही भावना थी।

भारत में अल्पसंख्यक धर्मावलम्बियों के प्रति भी नेहरू का यही उदार दृष्टिकोण था। एक अच्छे समाजवादी को एक अच्छा लोकतंत्रवादी होना चाहिए और एक अच्छे लोकतंत्रवादी के लिए धर्म-निरपेक्ष होना आवश्यक है। खान अब्दुल गफ्फार खां, मौलाना आजाद, रफी अहमद किदवई, शेख अब्दुल्ला और डा० जाकिर हुसैन उन कुछ व्यक्तियों में से थे जिन्हें पंडितजी ने हमेशा अत्यधिक आदर और सम्मान दिया। नेहरू के लिए वे इस सच्चाई के सबूत थे कि भारत एक धर्म-निरपेक्ष राष्ट्र है और रहेगा।

किसी के द्वारा किसी व्यक्ति या वर्ग का शोषण किया जाना नेहरू की दृष्टि में अक्षम्य था। वे दलित अथवा निर्बल लोगों, जैसे भारत की महिलाओं के बारे में भी चिन्तित रहते थे। रूढ़ियों, बंधनों और सामाजिक अपवाद की बेड़ियों से जकड़ी होने के बावजूद अनेक देशभक्त महिलाओं ने समर्पण और बलिदान की भावना से प्रेरित होकर राष्ट्रीय आन्दोलन के दौरान संघर्ष में भाग लिया। पंडितजी ने ऐसी महिलाओं को विधायकों, मंत्रियों, राजदूतों और राज्यपालों के रूप में चुनकर उन्हें रुतबा और सम्मान दिया। वे राज्यों के मंत्रिमंडलों में और विधानमण्डलों में महिलाओं को शामिल करने पर जोर दिया करते थे। नेहरू युग में कई साहसी महिलायें उभर कर आईं। महिलाओं के अधिकारों के मामले में नेहरू की भूमिका अग्रणी कही जा सकती है। विवाह, तलाक और निर्वाह के विषयों की ओर हाल ही के दिनों में जनता का ध्यान आकर्षित हुआ है। इसलिए मैं वर्ष 1954 के विशेष विवाह विधेयक पर विचार किये जाने के समय की एक घटना का उल्लेख करना चाहता हूं। मैंने उस विधेयक पर इस आशय का एक संशोधन प्रस्तुत किया था कि तलाक के लिए दोनों पक्षों द्वारा जिला न्यायालय में इस आधार पर एक साथ याचिका प्रस्तुत की जाये कि वे एक वर्ष या इससे अधिक समय से अलग-अलग रह रहे हैं, वे एक साथ रहने में समर्थ नहीं हैं और उन्हें परस्पर स्वीकार्य विवाह-विच्छेद मंजूर किया जाना चाहिए। जिला न्यायालय को एक निर्धारित अवधि के बाद विवाह-विच्छेद की घोषणा करने की शक्ति प्रदान की जानी चाहिए। इस पर काफी चर्चा हुई और इसका विरोध भी हुआ। इस प्रस्ताव पर बोलते हुए पंडितजी ने कहा था :

अन्ततः प्रश्न यह पैदा होता है कि जब दो व्यक्ति किसी भी कारणवश एक साथ रहना असंभव समझते हों, तो इसके बारे में क्या किया जाना चाहिए ? मैं एक नहीं बल्कि अनेक गलतियां माफ करने को तैयार हूं, किन्तु मैं उन दो व्यक्तियों की असहनीय

स्थिति को बर्दाश्त नहीं कर सकता, जो एक दूसरे से बंधे होने के बावजूद एक दूसरे से घृणा करते हैं। इसलिए मैं यहां इस खण्ड का स्वागत करता हूं। मैं विशेष रूप से उस संशोधन का स्वागत करता हूं जिसे मेरे सहयोगी श्री वेंकटरामन, परस्पर सहमति से तलाक के संबंध में यहां प्रस्तुत कर रहे हैं।

यह नेहरू के प्रगतिवादी और आधुनिक विचारों का एक और उदाहरण है।

कहते हैं कि किसी व्यक्ति की मृत्यु के पश्चात् ही उसकी महानता का पता चलता है। 27 मई, 1964 को यह पता चला कि उनका कथन कितना सही था और विभिन्न विषयों पर उनके विचार कितने बुद्धिमत्तापूर्ण थे। प्रो॰ रंगा पंडित जी के विचारों से सर्वदा सहमत नहीं होते थे किन्तु फिर भी उन्होंने पंडितजी के बारे में कहा:

उनकी नीतियों की आलोचना में हमें अनेक बातें कहनी हैं और हमने अनेक बातें कही हैं। वे रिकार्ड में हैं। उन्होंने हमारे बारे में अनेक बातें कहीं और हमसे भी अनेक बातें कही, जो सब रिकार्ड में हैं। यदि उनकी लोकतंत्र में निष्ठा न होती, तो ये सब बातें आज रिकार्ड में नहीं होतीं। इसका पूर्ण श्रेय उन्हीं को जाता है।

बिल्कुल विपरीत विचारधारा के अग्रणी साम्यवादी नेता श्री भूपेश गुप्त ने नेहरू के बारे में कुछ कहा था, जो अत्यन्त महत्वपूर्ण था :

वे मानव प्रगति के आवश्यक स्पंदन को सत्तापक्ष के किसी भी अन्य नेता की तुलना में अधिक बेहतर रूप में समझते थे। उन्होंने हमारे राष्ट्र को एक दिशा प्रदान की ताकि वह निर्धनता, पिछड़ेपन और सामाजिक अन्याय की चुनौती का साहसपूर्वक सामना कर सके....

लोकतन्त्रवादियों में सर्वश्रेष्ठ, समाजवादियों में अग्रणी जवाहरलाल नेहरू एक अद्‌भुत विभूति थे, हमारे युग की चुनौती का उत्तर थे।

संसद में सदस्यों की संख्या को ध्यान में रखकर वे किसी अन्य गुट अथवा दल के साथ समझौता नहीं करते थे। किन्तु, फिर भी वे पूरी मेहनत से खुलासा देकर, औचित्य बताते हुए संदेहों का निवारण करते हुए और अन्य लोगों को रजामन्द करके देश, संसद और सही विचारधाराओं के सभी लोगों को अपने साथ लेकर चलना पसन्द करते थे।

संक्षेप में, नेहरू एक ऐसे शिल्पी थे जिन्होंने मध्यकालीन भारत को एक आधुनिक राष्ट्र के रूप में परिवर्तित कर दिया और इसे दुनिया के आधुनिक राष्ट्रों के समकक्ष ला खड़ा किया।

नेहरू को भारत की विशिष्टताओं से प्यार था, किन्तु इसकी नियति को सुधारने के लिए वे संघर्षरत रहे। राज्य सभा के तत्कालीन सभापति, डा॰ जाकिर हुसैन ने पंडितजी के निधन के अवसर पर भाव-विह्वल होकर कहा था:

हमें उनके व्यक्तित्व का सदैव अभाव महसूस होगा और इस क्षति से हम निर्धन से भी निर्धन हो गये हैं। किन्तु जिन मान्यताओं के प्रति वह व्यक्ति समर्पित था, वे बनी रहेंगी और हमसे प्रतिबद्धता की मांग करती रहेंगी। जैसाकि एक अंग्रेज कवि ने कहा है "अब वे हमारे बीच एक व्यक्ति के रूप में नहीं हैं किन्तु उनकी सम्पूर्ण विचारधारा हमारे समक्ष है।" एक महान व्यक्ति के गुजर जाने से प्रगतिशील राष्ट्रीय जीवन के कार्य रुक नहीं जाते, चाहे उनकी संख्या कितनी ही क्यों न हो अथवा वे कितने ही कठिन क्यों न हों। वे पूरा किये जाने की अपेक्षा करते हैं, वे नई प्रतिबद्धता की मांग करते हैं। उनके प्रति नवीन समर्पण की आवश्यकता है।

आइये, हम उनके द्वारा दिखाये गये लोकतान्त्रिक समाजवाद के मध्यम मार्ग पर चलकर, उनकी विचारधारा के प्रति अपने आप को पुनः समर्पित करें।

हमें भारत के लोगों के हित के लिए ही नहीं अपितु उनसे कंधे से कंधा मिला कर काम करने के नेहरू के मार्ग का सदैव अनुसरण करना चाहिए। नेहरू युग स्मृति मात्र न रहकर प्रेरणा का जीवंत स्रोत बने।

2

डा. शंकर दयाल शर्मा

जवाहर लाल नेहरू—आधुनिक राष्ट्रमंडल के निर्माता

भारत को स्वतंत्र कराने के लिए पंडित जवाहर लाल नेहरू देव दूत बन कर आये थे। मैं बापू द्वारा पंडित जी को 3 दिसम्बर, 1928 को लिखे गये एक पत्र को उद्धृत करना चाहूंगा।

मेरे प्रिय जवाहर,

> तुम्हें मेरा प्यार। यह सब बड़ी वीरता से किया गया। तुम कार्यों को करने के लिए वीर हो। ईश्वर तुम्हें दीर्घायु दे और विदेशी राज से भारत को स्वतंत्र कराने के लिए तुम्हें अपना दूत बनाये।

पंडित नेहरू की विभिन्न देनों में से एक देन राष्ट्रमंडल देशों में नेहरू की भूमिका पर चर्चा है जो बहुत महत्वपूर्ण है तथा जिसमें हाल में रुचि दिखाई गई है। यह सही कहा गया है कि पंडित नेहरू ने इतिहास का अध्ययन किया, उन्होंने इतिहास लिखा तथा उन्होंने इतिहास का निर्माण किया। ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में देखने पर यह मानना उपयुक्त होगा कि विश्व के मसलों और अन्तर्राष्ट्रीय संस्थानों पर पंडित जी के प्रभाव से राष्ट्रीय तथा अन्तर्राष्ट्रीय राजनीतिक प्रक्रियाओं पर मानवीयता के ठोस प्रभाव का आभास होता है।

पंडित नेहरू ने हमारे स्वतंत्रता संग्राम के दौरान तथा स्वतंत्रता प्राप्त करने के बाद भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की विदेश नीति निर्धारित करने में अत्यन्त महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। उन्होंने विश्व के मसलों के बारे में भारत के लोगों को अवगत कराया। उनकी नजर में शक्तिमान साम्राज्यवादी ताकत के विरुद्ध भारत का स्वतंत्रता संग्राम उपनिवेशवाद के विरुद्ध दलित मानवता के संघर्ष का एक अंग था। अतः जब हम स्वतंत्र हुए, पंडित नेहरू ने भारत के लोगों को याद दिलाया कि हमारा स्वतंत्रता संग्राम तब तक जारी रहेगा जब तक समूचा विश्व उपनिवेशवाद से पूरी तरह से छुटकारा नहीं पा लेता तथा जब तक सभी लोग राजनीतिक तथा आर्थिक रूप से स्वतंत्र नहीं हो जाते। स्वतंत्रता के बाद उन्होंने यह समझा कि उपनिवेशवाद और जातिवाद के विरुद्ध लोगों के स्वतंत्रता संघर्ष को

सहायता प्रदान करने के लिए राष्ट्रमंडल को एक सक्षम माध्यम बनाया जा सकता है। उन्होंने यह भी कल्पना की कि स्वतंत्र हुए नये देशों को उनकी स्वतंत्रता के प्रारम्भिक चरणों में आर्थिक सहायता प्रदान करने के लिए राष्ट्रमंडल सक्षम है। 1928 में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के कलकत्ता अधिवेशन में जवाहर लाल नेहरू ने सुभाष चन्द्र बोस के साथ मिलकर उस समय वरिष्ठ कांग्रेसी नेताओं का विरोध किया जब उन्होंने भारत के स्वतंत्रता संग्राम का उद्देश्य औपनिवेशिक राज्य माना था।

जवाहर लाल नेहरू पूर्ण स्वतंत्रता से कम के लिए राजी नहीं थे। काफी मनाने पर वह पूर्ण स्वतंत्रता की अपनी मांग को एक वर्ष के लिए स्थगित करने के लिए सहमत हो गये। अगले वर्ष, कांग्रेस अध्यक्ष के नाते उन्होंने पूर्ण स्वतंत्रता को अपना लक्ष्य घोषित कर दिया। तीस के दशक के अन्त में वह फासिस्टवाद को सहन करने की ब्रिटिश नीति से हताश हो गये। उन्होंने साम्राज्यवाद तथा फासिस्टवाद को एक ही सिक्के के दो पहलू बताया। ब्रिटिश विदेश नीति से हताश होकर उन्होंने बार-बार इस बात पर जोर देकर कहा कि भारत साम्राज्यवादी ब्रिटिश सरकार के साथ सभी सम्बन्ध विच्छेद कर देगा।

भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस द्वारा किये गये इस प्रकार के दावों को ध्यान में रखते हुए लोग उस समय हैरान हुए जब भारत ने राष्ट्रमंडल में बने रहने का निर्णय किया। तथापि, यदि कोई समूचे मामले पर गहराई से विचार करे, तो उसे पता चलेगा कि इसमें कोई विरोधाभास नहीं है। भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस और पंडित नेहरू ब्रिटिश साम्राज्यवाद के विरुद्ध थे, न कि ब्रिटिश लोगों के विरुद्ध थे। यहां तक कि 1929 में लाहौर कांग्रेस में अपने अध्यक्षीय भाषण में पंडित नेहरू ने कांग्रेस के पूर्ण स्वतंत्रता के लक्ष्य की दलील देते हुए स्वतंत्र भारत द्वारा ब्रिटेन के साथ निष्पक्ष सम्बन्ध रखे जाने की बात से इन्कार नहीं किया।

इसी प्रकार बापू ने 1931 में लन्दन में दूसरे गोल मेज सम्मेलन में कहा था, "कांग्रेस ब्रिटिश लोगों के साथ सम्बन्ध बनाये रखने का विचार रखती है। परन्तु वे सम्बन्ध दो बिल्कुल बराबर देशों के बीच जैसे सम्बन्ध होने चाहिये।"

अतः जब एट्ली ने ब्रिटिश संसद में घोषणा की कि स्वतंत्रता के बाद भारत ब्रिटिश राष्ट्रमंडल को छोड़ सकेगा, तो इस सम्बन्ध में जबरदस्ती किये जाने की किसी भी प्रकार की आशंका दूर हो गई। जब बर्मा ने राष्ट्रमंडल को छोड़ा तो यह कहा गया था कि बर्मा द्वारा राष्ट्रमंडल को छोड़ने का अर्थ यह हुआ कि वास्तव में कोई भी सदस्य देश जब चाहे राष्ट्रमंडल छोड़ सकता है। अतः स्वतंत्रता मिलने पर भारत ने औपनिवेशिक राज्य के रूप में बने रहने का निर्णय किया। तथापि, भारत ने एक गणतंत्र बनने का निर्णय किया और ब्रिटिश सम्राट के प्रति किसी प्रकार की कोई निष्ठा रखने पर सहमत नहीं हो सका। भारत की बात रखने के लिए ब्रिटेन को आस्ट्रेलिया, कनाडा और न्यूजीलैंड जैसे अन्य औपनिवेशिक राज्यों की सहमति से कानून बदलना पड़ा। इन कठिनाइयों को नेहरू और

एटली द्वारा तैयार किये गये नये फार्मूले से दूर किया गया। ब्रिटिश राष्ट्रमंडल का नाम बदलकर राष्ट्रमंडल कर दिया गया और "ब्रिटिश" शब्द को हटा दिया गया। भारत ब्रिटिश सम्राट के राष्ट्रमंडल के प्रतीकात्मक प्रमुख बने रहने से सहमत हो गया। अतः अब भारत एक गणतंत्र के रूप में ब्रिटिश राष्ट्रमंडल में नहीं बल्कि एक ऐसे राष्ट्रमंडल में शामिल हो रहा था जो राष्ट्रों का एक स्वतंत्र संघ था और जिसका भारत एक बसबर का भागीदार होगा।

दिसम्बर, 1948 में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के जयपुर अधिवेशन में पंडित नेहरू के मार्गदर्शन में एक संकल्प पारित किया गया था जिसमें यह कहा गया था कि भारत राष्ट्रमंडल के स्वतंत्र राष्ट्रों के साथ विश्व शान्ति बनाये रखने में उनके सामान्य कल्याण के लिए अपने स्वतंत्र सम्बन्धों का स्वागत करेगा।

राष्ट्रमंडल में भारत के बने रहने की बात से सहमत होने के बाद ब्रिटेन से वापस आने पर राष्ट्र के नाम एक प्रसारण में उन्होंने इसे "एक महत्वपूर्ण और ऐतिहासिक निर्णय" बताया और आलोचकों को उत्तर देते हुए कहा :

> मेरे मन में इस बात के प्रति जरा सा भी सन्देह नहीं है कि मैंने उस प्रतिज्ञा का पूर्णतया पालन किया जो मैंने अपने लाखों देशवासियों के साथ मिलकर गत बीस वर्षों या उससे अधिक की अवधि के दौरान भारत की स्वतंत्रता के बारे में की थी। मैं इस बात से आश्वस्त हूं कि भारत की प्रतिष्ठा या उसके हितों को ठेस पहुंचाये बिना लन्दन में मैंने जो कार्यवाही की उससे वह प्रतिष्ठा और बढ़ी और विश्व में भारत की स्थिति मजबूत हुई।

उन्होंने आगे कहा :

> मैंने स्वभावतः भारत के हितों को ध्यान में रखा क्योंकि यह मेरा प्रथम कर्तव्य था। मैंने सदैव विश्व की व्यापक भलाई के लिए उस कर्तव्य को ध्यान में रखा। हमारे गुरुओं ने हम को यही पाठ पढ़ाया था।

उन्होंने हमें सदैव भारत की स्वतंत्रता तथा गरिमा बनाये रखते हुए अन्य देशों के साथ शान्ति तथा मित्रता बनाये रखने के उपाय भी बताये।

संविधान सभा उनके दृष्टिकोण से सहमत हुई। उन्होंने संविधान सभा को बताया कि भारत राष्ट्रमंडल में इसलिए शामिल हुआ क्योंकि यह भारत के लिए तथा विश्व में कतिपय कारकों, जिन्हें हम आगे बढ़ाना चाहते हैं, के लिए भी लाभदायक था।

पंडित नेहरू वास्तव में एक आदर्श व्यक्ति थे। उन्होंने सदैव भारत के हितों की बात कही। स्वतंत्रता मिलने पर भारत के समक्ष विभाजन के कारण अनेक समस्याएं थीं। शरणार्थी समस्या तथा अन्य समस्याओं का भी समाधान करना था। राष्ट्रमंडल में बने

रहना भारत के लिए आर्थिक रूप से सहायक सिद्ध हुआ, क्योंकि हमने राष्ट्रमंडल द्वारा तरजीह दी गई बातों का लाभ उठाया। राष्ट्रमंडल में बने रहना तकनीकी विकास में भी सहायक सिद्ध हुआ। हमारा मुख्य व्यापार राष्ट्रमंडल देशों के साथ था और हम इसमें बाधा पैदा होने नहीं देना चाहते थे। इसी प्रकार, इससे स्टर्लिंग संतुलनों के समाधान में सहायता मिली। स्टर्लिंग संतुलनों के समाधान से हमें प्रारम्भिक विकास में भी सहायता मिली। हमारे अधिकांश प्रतिरक्षा उपकरण ब्रिटिश थे और हम पूर्ण रूप से नाता नहीं तोड़ सकते थे। पूर्ण रूप से परिवर्तन करना सम्भव नहीं था। अब प्रत्येक व्यक्ति इस बात से सहमत है कि राष्ट्रमंडल के साथ सम्बन्ध भारत के हित में था।

इस प्रकार राष्ट्रमंडल के साथ रखे गये सम्बन्धों से भारत की विदेश नीति के प्रचार का तंत्र भी प्राप्त हुआ। राष्ट्रमंडल में भारत के शामिल होने से अन्य नये स्वतंत्र राष्ट्रमंडल देशों को राष्ट्रमंडल, जो अब केवल श्वेत लोगों के लिए ही नहीं था, में शामिल होने के लिए प्रोत्साहित किया। अब राष्ट्रमंडल जातिवाद के विरुद्ध है और 1961 में दक्षिण अफ्रीका को अपनी जातिवादी नीतियों के कारण राष्ट्रमंडल छोड़ना पड़ा। पंडित नेहरू ने राष्ट्रमंडल मंच का प्रयोग ब्रिटिश कालोनियों को स्वतंत्र कराने के लिए किया। अब यह एक स्वीकृत तथ्य है कि नये राष्ट्रमंडल ने ब्रिटिश कालोनियों को स्वतंत्र कराने में तथा ब्रिटिश साम्राज्य को समाप्त करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।

इस प्रक्रिया में पंडित नेहरू ने अत्यन्त महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। वह जीवन भर सभी प्रकार के उपनिवेशवाद के समाप्त किये जाने के कट्टर समर्थक थे। पंडित नेहरू अफ्रीका को समुद्र पार का पड़ोसी मानते थे—"समुद्र पार का पड़ोसी" शब्द उन्होंने ही घड़े थे—और उन्होंने अफ्रीकी देशों को आज़ाद कराने की प्रक्रिया में गहरी रुचि ली। वह अफ्रीकी लोगों के साथ भावनात्मक रूप से जुड़े हुए थे। जहां उन्होंने माऊ माऊ आन्दोलन में हिंसा का समर्थन नहीं किया, वहां उन्होंने कहा : "मैं उन लोगों का साथ देना चाहूंगा जो भारी मुसीबत में हैं और जिन्हें एक शक्तिशाली सरकार के हाथों भारी दमन का सामना करना पड़ रहा हो। निश्चय ही मैं हर प्रकार की हिंसा की निंदा करता हूं और इसके बिल्कुल विरुद्ध हूं। फिर भी मैं अफ्रीकी लोगों के साथ रहूंगा। केवल इसी ढंग से मैं उनकी सेवा कर सकता हूं। उन्होंने ब्रिटिश दमनचक्र का विरोध किया और राष्ट्रमंडल के अन्दर तथा बाहर अफ्रीका के हितों का समर्थन किया।

स्वभावतः यह बात ब्रिटिश सरकार को पसन्द नहीं थी और जब ब्रिटिश सरकार ने 1953 में आपत्ति की, तो पंडित नेहरू ने तुरन्त निम्नलिखित उत्तर भेजा :

> हमारी सरकार किसी भी सरकार द्वारा इस तरह से सम्बोधित किये जाने की आंदी नहीं है और मैं इस निष्कर्ष पर पहुंचा हूं कि वह (ब्रिटिश राष्ट्रमंडल सचिव) इस समय यह भूल गये हैं कि वह स्वतंत्र भारत गणतंत्र को सम्बोधित कर रहे हैं.....हमारा सतत यह प्रयास रहा है कि ब्रिटिश सरकार को परेशानी में न डाला जाये और हमने अपने सिद्धान्तों और नीतियों के अधीन उन्हें यथासम्भव

अधिकतम सहयोग देने का प्रयास किया है। हम ऐसा करते रहेंगे, परन्तु हम इन नीतियों को किसी बाहरी प्राधिकरण के किसी भी प्रकार के दबाव के कारण बदलने के लिए तैयार नहीं हैं।

पंडित नेहरू की नीति का सार यह है कि हम किसी भी स्रोत से किसी भी प्रकार के दबाव में अपनी नीति में ज़रा सा भी परिवर्तन करने के लिए तैयार नहीं हैं।

यद्यपि राष्ट्रमंडल का सदस्य बने रहने के लिए नेहरू को भारत में सभी दलों के नेताओं की कड़ी आलोचना का सामना करना पड़ा, और 1949 में जय प्रकाश नारायण ने यह कह कर इस बात की आलोचना की कि ऐसा करना आत्मविश्वास की कमी और एक महाशक्ति समूह के प्रति अन्तर्निहित वचनबद्धता है, तथापि भारत को कोरिया और चीन सम्बन्धी अपनी नीतियों के लिए राष्ट्रमंडल से समर्थन मिला। नेहरू में एक खूबी थी। जब उन्होंने सोचा कि अमुक बात सही है, तो दृढ़ विश्वास के साथ उसका पक्ष लेने का उनमें साहस था। यह हमारा सौभाग्य है कि प्रायः वह सही सिद्ध हुए।

काश्मीर के मामले में कई बार राष्ट्रमंडल में तनाव पैदा हुआ। तथापि, पंडित नेहरू राष्ट्रमंडल सदस्यों को इस बात के लिए राजी कर पाये कि वे राष्ट्रमंडल की बैठकों में द्विपक्षीय मामले न उठायें। अपने प्रारम्भिक झुकाव और अपनी सामरिक दूरदर्शिता के कारण ब्रिटेन ने प्रायः ऐसा रुख अपनाया जो प्रत्यक्षतया भारत के विरुद्ध था और जिसके कारण अन्तर्राष्ट्रीय दृष्टिकोण से पाकिस्तान के गलत कार्यों की नज़रअन्दाजी की गई। यद्यपि, काश्मीर में संयुक्त राष्ट्र संघ के प्रतिनिधि सर ओवन डिक्सन ने भारत के इस आरोप को स्वीकार किया कि "पाकिस्तान ने काश्मीर में आक्रमण किया", ब्रिटेन पाकिस्तान को भारत के बराबर मानता रहा।

स्वभावतः भारतीय नेताओं ने इस पर असन्तोष व्यक्त किया और 1952 में श्यामा प्रसाद मुकर्जी ने कहा : "संकट की हर उस घड़ी में राष्ट्रमंडल देशों ने भारत का समर्थन नहीं किया जबकि भारत का पक्ष सही तथा न्यायोचित है।" पुनः 1956 में सभी विरोधी दल संसद में राष्ट्रमंडल की निन्दा करने और नेहरू को राष्ट्रमंडल छोड़ने के लिए कहने पर सहमत हुए। आचार्य जे०बी० कृपलानी ने संसद में कहा : "हमारी स्वतंत्रता से लेकर अब तक इंग्लैंड ने सदैव हमारा विरोध किया।" प्रजा समाजवादी दल की ओर से एम०एस० गुरुपदस्वामी ने राष्ट्रमंडल से सम्बन्ध तोड़ने की मांग की। ए०के० गोपालन ने यह चाहा कि हम राष्ट्रमंडल को छोड़ दें क्योंकि "हमारे राष्ट्रमंडल के सदस्य बने रहने से ब्रिटेन को प्रतिष्ठा मिलती है जिससे वह विश्व जनमत को नकार सकता है।" भूपेश गुप्त ने कहा : "हमारे मित्र हमें इस संगठन में बने रहने के लिये क्यों कहते हैं जिसने हमारी अर्थव्यवस्था का अहित किया है,जिसने हमारी आत्मा और विश्व में हमारी प्रतिष्ठा को ठेस पहुंचाई है।" साम्यवादी दल ने तो उस वर्ष 14 नवम्बर को संसद भवन के समक्ष एक प्रदर्शन भी किया जिसमें भारत द्वारा राष्ट्रमंडल छोड़े जाने की मांग की गई थी।

इसी प्रकार ब्रिटेन द्वारा स्वेज़ में सैनिक कार्यवाही के बारे में विश्वव्यापी असन्तोष था। तथापि, भारत ने अपने विचार दृढ़तापूर्वक व्यक्त किये और वह ब्रिटेन को वापस हटने के लिए राजी करने में सफल हुआ। यह गुट निरपेक्ष आन्दोलन की एक महत्वपूर्ण विजय थी और पंडित नेहरू की राजनीतिज्ञता थी।

राष्ट्रमंडल के सदस्य बनने के लाभ 1962 में चीनी आक्रमण के समय स्पष्ट नज़र आये। पाकिस्तान को छोड़कर राष्ट्रमंडल सह-देशों से "तुरन्त, सन्तोषजनक तथा पर्याप्त" समर्थन प्राप्त हुआ। प्रारम्भ में ब्रिटेन ने बिना किसी शर्त के सैनिक सहायता दी। राष्ट्रपति कैनेडी और प्रधान मंत्री मैकमिलन नसाऊ में मिले और इस बात पर सहमत हुए कि भारत को सभी सम्भव सहायता दी जानी चाहिये और इस पर होने वाले व्यय को अमरीका तथा राष्ट्रमंडल द्वारा मिलकर वहन किया जायेगा।

अतः इससे यह पता चलता है कि राष्ट्रमंडल में बने रहने की पंडित नेहरू की नीति हमारे हित में तथा विश्व शान्ति के हित में थी। नेहरू के समय में सभी तनावों के बावजूद भारत के राष्ट्रमंडल में बने रहने से यह पता चलता है कि नेहरू एक ऐसा राजनेता था जो यह जानता था कि रोष नीति का स्थान कभी भी नहीं ले सकता।

जवाहर लाल नेहरू द्वारा राष्ट्रमंडल को जो रूप दिया गया उससे वह बाद के वर्षों में इस प्रकार विकसित हुआ कि इसके गुण अधिकाधिक स्पष्ट हो गये। नई दिल्ली में 23 नवम्बर, 1983 को हुए राष्ट्रमंडल शासनाध्यक्षों के सम्मेलन में अपने अभिभाषण में श्रीमती इन्दिरा गांधी ने कहा :

> राष्ट्रमंडल संयुक्त राष्ट्र संघ के सदस्य देशों के लगभग एक-तिहाई देशों का एक संगठन है। वास्तव में यह उन राष्ट्रों का एक उदार समूह है, जिनमें अनेक जातियां, धर्म तथा विभिन्न भौगोलिक क्षेत्र आते हैं। कोई भी संविधान, अधिनियम या संधि इसे किसी भी विषय पर चर्चा करने से नहीं रोकती। यह एक उत्तर-दक्षिण मंच है जिसमें विकासशील देशों तथा कुछ विकसित देशों के प्रतिनिधि होते हैं। यह एक ऐसा मंच भी है जहां पर गुट-निरपेक्ष देशों के प्रतिनिधि उन देशों के प्रतिनिधियों से वार्ता करते हैं जो सैनिक गठजोड़ों से सम्बन्ध रखते हैं। यह बात स्पष्ट है कि हम सभी मामलों पर सहमत नहीं हो सकते, फिर भी हम कोई सर्वमान्य आधार खोजने का प्रयास करते हैं। एक सशक्त संगठन होने के लिए राष्ट्रमंडल को लचीला होना चाहिये और बदलती हुई परिस्थितियों के अनुरूप होना चाहिये। जिस प्रकार विश्व विकसित हो रहा है, उसी प्रकार राष्ट्रमंडल का भी विकास होना चाहिये।

इसी प्रकार हमारे प्रधान मंत्री, श्री राजीव गांधी ने वेंकूवर में 13 अक्तूबर, 1987 को हुए राष्ट्र मंडल शासनाध्यक्षों के सम्मेलन में अपने अभिभाषण में कहा :

> ..... सांझे इतिहास के कारण राष्ट्रमंडल की उत्पत्ति हुई। शान्ति और न्याय के

प्रति वचनबद्धता के कारण यह एकजुट है। हम शान्ति के लिए की जाने वाली पहल तथा अन्याय का मुकाबला करने के लिए किये जाने वाले प्रयासों का समर्थन करते हैं। हम एक महत्वपूर्ण विश्व संगठन हैं जो शान्ति, न्याय तथा समानता, सौहार्द तथा प्रगति और मानव जाति की एकता के प्रति वचनबद्ध है।

इस तरह राष्ट्रमंडल प्रारम्भिक अवस्थाओं से उभर कर आया और भारत के हित तथा भारत को प्रिय हितों को बनाये रखने में सहायता कर रहा है। 11 नवम्बर, 1987 को संसद में स्वेच्छा से दिये गये वक्तव्य में प्रधान मंत्री ने कहा :

वेंकूवर शिखर सम्मेलन में अन्तर्राष्ट्रीय मामलों में इस संगठन की गतिशीलता तथा प्रासंगिकता की पुष्टि की गई। प्रतिबन्धों के मुद्दे पर एकमात्र विमत टिप्पण के बावजूद शिखर सम्मेलन में विश्व में शान्ति तथा स्थिरता बनाये रखने जैसे प्रमुख मुद्दों पर अधिकांश देश एकमत थे।

यह कोई कम महत्वपूर्ण बात नहीं है कि दक्षिण अफ्रीका में जातिवाद के विरुद्ध प्रतिबन्धों के प्रश्न पर एकमात्र ब्रिटेन को छोड़कर सभी राष्ट्रमंडल देश एकमत थे। उन सभी के विचार वही थे जिन्हें भारत बापूजी के समय से ही प्रतिपादित कर रहा था। जातिवाद और राष्ट्रमंडल में बने रहने के बारे में हमारे दृष्टिकोण के सही होने का यह एक बहुत बड़ा प्रमाण है।

यह बात स्वीकार की जानी चाहिये कि वेंकूवर शिखर सम्मेलन में रंग-भेद को समाप्त करने के लिए प्रतिबन्धों के मुद्दे पर लगभग सभी देश एकमत थे। एक अपवाद (ब्रिटिश प्रधान मंत्री) के यह एक प्रमुख उपलब्धि थी। परन्तु उन्हें भी रंगभेद की निन्दा करनी पड़ी। इससे विश्व के मामलों में उन मानव मूल्यों के प्रभुत्व का आभास होता है जो सदियों से भारतीय दर्शन शास्त्र तथा विचारधारा में अत्यन्त महत्वपूर्ण थे। ऋग्वेद में स्पष्ट लिखा है:

एकैव मानुषी जाति (मानवों की केवल एक ही जाति है)।

इसमें मानवता का समूचा दर्शन शास्त्र निहित है। विश्व के मामलों में पंडित जवाहर लाल नेहरू के दृष्टिकोण, राष्ट्रमंडल के क्रमिक विकास में उनके द्वारा किये गये पथ-प्रदर्शन में इसी दर्शन शास्त्र की स्पष्ट झलक मिलती है।

अतः यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि राष्ट्रमंडल ने विश्व शान्ति, परतंत्र राष्ट्रों की स्वतंत्रता और रंगभेद का तब तक विरोध करने में, जब तक कि इसे विश्व में समाप्त नहीं किया जाता, मानव गरिमा बनाये रखने के लिये काम किया। राष्ट्रमंडल मानव कल्याण के लिये भी कार्य कर रहा है जिसमें विश्व-व्यापार, दूरी, शिक्षा और पर्यावरण संरक्षण जैसे प्रमुख क्षेत्रों में की गई महत्वपूर्ण पहल शामिल है।

3

पी.वी. नरसिम्हाराव

जवाहरलाल नेहरू तथा समाजवाद

अधिकांश लोग सामाजिक विचारधारा अथवा दर्शन को कठोर राजनीतिक सिद्धान्त और सैद्धान्तिक आर्थिक व्यवस्थाओं को मानते हैं। पिछले कुछ वर्षों में भी कुछ देश इस विश्वास से एक दूसरे से अलग-थलग रहे हैं कि विभिन्न सामाजिक-राजनीतिक व्यवस्थायें समाजवादी विचारधारा के साथ-साथ अस्तित्व में नहीं रह सकतीं। पंडित जवाहर लाल नेहरू इस विचारधारा के प्रति एक सुखद अपवाद थे। एक ऐसे मनुष्य के रूप में, जिसने भारतीय स्वाधीनता की प्राप्ति के लिए प्रत्येक महत्वपूर्ण राजनीतिक आन्दोलन पर अमिट छाप छोड़ी और जो लगभग दो दशकों तक स्वाधीन भारत की सरकार के साथ गहन रूप से जुड़ा हुआ था, वह गतिशील राजनीतिक प्रक्रियाओं को एक सैद्धान्तिक खाके में रखने के लिए राजनीतिक यथार्थवाद से अत्यधिक परिपूर्ण थे। वह निश्चित रूप से मार्क्स और लेनिन के विचारों से प्रभावित थे और उनकी रचनाओं से यह पता चलता है कि वह रूस की क्रान्ति से अत्यधिक प्रभावित थे। परन्तु, उनकी यह स्पष्ट मान्यता थी कि भारत को समाजवाद के लिए अपना स्वयं का ऐसा मार्ग खोजना चाहिए जो इस देश के अपने इतिहास के विशिष्ट अनुभवों और अपने देशवासियों की बुद्धिमत्ता से प्रभावित होगा।

यह कहना अतिशयोक्ति नहीं होगी कि भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के एक स्थिर लक्ष्य के रूप में समाजवाद को अंगीकार करना पंडित जी की उपलब्धि थी। वर्ष 1929 में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस का अध्यक्ष-पद ग्रहण करने के तत्काल बाद पंडितजी ने लाहौर कांग्रेस में यह घोषणा की थी :

> "मैं स्पष्ट रूप से यह स्वीकार करता हूं कि मैं एक समाजवादी और गणतन्त्रवादी हूं और सम्राटों तथा राजकुमारों में अथवा उस व्यवस्था में कोई विश्वास नहीं करता जो उद्योगों के आधुनिक राजाओं को पैदा करती है.... हमें यह महसूस करना चाहिए कि समाजवाद के सिद्धान्त ने सम्पूर्ण विश्व में समाज के सम्पूर्ण ढांचे को क्रमिक रूप से आवृत किया ..... यदि भारत से गरीबी और असमानता को समाप्त करना है तो भारत को भी वही मार्ग अपनाना पड़ेगा।...."

नेहरू जी के नेतृत्व के परिणामस्वरूप ही दो वर्ष बाद कराची अधिवेशन में कांग्रेस पार्टी ने सामाजिक-आर्थिक कार्यक्रम स्वीकार किया। कांग्रेस के राजनीतिक और आर्थिक कार्यक्रमों को पंडित जी के इस विश्वास के अनुसार तैयार किया गया था कि वर्तमान अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थिति में उपनिवेशवाद से पीड़ित लोगों की राष्ट्रीय मुक्ति के संग्राम समाजवादी विचारों और आदर्शों से प्रभावित होने चाहिए। यही विचारधारा स्वाधीनता आन्दोलन के दौरान उनके भाषणों और लेखन में बार-बार प्रतिबिम्बित होती है। उनके लिए, स्वराज और समाजवाद स्वाधीनता आन्दोलन के संयुक्त लक्ष्य थे। यह उनका दृढ़ विश्वास था कि भारत समाजवाद के बिना स्वराज प्राप्त नहीं कर सकता।

जब तक देश विदेशी शासन के अन्तर्गत रहेगा, नेहरू यह महसूस करते थे कि तब तक राष्ट्रीयता को अनिवार्यतः प्राथमिकता देनी पड़ेगी। भारत में समाजवाद के विकास संबंधी नेहरू के विचारों को वस्तुतः स्वाधीनता प्राप्ति के पश्चात् ही देश के राजनीतिक जीवन में क्रियान्वित किया जा सका, जब दिसम्बर, 1954 में लोक सभा ने यह घोषणा करते हुए संकल्प पारित किया कि देश की आर्थिक नीति का लक्ष्य समाजवादी समाज की रचना करना होगा। इसी प्रकार का संकल्प जनवरी, 1955 में कांग्रेस के आवडी अधिवेशन में बाद में पारित किया गया। अब एक बहुत ही महत्वपूर्ण ध्यान देने योग्य तथ्य यह है कि भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की ओर से समाजवाद की शुरुआत नहीं की गई, बल्कि हमारी संसद की ओर से समाजवाद की शुरुआत की गई और बाद में कांग्रेस द्वारा उसे स्वीकार किया गया। इसलिए, हमारी परिस्थितियों के अनुरूप समाजवाद किसी राजनीतिक पार्टी की विचारधारा नहीं है, बल्कि यह राष्ट्र का मूल सिद्धान्त है, जैसा कि इस तथ्य से प्रकट होता है कि किसी भी अन्य पार्टी द्वारा विशेष रूप से सत्तारूढ़ पार्टी द्वारा समाजवाद को स्वीकार करने के पहले इसे संसद द्वारा स्वीकार किया गया था। इसलिए, जब हम भारतीय संदर्भ में समाजवाद की चर्चा करते हैं, तो हमें यह समझना होगा कि सत्तारूढ़ पार्टी द्वारा समाजवादी समाज के ढांचे को स्वीकार करने से पहले हमारी संसद ने इस ढांचे को स्वीकार किया था।

पंडित जी की समाजवाद की विचारधारा के अनुसार कोरा सिद्धान्तवादी दृष्टिकोण नहीं अपनाया गया था। वह स्वयं को समाजवादी कहते थे, क्योंकि वह यह मानते थे कि समाजवादी सिद्धान्त सभी के लिए सामान्य हैं, परन्तु वह यह अधिकार भी समझते थे कि जिन परिस्थितियों में ऐसे सिद्धान्तों को लागू करना हो, उनके अनुसार अपने स्वयं के विवेक के अनुरूप उन्हें लागू करने में परिवर्तन किया जा सकता है। इससे पता चलता है कि वह क्यों समाजवाद अथवा उस समाजवादी ढांचे के लिए, जिसका वह समर्थन करते थे, निश्चित विवरण देने से प्रायः मना करते थे। नवम्बर, 1954 में राष्ट्रीय विकास परिषद की बैठक में उन्होंने इस दृष्टिकोण का इस प्रकार स्पष्टीकरण किया :—

"जो तस्वीर मेरे दिमाग में है, वह निश्चित रूप से और पूर्णतः समाज की समाजवादी

तस्वीर है; मैं इस शब्द का उपयोग सैद्धान्तिक अर्थ में कतई नहीं कर रहा हूं। मेरा मुख्य रूप से यह आशय है कि उत्पादन के साधनों पर सामाजिक रूप से स्वामित्व होना चाहिए और सम्पूर्ण समाज के लाभ के लिए उन्हें नियंत्रित किया जाना चाहिए....."

यह बहुत ही सारगर्भित वक्तव्य उन्होंने दिया था :

"मेरा मुख्य रूप से यह आशय है कि उत्पादन के साधनों पर सामाजिक रूप से स्वामित्व और नियंत्रण होना चाहिए।"

यह एक भाग है और "सम्पूर्ण समाज के लाभ के लिए" यह अन्य भाग है। यदि आज उत्पादन के साधनों का राष्ट्रीयकरण किया गया है अथवा सरकारी नियंत्रण के अधीन उन्हें लाया गया है, तो पंडितजी के कथनानुसार जो प्रश्न पूछा जाना चाहिए, वह यह है कि क्या इस सरकारी स्वामित्व और नियंत्रण को सम्पूर्ण समाज के लाभ के लिए उपयोग में लाया जा रहा है ? यह सर्वाधिक महत्वपूर्ण प्रश्न है। हम वस्तुतः यह प्रश्न अपने आपसे नहीं कर रहे हैं, जो हमें करना चाहिए। सम्भवतः आज हमारी सरकार और सोवियत संघ सहित उन अन्य देशों की सरकारों में यह नई विचारधारा पनप रही है, जहां सरकारी स्वामित्व और सरकारी नियंत्रण की इस कसौटी के आधार पर बहुत ही गहन समीक्षा की जा रही है कि ऐसा सरकारी स्वामित्व और नियंत्रण सम्पूर्ण समाज के लाभ के लिए है अथवा नहीं है। यह कसौटी हमें अपने सामने रखनी होगी और इस कसौटी के अनुसार हमारे देश में चल रही प्रत्येक आर्थिक गतिविधि की परख करनी होगी।

इसके साथ ही पंडित नेहरू के हमारे देश में समाजवाद की भूमिका और समाज के समाजवादी ढांचे के लक्ष्यों के बारे में स्पष्ट विचार थे। अप्रैल, 1936 में अपने अध्यक्षीय भाषण में उन्होंने यह घोषणा की थी कि "समाजवाद आर्थिक सिद्धान्त से भी कुछ अधिक है; यह एक जीवन दर्शन है।" यह एक अभीष्ट लक्ष्य है। यही असली कारण है जिसकी वजह से वह समाजवाद चाहते थे, न कि एक सिद्धान्त के रूप में जिसे वह पसन्द करते थे और न ही ऐसे समाजवाद के रूप में वह इसे चाहते थे जिसे एक ऐसे देश द्वारा स्वीकार किया जा रहा है जिसकी वह प्रशंसा करते थे; परन्तु वह उन परिस्थितियों की वजह से समाजवाद चाहते थे जो विशिष्ट रूप से उस वक्त व्याप्त थीं और जिन्हें हम भारत में पाते हैं। उनका यह कहना है :

समाजवाद के सिवाय भारतीय लोगों की गरीबी, व्यापक बेरोजगारी, अधोगति और पराधीनता को समाप्त करने का अन्य कोई रास्ता मुझे दिखाई नहीं देता। इसके लिए हमारे राजनीतिक और सामाजिक ढांचे में व्यापक और क्रान्तिकारी परिवर्तन करने, भूमि तथा उद्योग एवं सामन्तवादी और तानाशाही से पूर्ण भारतीय रियासत व्यवस्था में निहित स्वार्थों को समाप्त करने की आवश्यकता है। इसका आशय एक सीमित अर्थ को छोड़कर निजी सम्पत्ति की समाप्ति और सहकारी सेवा के उच्चतर आदर्श

के माध्यम से वर्तमान लाभ अर्जन व्यवस्था को बदलना है। इसका अर्थ अन्ततोगत्वा अपनी सहज वृत्तियों और आदतों तथा इच्छाओं में बदलाव लाना है।

इसलिए, यह केवल एक आर्थिक सिद्धान्त नहीं था, जिसे वह प्रतिपादित कर रहे थे, बल्कि यह समाज के पुनर्गठन के लिए एक नया दर्शन और नया आधार था। उनके लिए यही समाजवाद था।

व्यावहारिकतावाद के साथ विचारधारा और आदर्शवाद को इस प्रकार मिश्रित करने में ही नेहरू की महानता थी। उन्होंने न तो कृषक अथवा सर्वहारा वर्ग की क्रान्ति का उपदेश दिया जिसके लिए हमारा समाज पूरी तरह से तैयार नहीं था और न ही उन्होंने पूर्णतः सरकार द्वारा नियंत्रित अर्थव्यवस्था अथवा वर्गहीन समाज की काल्पनिक विचारधाराओं के प्रति झूठा प्यार जताया। लोकतांत्रिक मार्ग के प्रति उनकी निष्ठा में समान रूप से कोई भी कमी नहीं थी। यह समाजवाद की गतिशील विचारधारा है, जिसे पंडितजी ने प्रतिपादित किया था।

वस्तुतः पंडितजी ने भी यह विचारधारा हमारी अपनी परम्परा से ही विरासत में प्राप्त की थी। इस संदर्भ में एक उदाहरण का उल्लेख करना प्रासंगिक होगा, जब कुछ बुनियादी मुद्दों के बारे में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस और मुस्लिम लीग के बीच एक प्रकार से अनवरत संघर्ष चल रहा था। एक मुस्लिम लीग के नेता ने पंडितजी के समाजवाद को उनके अपने ब्रांड का समाजवाद बताकर और यह कहकर कि वह अब तक मास्को और बनारस के बीच दोलायमान होते रहे हैं, पंडितजी का मखौल बनाया। आज सिंहावलोकन करते हुए, मैं समझता हूं कि उन्होंने जो कुछ कहा था, उस समय वही स्थिति थी और पंडितजी के समाजवाद द्वारा वास्तव में शामिल की गई थी। उन्होंने देश की परम्परा और उसके पुनःस्थापन से अपने आप को कभी भी अलग नहीं किया। उनकी सभी कृतियों से उनके एक महान इतिहासवेत्ता, एक महान राजनीतिज्ञ, एक महान स्वाधीनता सेनानी, वैज्ञानिक स्वभाव के एक महापुरुष और सबसे अधिक एक महान लेखक के रूप में उनकी विशेषताओं का पता चलता है। उन्होंने जिस किसी भी क्षेत्र का स्पर्श किया, उस प्रत्येक क्षेत्र में वह महान थे। इतिहास और परम्परा के ज्ञान के बिना कोई भी व्यक्ति इन विशेषताओं को आत्मसात् नहीं कर सकता। यदि वह समाजवाद को देखते थे, तो यह एक ऐसे भारतीय का दृष्टिकोण था, जिसके पीछे 5000 वर्ष पुराना दर्शन था।

प्राचीन काल में भारत में जिस समाज का विकास हुआ, उसमें राजा के कर्त्तव्य इस प्रकार निर्धारित किए गए थे कि उसके बीच और जनता के बीच कोई भी दूरी नहीं थी। इसलिए, अनादि काल से हमारे तंत्र में निर्मित एक विशेष प्रकार का समाजवाद, समतावाद और समानता पंडितजी के उस समाजवाद में सही रूप में प्रतिबिंबित होती है, जो विशिष्ट रूप से भारतीय लोकाचार पर आधारित है और हमारी अपनी परम्पराओं में

जिसने जड़ें जमा रखी हैं। इसे 1848 के "कम्युनिस्ट मेनीफेस्टो" के आधार पर तैयार नहीं किया गया है। उन्होंने भी कांग्रेस विधानमंडल पार्टियों की बैठकों में और सार्वजनिक सभाओं में अनेक बार इसका उल्लेख किया था।

इसमें भी कोई संदेह नहीं है कि लोकतांत्रिक समाजवाद संबंधी उनके विचारों ने महायुद्ध के बाद के वर्षों में राष्ट्रीय मुक्ति के लिए संघर्ष कर रहे अन्य राष्ट्रों की राजनीतिक जागरूकता को समृद्ध किया। हैदराबाद में एक बैठक में उनके द्वारा दिए गए एक विशेष भाषण का मुझे स्मरण आता है, जिसमें उन्होंने लोकतांत्रिक समाजवाद की व्याख्या करने का प्रयास किया था। उन्होंने यह कहा था कि समाजवाद के बिना लोकतंत्र का कोई अस्तित्व नहीं हो सकता और उसी प्रकार लोकतंत्र के बिना समाजवाद नहीं आ सकता। उनके अनुसार लोकतांत्रिक समाजवाद एक सिक्के की तरह था, जिसके दो पहलू थे— एक समाजवाद का और दूसरा लोकतंत्र का। उन्होंने यह कहा था कि एक के बिना दूसरे का अस्तित्व नहीं हो सकता और एक अध्यापक की तरह वह उसकी व्याख्या करते रहे और हम मंत्र मुग्ध होकर उन्हें सुनते रहे कि किस प्रकार वह एक से दूसरे की व्युत्पत्ति निकालते रहे। वस्तुतः यही वे शिक्षायें हैं, जिन्हें हममें से कोई भी व्यक्ति कभी भी नहीं भूल सकता। हम अपने को बहुत ही भाग्यशाली समझते हैं कि ऐसी बैठकों में हम भी शामिल होते थे जिन्हें समय-समय पर पंडितजी सम्बोधित करते थे और हमें उनके विचारों से सीधे ही लाभ प्राप्त होता था न कि अन्य साधनों से प्राप्त उनके विचारों से।

एक ऐसे विश्व में जिसमें वह राजनीतिक हस्तियों को उनके जीवन काल में गरिमा प्रदान करती है और उनकी मृत्यु के बाद उनकी उपलब्धियों को कम करके आंकती है, पंडितजी के सामाजिक विचारों की विरासत की सम्भवतः कुछ उपेक्षा हुई है। परन्तु, मनुष्य के जीवन की अपेक्षा आदर्शों और विचारों का सौभाग्यवश अधिक जीवन होता है। हमारा यह सौभाग्य रहा है कि हमारी राष्ट्रीय चेतना के प्रारंभिक चरणों में पंडितजी ने हमारे समक्ष कुछ विचार और आदर्श रखे। यदि कभी-कभी उनका प्रेरणास्रोत वे नहीं हैं, तो भी वे हमारी राजनीतिक संस्कृति और सामाजिक वृत्ति का अंग हैं। राष्ट्रीय विकास की प्रक्रिया में प्रायः हमारी राजनीतिक संस्कृति अथवा सामाजिक प्रवृत्तियों ने उन मूल्यों को प्रतिबिम्बित किया है, जो हमने पंडितजी से विरासत में प्राप्त किए हैं, उदाहरणार्थ हमारे संविधान निर्माताओं द्वारा बनाये गए राज्य नीति के निदेशक सिद्धान्तों में सरकारी नीतियों का मार्गदर्शन करने के लिए समाजवाद संबंधी नेहरू के आदर्श शामिल हैं। परन्तु, वे कितना मार्गदर्शन कर रहे हैं, यह एक अलग मामला है। हम सभी गोलकनाथ मामले के बारे में जानते हैं। हम सभी बाद की घटनाओं और एक ओर मूल अधिकारों तथा दूसरी ओर निदेशक सिद्धान्तों के बीच जिस प्रकार का संघर्ष हुआ, उससे भली भांति अवगत हैं और किस प्रकार से उनका समाधान करने का प्रयास किया गया। उनका समाधान किया गया अथवा नहीं, परन्तु तथ्य यह है कि वे एक ही संविधान का अंग थे

और कुछ अन्य अनिवार्य आवश्यकताओं की वजह से एक ऐसी मूल्य व्यवस्था में सम्भवतः पृथक मूल्य दिए गए हैं, जो पंडितजी की मूल प्रणाली से कुछ भिन्न प्रतीत होते हैं। इसलिए पण्डितजी से जिसका प्रादुर्भाव हुआ, उसने विभिन्न आकार प्राप्त कर लिए हैं। अब यह हमारे लिए अर्थात् उनके अनुयायियों के लिए, यदि हम अपने को ऐसा कहते हैं, तो यह सोचना है कि वर्तमान संदर्भ में क्या किया जाना है। यदि पंडितजी ने गांधी जी के विचारों को निरूपित किया, तो अन्य व्यक्तियों को भी उसी प्रकार पंडितजी के विचारों को निरूपित करना होगा जैसे उन्होंने स्वयं गांधी जी के विचारों को निरूपित किया था। उनके अनेक कार्यक्रमों में से किसी भी कार्यक्रम को पूरे जोश के साथ क्रियान्वित करना उसे निरूपित करने से भिन्न है। बदलती हुई परिस्थितियों में यह पूर्णतः भिन्न चीज है। आज किसी भी महत्तम गांधीवादी के बारे में मैं सोचता हूं, तो वह नेहरू ही हैं। अब किसे महत्तम नेहरूवादी कहा जा सकता है, इसका अभी भी निर्णय होना है। इतिहास इसका निर्णय करेगा। श्रीमती इंदिरा गांधी का नाम सामने आता है, परन्तु उनका जीवन संघर्षमय था।

दूसरी ओर पंडितजी का जीवन संघर्षमय जीवन नहीं था, क्योंकि प्रधानमंत्री बनने से काफी पहले ही जीवन के प्रारंभिक काल में ही वे नेता बन गए थे। यही दोनों के बीच अन्तर है। इंदिरा जी ने एक प्रकार से पंडितजी के विचारों को निरूपित किया और उन्हें क्रियान्वित किया परन्तु, इक्कीसवीं शताब्दी की ओर हमारे प्रयाण के संदर्भ में अथवा इक्कीसवीं शताब्दी की पूर्व सन्ध्या पर, पंडितजी के विचारों को किस प्रकार निरूपित किया जाये, यह युवा पीढ़ी के लिए एक चुनौती है। मैंने विचारों को निरूपित करने का प्रयास किया है, परन्तु मैं नहीं समझता कि मैं इसमें सफल रहा हूं। और मुझे विश्वास है कि मेरी पीढ़ी का कोई भी व्यक्ति इक्कीसवीं शताब्दी के महत्व को निरूपित करने और उसे अंगीकार करने में शतप्रतिशत सफल होगा। इसलिए हमें ऐसे किसी व्यक्ति की आवश्यकता है, जो इक्कीसवीं शताब्दी के महत्व को समझ सके और जो पंडित जवाहर लाल नेहरू के विचारों की निरन्तरता को कायम रखने में समर्थ रह सके। हमें यह देखना है कि क्या किसी ऐतिहासिक व्यक्तित्व का उद्भव हो रहा है, जो इसे कर सके। इसी बात पर भारत का भविष्य और संभवतः मानवजाति का भविष्य निर्भर करता है।

सैद्धान्तिक विचारों की शक्ति का निर्णय अल्पकालिक उपलब्धियों से नहीं किया जा सकता। नेहरू ने कुछ वर्षों की अल्प अवधि में हमारे लिए समाजवाद लाने का वादा नहीं किया। उन्होंने इसे प्राप्त करने योग्य एक लक्ष्य के रूप में देखा, परन्तु उसे समय के भीतर प्राप्त करने का लक्ष्य रखा। उन्होंने प्राप्त करने के लिए हमारे सामने एक लक्ष्य रखा।

एक बार उन्होंने कहा, "मैं यह नहीं कह सकता कि भारत में समाजवाद कब आयेगा। परन्तु, मुझे पूरा विश्वास है कि वह अवश्य आयेगा। यह इसलिए नहीं आयेगा कि इसे

मैं और आधा दर्जन अन्य लोग चाहते हैं। न ही यह इसलिए रुक जायेगा, क्योंकि "बड़े उद्योग" इसे नहीं आने देना चाहते।" अपने एक सर्वाधिक सारगर्भित वक्तव्य में यह कहा था : "मैं नहीं जानता कि समाजवाद कब आयेगा, परन्तु मुझे पूरा विश्वास है कि वह अवश्य आयेगा, क्योंकि यह हमारी वृत्तियों का अंग बन चुका है और हमारी भाषा में यह "युग धर्म" बन चुका है। समाजवाद आज भारत का युग धर्म बन गया है। अभी इसकी जड़ें जमनी हैं। इसकी जड़ें जम रही हैं तथा आने वाले वर्षों में इसको लोगों के जीवन के हर पहलू में परिलक्षित होना है।

अब हमें ऐसे व्यक्ति की जरूरत है जो 21वीं शताब्दी को समझता हो और जो नेहरूवाद की निरन्तरता कायम रख सके तथा 21वीं शताब्दी की अपेक्षाओं के अनुरूप इसको ढाल सके तथा उसकी नयी व्याख्या कर सके। भारत में आज इसकी ही जरूरत है। आज भारत को केवल ऐसे महान पंडितों की ही जरूरत नहीं है जो हमको यह बतायें कि पुस्तकों अथवा पाठ्य पुस्तकों में यह बताया गया है। ऐसे तो कई महान पंडित हैं। निरे खयालों की दुनियां में रहने वाले पंडितों की जरूरत नहीं है जो तरह तरह के काल्पनिक शब्द तथा विचार हमें बताते फिरें। भारत को जरूरत है व्याख्याताओं की। नेहरू जी भारतीय राजनीति, समाजशास्त्र तथा साहित्य के महान व्याख्याताओं में से एक थे और आज हमें एक ऐसे नेता की जरूरत है जो पंडित जी की उसी प्रकार व्याख्या कर सके जिस प्रकार पंडित जी ने गांधी जी की की थी।

4

श्री बूटा सिंह

पंडित नेहरू तथा राष्ट्र निर्माण

पंडितजी बहुमुखी प्रतिभा वाले व्यक्ति थे। उनका महान व्यक्तित्व वर्षों तक भारत पर छाया रहा। देश के जनजीवन के हर क्षेत्र की उन्होंने अमूल्य सेवा की। उनका व्यक्तित्व पौराणिक था। वह एक महान लोकतंत्रवादी, एक सृजनात्मक दार्शनिक, जन-जन के प्रिय और निर्धनों तथा अधिकारविहीन वर्ग के मसीहा थे। निस्संदेह वह "युगपुरुष" थे जिन्होंने देश के स्वतंत्रता संग्राम में हमारे देश का नेतृत्व किया और उसके राष्ट्र बन जाने पर संघर्षपूर्ण पहले दशक में देश के भाग्य का मार्गदर्शन किया। पंडित जी के विचारों और उनके लम्बे जनजीवन में धर्मनिरपेक्षता और समाजिक न्याय का सामंजस्य था। उनके लिये धर्मनिरपेक्षता एक धर्म था और सामाजिक न्याय सामाजिक और आर्थिक असमानताओं को दूर करने का एक कारगर उपाय।

पंडितजी देश में व्याप्त विविधता पूर्ण स्थिति के प्रति पूर्णतः सचेत थे और उन्हें इन विविधताओं में सामंजस्य स्थापना हेतु धर्मनिरपेंक्षता का रास्ता प्रभावकारी लगा। वस्तुतः उनकी पुस्तक "भारत एक खोज" के उपसंहार में भारतीय समाज की विशेषताओं को सुन्दर ढंग से सारांश में दिया गया है, जिनके कारण भारत एकता के सूत्र में बंध सका। उन्होंने लिखा है, "मैंने क्या खोजा है? मेरे लिए यह सोचना धृष्टता होगी कि मैं उसकी खोज कर सका हूं और जान सकूंगा कि वह आज क्या है और अतीत में क्या थी। आज वह चालीस करोड़ व्यक्तियों पुरुषों, महिलाओं में विद्यमान है जिनमें प्रत्येक परस्पर भिन्न हैं, प्रत्येक अपने ही विचारों और भावनाओं के दायरे में जी रहा है। यदि आज ऐसा है, तो मानवजातियों की असंख्य पीढ़ियों पूर्व के वैविध्यपूर्ण भारत को समझना कितना कठिन होगा। फिर भी उन्हें कोई चीज एकता के बंधन में बांधे रही और आज भी उन्हें एकता के सूत्र में बांधे हुए है। भारत एक भौगोलिक आर्थिक सत्ता है। विविधताओं में एक सांस्कृतिक एकता है। विरोधाभासों का एक बंडल है जो मजबूत अविभाज्य सूत्रों से बंधा है। बार-बार आक्रान्त होने पर भी उसकी आत्मा सदा अपराजेय रही और आज वह भले ही किसी दम्भी विजेता के खिलौने की भांति दिखाई देती है किन्तु फिर भी वह अदमित

और अविजेय है। उसमें एक पौराणिक गाथा की मायावी विशेषता है। लगता है किसी मन्त्र ने उसे वशीभूत कर लिया है। वह एक कल्पना और एक विचार है, एक स्वप्न और दृश्य है तथा फिर भी बहुत यथार्थ, विद्यमान और व्यापक है। बुरे समय की भयावह यादें अतीत तक पहुंचाती हैं किन्तु इनके साथ ही उसने अत्यधिक अच्छे दिन भी देखे हैं।

इससे भारतीय जनता की भाषा, धर्म, जाति अथवा सम्प्रदाय की विविधताओं के बावजूद सामान्य लक्ष्यों की प्राप्ति के लिये साथ चल सकने की सामर्थ्य में उनके स्वाभाविक विश्वास का पता चलता है। आज भी जबकि देश में राजनीतिक स्थिति अनेक अशान्तिजनक गतिविधियों से पूर्ण है जिससे सुरक्षा संबंधी पर्यावरण के लिये गंभीर खतरा पैदा हो गया है, ये शब्द कितने संगत हैं। हम पंडित जी के इन भविष्यवाणी युक्त शब्दों को सदा ध्यान में रख कर वर्गगत मांगों को पूरा करने के लिये हिंसा की राजनीति में उलझने की बजाय भारतीय राष्ट्रवाद की आत्मा के उत्तरोत्तर विकास के लिये जुटे रहेंगे।

पंडितजी सदा ही देश की एकता और अखंडता कायम करने और कट्टरवादी और साम्प्रदायिक ताकतों का मुकाबला करने पर जोर दिया करते थे। उन्होंने कहा था — "राजनीतिक एकता की बात करना ही काफी नहीं है, हमें इससे कहीं गहरे उतरना होगा। हममें भावनात्मक एकता होनी चाहिये जिससे व्यावसायिक, जातीय दीवारें या साम्प्रदायिक अथवा धर्म की दीवारें दूर हो जाती हैं। हम केवल तभी एकतापूर्ण भारत की बात कर सकते हैं।" इसी ढंग से बोलते हुए पंडितजी ने कहा था—"राजनीतिक अखण्डता कुछ हद तक स्थापित हो गई है, किन्तु मुझे चिन्ता इससे कहीं गहरी चीज की है—भारतीय जनता की भावनात्मक एकता की, जिससे हम एक रूप हो सकें और भारत एक सुदृढ़ राष्ट्र बन सके तथा साथ ही उसकी अनोखी विविधतायें भी कायम रह सकें।" उन्होंने क्षणिक आवेश में बहने अथवा धर्म का राजनीति हेतु दुरुपयोग करने अथवा साम्प्रदायिकता अथवा प्रांतीयतावाद अथवा जातिवाद के प्रति सावधान किया था। उन्होंने एक ऐसे भारत की कल्पना मन में बसा ली थी जो महान हो, साधारण अर्थों में नहीं अर्थात् ऐसा नहीं जिसके पास विशाल सेना हो किन्तु ऐसा हो जो विचारों, कार्यों, संस्कृति तथा मानवता की शांतिमय सेवा के विचार से महान हो।

पंडित जी राजनीति को धर्म से मिलाने के खिलाफ थे। 3 अप्रैल, 1948 को संविधान सभा में उन्होंने स्पष्ट शब्दों में कहा था, "हमारे और हमारे देश के लोगों के मस्तिष्क में यह बात स्पष्ट होनी चाहिये कि साम्प्रदायिकता के रूप में राजनीति और धर्म का गठजोड़ सर्वाधिक घातक गठबन्धन है और इससे सर्वाधिक असामान्य किस्म के विधि विरुद्ध विचार उठते हैं।" आज जब हम देश के कुछ भागों में विद्यमान स्थिति को देखते हैं, तो सचमुच वे शब्द कितने भविष्यवाणी युक्त लगते हैं। धर्म का राजनीतिक तथा क्षुद्र उद्देश्यों के लिये जिस प्रकार दुरुपयोग किया जा रहा है वह उचित विचार रखने वाले व्यक्तियों के लिये चिंता का विषय है क्योंकि इससे हमारी राजनीति की लोकतांत्रिक प्रक्रिया और

धर्मनिरपेक्षता को हानि पहुंचती है। देश की एकता और अखंडता को बनाये रखने के लिये हमें इन बुराइयों का दृढ़तापूर्वक सामना करना होगा।

पंडित जी ने हमें यह चेतावनी भी दी थी कि यदि हम अपने कर्तव्यों और दायित्वों को भूल जायेंगे और धर्मनिरपेक्ष राष्ट्र पर गर्व नहीं करेंगे तो हमारे देश के संपूर्ण ढांचे और भावनात्मक एकता की प्रक्रिया को गम्भीर आघात पहुंचेगा। उन्होंने समाज के बहुसंख्यक वर्ग को न्यायपूर्वक और उदारतापूर्वक अल्पसंख्यकों की शुभकामनायें प्राप्त करने की सलाह दी। आज के नाजुक दौर में जबकि दुर्भावनायें भड़का दी गई हैं और देश के कुछ भागों में उनके साम्प्रदायिक क्रुद्ध स्वर उभर रहे हैं, हमें पंडितजी के विचारों से सीख लेनी चाहिये जिन्होंने सही रास्ता दिखाया था। हमारा कर्तव्य है कि हम "बहुसंख्यकवाद" और "अल्पसंख्यकवाद" के विवाद में न उलझें क्योंकि दोनों एक अपकारी दर्शन सिखाती हैं और हमें विविधताओं के बीच एकता और साम्प्रदायिक सद्भाव के बन्धनों के लिये काम करना चाहिये।

पंडित जी में भारतीय जनता की गहरी से गहरी आकांक्षायें प्रतिबिम्बित होती थीं और उन्होंने पूर्ण निष्ठा और उनके लक्ष्य और अपने लक्ष्यों को पूर्णतः एक बनाकर करोड़ों देशवासियों के मन में घर कर लिया। उनकी सामाजिक न्याय की परिकल्पना केवल आर्थिक असमानताओं में कमी करने के प्रश्न तक ही सीमित नहीं थी। इस मामले में उनका दृष्टिकोण बहुत विस्तृत था। इसमें शामिल है कानून और व्यवहार में समान रूप से सामाजिक असमानताओं में कमी करना और उन महिलाओं से बेहतर व्यवहार करना, जिनका सदियों से भारतीय समाज में पारम्परिक रूप से दमन और शोषण होता रहा। उन्होंने महान व्यक्तिगत त्याग करके स्वतंत्रता संग्राम के दिनों में और देश की आजादी के बाद भी आम आदमियों और महिलाओं की दशा सुधारने के लिये अथक प्रयास किये। स्वतंत्रता संग्राम के उन संघर्षपूर्ण दिनों में कांग्रेस दल द्वारा पारित विभिन्न संकल्पों से उनके विचारों को पर्याप्त रूप से स्पष्ट अभिव्यक्ति मिली। उन्होंने स्वतंत्रता संग्राम को गरीबी और भूख से जोड़कर उसे एक नया अर्थ प्रदान किया। उनकी देशभक्ति, दलित वर्गों के प्रति दया, और सत्य प्रेम के कारण वे जनजन के प्रिय बन गये। वे भारतीय संस्कृति और पश्चिमी आधुनिकतावाद के एक सच्चे प्रतिनिधि थे। उनका लालन पालन विवेकपूर्ण एवं वैज्ञानिक दृष्टिकोण से युक्त परम्पराओं के साये में हुआ था और उनकी सर्वदा अध्यात्मवाद में आस्था रही। स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात जब राष्ट्र की बागडोर उनके हाथों में आई तो उनकी प्रबुद्ध मानसिकता और विचारों को अभिव्यक्ति मिली। उन्होंने आर्थिक, सामाजिक, प्रौद्योगिकी और वैज्ञानिक क्षेत्र में देश की चहुंमुखी प्रगति में अपना ठोस योगदान दिया। वे भारत को वास्तव में एक शक्तिशाली एवं आधुनिक राष्ट्र बनाना चाहते थे। कांग्रेस दल के लाहौर (1929), लखनऊ (1936) और फैजपुर (1948) अधिवेशनों में अध्यक्ष पद से दिये गये भाषणों में उन्होंने वैज्ञानिक समाजवाद में अपनी

आस्था को खुले तौर पर व्यक्त किया। इसलिए अपनी विचार शैली के अनुरूप और एक सच्चे लोकतंत्रवादी और समाजवादी होने के नाते उन्होंने भारत के आर्थिक और सामाजिक विकास के लिए योजना का तरीका अपनाया, क्योंकि वे इस बात को जानते थे कि भारत के लिये आत्म-निर्भर होने एवं अपनी कोटि-कोटि जनता के जीवन-स्तर में सुधार लाने का यही एक मात्र रास्ता था। 1950 में नेहरू जी द्वारा स्थापित योजना आयोग के माध्यम से निरन्तर वे आर्थिक विकास और आर्थिक असमानताओं को कम करने की नीति तैयार करना चाहते थे। उन्होंने भारत की संघीय व्यवस्था में नये सूत्र बनाने के लिये आयोजना की अवधारणा को चुना। देश में एक समाजवादी समाज की स्थापना और विज्ञान और प्रौद्योगिकी की उन्नति के लिये काम करने के उनके आह्वान को देश के दलित वर्ग के उत्थान के उद्देश्य के प्रति उनकी पूर्ण प्रतिबद्धता के संदर्भ में देखा जाना चाहिए। उनकी सामाजिक न्याय की अवधारणा देश की आर्थिक प्रगति के लिये एकीकृत योजना से घनिष्ठ रूप से जुड़ी हुई थी जिसका अर्थ व्यक्ति का विकास भी है। उन्हें इस बात का भी विश्वास था कि राजनीतिक लोकतंत्र और वयस्क मताधिकार का तब तक कोई अर्थ नहीं होगा जब तक देश में आर्थिक असमानता विद्यमान है। उनके लिये वास्तविक लोकतंत्र का अर्थ था विभिन्न वर्गों में पारस्परिक मतभेदों को समाप्त कर एक अपेक्षाकृत अधिक एकात्मक समाज का निर्माण, दूसरे शब्दों में आर्थिक लोकतन्त्र के लिये ठोस प्रयास करना था। उनकी आर्थिक विकास की परिकल्पना का अर्थ मात्र कारखाने स्थापित करना अथवा उत्पादन बढ़ाना ही नहीं था, हालांकि वह भी जरूरी था, अपितु उसका कुछ अधिक ही गहरा अर्थ था जिसका महत्वपूर्ण लक्ष्य कृषि, उद्योग, सामाजिक और आर्थिक विकास के लिये एकीकृत दृष्टिकोण अपनाकर सामाजिक ढांचे का क्रमिक विकास करना था।

पण्डितजी एक समतावादी समाज की स्थापना के लिये भी क्रियाशील रहे। इस प्रकार की व्यवस्था के अन्तर्गत जन्म, आयु अथवा हैसियत के आधार पर भेदभाव अनुमत्य नहीं है। उनका लक्ष्य हमारे सामाजिक जीवन में विभेदों को समाप्त करना था किन्तु चूंकि वे यथार्थवादी थे इसलिये वे इन मौजूदा तथ्यों की अनदेखी नहीं करना चाहते थे। उन्होंने इस बात पर जोर दिया कि हमें अपने उद्देश्यों और वर्तमान सत्यों के बीच अवश्य ही कोई मध्यम मार्ग खोजना होगा और अपने आदर्शों को सामने रखकर वे कदम उठाने होंगे जो धीरे-धीरे हमें उस दिशा में ले जायें। अतः वे वांछित उद्देश्यों की प्राप्ति के लिये संविधान में फेर-बदल करने के विरुद्ध नहीं थे। उनकी राय में "अपरिवर्तनशील और स्थिर संविधान—भले ही वह कितना ही अच्छा और निर्दोष क्यों न हो—एक ऐसा संविधान है जिसकी उपयोगिता शेष हो जाती है।"

नेहरू जी सरकारी क्षेत्र के विकास पर बहुत जोर देते थे क्योंकि उन्होंने यह महसूस किया था कि केवल उत्पादन बढ़ाना ही पर्याप्त नहीं है, यह जानना भी समान रूप से

महत्वपूर्ण है कि उपज का क्या होता है। उनका निर्धनता के वितरण में विश्वास नहीं था क्योंकि उनकी राय में यह कल्याणकारी राज्य की अवधारणा के विपरीत है। वे ऐसे कल्याणकारी राज्य के समर्थक थे जो समाजवादी समाज व्यवस्था पर आधारित हो, किन्तु यह भी तब तक संभव नहीं हो सकता जब तक कि राष्ट्रीय आय में तेजी से वृद्धि नहीं होती। उन्होंने सामुदायिक योजनाओं पर अत्यधिक बल दिया। उन्होंने महसूस किया था कि कोई भी महान परिवर्तन केवल सरकारी कार्यवाही से नहीं आ सकता। उन्होंने स्त्रियों को समाज में बेहतर दर्जा दिलाने की ओर विशेष ध्यान दिया। हिन्दू कोड बिल में पण्डित जी का सर्वाधिक महत्वपूर्ण योगदान है जिसमें समाज में महिलाओं को उनका उचित दर्जा दिलवाने और उनके शोषण को समाप्त करने का प्रयास किया गया।

पण्डित जी की मूल विचारधारा भले ही वह आर्थिक विकास अथवा सामाजिक प्रगति अथवा अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों या औद्योगिक तथा वैज्ञानिक प्रगति के बारे में हो, आज भी उतनी ही संगत है, जितनी कि वह अपने प्रवर्तन के समय थी।

पण्डित जी हमें निरन्तर यह याद दिलाते रहे हैं कि "हम एक महान देश की संतान हैं। यदि हमें अपने देश के योग्य बनना है, तो हमारे मस्तिष्क खुले और हृदय विशाल होने चाहिये क्योंकि क्षुद्र लोग बड़े मसलों का सामना नहीं कर सकते अथवा बड़े कार्यों को सिद्ध नहीं कर सकते। हम में से प्रत्येक अपने देश और अपने देश वासियों के प्रति अपना कर्तव्य पूरा करे और दूसरों के कर्तव्यों के बारे में अधिक न सोचे। हमें वर्तमान जटिल मसलों का समाधान करने के लिये स्वयं में इन गुणों को धारण करना चाहिये और वस्तुनिष्ठ दृष्टिकोण अपनाना चाहिए। यदि हम पूरी निष्ठा से मिल कर कार्य करेंगे तभी हम अपनी अनेक समस्याओं पर काबू पा सकते हैं और देश की सर्वतोमुखी प्रगति में योगदान कर सकते हैं।" पण्डितजी ने कहा था, "हमने बिना हथियार के तथा शान्ति के साथ विदेशी साम्राज्य का सामना किया, किसी अन्य देश से सहायता की अपेक्षा किये बिना केवल अपने भरोसे पर लड़े जिससे हमें स्वाधीनता संग्राम के लिये शक्ति मिली। यदि हम बाहर से शक्तिहीन नजर आते हों, किन्तु हम में विश्वास और आस्था हो, तो हम निश्चित रूप से आज काफी बेहतर हैं, जबकि हम स्वतन्त्र हैं और हमारे पीछे एक महान देश की शक्ति है।"

यदि हम इसी भावना से कार्य करें तो तीव्र गति से प्रगति कर सकते हैं और देश को अधिक शक्तिशाली बना सकते हैं।

5

श्री पी. शिवशंकर

नेहरू—सामाजिक न्याय के मसीहा

14 और 15 अगस्त, 1947 की मध्य-रात्रि को, जब विश्व के लोग सोये हुए थे, भारत में आजादी की शहनाइयां बज रही थीं। उस अवसर पर भारत में शासन की बागडोर एक महान आत्मा श्री जवाहरलाल नेहरू के हाथों में सौंपी गई। उस मध्य रात्रि को कहे गये उनके ये शब्द "बहुत समय पहले हमने एक सपना देखा था और अब समय आ गया है कि हम राष्ट्र से किये गये वायदों को पूरा करें" आज भी भारतीय राजनेताओं के कानों में गूंजते हैं और उन्हें राष्ट्र के प्रति उनके कर्तव्यों और जिम्मेदारी की याद दिलाते हैं, जिन्हें अभी पूरा किया जाना है। श्री जवाहरलाल नेहरू ने जिन कसमों का जिक्र किया था, वे भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस द्वारा समय-समय पर पास किये गये संकल्पों के रूप में भारत की जनता से किये गये वे वायदे थे, जिनका बाद में संविधान के विभिन्न अनुच्छेदों और प्रस्तावना में समावेश किया गया। नेहरू जी ने एक समतावादी समाज और कल्याणकारी राज्य का अभ्युदय सम्भव बनाने के लिये इन विचारधाराओं का सूत्रपात करने तथा उन्हें स्वीकार करने में संविधान सभा का मार्ग दर्शन करने में अपनी दूरदर्शी कुशाग्रता का परिचय दिया। संक्षेप में संविधान में समाविष्ट सिद्धांत नेहरू जी का व्यक्तित्व प्रतिबिंबित करते हैं, जो पूर्णतः लोकतंत्रात्मक, धर्मनिरपेक्ष और समाजवादी थे।

जवाहरलाल नेहरू में विविध व्यक्तित्वों का संगम था। वे एक देशभक्त, एक राजनेता, एक विचारक, एक विद्वान और विशेषतः एक मानवतावादी थे। इस देश की महान विभूतियों में उनका स्थान निस्संदेह सदा अग्रणी रहेगा। उन्हें इस बात के लिये हमेशा याद किया जायेगा कि उन्होंने स्वतंत्र भारत के प्रथम प्रधानमंत्री के रूप में देश की नाव को विकट समस्याओं की उत्ताल तरंगों से पूर्ण सागर के पार लगाया।

नेहरू जी उत्कृष्ट मानवीय गुणों की खान थे, जिनके कारण उन्होंने लोगों का मन मोह लिया और वे उनके लिये आदर्श पुरुष बन गये। वे एक दूरदर्शी राजनेता थे, जो अधिकांश मामलों में मंत्रिमंडल के अपने सहयोगियों से कहीं आगे की बात सोच लेते थे।

गत सौ वर्षों में किसी भी लोकतंत्रात्मक देश में संसदीय शासन के संपूर्ण इतिहास में श्री जवाहरलाल नेहरू ही एकमात्र ऐसे व्यक्ति रहे हैं, जो प्रधानमंत्री के रूप में अपने दल तथा सरकार के सर्वसम्मत और निर्विरोध नेता थे। वह सदा कांग्रेस के एक अनुशासनप्रिय सिपाही रहे, उसके फरमानों की तामील करते रहे, उसके संकल्पों को साकार करते रहे, उसके उद्देश्यों को पूरा करते रहे। उनकी राय में अनुशासन लोकतंत्र की आधारशिला थी। उनका कहना था कि "यों तो लोकतंत्र की सैकड़ों परिभाषाएं हो सकती हैं, किन्तु एक निर्विवाद परिभाषा है समाज का आत्म-अनुशासन।" वह अपने अनुयाइयों को बारंबार समझाते रहे कि वे अपने समर्थकों के बाहुल्य से गर्वोन्मत्त न होकर थोथी बातें और दिखावटी आचरण न करें तथा अपनी शक्ति और उत्साह को समाज के हित में सही दिशा में लगायें। "लोकतंत्र का अर्थ है सहनशीलता, न केवल उनके प्रति, जो हमसे सहमत होते हैं बल्कि उनके प्रति भी जो हमसे इत्तफाक नहीं रखते हैं। आजादी हासिल होने के बाद हमारे व्यवहार में भी इस आजादी की झलक मिलनी चाहिये।"

नेहरू जी का जन्म एक सम्पन्न परिवार में हुआ था और उनकी शिक्षा-दीक्षा अपने जमाने की सबसे बढ़िया शाही परम्परा के अनुसार हुई थी। इसलिए जब नेहरू जी ने इलाहाबाद में वकालत शुरू की तो यह सोचा गया कि वह अपने वर्ग के कुशाग्र युवक बुद्धिजीवियों द्वारा आमतौर पर अपनाये जाने वाले तौर-तरीके पर ही काम करेंगे। तथापि विधाता की मर्जी कुछ और ही थी। युवा, संवेदनशील और ओजस्वी नेहरू साबरमती के संत गांधी जी के निकट सम्पर्क में आये, जिनका इस बीच भारत के राजनीतिक क्षितिज पर उदय हो चुका था तथा जिन्होंने सत्य, अहिंसा, त्याग और असहयोग के अपने क्रांतिकारी सिद्धांत का उपदेश देना आरम्भ कर दिया था। इस प्रकार गांधी जी और नेहरू जी के बीच गुरु और शिष्य का रिश्ता जुड़ा, जिसने अन्ततोगत्वा भारत के इतिहास पर गहरी और चिरस्थायी छाप छोड़ी।

जवाहरलाल नेहरू जी घरेलू जिम्मेदारियों और परेशानियों से लगभग मुक्त थे परन्तु मोतीलाल नेहरू जी के दिवंगत होने पर नेहरू परिवार की जिम्मेदारी उनके पुत्र पर पड़नी स्वाभाविक ही थी। मोतीलाल जी कोई वसीयत नहीं कर गये थे और जवाहरलाल जी को डर था कि परिवार में हर कोई हर बात के लिए उन पर आश्रित महसूस करेगा। वह नहीं चाहते थे कि कोई भी ऐसा सोचे। उन्होंने अपनी बहन श्रीमती कृष्णा को एक पत्र लिखा कि पिताजी की मृत्यु के पश्चात् वह और उनकी माताजी आनन्द भवन तथा पिताजी द्वारा छोड़ी गई प्रत्येक वस्तु की अपने आपको वास्तविक स्वामिनी समझें। श्रीमती विजय लक्ष्मी का विवाह सम्पन्न हो चुका था और इसलिए नेहरू जी ने उन्हें इस उदारता में शामिल नहीं किया।

इस धन-लोलुप संसार में ऐसा व्यक्ति विरला ही होगा जिसे धन के प्रति वास्तविक नफरत हो। नेहरू जी एक ऐसे विरले व्यक्ति और उस श्रेणी के लोगों में से थे जिन्हें धन

के प्रति पूर्ण विमोह था। नेहरू जी ए.पी. हरबर्ट के इस मत को मानते थे कि "धन जहां खुशी का खजाना है वहां दुखों की जड़ भी है।"

11 अप्रैल, 1955 को संसद में बोलते हुए उन्होंने कहा था कि "मैं कुछ जाती चीजों को छोड़ कर जायदाद का बिल्कुल हामी नहीं हूं.....यदि मैं यह कहूं कि मेरे दिल में संपत्ति के लिये कोई जगह नहीं है, तो यह सभा मुझे माफ करेगी। मैं तो संपत्ति रखना एक बोझ समझता हूं। जिन्दगी के सफर में हल्का चलना ही बेहतर है। कोई इन्सान जमीन के किसी टुकड़े से, इमारत से या अन्य चीज से बंधा नहीं रह सकता है। इसलिये मैं जायदाद के प्रति इस उत्कट मोह की ताईद नहीं कर सकता।"

नेहरू जी ने अन्य पद्धतियों के मुकाबले में संसदीय प्रणाली की पुरजोर वकालत की। श्री कन्हैया लाल मुंशी के शब्दों में नेहरू जी ने भारतीय जन-जीवन को ऊंचा उठाने के लिये व्याकुल एक मध्यमार्गी समाजवादी के रूप में संसदीय सर्वोच्चता को पसन्द किया। नेहरू जी के अनुसार संसदीय लोकतंत्र प्रणाली अन्तिम रूप से सोच-समझकर ही अपनाई गई, केवल इसलिए नहीं कि हम पहले इस दिशा में सोचते रहे थे बल्कि इसलिए भी कि यह हमारी प्राचीन परम्पराओं के भी अनुकूल है। अन्यत्र संसदों में पेश आने वाली समस्याओं का अहसास करते हुए उन्होंने फरवरी, 1956 में ही संसदीय सुधार किये जाने की सिफारिश की थी और इस संबंध में विधानमण्डलों में समय की कमी तथा विधायी प्रस्तावों पर गहराई से विचार करने के लिए बड़ी समितियां नियुक्त किये जाने के सुझावों का हवाला दिया था। वह महसूस करते थे कि संसदीय लोकतंत्र आर्थिक लोकतंत्र की दिशा में अग्रसर हो रहा है और इसका स्वरूप चाहे जो भी हो "यह राजनीतिक क्षेत्र में भी तब ही सफल हो सकता है जबकि यह आर्थिक समस्याओं को हल करे।" नेहरू जी का विश्वास था कि अन्य पद्धतियों की तुलना में, जो कुछ हद तक अधिकारवाद को जन्म देती हैं, संसदीय शासन प्रणाली ही ऐसा कर सकती है। संसदीय प्रणाली में सब खामियां होते हुए भी सबसे बड़ी खूबी है कि यह बदलते हुए जीवन-ढांचे के अनुरूप ढाली जा सकती है।

भारतीय संसद नेहरू जी की अनेक रूप में ऋणी है। यह आरम्भ में 9 दिसम्बर, 1946 को उद्घाटन की गई संविधान सभा से लेकर सात आम चुनावों से गुजर कर एक प्रभुता सम्पन्न जन-प्रतिनिधि संस्था के रूप में उभरी है। इसके गठन, रचना और कार्यकरण में नेहरू जी की अमिट छाप देखने को मिलती है। उनके मार्ग दर्शन में इसने हमारे देश की राजनीतिक तथा आर्थिक प्रगति की मजबूत नींव रखी है। उन्होंने सदस्यों के अधिकारों और विशेषाधिकारों की रक्षा करने तथा सभा की गरिमा और सम्मान को बनाये रखने में काफी सावधानी बरती। वह न केवल अपने दल के बल्कि विपक्ष के सदस्यों के प्रति भी संवेदनशील थे। इसका स्पष्ट उदाहरण है, 1956 में सभी दलों के सदस्यों के बहुमत की इच्छा के अनुरूप बम्बई का एक विशाल द्विभाषी राज्य के रूप में गठन करने हेतु राज्य पुनर्गठन विधेयक में संशोधन करने के लिए उनका सहमत होना।

नेहरू जी के तत्पर प्रयासों तथा स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद के संसद के विकासशील प्रारम्भिक वर्षों में उनके सहयोग के जरिये भारतीय संसद शीघ्र ही एक वास्तविक और सार्थक जन-प्रतिनिधी संस्था बन गई और इसने देश के लोकतंत्रीय समाज में एक प्रमुख स्थान प्राप्त कर लिया। संसदीय व्यवस्था के प्रति उनका आदर उतना ही गहरा था जितनी कि लोकतंत्रीय प्रक्रिया में उनकी आस्था। उनके विचार में संसद अन्ततोगत्वा जनता की प्रभुता की प्रतीक थी और इसकी गरिमा की रक्षा करने में वे सदैव तत्पर रहे।

यहाँ मैं एक अथवा दो उदाहरण उनकी स्पष्टवादिता के पेश करूंगा जोकि उन्होंने वर्ष 1949 में संसद में व्यक्त किये थे। खाद्य पदार्थों के आयात के बारे में उन्होंने कहा था, "मेरा विचार है कि विदेशों से इतनी आसानी से जो हमें खाद्य पदार्थ प्राप्त हो जाते हैं, इसने हम को समस्या का सामना उचित ढंग से करने से वंचित कर दिया है। मेरा विचार है कि कुछ समय के बाद हमें खाद्य पदार्थ विदेशों से आयात नहीं करने चाहिए — ऐसी अवधि दो वर्ष बाद की रख सकते हैं किन्तु इस अवधि से एक दिन अधिक नहीं होना चाहिए और आज यह इरादा कर लेना चाहिए कि दो वर्ष बाद हम भूखे मर जायेंगे किन्तु वही खायेंगे जो अपने यहां पैदा करेंगे।" बाद में जब एक सदस्य महोदय ने उन्हें उनका यह इरादा याद दिलाया कि अप्रैल, 1952 के बाद खाद्य पदार्थ संबंधी सभी आयात समाप्त कर दिये जायेंगे, तब उन्होंने स्पष्ट रूप से कहा कि "मुझे खेद है कि मेरे शब्द झूठे रहे जिस पर मैं शर्मिन्दा हूं कि देश के प्रति जो वचन दिया गया था वह भंग हुआ है।"

दूसरी बार, संसद के प्रारम्भिक दिनों (15 नवम्बर, 1950) में एक अन्य अवसर पर शरणार्थियों की जटिल समस्या और देश के बंटवारे के परिणामस्वरूप उत्पन्न अनियमितताओं का उल्लेख करते हुए उन्होंने कहा कि "वास्तव में मुझे अनेक बार हैरानी होती है कि भारत के लोग मेरे जैसे व्यक्ति, जो कि इस देश का राज चला रहा है, के साथ किस प्रकार निर्वाह कर रहे हैं, यह सब पिछले कुछ महीनों में ही हुआ है। मुझे स्वयं आश्चर्य है—यदि मैं सरकार में न होता तो मुझे पक्का यकीन है कि मैं ऐसी सरकार के साथ निर्वाह न कर सकता।"

जन्मजात लोकतंत्रवादी होने के नाते, उन्हें लोकतंत्रात्मक शासन प्रणाली बेहद पसन्द थी क्योंकि हमारे राष्ट्र की पृष्ठभूमि में इसमें धार्मिक, प्रादेशिक, भाषायी, सामाजिक और आर्थिक सभी मतभेदों को दूर करके सभी लक्ष्य पूरे करने का शांतिपूर्ण तरीका है। इस संबंध में अपने विचार रखते हुए उन्होंने एक अवसर पर कहा था :

"मेरे विचार में लोकतंत्र का अर्थ है समस्याओं को शांतिपूर्ण तरीकों से हल करने का प्रयास। मैं तो यह मानता हूँ कि यदि वह शांतिपूर्ण नहीं है तो वह लोकतंत्र नहीं है। असली लोकतंत्र में अनुशासन स्वतः कायमं किया जाता है। यदि अनुशासन नहीं है तो लोकतंत्र नहीं है।" आज, जबकि देश के कुछ भागों में पृथकतावादी प्रवृत्तियां और

विघटनकारी ताकतें सिर उठा रही हैं, नेहरू जी के इन महान विचारों को याद करना हमारे लिए और भी जरूरी हो जाता है।

संसदीय शिष्टाचार के मामले में जवाहरलाल नेहरू जी का कोई सानी नहीं था। सभा में प्रवेश करने का उनका तरीका, अपना स्थान ग्रहण करने से पहले अध्यक्ष के सम्मान स्वरूप, अध्यक्षपीठ को उनका फर्शी सलाम करना, संसदीय शिष्टता को, विशेष रूप से समूची सभा के प्रति सम्मान के बारे में सही अर्थों में पालन करना तथा खीज पैदा करने वाली रोक-टोक का भी उत्तर देने के लिए सदैव उनकी तत्परता बेमिसाल थी। वह विशेषाधिकार तथा ऐसे अन्य विषयों के विशेषज्ञ तो नहीं थे परन्तु जब भी ऐसे मसले सामने आये तो उन्होंने प्रक्रिया के बारे में मूल्यवान सुझाव दिये और समूची सभा की गरिमा को बनाये रखने में सदैव तत्परता दिखाई।

आरम्भिक वर्षों में कभी-कभी वह भड़क उठते थे और उनके प्रख्यात गुस्से की एक झलक देखने के लिए मिलती थी, लेकिन वह जल्दी ही शांत हो जाते थे और आवश्यक होने पर उसके लिये माफी तक मांग लेते थे। उन्हें इस प्रकार के भावों में देखने में एक आनन्द मिलता था, क्योंकि उस समय उनकी स्पष्टवादिता और उदारता तथा दूसरे व्यक्ति के दृष्टिकोण के प्रति सम्मान के साथ अपने सिद्धान्तों पर उनकी अडिगता दिखाई देती थी। बाद के वर्षों में वह शांत रहने लगे और यदा-कदा नाराज होते थे और वह भी अधिक गुस्सा दिलाये जाने पर नाराज होते थे, तथा फौरन ही सामान्य हो जाते थे। अनेक सदस्य अपने आपको इससे महरूम समझते थे क्योंकि उनके भड़कने पर भी उनकी भावना की चमक उजागर होती थी, जिसकी अपनी अहमियत थी।

वह प्रायः बिना किसी तैयारी के या बिना किसी लिखित सामग्री की सहायता के पूरा भाषण स्वतंत्र रूप से देते थे, जबकि अधिकांश प्रधान मंत्री ऐसा नहीं करते हैं। कभी-कभी वह प्रसंग से भी हट जाया करते थे किन्तु उनके भीतर बैठा कलाकार निरन्तर मुखरित होता रहता था और उनके भाषण के कई अंश बड़े ही सुन्दर बन जाते थे। इसी प्रकार उनके भीतर बैठा विचारक भी निरंतर जागरूक रहता था और उनके विचारों को मूर्त रूप प्रदान करता रहता था। ऐसा लगता था मानो कोई बड़ा ही संवेदनशील व्यक्ति गहनतापूर्वक सोच रहा हो। उन्हें इस प्रकार से बोलते हुए सुनने में बड़ा ही आनन्द आता था हालांकि वह कई बातों को दुहरा-दुहरा कर भी कहा करते थे। यह स्पष्ट दिखाई देता था कि वह सामान्य राजनीतिज्ञों से भिन्न हैं, एक ऐसा सिक्का जो भिन्न प्रकार से ढला है।

नेहरू की सामाजिक न्याय के प्रति जो धारणा थी, उसी के कारण वह विश्व के लोगों को प्रिय थे। वह जानते थे कि कानूनी न्याय सामाजिक न्याय नहीं है क्योंकि कानून एक विशिष्ट प्रकार के सामाजिक ढांचे को बनाये रखने के लिए बनाया और लागू किया जाता है। कानून में शाश्वत सत्य नहीं होता। एक कानून जो समाज विकास के एक चरण में वैध माना जाता है वही समाज विकास के दूसरे चरण में अवैध बन सकता है। भारत

में ही ब्रिटीश शासन काल में जो कई बातें वैध मानी जाती थीं वे स्वतंत्रता के पश्चात अवैध हो गईं।

नेहरू के लिए सामाजिक न्याय से तात्पर्य था आर्थिक अन्याय को दूर करना जबकि पूंजीवादी समाज में लोगों को प्रायः इसका शिकार होना पड़ता है। भारत के संदर्भ में जैसाकि उन्होंने अपनी आत्मकथा में कहा है सबसे अधिक दुखी व्यक्ति कृषि मजदूर है। ग्रामीण क्षेत्रों के बड़ी संख्या में भूमिहीन मजदूरों ने राष्ट्रीय स्वतंत्रता आंदोलन में इस कारण से भाग लिया था कि छोटे किसान तथा काश्तकार दोनों ही और अधिक गरीब होते जा रहे थे। नेहरू जी इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि भूमि संबंधी मूल समस्या के समाधान से ही (अन्य महत्वपूर्ण राष्ट्रीय मुद्दों का जिक्र न करते हुए) उस संघर्ष को समाप्त किया जा सकता है जो स्पष्ट उत्तरोत्तर वर्ग-संघर्ष का रूप धारण करता जा रहा है।

नेहरू जी जहां भी गए वहां उनकी प्रशंसा ही हुई और वास्तव में यह स्वयं भारत के लिए गौरव का विषय था क्योंकि विश्व में सभी स्थानों पर लोगों ने नेहरू की प्रशंसा करते हुए भारत की प्रशंसा की। लोगों ने उनकी प्रशंसा की क्योंकि उन्हें उनमें एक ऐसे आदर्श पुरुष के दर्शन हुए, जो न केवल अपने देशवासियों के लिए बल्कि विश्व के सभी लोगों को सामाजिक न्याय दिलाने के लिए संघर्ष करता है और संघर्ष करते हुए ही अंतिम सांस लेता है। सामाजिक न्याय प्राप्त करने के लिए उनका संघर्ष भी निराला ही था क्योंकि विश्व के किसी भी अन्य राजनीतिक नेता ने पूरे विश्व में "अन्याय" के उन्मूलनार्थ तथा सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक न्याय पर आधारित समाज-व्यवस्था की स्थापना हेतु शुद्ध साधन अपनाये जाने की आवश्यकता पर इतना अधिक बल नहीं दिया। साधनों की इस शुद्धता का, जो नेहरू ने स्वीकार की तथा जिसके महात्मा गांधी दृढ़ समर्थक थे तत्कालीन कानून एवं कानून व्यवस्था से टकराव हुआ। कहने का तात्पर्य यह है कि कानून की दृष्टि से जो न्याय था, नेहरू जी की दृष्टि से वह सामाजिक न्याय नहीं था। इसलिए उन्होंने उन कानूनों को जिन्होंने समाज को विधि के कतिपय सिद्धांतों पर आधारित अन्यायपूर्ण व्यवस्था प्रदान करने की कोशिश की, तोड़ने में कोई हिचकिचाहट महसूस की नहीं। तथापि विधि और व्यवस्था बनाये रखना, जो विधिक न्याय का मुख्य कृत्य है, काफी नहीं समझा गया क्योंकि उनका सामाजिक न्याय की विचारधारा का, राजनीतिक न्याय की विचारधारा और आर्थिक न्याय की विचारधारा के साथ भी टकराव शुरू हो गया। यदि राज्य के कानून व्यक्ति की राजनीतिक स्वतंत्रता, अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता और प्रत्येक व्यक्ति को उसकी इच्छानुसार आजीविका कमाने और जीवन व्यतीत करने का अधिकार नहीं दे पाते हैं तो यह कानूनी व्यवस्था स्वयमेव सर्वथा निन्दनीय हो जाती है। इस प्रकार समाज के प्रति, केवल उनके अपने युग के समाज के प्रति ही नहीं अपितु सम्पूर्ण समाज अथवा भावी मानव समाज के प्रति भी, नेहरू जी के दृष्टिकोण का उत्तरोत्तर अध्ययन करने पर यह महसूस होता है कि उनकी मुख्य आकांक्षा यह थी कि हमारे समाज

को अन्ततोगत्वा एक ऐसी व्यवस्था का विकास करना चाहिए जिसमें आम लोगों को अधिकतम न्याय मिल सके और न्याय मात्र कहने के लिए ही न हो बल्कि उसका हर देश के नागरिक के दैनिक जीवन में महत्व भी हो।

इस प्रकार नेहरू जी का विश्वास था कि हमें एक ऐसी नयी सामाजिक व्यवस्था कायम करनी चाहिए जिसमें आम लोगों की बुनियादी आवश्यकताएं पूरी हों, सबको मूल मानव स्वतंत्रता प्राप्त हो और सबको समान अवसर प्राप्त हों। संविधान सभा और उसके द्वारा निर्मित संविधान इस दिशा में बृहत राष्ट्रीय प्रयास के ही अंग थे।

नेहरू जी ने संविधान सभा को कहा था कि "उसका सर्वप्रथम काम भारत को नये संविधान के माध्यम से स्वतंत्रता प्रदान करना, भूख से पीड़ित लोगों को भोजन देना, नंगे लोगों को कपड़ा प्रदान करना और प्रत्येक भारतीय को उसकी क्षमता के अनुसार उन्नति करने हेतु अधिक से अधिक अवसर प्रदान करना है।" दूसरे शब्दों में, संविधान उनकी दृष्टि में सामाजिक परिवर्तन लाने का एक माध्यम है। नेहरूजी ने कहा था मेरा विश्वास है कि संविधान के द्वारा ही हम उस वास्तविक स्वतंत्रता को प्राप्त कर सकते हैं जिसकी हम सदा से आकांक्षा करते आ रहे हैं और उसी वास्तविक स्वतंत्रता से ही भूख से पीड़ित हमारे लोगों को रोटी, कपड़ा और मकान तथा उन्नति करने के सभी प्रकार के अवसर मिल सकेंगे। नेहरू जी ने संविधान सभा में उस समय जो कहा था वह आज भी उतना ही संगत है जितना वह उस समय था।

> "इस समय भारत में सबसे बड़ा और महत्वपूर्ण प्रश्न यह है कि गरीब और भूख से पीड़ित लोगों की समस्या को कैसे हल किया जाये। हम जहां कहीं जाते हैं हमें इस समस्या का सामना करना पड़ता है। यदि हम इस समस्या को शीघ्र हल नहीं कर सके, तो हमारा कागजी संविधान अनुपयोगी और निरर्थक हो जायेगा।"

नेहरू जी ने देश के विभिन्न भागों से आने वाले लोगों को यह महसूस कराया कि वे समूचे भारत के हैं तथा जाति, पंथ, धर्म आदि के बंधन अप्राकृतिक हैं और उनके प्रभाव को सीमित करने वाले हैं। उन्होंने स्पष्ट रूप से यह समझ लिया था कि सामाजिक एवं आर्थिक समस्याओं से ही विखंडनकारी प्रवृत्तियां उत्पन्न होती हैं और इसलिए उन्होंने यह सुनिश्चित करने के लिए अथक प्रयास किया कि भारत का कोई भाग विकास की दृष्टि से पीछे न रहे तथा समाज का कोई भी वर्ग उपेक्षा महसूस न करे। उनकी आयोजन की धारणा व्यापक थी और इसके पीछे प्रेरणा यह थी कि समाज के सभी धर्मों और लोगों को वितरण के समान अवसर प्रदान हों। वह समाज के कमजोर वर्गों की कठिनाइयों के संबंध में विशेष रूप से चिंतित थे और इसलिए उन्होंने उनको सहायता प्रदान करने के लिए सभी विकास कार्यक्रमों पर विशेष बल दिया था।

जवाहरलाल नेहरू जी का अपने जीवन काल में कभी भी धार्मिक भावनाओं की तरफ झुकाव नहीं रहा। उनका विचार था कि धर्म व्यावहारिक रूप में निरर्थक है क्योंकि इससे

भारत की महत्वपूर्ण समस्याओं का वैज्ञानिक आधार पर समाधान नहीं हो सकता और सांसारिक जीवन के संबंध में जो धार्मिक दृष्टिकोण है उससे भारतीय जनता का सामाजिक और आर्थिक उत्थान नहीं हो सकता। नेहरू जी ने "दी डिस्कवरी ऑफ इंडिया" में लिखा है कि "जिस प्रकार मैंने विचारकों द्वारा धर्म का स्वीकार किया जाना या व्यवहार में लाया जाना देखा, उससे मुझे धर्म के प्रति कोई आकर्षण नहीं हुआ। ऐसा प्रतीत होता है कि धर्म अन्धविश्वास पर आधारित है और जीवन की समस्याओं के प्रति इसका रवैया विज्ञापन पर आधारित नहीं है।"

नेहरू जी ने कई बार इस बात की ओर ध्यान दिलाया कि धर्म विशुद्ध रूप में रह ही नहीं सकता क्योंकि बहुधा इसका उपयोग अन्य व्यक्तियों के शोषण के लिए किया जाता है और इस प्रकार यह दमन का एक साधन बन जाता है। इसलिए उन्होंने राजनीतिक जीवन में धर्म के उपयोग की सदैव आलोचना की। उदाहरण के तौर पर उन्होंने अपनी आत्मकथा में धर्म के प्रतिक्रियावादी योगदान पर टिप्पणी करते हुए कहा : "भारत में या किसी अन्य देश में धर्म का जो चित्रण मेरे मन में है उससे मेरा मन आतंक से भर गया है और मैंने कई बार इसकी निन्दा की है। धर्म का आधार सदैव अन्धविश्वास और प्रतिक्रिया, धार्मिक कट्टरता, शोषण और निहित स्वार्थों को बनाये रखना रहा है।" उन्होंने यह भी कहा कि "अब धर्म का कोई महत्व नहीं रहा और यह केवल भ्रांति को उत्पन्न करता है और निरर्थक वाद-विवाद तथा तर्क को बढ़ावा देता है और अकसर इसके अलग-अलग अर्थ निकाले जाते हैं..... ।" उन्होंने यह भी कहा कि "संगठित धर्म का विगत काल में चाहे कोई भी स्वरूप रहा हो परन्तु आज यह बिल्कुल निरर्थक है।" जब कभी विभिन्न धर्मों के प्रतिनिधियों ने अपने निहित स्वार्थ के लिए स्थिति का फायदा उठाने का प्रयत्न किया और राजनीतिक जीवन में सक्रिय रूप से भाग लेना आरम्भ किया तो नेहरू जी ने कभी भी ऐसी सांप्रदायिक प्रवृत्तियों की कटु आलोचना करने में हिचकिचाहट नहीं की। स्वाधीन भारत में नेहरू जी ने सांप्रदायिक विरोधी तथा धर्म निरपेक्षता का रवैया अपनाया। उनका यह दृढ़ विश्वास था कि भारत के राजनीतिक जीवन, उसकी विचार-धारा तथा राज्य प्रशासन में धर्म का कोई प्रभाव नहीं होना चाहिये।

नेहरू जी को धर्मनिरपेक्षता की भावना से न्याय और समता पर आधारित एक धर्म-निरपेक्ष समाज की स्थापना की प्रेरणा मिली। परन्तु हमारे जैसे देश में जिसमें कई धर्म और जातियां हैं, धर्मनिरपेक्षता, राष्ट्रीय एकता को मजबूत बनाकर ही लाई जा सकती है। नेहरू जी ने अपना सारा जीवन हमारे समाज में विभिन्न समूहों को निकट लाने में तथा राष्ट्र के प्रति निष्ठा लाने में बिताया। उन्होंने सदैव सांप्रदायिकता और संकीर्णता को भारत की एकता तथा लोकतांत्रिक ढांचे के लिए खतरनाक समझा।

सार्वभौम व्यक्तित्व वाले जवाहरलाल कभी भी किसी भी प्रकार की कट्टरता व अंधविश्वास चाहे वह धर्म का हो या जाति अथवा भाषा का हो, सहन नहीं कर सकते

थे। मानवमात्र में उनका स्वतः पूर्ण विश्वास था जिसका परिचय उनके सम्पर्क में आने वाले किसी भी व्यक्ति को तत्काल प्राप्त होता था। उनके नेतृत्व में भारत के सभी भागों के लोग अपने आपको भारतीय कहलाने में गौरव अनुभव करते थे। उन्होंने व्यक्ति के धर्म स्वातंत्र्य तथा संस्कृति के अधिकार के महत्व को स्वयं पूरी तरह समझते हुए उसके लिए आवाज बुलन्द की लेकिन उनका स्पष्ट विचार था कि इससे किसी भी व्यक्ति को दूसरे किसी धर्म या पन्थ में निष्ठा रखने वाले व्यक्तियों के प्रति कट्टरता या पूर्वाग्रह का रुख अपनाने का अधिकार प्राप्त नहीं हो जाता। धार्मिक एवं सैद्धांतिक मामलों में अति संवेदनशीलता के प्रति परिवर्जना के बावजूद उनकी तर्कप्रवीण बुद्धि ने ऐसे बोध एवं मूल्यों को विकसित किया था जोकि उस संस्कृति एवं सभ्यता में अनुप्राणित थे जो केवल भारतीय थी।

प्रभुता सम्पन्न देश के रूप में भारत के अल्पकालिक इतिहास के किसी भी दूसरे पहलू पर नेहरू जी का प्रभाव इतना अधिक नहीं पड़ा जितना कि भारत की विदेश नीति पर। वे स्वतंत्र भारत की विदेश नीति के अनन्य नियामक थे। जैसाकि माइकेल ब्रेकर ने उनके मर्मज्ञतापूर्ण राजनीतिक जीवनचरित में कहा है, वे अपने देश की विदेश नीति के प्रणेता, सूत्रधार एवं व्याख्याता थे। उक्त जीवनचरित में लेखक ने यह भी कहा है कि "किसी भी अन्य देश में किसी भी एक व्यक्ति का विदेश नीति पर इतना अधिक प्रभुत्व नहीं रहा जितना कि भारत में भारत की विदेश नीति पर नेहरू का।"

1956 के समाप्त होने तक नेहरूजी को एक ऐसे व्यक्ति के रूप में मान्यता मिल चुकी थी जिनकी "हार्पर्स मैगजीन" के शब्दों में विश्व पर ऐसी छाप पड़ी कि "चर्चिल स्टालिन-रूजवेल्ट" युग की समाप्ति के बाद विश्व राजनीति के मंच पर उनके व्यक्तित्व ने सर्वाधिक ध्यान आकर्षित किया। "न्यूयार्क पोस्ट" में एक लेखक ने उनका "समकालीन इतिहास की सर्वाधिक देदीप्यमान विभूति" के रूप में उल्लेख किया और "शिकागो डेली ट्रिब्यून" ने अपने पाठकों को बताया कि "वह जब तक चाहेंगे, भारत का नेतृत्व करते रहेंगे चाहे, भला हो या बुरा—और जब तक वह जीवित हैं, उनके विचार विश्व परिषदों में सुने जाते रहेंगे—चाहे भला हो या बुरा।" "न्यूयार्क टाइम्स" ने उन्हें विश्व के अत्यंत महत्वपूर्ण राजनीतिज्ञ और विश्व के निर्विवाद शासक के रूप में मान्यता दी तथा कहा कि संभवतः वह एकमात्र ऐसे व्यक्ति हैं जिन्होंने प्रेम के द्वारा शासन किया न कि भय दिखा कर। नेहरू जी की प्रतिष्ठा को मुख्य रूप से इसलिए स्वीकार किया गया कि उनकी विदेश नीति ने शक्ति और तर्कशीलता प्रदान की। पदभार ग्रहण करते समय उन्होंने यह स्पष्ट कर दिया था कि भारत, विश्व में न केवल इसलिए सक्रिय रूप से भाग लेगा और पीछे नहीं हटेगा कि वह भारत द्वारा निभाई गई भूमिका को समझते हैं अपितु उनके दृष्टिकोण में यह नीति भारत द्वारा हाल में प्राप्त की गई स्वाधीनता की रक्षा करने का साधन भी थी।

विदेश नीति और अंतर्राष्ट्रीय संबंधों के बारे में नेहरू जी की विचारधारा तथा उनके द्वारा व्यक्त किये गये विचार भारत की राजनीतिक संस्कृति का अंग बन गये हैं और कम से कम कुछ समय के लिए भारत में कोई भी सरकार उनसे हटकर कार्य नहीं कर सकती है।

अंतर्राष्ट्रीय राजनीति के बारे में नेहरू जी के अनेकों विचारों में एक स्पष्ट आदर्शवादी स्वरूप प्रतिबिम्बित होता था। उन्होंने अक्सर इतिहास के प्रबुद्ध छात्र के रूप में और एक स्वप्नद्रष्टा के रूप में अपने विचार व्यक्त किये थे।

नेहरू जी की सबसे महान उपलब्धि यह रही है कि उन्होंने आर्थिक रूप से निर्धन और सैनिक दृष्टि से कमजोर भारत को अंतर्राष्ट्रीय राजनीति में महत्वपूर्ण स्थान दिलाया। अंतर्राष्ट्रीय स्थिति की अनेकों प्रमुख घटनाओं के कारण भारत इस भूमिका को सहज निभा सका और नेहरू जी में अंतर्राष्ट्रीय स्थिति की जटिलताओं को समझने की बौद्धिक क्षमता थी तथा उन्होंने उनसे फायदा उठाने और भारत के राष्ट्रीय हितों को अग्रसर करने एवं भारत के नैतिक प्रभाव को बढ़ाने में अद्वितीय राजनयिक कौशल का परिचय दिया।

भारत की विदेश नीति के बुनियादी लक्ष्य निर्धारित करते समय तथा इसके निर्माणकाल में इसे व्यावहारिक स्वरूप प्रदान करने में नेहरू जी का प्रमुख उद्देश्य राष्ट्रीय सहमति कायम करना था। वह इस बात को पूरी तरह समझते थे कि 1946-47 की राष्ट्रीय तथा अंतर्राष्ट्रीय राजनीति के संदर्भ में भारत जैसे नव स्वतंत्र देश की सरकार आंतरिक तथा विदेश नीति को एक दूसरे से पूरी तरह पृथक नहीं रख सकती थी। यह स्पष्ट है कि विदेश नीति के संबंध में सरकार के बजाय भारतीय जनमत का अनुगमन किया गया। परन्तु नेहरू जी ने आरम्भ से ही जनभावना के विरुद्ध चलने का कभी प्रयास नहीं किया। मार्च 1949 में ही इस बात को स्पष्ट करते हुए कि भारत राष्ट्रों के किसी भी गुट से नहीं बंध सकता है, नेहरू जी ने कहा था, "हमारी ओर से अर्थात् उस समय की सरकार की ओर से किसी भी एक दिशा में अत्यधिक झुकाव की कोई भी कोशिश हमारे देश के लिए कठिनाइयां पैदा कर सकती है। इससे आक्रोश पैदा होगा और यह न तो हमारे लिए और न ही किसी अन्य देश के लिए किसी भी रूप में सहायक होगी।"

जब भारत स्वतंत्र हुआ, तो भारत के राजनीतिक रूप से जागरूक अधिकांश लोगों ने पश्चिमी ताकतों को शक की निगाह से देखा क्योंकि उनका दृष्टिकोण स्वतंत्रता के लिए किए गए उनके संघर्ष तथा उसके प्रति इन ताकतों के रवैये के बारे में उनकी धारणाओं से प्रभावित था।

इस प्रकार भारत का पश्चिमी देशों से गठजोड़ न करने का निर्णय, भारतीय जनता की इस इच्छा से जुड़ा था कि वे अपनी स्वतंत्रता की रक्षा करें तथा स्वतंत्रता के लिए संघर्षरत अन्य देशों का प्रबल समर्थन करें।

बहुत से एशियाई और अफ्रीकी देशों के अनुभवों से नेहरू जी के विचारों की पुष्टि हुई। जब भी किसी सरकार ने किसी एक दिशा में बहुत अधिक झुकने की कोशिश की तो अस्थिरता उत्पन्न हुई जो अंशतः देश के भीतर दृढ़निश्चयी और सुसंगठित वर्ग के लोगों द्वारा इसकी वैधानिकता को चुनौती दिए जाने के कारण तथा अंशतः किसी विदेशी ताकत जिसने देश के भीतर घुसकर सरकार को किसी एक गुट में शामिल करने के प्रयत्न किए, पर निर्भरता के कारण हुई।

नेहरू जी ही प्रथम एशियाई राजनेता थे, जिन्होंने एक अल्पविकसित और नवस्वतंत्र देश की आंतरिक राजनीति और विदेश नीति के बीच के परस्पर संबंध को समझा।

स्वतंत्रता संग्राम के बाद समाजवाद की ओर अग्रसर होने के लिए कृतसंकल्प विश्व के सबसे बड़े लोकतांत्रिक गणराज्य को विकास की ओर ले जाने के लिए जवाहरलाल को भारत के प्रथम प्रधानमंत्री की बागडोर संभालने तथा राष्ट्र को दिशा देने के लिए आमंत्रित किया गया। जवाहरलाल ने अपने व्यक्तित्व एवं सामाजिक जीवन में विकास प्रक्रिया में परम्पराओं तथा आधुनिकता के मध्य पारस्परिक सूझबूझ और सहिष्णुता तथा पूर्व और पश्चिम की प्रतिद्वंद्वी ताकतों के बीच भाईचारे और मैत्री की स्थापना की। अंतर्राष्ट्रीय संबंधों के प्रति उनका पंचशील सिद्धांत (गुटनिरपेक्षता) का उतना ही महत्व था जितना कि देश के प्रशासन में जनता के प्रतिनिधित्व के रूप में पंचायती राज का। प्रशासन में उनकी सबसे बड़ी देन विभाजन के बाद देश की नैया को अत्यंत कठिन परिस्थितियों में आगे ले जाना और योजनाबद्ध तरीके से देश को विकास की ओर अग्रसर करना था।

1946 में जब नेहरू और उनके सहयोगियों ने सत्ता सम्भाली तो उन्हें ऐसा प्रशासनिक तंत्र और ढांचा विरासत में मिला था जो एक बिल्कुल ही भिन्न उद्देश्य के लिए बनाया गया था। उस समय एक निरंकुश प्रशासनतंत्र को एक ऐसी लोकतंत्रात्मक व्यवस्था में परिणत करना बहुत ही कठिन कार्य था जो भारतवासियों की आवश्यकताओं और जरूरतों के अनुरूप हो तथा जिससे उनकी आशाओं और आकाक्षाओं की पूर्ति हो सके। नेहरू जी चाहते थे कि कानून और व्यवस्था संबंधी समस्याओं की बजाय सरकार को सामाजिक आर्थिक समस्याओं और कार्यक्रमों को अधिक प्राथमिकता देनी चाहिए।

नेहरू जी के समक्ष उस समय जो समस्या थी वह थी अंग्रेजों से विरासत में मिला प्रशासनिक तंत्र और सेवाएं। अपने आकर्षक व्यक्तित्व के कारण एवं राष्ट्र के एक महान नेता होने के नाते उन्होंने प्रशासनिक कर्मचारी वर्ग की निष्ठा सहज ही प्राप्त कर ली और इस ढांचे को तोड़े बिना इसे बदली हुई जरूरतों और परिस्थितियों के अनुरूप ढालने का प्रयास किया।

प्रशासन से उनका अभिप्राय समस्याओं के प्रति मानवीय दृष्टिकोण अपनाना था। उन्होंने प्रशासन को आम आदमी के अधिक से अधिक निकट लाने का प्रयास किया।

और वह निचले स्तर पर प्रशासन व्यवस्था में काफी रुचि रखते थे। यही कारण था कि उन्होंने सामुदायिक विकास कार्यक्रमों और पंचायती राज पर बहुत जोर दिया।

नेहरू जी ने इस बात पर जोर दिया कि प्रशासनिक कर्मचारी उस आम जनता के सामान्य कल्याण और उत्थान के प्रति कर्तव्यनिष्ठ बनें जिसकी सेवा की उनसे अपेक्षा की जाती है। उनके विचार में, "एक प्रशासक को कुछ उद्देश्य सामने रखकर, विशेषकर एक गतिशील समाज में काम करना चाहिए।"

नेहरू जी एक महान लेखक थे। उनकी आत्मकथा एक श्रेष्ठ कृति है। उन्होंने जो भी लिखा उस पर वह अपने व्यक्तित्व का प्रभाव एवं छाप छोड़ गये। तथापि लेखक नेहरू एक असीम लोकप्रिय एवं श्रद्धेय राजनीतिक नेता नेहरू में विलीन हो जाते हैं। वस्तुतः नेहरू के जीवन और उनकी कृति के कुछ आलोचकों का मत है कि उनके कठिन और तूफानी राजनीतिक जीवन ने उन्हें एक ऐसा ठोस आधार प्रदान किया जिस पर वह अपनी साहित्यिक प्रतिभा की इमारत खड़ी करने में सफल हो सकते हैं। उनकी चार प्रमुख पुस्तकें : "एन ऑटोबाइग्राफी", "ग्लिम्पसेज आफ वर्ल्ड हिस्ट्री", "दि यूनिटी आफ इंडिया", और "दि डिसकवरी आफ इंडिया" अंग्रेजी की श्रेष्ठ पुस्तकें मानी जाती हैं।

नेहरू उच्चकोटि के प्रारूप लेखक थे। उन्होंने कांग्रेस के लिए अनेक ऐतिहासिक संकल्पों का प्रारूप तैयार किया था। आजादी की प्रतिज्ञा का प्रारूप उनमें से एक था। इसे उन्होंने अपने आनन्द भवन के अध्ययन कक्ष में लिखा था। जब यह पूरा हो गया तो उन्होंने अपनी पुत्री से इसे जोर से पढ़कर सुनाने को कहा क्योंकि वह जानना चाहते थे कि वह पढ़ने में कैसा लगता है। उसने इसे पढ़कर सुनाया। नेहरू जी ने कहा, "इन्दु, तुमने अच्छा सुनाया। किन्तु क्या तुम महसूस करती हो कि इसे जोर से पढ़ने से तुमने भी प्रतिज्ञा कर ली है।"

ऐसा था दिमाग, दिल और ऐसी थी भावना, उस महान व्यक्ति की, जो कई दशकों तक भारत की राजनीति का स्तम्भ बना रहा और उस स्वतंत्र भारत की सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक संस्थाओं पर अपनी अमिट छाप छोड़ गया जिनका वह कई प्रकार से निर्माण करना चाहता था और जिनमें निस्संदेह उसका हर प्रकार से महान योगदान रहा।

6

वसंत साठे

जवाहरलाल नेहरू और भारत में योजना

हम में से अधिकांश को, जो महान स्वप्नद्रष्टा तथा भारत के निर्माता जवाहरलाल नेहरू के विचारों, जीवन और दर्शन में बचपन से ही पले तथा पनपे तथा जिनसे हमें जीवन के हर क्षेत्र में प्रेरणा मिली और आज भी प्रेरणा मिलती है, उन सब बातों का स्मरण होगा जो वह हमें कहते तथा सिखाते थे। तथाकथित आम तथा निरक्षर जनता की जनसभाओं में जवाहरलाल नेहरू को उन्हें इस प्रकार सम्बोधित करते हुए जैसे कि वह कक्षा में विद्यार्थियों को पढ़ा रहे हों तथा उन्हें समाजवाद क्या है, विज्ञान क्या है, प्रौद्योगिकी क्या है, अन्तर्राष्ट्रीय संबंध क्या हैं, इन सब बातों के बारे में कैसे बताते थे, हम याद कर सकते हैं। कभी-कभी उनके सहकर्मी उन्हें यह कहते हुए डांटा करते थे कि आप उन्हें इन सब बातों के बारे में बताने में इतना समय क्यों नष्ट कर रहे हैं ? क्या आप समझते हैं कि वे इन बातों को समझते हैं ? किन्तु पंडित जी कहा करते थे, "नहीं, हमारे लोग भले ही अशिक्षित हों, किन्तु उनमें क्षमता है और वे शिक्षित होने के व्यापक अर्थ में अशिक्षित नहीं हैं और हमारे लोगों की अति आधुनिक विचारों को समझने की क्षमता है।" यह सत्य सिद्ध हो चुका है। अतः सबसे अच्छी बात यह होगी कि आज हम उनके कुछ विचारों को याद करें।

1955 में ऐतिहासिक आवडी अधिवेशन में कांग्रेस दल के अध्यक्ष के पद से निवृत्त होने पर कल्याणकारी राज्य के सिद्धांत के बारे में नेहरू का अभिभाषण अत्यन्त महत्वपूर्ण एवं ऐतिहासिक अभिभाषण है। आवडी अधिवेशन में कल्याणकारी राज्य के निर्माण तथा समाजवादी समाज की स्थापना पर विशेष जोर दिया गया। उन्होंने अपने भाषण में जो विचार व्यक्त किये वे आज भी संगत हैं।

उन्होंने कहा:

हमारा राष्ट्रीय उद्देश्य एक कल्याणकारी राज्य तथा समाजवादी अर्थव्यवस्था कायम करना है। इनमें से एक की भी प्राप्ति राष्ट्रीय आय में पर्याप्त वृद्धि किये बिना नहीं हो सकती है और न यह उत्पादन तथा सेवाओं और पूर्ण रोजगार में वृद्धि किये

बिना सम्भव है। समाजवादी एवं कल्याणकारी राज्य की प्राप्ति के लिए यह काफी नहीं है कि हम कोई संकल्प पारित करें अथवा कानून ही बनायें या वर्तमान उद्योगों के राष्ट्रीयकरण की ही बात सोचें। हमें उत्पादन बढ़ाना है और हमारा उद्देश्य पर्याप्तता की अर्थव्यवस्था बनाने का होना चाहिये। हमें यह सुनिश्चित करना है कि समान वितरण हो और हम व्यक्तियों एवं ग्रुपों की विशेषाधिकार की स्थिति का समर्थन न करें। अतः पर्याप्त उत्पादन तथा रोजगार की दिशा में उठाये गये कदमों का समर्थन किया जाना है बशर्ते कि हम इससे समाजवादी समाज के अपने अन्तिम उद्देश्य से दूर न चले जायें। यदि हम पर्याप्त उत्पादन और रोजगार नहीं पैदा कर सकते तो न तो कल्याण होगा ना ही समाजवाद होगा भले ही हम कुछ उद्योगों का राष्ट्रीयकरण करें अथवा बड़े कानून तथा डिक्रियां पास करें। यदि हम व्यापक उत्पादन का लक्ष्य रखें तो यह केवल तभी सम्भव है जब यह उत्पादन जनता के लिए हो और जनता के पास इसके संरक्षण के लिए क्रय शक्ति हो। इस लक्ष्य की प्राप्ति के लिए हमें अपने आर्थिक तथा राष्ट्रीय जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में कुछ गतिशीलता लानी होगी। इसकी परीक्षा हमेशा परिणामों से की जानी चाहिये न कि किसी सैद्धांतिक सूत्र से की जानी चाहिये।

इसके अतिरिक्त उन्होंने यह भी कहा :

किन्तु यदि कांग्रेस को, अपना वास्तविक कार्य प्रभावी ढंग एवं कुशलता से करना है तो उसे न केवल अपने आदर्शों के प्रति दृढ़ होना चाहिए किन्तु व्यवहार में उच्च नैतिक स्तर बनाये रखना होगा। मुझे यह देख कर बहुत दुःख हुआ है कि वे स्तर गिर गये हैं और बहुत से व्यक्ति जो अपने आप को कांग्रेसी कहते हैं, एक ऐसा व्यवहार करने में नहीं हिचकिचाये हैं जिससे वे तथा कांग्रेस बदनाम हुई है। यदि हम अपना उच्च स्तर नहीं बनाये रख पाये हैं तो हम अपने कर्तव्य को खो बैठे हैं और जो चिंगारी हमारे मार्ग को प्रकाशित करती थी, वह बुझ गई है। कांग्रेस ने अपनी शक्ति केवल संख्या से नहीं मापी है। कांग्रेस की शक्ति उसकी सदस्यता की गुणवत्ता तथा उसने जो सेवा की है, तथा जनता ने उसे जो स्नेह दिया है उससे बढ़ी है। यह सबसे महत्वपूर्ण बात है कि प्रत्येक कांग्रेसी को अपना दिल टटोलना चाहिये और इस प्रश्न का उत्तर ढूंढ़ना चाहिए कि कहां तक पुराने स्तर के अनुकूल काम किया है। छोटे लोग महान आदर्शों के लिए काम नहीं कर सकते।

उनका एक-एक शब्द हमारे कानों में इतने स्पष्ट रूप से गूंजता है कि जैसे कि वह आज ही कहा गया है। उन्होंने इसी भाषण में यह भी कहा :

मैं महसूस करता हूं कि हम वास्तव में अपने उद्देश्यों की प्राप्ति से बहुत दूर हैं। प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष दोनों प्रकार की भारी बेरोजगारी है। हमारे स्तर नीचे हैं और हम अपने सभी देशवासियों को जीवन की आवश्यक वस्तुएं भी नहीं दे सकते हैं।

किन्तु हमने जो प्रगति की है तथा अपनी जो शक्ति का विकास किया है उससे हम में भविष्य की आशा बंधती हैं।

यदि आज पंडित जी जीवित होते और यही शब्द कहते तो ये शब्द स्वतंत्रता प्राप्ति के 40 वर्ष बाद तथा योजना के लगभग 35 वर्ष बाद भी सत्य होते और आज भी समान रूप से लागू होते। अतः जैसाकि उन्होंने कहा हमारी उपलब्धियों से अवश्य ही हममें आशा बंधती है। वास्तव में जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में हमने जो प्रगति की है उस पर हमें गर्व है। उदाहरण के लिए बिजली के क्षेत्र में, जिस पर उन्होंने जोर दिया था, केवल 1300 मे.वा. की स्थापित क्षमता से 52,000 मे.वा. की स्थापित क्षमता की प्राप्ति एक आश्चर्यजनक उपलब्धि है। 1947 में $5^1/_2$ लाख गांवों में से केवल 3000 गांव विद्युतीकृत थे जब कि आज 4 लाख से भी अधिक गांव विद्युतीकृत किये गये हैं। उर्वरकों के केवल 60,000 टन की खपत से 80 लाख टन तक पहुंचना किसी भी देश के लिए किसी भी दृष्टि से उल्लेखनीय उपलब्धि है।

इस तथ्य के बावजूद कि जनसंख्या 36 करोड़ से बढ़कर आज 80 करोड़ हो गई है और आयु में वृद्धि 36 से 56 हुई है, इससे यह सिद्ध होता है कि जनता को बेहतर चिकित्सा सुविधायें, पोषाहार और भोजन प्राप्त हैं और उनकी आयु में वृद्धि हुई है। अतः यह सत्य है कि हमारी योजना की प्रक्रिया ने उल्लेखनीय प्रगति की है। किन्तु जैसा कि पंडित जी ने स्वयं कहा है कि हमें पूर्ण व्याप्ति से यह विचार करना है और इस बात का स्पष्ट और स्वतंत्र विश्लेषण करना है कि क्या हम इससे भी अधिक प्रगति कर सकते थे और क्या हमने कहीं गलती की है या हमने वास्तव में कोई गलती की है। यदि हम इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि हमने कहीं गलती नहीं की है और सब कुछ ठीक है तथा सब कुछ योजना के अनुसार हुआ है तो हम चैन की नींद सो सकते हैं और कार्यक्रम को अपने अनुसार चलने देंगे।

इस सन्दर्भ में 1950 के दशक में महान तूफानी नेता डा. राम मनोहर लोहिया द्वारा संसद में उठाई गई चार आना वादविवाद को याद करें। पंडित जी ने भी उनकी बात को टाला नहीं। किन्तु उन्होंने कहा, "मुझे वास्तव में आश्चर्य है। यदि ऐसी बात है तो सारा विकास कहां गया? हमें इसकी जांच करनी चाहिये।" अतः पंडित जी ने बेहिसाब वाले धन के इस समस्त प्रश्न की जांच करने के लिए महालानोबिस समिति नियुक्त की। हम जानते हैं कि आज बेहिसाब वाला धन वस्तुतः एक समानान्तर अर्थव्यवस्था बन गई है जिसमें प्रति वर्ष 40,000 करोड़ रुपया पैदा होता है और जिसका कोई हिसाब-किताब नहीं है और जिस पर कर अपवंचन होता है तथा वह सरकारी राजस्व में नहीं आता है। यह राशि वार्षिक बजट में योजना व्यय से दुगुनी राशि है। इससे पंडित जी को निश्चित रूप से धक्का लगा होगा और वह यह जानना चाहते होंगे कि यह कैसे हुआ।

पंडित जी का स्वभाव ऐसा था कि जब चीजें नियंत्रण से बाहर हो जाती थीं तथा जब कोई उचित उत्तर नहीं मिलता था तो वह बहुत बेचैन हो जाते थे क्योंकि वह सच्चाई जानना चाहते थे और उत्तर चाहते थे। वह अपनी बात की समीक्षा भी करना चाहते थे। वह बहुत साहसी व्यक्ति थे और यही कारण है कि जब योजना की प्रक्रिया आरम्भ हुई तो पहली बात उन्होंने यह की कि स्वयं योजना आयोग में एक संदर्श योजना प्रभाग बनाया गया। योजना में चीजों की पहले कल्पना की जाती है और स्वयं योजना का अर्थ प्रत्यक्ष ज्ञान है। जब तक आप परिकल्पना नहीं करते तब तक योजना नहीं बन सकती है। यहां तक कि मकान निर्माता भी एक संदर्श योजना के रूप में एक रूपरेखा तैयार करता है। यदि संदर्श योजना न हो तो योजना एक निरंतर योजना का रूप ले लेगी जैसा कि हो चुका है। केवल जीवन निर्वाह करना ही योजना नहीं है। अतः योजना बनाने का अर्थ कल्पना करना है।

नेहरू ने पीताम्बर पंत जैसे महान संदर्श योजना बनाने वालों को इसमें शामिल किया किन्तु दुर्भाग्य से वह अधिक समय तक जीवित नहीं रहे। 1964 में मुझे उनसे भावी योजना पर चर्चा करने के बारे में मिलने का सौभाग्य मिला था क्योंकि हम बचपन से ही स्वप्नद्रष्टा रहे हैं और हम ऐसे भारत के बारे में स्वप्न देखते थे जो पिछले उपनिवेशवाद की कमी को पूरा करेगा और विश्व की बराबरी पर यथाशक्ति तेजी से आ सके। हम 20 साल और 40 साल बाद के भारत के बारे में सोच रहे थे और उन्होंने हमें संदर्श योजना के बारे में उनसे तैयार किया गया एक छोटा योजना पत्र दिया जिसके आधार पर 1965 में एक संदर्श योजना तैयार की गई। यह योजना रोजगार विकास तथा कल्याण, जिसमें बच्चों के लिए भी कार्यक्रम शामिल हैं, के बारे में थी और योजना आयोग को एक नियमित संदर्श योजना बनानी थी। श्री पीताम्बर पंत तथा श्री वैद्यानाथन द्वारा तैयार की गई उस संदर्श योजना में एक रूप रेखा बनाई गई और हम देखें कि बुनियादी क्षेत्रों के लिए उसमें क्या प्रस्ताव थे। यदि हम नेहरू के बारे में सोच रहे हैं तो हमें यह जानना चाहिये कि उनके स्वप्न तथा कल्पनाएं क्या थीं तथा उनकी क्या योजनाएं थीं और कहां तक वे सत्य साबित हुई हैं और यदि हम पीछे रहे हैं तो हमें विचार करना चाहिये कि ऐसा क्यों हुआ है। नीरसता से बात नहीं बनेगी और यदि हमें ऐसा ही करना है तो हम पंडित नेहरू के प्रति न्याय नहीं कर पायेंगे।

अतः मैं बताऊंगा कि आज हम कहां हैं और भारत के प्रमुख मार्मिक क्षेत्रों में हमारी क्या योजनाएं थीं। जहां तक मिल और हथकरघा दोनों के सूती कपड़े का संबंध है, 1965-66 में यह 8300 मिलियन मीटर था। 1975-76 में 16,500 मिलियन मीटर का अनुमान था। 1985-86 में 37,000 मिलियन मीटर का अनुमान था किन्तु उत्पादन केवल 9,178 मिलियन मीटर का था जो 1975-76 के अनुमान के आधे से भी कम था।

दूसरा बहुत महत्वपूर्ण और बुनियादी क्षेत्र नाइट्रोजन उर्वरक का था। सिंचाई के साथ एक टन उर्वरक से नौ टन अनाज पैदा होता है। यही कारण है कि इस मद को इतना महत्व दिया गया। 1965-66 में हमारा नाइट्रोजन उर्वरक का 3.25 लाख टन का उत्पादन बहुत ही कम स्तर पर था। 1975-76 में अनुमान 40 लाख टन का था और 1985-86 में 90 लाख टन का था और 1985-86 में हम 43.28 लाख टन पर अटक गये अर्थात कुल मिलाकर उपलब्धि 1975-76 के बराबर रही।

जहां तक इस्पात का संबंध है, जो हमारी अर्थव्यवस्था का अन्य प्रमुख क्षेत्र है, इस्पात की सिल्लियों का 1965-66 में उत्पादन 6.5 मिलियन टन था, 1975-76 में 30 मिलियन टन और 1985-86 में 60 मिलियन टन था। उत्पादन में स्थायित्व आया और आज 1988 में भी हम इस्पात सिल्लियों के 12.15 मिलियन टन के उत्पादन पर अटके हैं।

जहां तक सीमेंट का, जो एक दूसरा महत्वपूर्ण क्षेत्र है, संबंध है, 1975-76 में उत्पादन 40 मिलियन टन और 1985-86 में 75 मिलियन टन होना चाहिये था। 1985-86 में हमारा उत्पादन 32 मिलियन टन था अर्थात् 1975-76 के अनुमान से भी कम था। जहां तक कोयले का संबंध है, 1975-76 में 170 मिलियन टन और 1985-86 में 320 मिलियन टन होना चाहिये था। किन्तु 1985-86 में उत्पादन केवल 162.3 मिलियन टन हुआ। बिजली के उत्पादन में यद्यपि हम 52,000 मे.वा. की क्षमता तक पहुंच गये हैं किन्तु 1985-86 में 80,000 मे.वा. होना चाहिये था। यह स्थिति है। यहां इस बात पर जोर दिया जा रहा है कि अनेक अप्रत्याशित घटनाएं घटी हैं। अन्य कठिनाइयां भी हुई हैं। इस सभी कारणों से प्रत्याशित विकास में बाधा पड़ी है। किन्तु हम इतने भारी अन्तर से अनुमानों से पीछे कैसे रहे हैं। इसकी समीक्षा करने की आवश्यकता है। जिन लोगों ने संदर्श योजना तैयार की है उनके अनुसार उन्होंने 7 प्रतिशत विकास दर का अनुमान किया था।

जहां तक जनसंख्या का संबंध है, ऐसा नहीं है कि हम लक्ष्य से बहुत दूर चले गये हैं। उनका अनुमान था कि 1985-86 में जनसंख्या 75 करोड़ हो जायेगी। किन्तु जनसंख्या में 5 करोड़ की वृद्धि हुई है। क्या हम इस बारे में अपनी असफलता का स्पष्टीकरण दे सकते हैं? अन्य देशों के साथ तुलना करना सही नहीं है किन्तु हम उन देशों की बराबरी पर आना चाहते हैं जो हमारी जैसी स्थिति में हैं। साथ ही "बराबरी पर आने" का अर्थ क्या है, यदि उनके उत्पादन के बराबर उत्पादन नहीं है? उत्कृष्टता शब्द का अर्थ स्वयं उत्कृष्ट होना है। जब तक हम दूसरे के स्तर से ऊपर नहीं हो जाते, चाहे यह दौड़ में या किसी अन्य क्षेत्र में हो, तो हम प्रतियोगिता कैसे कर सकते हैं? आप खेल-कूद अथवा किसी अन्य क्षेत्र में अधिक अच्छा कैसे कर सकते हैं? विश्व के विकसित देशों की बराबरी पर आने का क्या सिद्धांत है, यही पंडित जवाहरलाल

नेहरू चाहते थे। अतः आज हमें इस बात का आत्मविश्लेषण करना चाहिए। आज स्वतंत्रता प्राप्ति के 40 वें वर्ष तथा पंडित जवाहर लाल नेहरू की जन्मशती के अवसर पर उन संसद सदस्यों को जो नेहरू के दर्शन में विश्वास करते हैं चाहे वे किसी भी दल से संबद्ध हों अथवा उनमें कोई अन्य मतभेद हों, तथा देश के उन बुद्धिजीवियों को, जो पंडित जी के स्वप्नों को साकार करने का विश्वास दिलाते हैं, बैठकर यह प्रश्न पूछना चाहिये : "हमने कहां गलती की है ?" तथ्य यह है कि हम आत्मतुष्ट हो गये हैं। हम समझते थे कि हमने मिश्रित अर्थव्यवस्था के सिद्धांत को अपना लिया है और अब हमें विश्व की दोनों अर्थव्यवस्थाओं की अच्छी से अच्छी बातों को लेना है। विकास में अग्रणी होने तथा समाजवाद की प्राप्ति के लिए और उच्च उपलब्धियां प्राप्त करने के लिए हमने सरकारी क्षेत्र के सिद्धांत को अपनाया। किन्तु इस क्षेत्र में हमने पूंजीवाद के सिद्धांत और अफसरशाही के स्वरूप का प्रवेश किया। सामाजिक उद्देश्यों के नाम पर हमने सरकारी क्षेत्र के एककों को उनमें दस गुना अधिक कर्मचारियों की नियुक्ति कर तथा यह कहते हुए कि यह सामाजिक उद्देश्य है, अलाभप्रद बनाया। हमने कभी परवाह नहीं की कि पंडित जी क्या चाहते थे। पंडित जी चाहते थे कि सरकारी क्षेत्र एक कुशल क्षेत्र होना चाहिये जिसमें बुनियादी क्षेत्र की आवश्यकताओं के अनुरूप कुशलता से तथा लाभप्रद रूप से उत्पादन हो ताकि रोजगार पैदा हो सके। यदि आज हमें केवल इस्पात का ही उत्पादन करना होता, जैसाकि अनुमान था, तो हम देश में दो करोड़ से भी अधिक लोगों को रोजगार दे सकते थे क्योंकि दस लाख टन इस्पात के उत्पादन में ढाई लाख लोगों को रोजगार मिलता है। जब कोई चीन की बात करता है तो लोग उसे पसंद नहीं करते। वे कहते हैं : "वह साम्यवादी देश है।" इसका अर्थ यह है कि लोकतंत्र में शिथिलता, पिछड़ापन होना चाहिये और इसमें विकास नहीं होना चाहिए। चीन इस योजना के अन्त तक 90 मिलियन टन इस्पात के लक्ष्य को प्राप्त करने वाला है। क्या हम चीन के साथ उसके 16 कि.ग्रा. प्रति व्यक्ति इस्पात की उपलब्धता के साथ प्रतियोगिता कर सकते हैं ? ग्रामीण क्षेत्रों में यह 3 कि. ग्रा. भी नहीं हैं। ये हमारी अपनी संदर्श योजना के आंकड़े हैं। हमें, जैसाकि पंडित जी चाहते थे, आत्मविश्लेषण करना चाहिये। यहां तक कि कांग्रेस में और कांग्रेस से बाहर जैसा कि उन्होंने कहा : "हमें अपने दिलों को टटोलना चाहिये और अपने प्रति ईमानदार होना चाहिये।"

अन्त में मैं 1929 में रावी के किनारे लाहौर में, जब उन्होंने मोतीलाल जी से अध्यक्ष का पद भार सम्भाला, उनके भाषण को, जिसमें ऐतिहासिक घोषणा की गई, उद्धृत कर सकता हूं। उनके ऐतिहासिक भाषण में, उस प्रसिद्ध वाक्य में जिसे प्रायः उद्धृत किया जाता है, उन्होंने कहा :

> कांग्रेस देश में किसी छोटे अल्पसमुदाय का प्रतिनिधित्व नहीं करती है, यद्यपि कई इतने निर्बल हो सकते हैं कि वे इसमें शामिल न हो सकें या इसके लिए काम न

कर सकें, किन्तु उन्होंने इससे यह आशा एवं अभिलाषा की है कि यह उन्हें मुक्ति प्रदान करेगी। कलकत्ता के संकल्प के बाद देश ने इस दिन की बड़ी आशाओं से प्रतीक्षा की है जब कांग्रेस की बैठक होगी। हम में से कोई यह नहीं कह सकता कि हम क्या और कब प्राप्त करेंगे। हम सफलता को कमान नहीं कर सकते किन्तु सफलता प्रायः उनके पास आती है जो साहसी हैं और प्रयत्न करते हैं। यह यदा-कदा ही डरपोकों के पास जाती है जो हमेशा परिणामों से डरते हैं। हम ऊंची चुनौतियों के लिए खेलते हैं और यदि हम बड़ी चीजों को प्राप्त करना चाहते हैं तो ये केवल बड़े खतरों से ही प्राप्त हो सकती हैं। चाहे हमें सफलता शीघ्र मिले अथवा देर से मिले, हमें अपने सिवाय कोई भी कठिन प्रयास तथा अपने देश के विस्तृत एवं शानदार इतिहास के एक आदर्श पृष्ठ को लिखने से रोक नहीं सकता है।

7

दिनेश सिंह

पंडित जवाहरलाल नेहरू की गुटनिरपेक्ष सम्बन्धी विदेश नीति

किसी राष्ट्र की विचारधारा, अथवा उसके कार्यों का सम्बन्ध बहुत कुछ उसके अतीत, उसकी संस्कृति, उसकी परम्पराओं और उसकी आस्था से जुड़ा हुआ होता है। भारत की स्थिति भी इससे भिन्न नहीं है। भारत इस मायने में सौभाग्यशाली रहा कि इस शताब्दी में देश में महान नेता हुए, जिन्होंने इसकी समृद्ध विरासत और सहस्त्रवर्षीय बुद्धिमत्ता से इसे सफलतापूर्वक दिशा प्रदान की। महात्मा गांधी का अहिंसा आन्दोलन भारत की मूल्यवान शांति परम्परा और शांतिपूर्ण ढंग से राजनीतिक परिवर्तन का एक उदाहरण है। उन्होंने राजनीतिक सम्बन्धों में सेना के तटस्थ रहने और इसके स्थान पर आपसी बातचीत और सहमति का रास्ता अपनाने का भारत को तथा विश्व को मार्ग दिखाया। उन्होंने मानव अधिकारों की सार्वभौमिकता और व्यक्तिगत प्रतिष्ठा, अत्याचार से मुक्त जीवन और समाज की स्थापना पर बल दिया। गुटनिरपेक्षता राष्ट्रों के बीच सम्बन्धों की इसी धारणा का विस्तार है। गुटनिरपेक्षता सैन्य शक्ति, जिसे साम्राज्य युग में प्रमाण चिन्ह समझा जाता था, पर आधारित राष्ट्रों के सम्बन्धों से मूल रूप से भिन्न है।

पंडित जवाहरलाल नेहरू ने महात्मा गांधी के मार्ग दर्शन को अपनाते हुए इस धारणा को एक ठोस रूप प्रदान किया और इसे राष्ट्रपति नासर, टीटो, सुकर्ण और एनक्रूमा के सहयोग से एक विश्वव्यापी आन्दोलन के रूप में आरम्भ किया।

> नेहरू ने कहा था कि "मूलतः हमने वही पुराना दृष्टिकोण अपनाया है जिसका महात्मा गांधी ने हमारा मार्गदर्शन किया था और हमें शांति और शांतिपूर्ण तरीकों को अपनाने के लिए शक्तिशाली बनाया है।"

गुटनिरपेक्ष आन्दोलन की अवधारणा केवल सैन्य शक्तियों अथवा शांति युद्ध का सामना करने के लिए ही नहीं की गई थी, बल्कि इसकी अवधारणा विश्व व्यवस्था में सभी क्षेत्रों अर्थात् राजनीतिक, सामाजिक और आर्थिक क्षेत्रों में व्याप्त असमानता में

---

4 अक्तूबर, 1960 को न्यूयार्क में संयुक्त राष्ट्र संवाददाता संघ में दिया गया वक्तव्य।

सुधार लाने के लिए एक विश्वव्यापी समानतावादी आन्दोलन के रूप में की गई थी। इसके अन्तर्गत छोटे और बड़े राष्ट्रों की प्रभुसत्ता और प्रत्येक मामले में उनकी समानता के आधार पर एक नई व्यवस्था की अवधारणा की गई थी। ऐसी व्यवस्था में उपनिवेशवाद, जातिवाद, आर्थिक उत्पीड़न आदि को कोई महत्व नहीं दिया गया था। इसे आपसी भेदभाव की अपेक्षा विश्वव्यापी सहयोग, और असमानता तथा निर्धनता हटा कर सारे विश्व में समृद्धि और उनकी भलाई की अवधारणा की गई थी। इस प्रकार गैर उपनिवेशवादिता, निरस्त्रीकरण और समानतावादी आर्थिक व्यवस्था, गुटनिरपेक्षता के अभिन्न अंग हैं। इसी के अनुरूप शांतिपूर्ण सहअस्तित्व के पांच सिद्धांत—पंचशील—जिसकी अवधारणा जवाहरलाल नेहरू ने की थी — जो राष्ट्रों के बीच सम्बन्धों के लिए मार्गदर्शी सिद्धान्त के रूप में उभरे। 7 सितम्बर, 1946 को अन्तरिम सरकार के प्रधान के रूप में एक प्रसारण में उन्होंने कहा :

> "हमारा यह विचार है कि जहां तक सम्भव हो, हम महाशक्तियों की गुटबन्दी, एक दूसरे के विरुद्ध पक्षबन्दी,से अपने को दूर रखें, जिसके फलस्वरूप पहले भी विश्व युद्ध हुए और जिसके कारण बड़े पैमाने पर पुनः विनाश हो सकता है।"

नेहरू की गुटनिरपेक्षता की कल्पना विश्व संदर्भ में मात्र आदर्शवाद की ही नहीं थी। इसमें सशक्त राष्ट्रीयता का भी समावेश था।

उन्होंने यह कल्पना की थी कि नया स्वतंत्र हुआ भारत, जोकि सैन्य शक्ति और आर्थिक दृष्टि से कमजोर होगा, यदि किसी एक महाशक्ति अथवा दूसरी महाशक्ति का अनुसरण करेगा तो वह अपनी स्वतंत्रता बनाये नहीं रख सकता, और यदि भारतवासी अपने भाग्य के स्वयं निर्माता नहीं होंगे तो कठिनता से प्राप्त स्वतंत्रता का कोई अर्थ नहीं रह जायेगा, जिसकी प्राप्ति के लिए लाखों लोगों ने बलिदान किया था। उन्होंने देखा था कि औद्योगिक और तकनीकी दृष्टि से विकसित बड़े और शक्तिशाली देश भी अपने गुट के नेताओं के सामने झुक जाते हैं। 8 मार्च, 1948 को संविधान सभा (विधायी) में बोलते हुए, उन्होंने कहा था कि :

> "किसी गुट में शामिल होने का अभिप्राय क्या है ? अन्ततः इसका केवल यही अभिप्राय है कि किसी प्रश्न विशेष पर आप अपना दृष्टिकोण न अपनायें, दूसरे पक्ष के दृष्टिकोण को सही मानें ताकि उसे खुश किया जा सके और उसका समर्थन प्राप्त किया जा सके। जहां तक मैं समझता हूं कि मेरे विचार से तो इसका केवल यही अर्थ निकलता है" .....

भारतवासियों ने इस प्रकार की स्वाधीनता प्राप्त करने के लिये संघर्ष नहीं किया था। उनकी राय में गुटनिरपेक्षता का अर्थ यह था कि भारत अपना निर्णय लेने में स्वतंत्र हो। इससे भारत गुणावगुणों की कसौटी पर विभिन्न मामलों की जाँच कर सकेगा। स्वतंत्र

रूप से निर्णय ले सकेगा और तनाम कम करने और शांति बनाये रखने में अपनी भूमिका निभा सकेगा। उनकी राय में भारत के लिये इसके सिवाय और कोई चारा नहीं था। भारत जैसे विशाल और संपन्न देश का आत्मनिर्भर होना आवश्यक है।

भारत के आर्थिक विकास के लिये भी शांति कायम रखना आवश्यक था। विरोध और संघर्ष के वातावरण में विदेशों से सहायता मिलने की संभावना बहुत ही कम थी, जब तक कि किसी न किसी गुट में सैन्य प्रयोजनों से संबद्ध स्वार्थ निहित न हो। इसके विपरीत, भारत को अपने औद्योगिक विकास के लिये ऋण और प्रौद्योगिकी अंतरण के रूप में आर्थिक सहायता प्राप्त करने की आवश्यकता थी। शांति कायम रखने का मसला इससे अलग नहीं था। यह मसला महाशक्तियों की होड़ से जुड़ा हुआ था। इसके अलावा जब मानव समुदाय के एक बड़े भाग में उपनिवेशी आधिपत्य हो तो सही अर्थों में शांति और अंतर्राष्ट्रीय सहयोग का वातावरण होना बहुत मुश्किल था। तत्पश्चात उपनिवेश की समाप्ति और गुट विहीन क्षेत्र का विस्तार हमारी स्वाधीनता और विकास का महत्वपूर्ण आधार था। जैसा कि नेहरू ने कहा था :

> "हमारा यह विश्वास है कि शांति और स्वतंत्रता अविभाज्य है और किसी देश को स्वतंत्रता प्रदान न किये जाने के कारण किसी अन्य देश की स्वतंत्रता को खतरा पैदा हो सकता है और इससे संघर्ष और युद्ध की स्थिति पैदा हो सकती है। विशेष रूप से यह हम चाहते हैं कि उपनिवेशी और आश्रित देशों और लोगों को मुक्त किया जाए और सभी जाति के लोगों को सिद्धान्त और व्यवहार रूप में समान अवसर प्रदान किये जायें।"

अतः गुटनिरपेक्ष नीति भारत के राष्ट्रीय हित की दृष्टि से उतनी ही महत्वपूर्ण थी जितनी कि अन्य देशों, जिन्होंने हाल ही में स्वाधीनता प्राप्त की थी, के हित की दृष्टि से महत्वपूर्ण थी और वस्तुतः यह नीति समग्र रूप से विश्व के सभी लोगों के हित में थी।

दो महाशक्तियों में बंटा विश्व रहने की दृष्टि से सुरक्षित नहीं कहा जा सकता। हालांकि निहित स्वार्थयुक्त एजेंसियों की सैन्य शक्ति की अति मारक क्षमता, परमाणु अवरोधक जैसी घातक अवधारणाएं फैलाने की कोशिशें चल रही थीं परन्तु उनके बावजूद विश्व में शांति और अंतर्राष्ट्रीय सहयोग की कामना की जा रही थी। परमाणु विध्वंस के खतरों, सर्वनाश की आशंका से सभी लोग परिचित थे। अंतर्राष्ट्रीय मानव समुदाय यह अपेक्षा नहीं करता कि आतंकवाद का संतुलन हो। अपेक्षा यह थी कि स्थायी शांति कायम की जाये और विश्व में दबाव से मुक्त सहयोग का वातावरण बने। इस लक्ष्य को प्राप्ति के लिये उस समय गुटनिरपेक्ष आन्दोलन के सिवाय कोई अन्य उपाय नहीं सूझ रहा था। आरंभ में यह आंदोलन 1961 में बेलग्रेड में पच्चीस देशों की हुई बैठक से शुरू किया गया था और अब इसके सौ से भी अधिक देश सदस्य हैं, जिसमें विश्व के अधिकांश लोग शामिल हैं। यह एक ऐसा आन्दोलन है जो बल प्रयोग और महाशक्तियों के गुटों

के प्रतिबिंब भय, दमन और शस्त्रीकरण के विकल्प के रूप में स्वतंत्रता, गरिमा और समानता की ओर प्रवृत्त करता है।

हालांकि कुछ लोगों ने पंडित नेहरू की गुटनिरपेक्ष नीति को आदर्शवादी और तटस्थ नीति बताकर आलोचना की है। कुछ अन्य लोगों ने उन पर यह आरोप लगाया है कि उन्होंने महाशक्तियों के मध्य गुटबाजी के प्रति समुचित तटस्थता प्रदर्शित नहीं की। पंडित जी भारत के तटस्थ रहने के विरुद्ध थे। 22 नवम्बर, 1960 को लोक सभा में अपने भाषण के दौरान उन्होंने कहा :

> "जैसा कि मैं अनेक बार कह चुका हूं, मैं नहीं चाहता कि भारत को "तटस्थ" देश कहा जाये। मुझे यह भी पसंद नहीं कि भारत की नीति "सकारात्मक तटस्थता" की नीति हो, जैसा कि कुछ देशों द्वारा इसे अपनाया जा रहा है। हम गुटनिरपेक्ष हैं, हमने महाशक्तियों से कोई वचनबद्धता नहीं की है; लेकिन महत्वपूर्ण बात यह है कि हम विभिन्न नीतियों, विभिन्न प्रेरणाओं, विभिन्न उद्देश्यों और विभिन्न सिद्धान्तों के प्रति वचनबद्ध हैं।"

तटस्थता गुटीय प्रतिद्वंद्विता का उपयुक्त प्रत्युत्तर नहीं है। तनाव कम करने के लिए किसी देश को सकारात्मक रूप से कार्य करना, भय को दूर करना, मध्यमार्ग अपनाना तथा आपसी सूझबूझ को बढ़ावा देना होता है। यदि शांति को कोई खतरा है तो भारत तटस्थ नहीं रह सकता। गुट-निरपेक्ष आन्दोलन किसी देश से यह अपेक्षा नहीं करता कि वह दो महाशक्तियों के मामले में चुप्पी साधे रहे। प्रत्येक मामले पर इसके गुणावगुण आधार पर सोच विचार किया जाना चाहिए।

नेहरू गुटनिरपेक्ष आन्दोलन को एक अन्य गुट—अर्थात तीसरा गुट बनाने के विरुद्ध थे। उन्होंने घोषणा की :

> "जब ये प्रस्ताव किए गए हैं कि हमें "तटस्थ" देशों का एक तरह का गुट बनाना चाहिए तो मुझे ये प्रस्ताव अच्छे नहीं लगे। जबकि मैं ऐसी गुट व्यवस्था नहीं चाहता, फिर भी हम मिलकर बैठते हैं और विचार-विमर्श करते हैं। आम राय से कुछ उपाय करते हैं, बनाते हैं तथा कभी-कभी एक समान कार्यवाही करते हैं और परस्पर सहयोग करते हैं। इस आन्दोलन को संस्था का रूप प्रदान करने का विचार इसकी अवधारणा के विपरीत है। गुटनिरपेक्षता अभिव्यक्ति और कार्यवाही की स्वतंत्रता पर आधारित है। यदि इस आन्दोलन को गुट का रूप प्रदान कर दिया जाता है तो इस गुट और अन्य गुटों में कोई अन्तर नहीं रहेगा। गुटनिरपेक्ष आन्दोलन में समूचे प्रयास अपनी स्वतंत्रता को बनाए रखने के लिए हैं। निःसंदेह, जैसाकि उन्होंने बताया, गुटनिरपेक्ष देश परस्पर बैठक करते हैं और किसी विषय पर चर्चा करते हैं तथा उस पर सर्वसम्मति बनाते हैं। तत्पश्चात् यह प्रत्येक देश

पर छोड़ दिया जाता है कि वह इसे, अकेले अथवा अन्य देशों की सहमति से जैसा भी वह उचित समझे कार्यरूप दे। कार्यरूप देने की स्वतंत्रता तथा इसकी नम्यता, दोनों को बनाया रखा जाता है।"

विश्व अभी इस लक्ष्य से काफी दूर है। प्रायः यह सन्देह पैदा होता है कि मानवता समतावादी व्यवस्था की ओर उन्मुख है या इससे दूर जा रही है। लेकिन फिर भी ऐसी विकट परिस्थितियों में भी आशा की किरण दृष्टिगोचर होती है। उपनिवेशवाद लगभग पूरी तरह समाप्त हो चुका है। निरस्त्रीकरण वार्ता के अनुकूल परिणाम निकले हैं, अन्तर्राष्ट्रीय संगठन विकास कार्यों में सहायता कर रहे हैं, अल्प सुविधा प्राप्त लोगों की मदद कर रहे हैं, उनका भरण-पोषण कर रहे हैं, उनके स्वास्थ्य की देखरेख कर रहे हैं और इन सबसे बड़ी बात यह है कि समूचे विश्व में पुरुष और महिलाएं शस्त्रीकरण के खतरों के प्रति अधिकाधिक जागरूक होते जा रहे हैं। नागरिकों के अधिक से अधिक समूह अपने देश की सरकारों को चुनौती दे रहे हैं और उन पर निरस्त्रीकरण के लिए तथा अन्ततः गुटनिरपेक्ष आन्दोलन में सम्मिलित होने के लिए दबाव डाल रहे हैं। नेहरू जी का यही सपना था।

8

एम.एस. गुरुपदस्वामी

नेहरू—व्यक्तित्व का विश्लेषण

डिजरायली ने एक बार कहा था कि जीवन इतना अल्पकालिक है कि इसका एक क्षण भी व्यर्थ गंवाना उचित नहीं है। हम प्रायः छोटी-छोटी बातों पर मुसीबत में फंस जाते हैं और अपने आप को छोटी-छोटी घटनाओं में घिरा हुआ पाते हैं और हमारा अधिकतर समय छोटी-छोटी उत्तेजनाओं में व्यय हो जाता है। हम नगण्य समस्याओं, व्यथाओं तथा संकटों को बड़ा रूप प्रदान कर देते हैं। हम अपने आप को कभी भी इन छोटी-छोटी बातों से अलग रखने की कोशिश नहीं करते। हम अपने जीवन को सम्भाल नहीं पाते हैं। हम बुद्धिमत्ता एवं निपुणता से कार्य करने की कोशिश नहीं करते। हमारा अधिकतर समय निरर्थक कार्यों में व्यर्थ हो जाता है। क्षोभणीय गर्व और द्वेष, मनुष्य तथा जिस समाज में वह रहता है, दोनों को छोटा बना देते हैं। केवल आदर्श विचार और प्रशंसनीय कार्य से ही कोई महान बनता है। आलसी और निष्क्रिय लोगों का समाज हमेशा दरिद्र, पशुवत् एवं अल्पकालिक होता है। एक महान राष्ट्र और तुच्छ विचार साथ-साथ नहीं चल सकते।

भारत सदियों से गुलाम तथा निष्क्रिय रहा है। जब तक भारत इस प्रकार की मानसिक तथा भौतिक स्थिति में रहा, तब तक वह विपत्तियों तथा यंत्रणाओं से ग्रस्त था और इसके लोग प्रकाश एवं आशा के बिना अंधकार में जीते रहे और गरीबी, निरक्षरता एवं बीमारियों से जूझते रहे। यह इतिहास में पथभ्रष्टता और असामान्यताओं के सबसे बड़े उदाहरणों में से एक है कि सुदूर के द्वीपों से आए मुट्ठीभर उद्यमशील एवं लालची व्यापारी विशाल भारत पर अपना प्रभुत्व एवं अधिकार जमाने और उसे यथार्थ में कम्पनी के अधीन करने में सफल हुए थे। एक प्रकार से यह अपने आप में बहुत बड़ी असामान्य बात है कि ब्रिटिश इंडियन एम्पायर व्यापारियों की एक लिमिटेड कम्पनी के नियंत्रण तथा स्वामित्व में था। ऐसा वहीं हो सकता है जहां लोग भेड़-बकरियों अथवा कुत्ते-बिल्लियों की तरह रहते हों। जब विदेशी व्यापारी भारत आए थे तो उस संदर्भ में ये दोनों ही बातें सच लगती हैं। बड़ी संख्या में लोग भेड़-बकरियों जैसा जीवन व्यतीत

करते थे और अधिकांश शासक एवं सरदार, जिनकी संख्या बहुत थी, एक दूसरे के विरुद्ध कुत्ते-बिल्ली की तरह लड़कर स्वयं को तथा उस क्षेत्र को कमजोर कर रहे थे, जिस पर वे शासन करते थे। ब्रिटेन के व्यापारियों के लिए मौके का फायदा उठाने की यह अत्यधिक अनुकूल स्थिति थी। भाग्य की अजीब विडम्बना थी कि जिस भारत का गौरव अनुपम था तथा जिसने विश्व को महान दर्शन-शास्त्र, धर्म और संस्कृति का ज्ञान दिया, उसी भारत को अत्यधिक अपकीर्ति, उत्पीड़न तथा अमानवीय दुर्व्यवहार का सामना करना पड़ा। इन सभी का कारण यह था कि भारत के शासकों ने एक-दूसरे के साथ विश्वासघात किया था।

महात्मा गांधी ने अपनी उत्कृष्ट इच्छा एवं प्रयास, जो कि आधुनिक विश्व के इतिहास में अद्वितीय एवं सर्वोत्तम थे, द्वारा इस क्षयकारी और निराशाजनक स्थिति को बदला। उन्होंने अपनी दृढ़ प्रतिज्ञा और दृढ़ निश्चय तथा सत्य एवं अहिंसा, जो भारतीय जीवन के मूल तत्व थे, के प्रति अपने अदम्य साहस और श्रद्धा से भारत के लोगों को उनका आत्म-सम्मान और प्रतिष्ठा पुनः दिलाई तथा अंततः उन्हें उपनिवेशी शासन से स्वाधीन कराया।

महात्मा गांधी के दुख और बलिदान में अनेक नेताओं की भागीदारी के कारण उनका कार्य कम कठिन तथा सरल हो गया था। उनके साथ निर्भीक सुभाष चन्द्र बोस, बाबू राजेंद्र प्रसाद, अब्दुल गफ्फार खां, आचार्य कृपलानी तथा अन्य नेताओं के अतिरिक्त महान नेता सरदार पटेल, कर्मठ विद्वान मौलाना आजाद, प्रतिभासंपन्न महान राजाजी जैसे नेता थे। इनमें लोगों के प्रिय नेता पंडित जवाहरलाल नेहरू थे। भारत के सभी नेताओं में महात्मा गांधी के बाद दो ही नेता अधिक प्रसिद्ध थे। उनमें से एक पंडित जवाहरलाल नेहरू तथा दूसरे नेता सुभाष चन्द्र बोस थे। मेरे विचार से इन दोनों नेताओं में दो भिन्न परन्तु सम्पूरक गुण विद्यमान थे। एशियाई मामलों संबंधी एक अंग्रेज विशेषज्ञ जार्ज पैटरसन के शब्दों में नेहरू "सौम्य, मृदुल, शिष्ट, दोष के प्रति उदार, संवेदनशील, प्रेरक और भावुक थे।" परन्तु सुभाषचन्द्र बोस साहसी, सक्रिय, अनुकरणीय, कार्य में दृढ़, स्पष्टवादी और अपने तरीके में कुछ कठोर थे एवं उनका काम करने का तरीका विचित्र था। यदि स्वतंत्रता के पश्चात सुभाष बोस हमारे साथ होते तो इसमें कोई सन्देह नहीं है कि वे और नेहरू राजनीतिक युगल की तरह एक दूसरे को सहयोग देते और समर्थन करते अथवा राजनीतिक प्रतिद्वंद्वी के रूप में विपक्ष में होते। मैं यही कल्पना कर सकता हूं कि इस अवधि के दौरान यदि उक्त विकल्पों में से कोई भी विकल्प सार्थक हो जाता तो देश और देशवासी तथा लोकतांत्रिक ढांचा और अधिक सुदृढ़ होता। दोनों नेताओं ने मित्र अथवा प्रतिद्वंदवी के रूप में अपने ज्ञानसम्पन्न सम्पूरक अथवा प्रतियोगी नेतृत्व द्वारा भारत को निश्चित रूप से उच्च दर्जे का राष्ट्र बना दिया होता। फिर भी, इस तथ्य को नकारा नहीं जा सकता कि भारत ने सुभाष बोस की अपेक्षा नेहरू को काफी करीब से देखा है। भारत के इन दो महान सपूतों की तुलना करने का प्रयास अनावश्यक है।

इसमें संदेह नहीं है कि नेहरू अपने व्यक्तित्व और गुणों से अपने महात्मा तथा भारतवासियों के प्रिय थे। इसमें कोई आश्चर्य नहीं है कि महात्मा गांधी उन्हें अपना राजनीतिक उत्तराधिकारी मानते थे और वे वास्तंव में थे भी। प्रधानमंत्री बनने के बहुत समय पहले ही महान कवि रवीन्द्रनाथ टैगोर ने उनके कार्यों का उल्लेख करते हुए कहा था, "वे अपने कृत्यों से भी अधिक महान तथा अपने समय के नेताओं से भी अधिक निष्ठावान व्यक्ति थे।" वे एक सर्वश्रेष्ठ मानव थे। उनके प्रधानमंत्रित्व काल में तथा सरदार पटेल द्वारा निभाई गई सहयोग और व्यावहारिक भूमिका से भाईचारा तथा एकता बनाए रखने में भारत को सफलता मिली। जैसी कि पहले कभी नहीं मिली थी। भारत के लोकतान्त्रिक गणराज्य की संवैधानिक आधारशिला रखी। उन्होंने भारत को आधुनिक राष्ट्र बनाने के लिए कठिन प्रयास किया। उन्होंने योजना प्रक्रिया प्रारम्भ की तथा सरकारी क्षेत्र के उपक्रमों, बड़े उद्योगों, नई प्रौद्योगिकी तथा सामुदायिक विकास कार्यों के जरिए अर्थव्यवस्था में व्यापक परिवर्तन लाने का प्रयास किया।

अपने सपनों को साकार बनाने, महान भारत के अपने दर्शन को वास्तविकता में बदलने के लिए उन्होंने कठोर परिश्रम किया। यद्यपि वे अपनी महान आकांक्षा को पूर्णतः चरितार्थ नहीं कर सके परन्तु ऐसा उनके उत्साह और प्रयास में किसी प्रकार की कोई कमी होने के कारण नहीं हुआ बल्कि ऐसा इसलिए हुआ कि जो तरीके और नीति उन्होंने अपनाई थी वह या तो अपर्याप्त थी अथवा असफल रही। किसी देश को खुशहाल बनाने के लिए सबसे पहले उसके लोगों को भली-भांति शिक्षित और प्रशिक्षित करना पड़ता है, दूसरा, उस देश की बढ़ती हुई जनसंख्या को नियंत्रित किया जाना चाहिए और तीसरा, एक कारगर आधारभूत ढांचा और वातावरण पैदा करना होता है।

अपने कार्यकाल के उत्तरार्ध में नेहरू ने शायद यह महसूस किया कि हमारी सामाजिक-आर्थिक व्यवस्था में कुछ विसंगतियां और असामान्यताएं उत्पन्न हो गई हैं। उन्होंने उसमें सुधार लाने का प्रयास किया लेकिन सरकार में तथा कांग्रेस पार्टी में अपने साथियों को उसी भावना तथा प्रेरणा से उत्साहित न पाकर वे निराश हो गए। लोगों में प्रारम्भ के वर्षों वाला निःस्वार्थ उत्साह नहीं रह गया था। कार्य के प्रति समर्पण की भावना लुप्त हो गई थी। इसलिए उन्होंने कामराज योजना के अंतर्गत केन्द्र में तथा राज्यों में मंत्रिमंडल में अपने तरीके से एक परिवर्तन लाने की योजना बनाई। लेकिन इससे, सरकारी कामकाज के स्तर तथा तौर-तरीकों में अपेक्षित परिवर्तन नहीं आ पाया क्योंकि कांग्रेस में प्रतिभा और योग्यता की भारी कमी थी। निराश होकर उन्होंने कुछ और कदम उठाने के प्रयास किए। कांग्रेस के सैद्धांतिक पतन को उन्होंने इस संकट के कारणों में से एक कारण माना और यह सोचा कि यदि पार्टी और सरकार को जनसमर्थन प्राप्त करना है तो इस पतन को रोकना होगा। उन्होंने शायद यह भी महसूस किया कि चुनाव जीतना जितना आसान है देश का शासन चलाना उतना ही कठिन है। 1962 के आम चुनाव के बाद जब संसद का बजट सत्र प्रारम्भ हुआ तो उन्होंने मिलने के लिए मुझे

सन्देश भेजा। संसद भवन में उनके कार्यालय में छोटी सी बातचीत के दौरान उन्होंने प्रजा सोशलिस्ट पार्टी को कांग्रेस में विलय करने की संभावनाओं की चर्चा की। तदनंतर उन्होंने स्वर्गीय कामराज और इंदिराजी तथा अशोक मेहता को जो उस समय प्रजा सोशलिस्ट पार्टी के अध्यक्ष थे, इस बातचीत में शामिल किया। उनके इस आश्वासन के परिणामस्वरूप कि कांग्रेस अपने भुवनेश्वर अधिवेशन में बिना शर्त प्रजातांत्रिक समाजवाद संबंधी एक प्रस्ताव पारित करेगी, प्रजा सोशलिस्ट पार्टी के एक भाग का कांग्रेस में विलय हो गया। उनकी मृत्यु के शीघ्र पश्चात विलय समर्थक प्रजा सोशलिस्ट पार्टी ने लखनऊ में एक सम्मेलन बुलाया और इस निर्णय की पुष्टि की। लेकिन उनकी मृत्यु होते ही वास्तव में सैद्धांतिक लड़ाई सत्ता की लड़ाई में बदल गई जिसका परिणाम आज हम लोग भोग रहे हैं।

अंतर्राष्ट्रीय संबंधों के क्षेत्र में नेहरू जी ने अपने विस्तृत ज्ञान और सूझबूझ से विश्व में भारत के लिए एक विशेष स्थान बनाया। स्वाधीनता से पहले भी कांग्रेस की विदेश नीति निर्धारित करने तथा इसका मार्गनिर्देशन करने का श्रेय नेहरू जी को ही है। महात्मा गांधी सहित सभी नेता विदेशी मामलों पर उनका "व्यक्तिगत एकाधिकार" मानते थे। अंतरिम सरकार की स्थापना होते ही उन्होंने "एशियाई पारस्परिक संबंधी सम्मेलन" (एशियन रिलेशन्स कांफ्रेंस) आयोजित किया। लेकिन यह दुख की बात है कि तत्पश्चात वह एशियाई देशों को संघटित करने संबंधी अपने प्रयास को आगे नहीं बढ़ा पाए। बांडुंग सम्मेलन के पश्चात उन्होंने इसके प्रति कोई रुचि नहीं दिखाई। न्यूनाधिक रूप में गुटनिरपेक्ष आन्दोलन के महान संस्थापकों में से एक संस्थापक के रूप में इसका श्रेय उनको है। आज गुटनिरपेक्ष देशों का गुट, विश्व में राष्ट्रों का सबसे बड़ा गुट है जिसका विश्व में काफी प्रभाव है। वास्तव में गुटनिरपेक्ष आन्दोलन से विश्व में स्थिरता और शांति आई तथा विश्व संघटन का वातावरण बना। यद्यपि, चीन के बारे में उनकी जानकारी और उस देश के प्रति उनका दृष्टिकोण गलत सिद्ध हुआ। चीन के साथ अच्छे संबंध कायम करने की अपनी तीव्र अभिलाषा के कारण वह धोखा खा गए और उन्हें असफलता हासिल हुई। वास्तव में उन्हें तिब्बत पर कब्जा करने के संबंध में घोषणा करने की कोई आवश्यकता नहीं थी। वह चुप्पी साधे रख सकते थे। निःसंदेह चालाक चीनियों ने नेहरू जी की उदारता का शोषण किया।

संक्षेप में, नेहरू जी का प्रधानमंत्रित्व काल स्वतंत्र भारत के इतिहास के उत्कृष्ट अध्यायों में से एक अध्याय रहेगा। उनके व्यक्तित्व के विभिन्न आयाम हैं जो अपने आप में अद्वितीय हैं। वे एक महान नेता, प्रतिभावान लेखक, एक विचारक, एक दार्शनिक, एक समाजवादी, एक राजनीतिज्ञ आदि सभी प्रतिभाओं से सम्पन्न थे। वह अतीत और वर्तमान की सर्वोत्कृष्टताओं का सम्मिश्रण थे। वह मतान्धता के कट्टर विरोधी थे।

9

नारायण दत्त तिवारी

विदेश मंत्री के रूप में जवाहर लाल नेहरू

जवाहर लाल नेहरू ने भारतीय जनता का न केवल स्वाधीनता संग्राम में नेतृत्व किया, बल्कि वर्ष 1947 के पश्चात् प्रधान मंत्री तथा विदेश मंत्री के रूप में हमारी विदेश नीति के मूलभूत सिद्धान्तों को अभिव्यक्ति प्रदान की और विश्व कार्यों में भारत की भूमिका के लिए आधार शिला रखी। जवाहर लाल नेहरू द्वारा हमारी विदेश नीति का संचालन करने के बारे में कोई भी पुनर्विचार अवश्य ही हमारे अभी हाल के इतिहास के सारांश से अधिक है। विश्वकार्यों के बारे में नेहरू का दृष्टिकोण ऐसे दृढ़ सिद्धान्तों पर आधारित था कि उनके निधन के बाद दो दशक से अधिक का समय बीत जाने के बाद भी, नेहरू जी द्वारा प्रतिपादित सिद्धान्त विश्व समुदाय के साथ हमारे संबंधों में हमारा निरन्तर मार्गदर्शन कर रहे हैं। इसलिए, जिन सिद्धान्तों को विदेश मंत्री के रूप में जवाहर लाल नेहरू ने प्रतिपादित किया उनका पुनर्निर्धारण एक ऐतिहासिक उपक्रम से भी बड़ा कार्य है। इस प्रकार के पुनर्निर्धारण से हमारी विदेश नीति के मूल सिद्धान्तों के बारे में हमें नये सिरे से पुनर्विचार करने का अवसर मिलता है और इसके साथ ही अन्तर्राष्ट्रीय कार्यों में हमारी भूमिका और नीतियों पर भी हम बल देने में समर्थ होते हैं।

जवाहर लाल नेहरू न केवल एक महान विदेश मंत्री ही थे, बल्कि एक महान सांसद भी थे। जवाहर लाल नेहरू ने लोकप्रिय और सामाजिक लोकतंत्र के महान प्रयोग के जीवन्त प्रतीक के रूप में संसद को महत्व प्रदान किया, जिसकी वजह से ही वर्ष 1947 में ब्रिटिश साम्राज्यवाद से स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् हमने अपने देश में लोकतंत्र को अपनाया था। वस्तुतः नेहरू संसद को लोकतांत्रिक संस्थाओं के उस शानदार ढांचे की आधारशिला के रूप में देखते थे, जो हमारे संविधान में औपचारिक रूप से उल्लिखित है। उनके लिए संसद एक ऐसा मंच था, जिसमें वह जनता के चुने हुए प्रतिनिधियों के साथ और वस्तुतः स्वयं जनता के साथ सार्वजनिक रूप से बातचीत कर सकते थे। यह बातचीत एक महत्वपूर्ण गतिविधि थी। यह इसलिए महत्वपूर्ण नहीं थी कि इससे भारत में भागेदारी से युक्त लोकतंत्र सुदृढ़ होता था, बल्कि इसलिए भी महत्वपूर्ण थी, क्योंकि

इससे जवाहर लाल नेहरू जन महत्वाकांक्षाओं के साथ रचनात्मक प्रतिक्रिया से विदेश नीति का निर्धारण करने में समर्थ होते थे और इसके साथ ही साथ देश में विश्व की गतिविधियों के बारे में एक जागरूक जनमत तैयार होता था। जब हम संसद में युद्ध और शान्ति के महान विषयों के बारे में बहस करते हैं, तो संभवतः ऐसे कारण आज भी हमारे मन से पूर्णतः ओझल नहीं होते। ऐसे अवसर हमारे नेतृत्व को जनप्रतिनिधियों के साथ विचार-विमर्श करने का एक अवसर प्रदान करते हैं और इस प्रकार के विचार-विमर्श से विदेश नीति का निर्धारण करने के कार्य में जन महत्वाकांक्षाओं को ध्यान में रखते हैं।

वर्ष 1947 से पहले, मुख्य रूप से जवाहर लाल नेहरू की पहल पर भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस ने स्वाधीनता संग्राम की प्रमुख वाहिनी के रूप में विश्व समुदाय के प्रति जो दृष्टिकोण अपनाया, उसे स्मरण करना भी आवश्यक है। नेहरू का यह दृढ़ मत था कि भारत का स्वाधीनता संग्राम एशिया और अफ्रीका के उन लोगों के अपेक्षाकृत अधिक व्यापक संघर्ष का एक अविभाज्य अंग है जो शताब्दियों के शोषण और दमन के बाद स्वयं को यूरोपीय आधिपत्य से मुक्त करने का प्रयास कर रहे थे। नेहरू का यह विश्वास था कि व्यापक स्तर पर एशियाई और अफ्रीकी क्रान्ति की जागरूकता से एक साथ ही राष्ट्रीय स्वाधीनता के विविध आंदोलन सुदृढ़ होते थे और इसके साथ ही साथ भौतिक गरिमा और सांस्कृतिक सृजनात्मकता के जीवन के लिए तीसरे विश्व के लोगों के सम्पूर्ण संघर्ष को बल मिलता था। वह इसमें भी विश्वास करते थे कि दलितों के इस विश्वव्यापी संघर्ष में अग्रणी भूमिका निभाना, बेहतर विश्व के लिए उनकी महत्वाकांक्षाओं और सपनों तथा आशाओं को आवाज देना और जहां भी आवश्यक हो, राष्ट्रीय स्वतंत्रता के संघर्षों में अंतर्ग्रस्त लोगों को नैतिक तथा भौतिक समर्थन देना भारत के लिए अपरिहार्य है।

जवाहर लाल नेहरू के अनुसार जबकि एशिया और अफ्रीका के स्वाधीनता आन्दोलन विश्व राजनीति की प्रमुख घटना थी, परन्तु वर्ष 1917 की बाल्शेविक क्रान्ति के माध्यम से सोवियत संघ में जिस सामाजिक परिवर्तन की शुरुआत हुई थी, वह मानव जाति के इतिहास में कम महत्वपूर्ण घटना नहीं थी। वस्तुतः, जहां एक ओर यूरोपीय साम्राज्यवाद विश्व पूंजीवाद का विस्तार था, वहीं दूसरी ओर एशिया और अफ्रीका के दमित लोगों के लिए सोवियत संघ और अंतर्राष्ट्रीय समाजवादी समुदाय एक सामान्य शत्रु के विरुद्ध सहज मित्र थे। एक ओर, एशिया और अफ्रीका के राष्ट्रीय स्वतंत्रता आंदोलनों और दूसरी ओर, विश्वव्यापी समाजवादी आन्दोलन जिसने वर्ष 1917 में सोवियत संघ में विजय प्राप्त की थी (और बाद में अन्य देशों में विजय प्राप्त की थी), के बीच पारस्परिक लाभप्रद संबंध बीसवीं शताब्दी के द्वितीय चतुर्थांश में अंतर्राष्ट्रीय क्षेत्र में प्रमुख विशेषता थी। फिर भी, इस सहज मित्रता से स्वाधीनता आन्दोलनों के स्वरूप पर कोई प्रतिकूल प्रभाव नहीं पड़ा और वस्तुतः पड़ भी नहीं सकता था और न ही इसका यह आशय था कि तीसरे विश्व के देशों के लिए अपना विकास करने को सोवियत संघ अथवा अन्य समाजवादी देशों के अनुभव में एक बना बनाया माडल मिल गया था। इसके विपरीत, अपनी पृथक-पृथक ऐतिहासिक परम्पराओं तथा उन संघर्षों के सार तत्व पर विचार करने के

आधार पर, जो संघर्ष उन्होंने यूरोपीय साम्राज्यवाद के विरुद्ध किये थे, तीसरे विश्व के लोग और उनके नेता अपने लिए ऐसी नीतियां निर्धारित कर सकेंगे, जो उन्हें न केवल राजनैतिक दासता से मुक्ति प्रदान करेंगी, बल्कि निर्धनता और अभाव से भी उनकी मुक्ति सुनिश्चित करेंगी। जैसा कि नेहरू ने अनेक अवसरों पर कहा था कि बीसवीं शताब्दी में मानव-परिस्थितियों से संबंधित.इन सभी निर्णायक विषयों के बारे में, तीसरा विश्व उस समाजवादी सिद्धान्त और व्यवहार से काफी प्रेरणा प्राप्त करेगा जिसको विभिन्न समुदायों के ऐतिहासिक अनुभव को ध्यान में रखते हुए सृजनात्मक रूप से परिभाषित किया गया है।

यह पूर्णतः स्पष्ट है कि जब जवाहर लाल नेहरू ने प्रधान मंत्री तथा विदेश मंत्री के रूप में हमारे विदेशी संबंधों के संचालन का दायित्व संभाला, तो उन्होंने विश्व समुदाय का एक ऐसा स्वरूप पहले ही निर्धारित कर लिया था, जिसमें पुनर्जाग्रत एशिया के प्रवक्ता के रूप में भारत को प्रमुख भूमिका निभानी थी। नेहरू का ऐसा विश्वास था कि भारत ऐसी भूमिका तभी निभा सकता है जबकि वह तीसरे विश्व के साथ घनिष्ठ संबंधों का विकास करे और विभिन्न अंतर्राष्ट्रीय मंचों पर उसके नागरिकों की महत्वाकांक्षाओं को आवाज प्रदान करे। दलित लोगों को जिसकी सबसे अधिक इच्छा थी, वह भौतिक गरिमा का जीवन और बाहरी हस्तक्षेप के बिना अपने भविष्य के निर्माण के लिए एक अवसर प्राप्त करना था। ऐसी स्थिति को प्राप्त करने के लिए मूल आवश्यकता भारत तथा सम्पूर्ण एशिया के अन्दर अपने पड़ोसी देशों और पूरे विश्व में स्थायी शांति की स्थापना थी। इसलिए जवाहर लाल नेहरू का यह विश्वास था कि वस्तुतः तीसरे विश्व की नई-नई स्वतंत्रता प्राप्त राजनीति की मूल आवश्यकता थी, क्योंकि केवल शांति के वातावरण में ही ऐसी राजनीतिक व्यवस्थायें औद्योगीकरण और सामाजिक पुनर्निर्माण के उन अविलम्बनीय कार्यक्रमों को प्रारंभ कर सकती थीं, जिनके माध्यम से आम लोगों के जीवन में क्रान्तिकारी परिवर्तन के लिए आधार की व्यवस्था करनी थी।

देश में स्थायी शान्ति कायम करने के लिये जवाहर लाल नेहरू के लिये यह जरूरी था कि वह 1947 में आज़ादी के तुरन्त बाद काश्मीर की समस्या को सुलझायें। लेकिन काश्मीर समस्या भी भारत-पाकिस्तान के आपसी संबंधों से जुड़ी थी। जब पाकिस्तान ने अपने सीमावर्ती प्रदेशों के कबीलों को काश्मीर पर चढ़ाई करने के लिए प्रोत्साहित किया तथा अपनी सशस्त्र सेनाओं को हमले में कबीलों की सहायता करने के लिए भेजा तो जवाहर लाल ने भारत के विरुद्ध पाकिस्तान के आक्रमण का जवाब देने के लिए सेना बुला ली। जैसा कि काश्मीर और पाकिस्तान पर वाद-विवाद के दौरान नेहरू जी ने संसद सदस्यों के समक्ष बार-बार कहा था, विवादग्रस्त मुद्दे काश्मीर के भाग्य से भी गहरे थे। हालांकि काश्मीर का मुद्दा अपने आप में एक महत्वपूर्ण मुद्दा था। 1947 में इस उप महाद्वीप के दुखद बंटवारे के बावजूद भारत ने बीसवीं सदी में एक प्रगतिशील तथा लोकतांत्रिक शासन व्यवस्था कायम करने के लिए दृढ़ता से धर्मनिरपेक्षता की नीति का

एक मात्र रास्ता अपनाया। अतः पाकिस्तान की अपेक्षा भारत के साथ जुड़ने का काश्मीरियों का महत्वपूर्ण निर्णय भारतीय धर्मनिरपेक्षता तथा भारत के सच्चे धर्म-निरपेक्ष स्वरूप पर आधारित था। भारत में धर्मनिरपेक्षता की ऐतिहासिक लड़ाई काश्मीर की जमीन पर लड़नी पड़ी।

जहां तक पाकिस्तान का संबंध है, भारत पाकिस्तान के लोगों के प्रति पूरी सद्भावना रखता है। लेकिन पाकिस्तान के शासकों के दिल व दिमाग में जिस असुरक्षा की भावना ने घर कर रखा है, उसने भारत के इस काल्पनिक डर को वहां के लोगों पर अपनी पकड़ बनाये रखने के लिए प्रयोग करने के लिए प्रेरित किया। इस दांव का सही उत्तर यही हो सकता था कि भारत, पाकिस्तान के लोगों के प्रति भारतीय लोगों के मैत्री भाव की बात को दोहराये, ताकि पाकिस्तान का शासक वर्ग अपनी जनता पर अपनी पकड़ मज़बूत करने के लिए बाहरी खतरों के बनाये गये ढोंग का इस्तेमाल न कर सके। इस सम्बन्ध में नेहरू जी ने कहा था :

> भारत-पाकिस्तान संबंधों के प्रश्न पर विचार करते समय हमें इस विषय पर समग्र रूप से विचार करना होगा। थोड़ा विचार पिछले इतिहास पर भी करना होगा क्योंकि जो कुछ हम आज देखते हैं, वह भूतकाल की ही उपज है।

लगभग 20 या 30 वर्ष पूर्व हममें से अधिकांश लोग सांप्रदायिक एकता के पक्ष में थे, जो कि हम आज भी हैं। हम अपनी आन्तरिक समस्याओं का शान्तिपूर्ण हल चाहते थे और यह कि आजादी प्राप्त करने के लिए संयुक्त प्रयास किये जायें। हम आशा करते थे कि उस आज़ादी में हम मिल-जुल कर रह सकेंगे। पाकिस्तान के समर्थकों का एक अलग सिद्धान्त था। वे एकता के समर्थक न होकर फूट के समर्थक थे। वे निर्माण की अपेक्षा विनाश में विश्वास करते थे। वे यदि युद्ध नहीं तो शान्ति की अपेक्षा कलह के समर्थक अवश्य थे। मैं नहीं समझता कि पाकिस्तान के लोग भारतीय लोगों से किसी प्रकार भिन्न हैं, उनसे अच्छे या उनसे बुरे हैं। परन्तु भाग्यवश, भारत में हम लोगों के सामने पिछले 20 या 30 वर्ष एक आदर्श रहा जिसने हमारे विचार तथा कार्यों को प्रभावित किया—जो स्वाभाविक था। सब चीजों के बावजूद अभी भी वही आदर्श हमारा मार्गदर्शक बना हुआ है। आज भारत तथा पाकिस्तान की नीतियों के बीच यही मुख्य अंतर है।

भारत के पाकिस्तान के साथ संबंधों का दोनों देशों के आपसी संबंधों पर 1950 तथा 1960 के दशकों में (आज भी) तो प्रभाव पड़ा ही पर इसके साथ-साथ विश्व समुदाय में भारतीय स्थिति पर भी उसका प्रतिकूल प्रभाव पड़ा विशेषकर संयुक्त राज्य अमेरिका के साथ भारत के संबंधों पर।अगस्त, 1947 में भारत द्वारा स्वतंत्रता प्राप्ति के समय अमरीका के प्रति जवाहर लाल नेहरू का भाव मैत्रीपूर्ण था और विश्व राजनीति में अमरीकी रवैये के प्रति अपने दृष्टिकोण के बावजूद वह अमरीका के उन मूल्यों की

खूब कद्र करते थे जिनका एक उदार शासन व्यवस्था के रूप में अमरीका प्रतिनिधित्व करता था। अमरीका में शक्तिशाली औद्योगिक समाज था जिस पर यूरोपीय देशों के पैशाचिक सामन्ती अतीत की छाया नहीं पड़ी थी। इसके अलावा अमरीका का क्रान्तिकारी तथा उपनिवेशवाद विरोधी अतीत रहा, जिसकी याद अभी भी ताजा थी जो उन्नीसवीं शताब्दी तथा बीसवीं शताब्दी के पूर्वार्ध के दौरान एशिया तथा अफ्रीका के शोषण में सीधे संलिप्त नहीं रहा। ऐसे देश के साथ मित्रतापूर्ण संबंध रखने के फलस्वरूप भारत के लोगों को भौतिक सहायता मिल सकती थी जो औद्योगीकरण के मार्ग पर अग्रसर होने के उसके इरादे के लिए बड़ी महत्वपूर्ण सिद्ध हो सकती थी। इसको देखते हुए यह कोई आश्चर्य की बात नहीं है कि जवाहर लाल नेहरू ने अगस्त 1949 में अमरीका की अपनी पंहली यात्रा के संभावी परिणामों के बारे में निम्नलिखित शब्दों में अपने विचार प्रकट किये :

> "जब भी मुझे आने वाली इस अमरीका की यात्रा के बारे में सोचने क़ा समय मिलता है, मैं कई चीजों के बारे में सोचता हूं। किस मनोभाव को लेकर मैं अमरीका जाऊँ? वहां लोगों आदि को किस तरह सम्बोधित करूं? वहां की सरकार तथा व्यवसायियों तथा अन्य लोगों के साथ कैसे पेश आऊं। अपने बारे में किस सच्चाई को मैं अमरीका की जनता के समाने रखूं। मुझे कुछ कठिन परिस्थितियों का मुकाबला करना होगा। मैं अमरीकियों के साथ मैत्रीपूर्ण संबंध रखना चाहता हूं लेकिन हमेशा इस बारे में अपनी स्थिति स्पष्ट रखना चाहता हूं कि हमारे क्या सिद्धान्त हैं। ऐसी किसी चीज के बारे में मैं कोई वचनं देना नहीं चाहता जो हमारी मूलभूत नीति के विरुद्ध हो। मैं इस नतीजे पर पहुंचा हूं कि अमरीका के लिए सर्वोत्तम तैयारी किसी प्रकार की तैयारी न करके अपनी सहज बुद्धि तथा समय की नज़ाकत पर भरोसा करना होगा जिसमें सामान्य दृष्टिकोण मैत्रीपूर्ण तथा सहयोगपूर्ण हो। वहां मैं शिक्षा देने के बजाय सीखने के लिये जाना चाहता हूं। यदि मैं समझता हूं कि ग्रहण करना चाहिये, तो ग्रहण करता हूं और संयुक्त राष्ट्र में मैं ग्रहणशील रवैया अपनाना चाहता हूं। मैं उनकी अच्छी बातों को देखना चाहता हूं और किसी देश के लिए यही सर्वोत्तम दृष्टिकोण है। लेकिन मैं नहीं चाहता कि मैं उनकी रौ में बह जाऊं। मैं नहीं समझता कि ऐसा हो सकता है।"

संयुक्त राष्ट्र की पहली यात्रा की तैयारी के विषय पर सावधानीपूर्वक विचार किये जाने के बावजूद मेज़बान तथा मेहमान के बीच सब ठीक-ठाक नहीं रहा। जवाहर लाल नेहरू, जिनको अपनी सांस्कृतिक विरासत पर गर्व था और जो अत्यंत संवेदनशील व्यक्ति थे, को जहां अमरीकी नेताओं का एहसान करने वाला रवैया ठीक नहीं लगा, वहां अमरीकी नेताओं ने एक ऐसे राजनीतिज्ञ के साथ मैत्री संबंध स्थापित करने का दुर्लभ अवसर खो दिया जिसने इस भेंट वार्ता में किसी और की अपेक्षा उभरते हुए एशिया की बात की। लेकिन यह सांस्कृतियों व व्यक्तियों के संघर्ष का ही मामला नहीं था। स्पष्ट था कि दो राष्ट्रों के सामरिक दृष्टिकोण यदि विपरीत नहीं तो अलग-अलग मतों पर

आधारित थे। इस यात्रा के कुछ वर्ष बाद सोवियत विस्तारवाद संबंधी भय के भ्रम ने अमरीका सरकार को पाकिस्तान के साथ एक सैनिक सन्धि करने के लिये प्रोत्साहित किया। इसके परिणामस्वरूप नेहरू जी को भारत की स्वतंत्रता तथा कुल मिलाकर एशिया की सुरक्षा की गहरी चिन्ता ने घेर लिया। पाकिस्तान तथा अमरीका के नेताओं के बीच सैनिक सन्धि के विरोध में नेहरू जी ने इस प्रकार के समझौतों तथा सन्धियों के संबंध में भारत के ऐतिहासिक अनुभव का संसद में इन शब्दों में उल्लेख किया :

> "मैं पहले बता चुका हूं कि जैसे कि मैं चाहता हूं कि भारत तथा पाकिस्तान के बीच मधुर संबंध हों, पाकिस्तान के प्रधान मंत्री भी यही चाहते हैं। श्री मोहम्मद अली ने अमरीकी सहायता के इस मामले के संबंध में कई वक्तव्य दिये हैं। उनका कहना है कि भारत को इसमें क्या आपत्ति है। निःसंदेह पाकिस्तान एक आज़ाद मुल्क है, मैं उनको रोक नहीं सकता। परन्तु यदि किसी चीज का एशिया पर और विशेषकर भारत पर असर पड़ता है, और यदि कुछ चीज ऐसी हो रही है, जो हमारी राय में सैकड़ों वर्ष बाद इतिहास का व्युत्क्रम है तो हम कैसे चुप बैठ सकते हैं? हमने अपने देश को आज़ाद कराने की जो बात सोची थी उसमें हमारी आज़ादी के प्रतीक के रूप में एक बात यह भी थी कि विदेशी सशस्त्र सेनाओं को हमारे यहां से हटाया जाये। हेतुक चाहे कुछ भी हो, मैं कहता हूं कि किसी यूरोपीय अथवा किसी अमरीकी देश की किसी सशस्त्र सेना की वापसी एशिया के देशों के इतिहास का व्युत्क्रम है। कोई दो या तीन वर्ष पूर्व काश्मीर के सम्बन्ध में यह सुझाव दिया गया था कि कुछ यूरोपीय अथवा अमरीकी देशों को काश्मीर में सेनाएं भेजनी चाहिएं। हमने उसको बिल्कुल नामंजूर कर दिया क्योंकि जहां तक संभव होगा, हमारी यह कोशिश होगी कि कोई भी विदेशी सेना भारत में न आ पाये।

जिन ग़लत-फहमियों के कारण, जवाहर लाल नेहरू के प्रयासों के बावजूद भारत तथा अमरीका के संबंध खराब हुए, यदि उनमें त्रासदी के बीज मौजूद थे, तो चीन के साथ हमारे संबंधों में गिरावट ने घोर विपत्ति रूपी आग में घी का काम किया और इस घटना की काली छाया जवाहर लाल नेहरू के जीवन के अन्तिम वर्षों में उनके ऊपर छायी रही क्योंकि भारत के विदेशी सम्बन्धों के संरक्षक वही थे। इसका एक कारण यह भी रहा कि नेहरू जी ने शुरू से ही चीन के अनुभव को भारत के अपने अनुभव के समान ही समझा जैसा कि उन्होंने इन दो प्राचीन सभ्यताओं, जो आधुनिक औद्योगिक देशों के रूप में विकसित होने का प्रयास कर रही थीं, के बीच मधुर संबंधों को भी एशिया में ही नहीं अपितु सम्पूर्ण विश्व में शान्ति तथा स्थायित्व की स्थापना का आधार माना। नेहरू जी चीन को कितना महत्व देते थे, यह 1939 के मध्य में उनकी चीन यात्रा से भली भांति प्रकट होता है। द्वितीय विश्वयुद्ध छिड़ जाने के कारण इस यात्रा को बीच में समाप्त करना पड़ा। 1949 में चीन में जनवादी गणतंत्र की स्थापना के बाद नेहरू जी ने यह सोचते हुए इसको तत्काल राजनयिक मान्यता प्रदान कर दी कि इससे चीन

के नये शासन तंत्र के स्वस्थ विकास में बड़ी सहायता मिलेगी। इसका तातत्पर्य यह नहीं है कि जवाहर लाल नेहरू भारत तथा चीन के बीच अनिर्णीत विभिन्न मसलों को भुला बैठे थे। वह एशिया के इन दो बड़े देशों के बीच सामरिक तनाव तथा इन दो कृषि देशों के आधुनिक औद्योगिक देशों के रूप में विकसित होने की बात से भी बेखबर नहीं थे। चीन की युद्धप्रियता का पहला संकेत उस समय मिला जब उन्होंने तिब्बत को आज़ाद कराने के अपने इरादे की घोषणा की। जवाहर लाल नेहरू ने तिब्बत पर चीन के आधिपत्य के सिद्धान्त का समर्थन किया क्योंकि उनका यह भी विश्वास था कि चीन तिब्बत की स्वायत्तता का सम्मान करने के लिए नैतिक रूप से बाध्य है। अतः उन्होंने यह प्रश्न उठाया कि तिब्बत को किससे आज़ाद कराना है ? तिस पर भी जब चीनी नेतृत्व ने सैनिक अक्रमण के जरिये तिब्बत पर अपना अधिकार जताने का फैसला किया, तो नेहरू जी उससे खास विचलित नहीं हुए और धैर्यपूर्वक एक करार किया जिसके द्वारा भारत ने तिब्बत को चीन का एक आन्तरिक भाग होने की बात विधिवत् रूप से स्वीकार की। तर्क यह दिया गया कि इस पृष्ठभूमि का लाभ यह है कि तिब्बत के संबंध में वार्ता से भारत को उत्तरी सीमा की समस्या चीन के साथ हल करने का स्वर्ण अवसर प्राप्त हुआ है। लेकिन यहाँ यह याद रखना महत्वपूर्ण है कि इस समागम में नेहरू जी को चीनियों से ये आश्वासन प्राप्त हुए थे कि सीमा विवादों को वें सिद्धान्त रूप में तय मानते हैं और यह कि सहमत सिद्धान्तों की विस्तृत नक्शानिगारी के संकल्प के अलावा और कुछ करने की आवश्यकता नहीं है। निःसंदेह तिब्बत के संबंध में चीन-भारत समझौता एक तरह से एक आदर्श समझौता था, विशेषकर इसलिए क्योंकि इसी के अवसर पर शान्तिपूर्ण सह-अस्तित्व के पांच सिद्धान्तों अर्थात् पंचशील के सिद्धान्तों को परिभाषित किया गया जो कुछ समय बाद गुट-निरपेक्ष आन्दोलन के सैद्धांतिक आधार बनने वाले थे।

तिब्बत के संबंध में 1954 में हुए समझौते के परिणामस्वरूप भारत-चीनी मैत्रीपूर्ण संबंधों को जो आशायें उत्पन्न हुई थीं, वे थोड़े समय बाद ही मिथ्या साबित हुईं। भारत सरकार के आश्चर्य की सीमा न रही जब उसे पता चला कि अपने दक्षिण-पश्चिमी क्षेत्रों में संचार व्यवस्था निर्मित करते-करते चीन ने काफी सारे भारतीय प्रदेश पर कब्जा कर लिया है। जब भारत ने अपने दूर-दराज के हिमालय प्रदेश पर अपना प्रशासनिक नियंत्रण जताया तो चीन ने बड़े पैमाने पर सीमावर्ती झड़पें शुरू कर दीं और इस प्रकार दो देशों के आपसी संबंध काफी कटु हो गये।

भारत और चीन के आपसी संबंध बिगड़ने के कारण नेहरू बड़े व्याकुल हो गये क्योंकि नेहरू के प्रयासों के कारण भारत अंतर्राष्ट्रीय समुदाय का एक प्रमुख सदस्य बन गया था और अंतर्राष्ट्रीय मंच पर भारत ने जो ऊंचे मन्सूबे बांधे हुए थे, उनके संबंध में भारत-चीन संबंधों का बड़ा महत्व था।

1950 के दशक के उत्तरार्ध तथा 1960 के दशक के पूर्वार्ध में चीन के भारत के प्रति रवैये के जो भी प्रेरक कारण रहे हों, नेहरू ने भारत के महत्वपूर्ण हितों की रक्षा के कार्य को पूरी लगन से किया। इस उद्देश्य की पूर्ति के कारण ही नवम्बर, 1962 की दुर्भाग्यजनक घटनाएं घटीं, जबकि चीन ने दक्षिणी पड़ोसी देश पर अकारण ही सैनिक हमला कर दिया। लेकिन जिस तेज़ी से भारत इस पराजय से उबरा, वह भारत के लोगों की देशभक्ति तथा उनके लचीलेपन के प्रमाण के साथ-साथ नेहरू की सामरिक अन्तरदृष्टि तथा असीम साहस का प्रमाण है। हारते-हारते जीतने तथा रणनीति संबंधी पराजय को वास्तव में सामरिक जीत में बदलने के लिए आवश्यक है कि जनता तो वास्तव में महान हो ही साथ ही साथ उनका नेता भी सच्चे मानों में महान हो। जल्दी ही भारत ने अपनी सैनिक तथा राजनीतिक शक्ति को पा लिया जिसकी लड़ाई के मैदानों तथा कूटनीतिक क्षेत्र में अनेक अवसरों पर परीक्षा हो चुकी है। चीन के बारे में हमारी खासी समझ तथा उसके लक्ष्यों तथा उद्देश्यों के बारे में जवाहर लाल नेहरू ने 1960 के दशक में हमें जो बताया था, उसके परिणामस्वरूप हम चीन जनवादी गणतंत्र के साथ जो हमारी वार्ता चल रही है, उसमें अपने राष्ट्रीय हितों की पूरी रक्षा कर पायेंगे।

यद्यपि नेहरू की चीन सम्बन्धी कूटनीति के कारण भारत को थोड़े समय के लिए पराजय का सामना करना पड़ा, लेकिन इस कूटनीति के परिणामस्वरूप शान्तिपूर्ण सह-अस्तित्व के पांच सिद्धान्तों अर्थात पंचशील का जन्म हुआ जो गुटनिरपेक्ष आन्दोलन की आधारशिला बना और जो आज भी भारत तथा तीसरे विश्व के अन्य देशों का मार्गदर्शन कर रहा है। इससे पूर्व मैंने एशियाई तथा अफ्रीकी क्रान्ति के नेहरू के अच्छे ज्ञान का उल्लेख किया है। विश्व इतिहास के संदर्भ में इस क्रान्ति का मतलब शताब्दियों के दमन तथा शोषण के बाद विश्व में एक तीसरी दुनिया का एक स्वायत्त शक्ति के रूप में उदय है। नेहरू का भारतीय विदेश नीति के सम्बन्ध में अनुभव 1950 के दशक में परिपक्वता को प्राप्त हो गया था और उन्होंने तीसरे विश्व मत के एक संगठित मंच की, जिसमें भारत का मत एक निर्णायक भूमिका अदा कर सके, अविलंब आवश्यकता महसूस की। संभवतः नेहरू के कहने पर 1947 में हुआ एशियाई संबंध सम्मेलन, अनन्तिम ही सही, इस दिशा में एक कदम था। गुट निरपेक्ष आन्दोलन के संस्थापकों की पहली बैठक. 1955 में बन्डुंग में विश्व राजनीति में एक नयी शक्ति के उदय की घोषणा करने के लिए हुई थी। नेहरू ने इस बंडुंग सम्मेलन में एक ऐतिहासिक भूमिका अदा की। इस बंडुंग सम्मेलन की कार्यवाही को दिशा देने में मुख्य भूमिका संभवतः नेहरू की ही रही। उस सम्मेलन के थोड़े समय बाद उन्होंने संसद में बताया :

> बंडुंग सम्मेलन एक ऐतिहासिक घटना रही। यह सम्मेलन हुआ, यही अपने आप में एक महान उपलब्धि रही क्योंकि यह एक नये एशिया तथा अफ्रीका, नये राष्ट्रों, जो कि अपनी आज़ादी को पाने की ओर अग्रसर हो रहे, के उदय तथा विश्व में उनकी भूमिका के ज्ञान का परिचायक है। इस सम्मेलन ने किसी के प्रति कोई

अमैत्रीपूर्ण चुनौती अथवा शत्रुता का भाव प्रदर्शित नहीं किया अपितु एक नयी समृद्ध देन को प्रचारित किया। खुशी की बात तो यह है कि यह देन किसी धमकी अथवा बल अथवा नये शक्ति गुट बनाने के रूप में नहीं है। बंडुंग सम्मेलन ने एशिया तथा अफ्रीका के नये राष्ट्रों की आचारात्मक आदर्शवाद की क्षमता के बारे में विश्व को बताया, जिसका प्रमाण यह है कि बंडुंग सम्मेलन में कार्यवाही थोड़े समय में पूरी कर ली गई तथा उसमें व्यावहारिक समझौते सम्पन्न हुए जो कि अंतर्राष्ट्रीय सम्मेलनों में आम तौर पर नहीं होते। हमने अपनी एकता की इस भावना अथवा सफलता को अपने ऊपर इतना हावी नहीं होने दिया कि हम अलग-थलग पड़ जायें तथा अहंकार के वशीभूत हो जायें। सम्मेलन के प्रत्येक मुख्य निर्णय में खुशी-खुशी संयुक्त राष्ट्र संघ, विश्व समस्याओं तथा आदर्शों का उल्लेख हुआ है। हमारा विश्वास है कि हमारे महान संगठन संयुक्त राष्ट्र संघ को इस बंडुंग सम्मेलन से बल मिला है। इसका मतलब यह भी होता है कि एशिया तथा अफ्रीका को भी विश्व संगठन कें संचालन तथा नियति में अहम भूमिका निभानी चाहिए।

1950 के दशक में गुट निरपेक्ष आंदोलन के जन्म तथा इस आंदोलन में भारत की महत्वपूर्ण भूमिका ने भी भारत-सोवियत संघ मैत्री संबंधों के विकास के लिए आधार प्रदान किया। 1947 के बाद के कुछ वर्षों में एशियाई तथा विश्व राजनीति में भारत सच्चे मानों में कितनी प्रबल स्वायत्त शक्ति के रूप में उभर कर आया है, सोवियत संघ को इस में संदेह था। 1947 के बाद के कुछ वर्षों में सोवियत संघ के इस संबंध में संदेह होने के बावजूद यह मैत्री स्थापित हुई। इसकी खास वजह शायद एक ओर पाकिस्तान तथा अमरीका के बीच सैनिक समझौता होना था तथा दूसरी ओर सोवियत संघ की बागडोर नये नेतृत्व के हाथों में जाना था। इन घटनाओं ने 1955 में जवाहर लाल नेहरू की रूस यात्रा की पृष्ठभूमि तैयार की। इस यात्रा के दौरान नेहरू ने पाया कि 1927 में उनकी पिछली रूस यात्रा के बाद रूस ने कितनी अधिक प्रगति की है। सोवियत संघ के नये नेताओं के साथ वार्ता के दौरान नेहरू ने महसूस किया कि विश्व राजनीति में गुट-निरपेक्ष आन्दोलन को सोवियत संघ कितना सार्थक समझता है तथा विश्व शान्ति में उसके सांकेतिक अंशदान को कितनी मान्यता देता है। उन्होंने मास्को में अपने मेज़बानों को बताया :

हम यहां इस महान देश के लोगों के लिए भारत के लोगों की शुभकामनाएं लेकर आये थे और हमारे देश तथा लोगों के प्रति आपके असीम प्रेम तथा शुभकामनाओं सहित हम वापस जा रहे हैं। हम एक अजनबी के रूप में यहाँ नहीं आये थे, क्योंकि हममें से कई लोग ऐसे हैं जिन्होंने इस देश में हुए महान परिवर्तनों तथा विकास में गहरी रुचि दिखलाई है। महान लेनिन के नेतृत्व में जब आपके यहां अक्तूबर की क्रान्ति हुई, लगभग उसी समय भारत में हमने अपने स्वतंत्रता संग्राम का एक नया अध्याय शुरू किया। यद्यपि महात्मा गांधी के नेतृत्व में अपने स्वतंत्रता

संग्राम में हमने एक अलग ही रास्ता अपनाया, लेकिन हम लेनिन के प्रशंसक रहे हैं और उन्होंने जो रास्ता अपनाया उसने हमें प्रभावित किया है। स्वतंत्रता प्राप्ति के लिये अपनाये गये मार्ग की इस भिन्नता के बावजूद सोवियत संघ के लोगों के प्रति हमारी जनता का भाव कभी भी अमैत्रीपूर्ण नहीं रहा।

नेहरू जी ने सोवियत संघ के साथ जो मैत्रीपूर्ण संबंध बनाये वे आगे जाकर भारत के आन्तरिक विकास तथा भारत की विदेश नीति के संचालन, दोनों में ही अत्यंत महत्वपूर्ण कारक बने। इन संबंधों ने भारतीय कूटनीति को एक दृढ़ आधार प्रदान किया और हमारे देश के नेता बीसवीं शंताब्दी के तीसरे भाग की कठिन अंतर्राष्ट्रीय राजनीतिक परिस्थितियों से देश को सफलतापूर्वक निकाल सके।

बीसवीं शताब्दी के अन्तिम दशकों में विदेशों से भारत के सम्बन्धों की चर्चा करते समय बरबस हमारा ध्यान उस दूरदर्शिता तथा साहस की ओर जाता है जिसका जवाहर लाल नेहरू ने 1950 के तथा 1960 के दशकों में भारतीय विदेश नीति बनाने में परिचय दिया। उनकी यह महत्वाकांक्षा रही कि भारत को विश्व में महत्वपूर्ण स्थान मिले। इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए वह भारत के नैतिक बल तथा भारत के उस नेतृत्व पर बल देना चाहते थे जो विश्व की विशालतम साम्राज्यवादी शक्ति को अहिंसा से पराजित करने वाला यह देश तीसरी दुनियां को दे सकता था। इस नेतृत्व के माध्यम से विश्व में स्थायी शान्ति स्थापित करने की भी उनकी उत्कट अभिलाषा थी ताकि भारत सरीखे विकासशील देशों को औद्योगीकरण के मार्ग पर सफलतापूर्वक बढ़ने का मौका मिले, जिसकी कि उनको आवश्यकता है, और वे एक सभ्य समाज के लिए आवश्यक मूलभूत भौतिक तथा सांस्कृतिक सामग्री अपने नागरिकों को जुटा सकें। जवाहर लाल नेहरू को आशा थी कि इस प्रकार की विदेश नीति अपनाकर भारत विश्व समुदाय में अपनी भूमिका निभाने का अवसर प्राप्त कर सकेगा जो सैनिक बल पर निर्भर न करके नैतिक बल पर निर्भर करेगी और जिसका उद्देश्य मानव जाति के लिए स्थायी शान्ति तथा सामाजिक समानता सुनिश्चित करना होगा। जवाहर लाल नेहरू की स्मृति में शायद सबसे उत्तम श्रद्धांजलि यही होगी कि हम देश के सम्मुख वर्तमान चुनौतियों अथवा भावी चुनौतियों का सामना उनकी विदेश नीति के मूलभूत सिद्धान्तों को ध्यान में रखकर करें।

10

सत्येन्द्र नारायण सिंह

जवाहर लाल नेहरू : एक बहुमुखी प्रतिभा

हम में से अधिकांश लोगों के लिए यह एक गर्व की बात है कि हमें गांधी तथा नेहरू के युग में जीने का अवसर मिला जो गौरवपूर्ण भारतीय परम्परा के उन कर्मयोगियों में से थे, जिन्होंने अपनी असाधारण संकल्प शक्ति तथा त्याग भावना से मानवजाति का स्वरूप ही बदल डाला। जवाहरलाल नेहरू का जन्म दूसरी शताब्दी ई.पू. में जन्मे अशोक महान के अवतार धारण के समान सिद्ध हुआ। नेहरू द्वारा धर्मनिरपेक्षता और लोकतंत्र की असीम सक्षमता को मान्यता दिया जाना एक महान संत जैसे इस सम्राट के समय के धर्मनिरपेक्ष लोकतांत्रिक स्वरूप का पुनर्जन्म होना सिद्ध हुआ। इन दो महान सिद्धांतों के प्रति नेहरू की इस दृढ़ प्रतिबद्धता के कारण ही यह देश साम्प्रदायिक दंगों तथा पृथकतावादी आन्दोलनों की विप्लवकारी घड़ियों के दौरान भी अपनी एकता तथा अखण्डता बनाए रखने में सफल रह सका। मजहब परस्त पाकिस्तान अपने अस्तित्व की एक चौथाई शताब्दी में ही विखण्डित हो गया तथा धर्मतांत्रिक देश श्रीलंका विघटन के कगार पर खड़ा है। चीन तथा बर्मा ने हाल ही में अपने-अपने यहां जो कुछ होते हुए देखा वह सब उन मूल्यों जिनके लिए नेहरू जी डटे रहे थे के प्रति पूर्ण निरादर के बुरे परिणामों का ही प्रकटीकरण है।

आज का स्वतंत्र, अखण्ड तथा औद्योगीकृत भारत उनके सृजनात्मक चिन्तन, वैज्ञानिक ढंग से किये गये आयोजित तथा रचनात्मक अन्वेषण कार्यों का ही परिणाम है। उन्होंने पुरानी पड़ चुकी पद्धति को एक प्रगतिशील पद्धति में बदला। उनके नेतृत्व में देश ने राजनीतिक स्वतंत्रता प्राप्त की तथा फिर देश आर्थिक स्वतंत्रता की ओर आगे बढ़ा। उनकी नीतियों तथा कार्यक्रमों के कारण ही देश खाद्यान्नों में आत्म-निर्भरता प्राप्त कर सका तथा हरितक्रांति सम्भव हो पाई। उनकी देखरेख में ही देश भारी औद्योगिकीकरण की ओर अग्रसर हुआ। पूर्णतः दूसरों पर निर्भर रहने वाला देश भारत अधिकांश निर्मित उत्पादों के क्षेत्र में एक आत्मनिर्भर देश बन गया। कृषि तथा औद्योगिक उत्पादन के क्षेत्रों में भारी वृद्धि हुई और उनकी किस्म में भी सुधार हुआ।

नेहरू ने कभी यह दावा नहीं किया कि वह किसी विचारधारा विशेष के जनक हैं परन्तु उन्होंने जो कुछ कहा, लिखा तथा किया उससे एक अलग सामाजिक विज्ञान तथा

राजनीतिक दर्शन पद्धति का निर्माण किया जा सकता है। समाजवादी ढांचे के समाज की रचना का उनका दृष्टिकोण एक अद्वितीय विचारधारा थी। उनकी यह विचारधारा उनके द्वारा भारतीय अर्थव्यवस्था की समस्याओं के गहन अध्ययन का ही परिणाम थी। समाजवाद उनके लिए केवल एक आर्थिक सिद्धांत ही नहीं था, उनके लिए यह व्यवस्था "आज की पूंजीवादी व्यवस्था से सर्वथा भिन्न एक नई सभ्यता थी।" यह एक ऐसा सिद्धांत था जिसका उन्होंने पूरी तन्मयता से समर्थन तथा अनुपालन किया। सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रमों, सहकारी समितियों तथा निजी क्षेत्र पर सामाजिक नियंत्रण के माध्यम से उन्होंने अपने समाजवादी लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए एक नया रास्ता दिखाया।

राष्ट्रभक्ति तथा अंतर्राष्ट्रीय दोनों ही उनमें विद्यमान थी। उन्हें हिमालय तथा गंगा, वनस्पति तथा जीव जन्तुओं तथा भारत के पर्वतों तथा खेतों सभी से अगाध प्रेम था। जब भी उन्हें अपनी मातृभूमि का वर्णन करने का अवसर प्राप्त होता था उनके शब्दों में कविता उमड़ पड़ती थी। उनकी वसीयत काव्यात्मक गद्य का एक अद्भुत नमूना है जो देश की मिट्टी के प्रति उनके अगाध प्रेम तथा मातृभूमि के कण-कण से उनके जुड़े होने की भावना को दर्शाती है। इसके साथ ही वह एक उदार मानववादी भी थे। उन्हें यह विश्वास था कि स्वतंत्र भारत प्रत्येक स्तर पर विश्व में एक महत्वपूर्ण भूमिका अदा करने जा रहा है। उन्हें यह आशा थी कि भारत सदैव मानवता की भावना पर जोर देगा तथा मानवता की भावना ही परमाणु बम पर विजयी होगी।

उनकी देशभक्ति क्षणिक तथा भावुकतापूर्ण नहीं थी। इसी प्रकार उनका अंतर्राष्ट्रीयवाद भी ठोस बातों पर आधारित था। वह यह मानने के लिए तैयार नहीं थे कि भारत केवल इसलिए महान है क्योंकि वह स्वयं भारत में पैदा हुए। इस भावना तथा धारणा के पीछे उनके पास ठोस तर्क थे। जिन कारणों से हमारी संस्कृति अमर है, उन्होंने उन कारणों का पता लगाया और देश के सहस्त्रों वर्षों के इतिहास में एकता तथा निरन्तरता की मजबूत कड़ी की खोज की। उन्होंने अशोक तथा अकबर में धर्मनिरपेक्षता की एक विचित्र प्रकार की समानता ढूंढ़ निकाली। उनकी अंतर्राष्ट्रीयता का स्वरूप आध्यात्मिक था। उनकी मानवता में प्रसिद्ध उक्तियों "**वसुधैव कुटुम्बकम्**" तथा "सर्वे भवन्तु सुखिनः" का प्रभाव है जिनका अर्थ है कि सारा विश्व एक छोटे परिवार के रूप में है तथा सभी को सुखी रहना चाहिये। यह बात साम्राज्यवाद, रंगभेद तथा उपनिवेशवाद के विरुद्ध उनकी सतत लड़ाई से स्पष्ट हो जाती है। वह लोकतंत्र तथा समाजवाद को न केवल भारतीय समाज का आधार बनाना चाहते थे बल्कि वह इन्हें नई विश्व व्यवस्था के मूल ढांचे में भी लाना चाहते थे। उन्होंने बहुत से अफ्रीकी देशों के स्वतंत्रता आंदोलनों की हिमायत की जिससे उन लोगों के मनोबल को प्रोत्साहन मिला जो उपनिवेशी शासन को समाप्त करने के लिए लड़ रहे थे। गुटनिरपेक्षता के उनके दृष्टिकोण का अर्थ व्यक्तिगत स्वतंत्रता था। इस आन्दोलन में उनकी महत्वपूर्ण भूमिका का उद्देश्य राष्ट्रों के बीच परस्पर बराबरी, एक दूसरे के आंतरिक मामलों मे हस्तक्षेप न करने तथा सहअस्तित्व के एक नए युग की शुरुआत

करना था। इसी के अनुसरण में उन्होंने भगवान बुद्ध के "पंचशील" के सिद्धान्त को मूर्त रूप दिया। उन्होंने इस दर्शन का न केवल उपदेश ही दिया बल्कि उसका स्वयं पालन भी किया। इस दर्शन के प्रति उनकी निष्ठा समय की कसौटी पर खरी उतरी। सन् 1948 में पाकिस्तान ने काश्मीर पर आक्रमण किया तथा 1962 में देश ने चीन के विश्वासघाती आक्रमण को सहन किया। इससे गुटनिरपेक्षता की प्रासंगिकता पर संदेह होने लगा था। शान्तिदूत को भयावह युद्ध का सामना करना पड़ा । उनके आह्वान पर विश्व के 59 देशों ने चीनी आक्रमण की निन्दा की। हमारे देश को एक अद्‌भुत नैतिक समर्थन मिला, आक्रान्ता (चीन) को पीछे हटना पड़ा। हमारी अखण्डता चट्टान की तरह अडिग रही। विपदा के ये बादल उस दार्शनिक राजनेता की दूरदृष्टि को न धुंधला सके।

नेहरू की हर बात में एक संगीतमय तालमेल था। उनकी पसन्द तथा आदतें, उनका सौन्दर्य बोध, ज्ञान के प्रति उनकी जिज्ञासा, अभिव्यक्ति का प्रभावशाली ढंग, तरोताज़ा दूरदृष्टि, बच्चों के प्रति उनका प्रेम तथा जीवन के प्रति उनका एकीकृत दृष्टिकोण, ये सभी उनके उन सिद्धान्तों तथा नीतियों के साथ मेल खाते थे जिनके द्वारा वे विश्व राजनीति के शिखर पर पहुंचे। "भारत एक खोज" तथा "विश्व इतिहास की झलक" में जो कुछ उन्होंने लिखा उसमें कोई टकराव नहीं था। अपनी आत्मकथा उन्होंने भारतीय संघर्ष के सन्दर्भ में स्वयं को जमाने के लिए लिखी थी। वास्तविक भारत का पता लगाने के लिए उन्होंने "भारत एक खोज" लिखी तथा "विश्व इतिहास की झलक" लिखने के पीछे उनकी यह आकांक्षा थी कि वह अपने देश तथा अपने युग को विश्व इतिहास के उचित परिप्रेक्ष्य में देखना चाहते थे। लिखना उनके लिए कोई मनोरंजन नहीं था, उनके मतानुसार यह तो निश्चय ही सोचने का एक माध्यम था। प्रकृति से उन्हें उतना ही अगाध प्रेम था जितना महाकवि वर्ड्सवर्थ को था। उनकी यह उक्ति जंगलों के शानदार जीव जन्तु तथा सुन्दर-सुन्दर पक्षी जो हमारे जीवन को प्रफुल्लित करते हैं तथा भारत की विविधतापूर्ण ऋतुओं के बारे में उनके उल्लेख काव्यात्मक गद्य की एक लाजवाब मिसाल हैं। उनकी रचनाएं तथा भाषण उनके दिल और दिमाग की वास्तविक अभिव्यक्तियां हैं।

पंडित जी न केवल एक मजबूत शक्तिशाली तथा आत्मनिर्भर भारत अपितु एक आदर्श परिवार के भी निर्माता थे। इन्दिरा का भारत का पर्याय बन जाना इन्दिरा को दी गई उस शिक्षा का ही परिणाम था जो इन्दिरा को "पिता के पत्र पुत्री के नाम" के माध्यम से मिली थी। कर्मठ प्रधान मंत्री राजीव गांधी पारिवारिक वातावरण की ही देन है। पूरे विश्व में हमें इस परिवार जैसा परिवार नहीं मिलेगा। कृतज्ञ राष्ट्र नहीं भूल सकता कि पंडित जी में कितने महान गुणों का संगम था। वीरों जैसा साहस, संघर्ष करने की अदम्य शक्ति, कवियों जैसी कल्पना शक्ति तथा महान सृजन शक्ति। भारत के इतिहास में जो कुछ अच्छा और महान है नेहरू उसके प्रतिरूप थे। उनमें महात्मा बुद्ध जैसी सहृदयता और शंकर जैसी बुद्धिमत्ता थी। टैगोर ने उन्हें उचित ही "ऋतु राज" की संज्ञा दी थी क्योंकि वह यौवन तथा असीम आनन्द की ऋतु का द्योतक थे, उनमें बुराई के विरुद्ध लड़ने की अजेय शक्ति तथा स्वतंत्रता के प्रति अटल निष्ठा थी।

11

प्रो. नूरुल हसन

जवाहरलाल नेहरू और राष्ट्रीय एकता

पंडित जी को इस बात का गर्व था कि वह पहले भारतीय हैं और बाद में कुछ और। उन्होंने लोगों के कुछ वर्गों के इस रवैये के प्रति दुख जाहिर किया था जो अपने आपको सबसे पहले एक अथवा देश के दूसरे भाग का अथवा इस धर्म अथवा दूसरे धर्म का अथवा एक या दूसरी भाषा का बताते हैं। उन्होंने अनेकता में एकता की धारणा को बढ़ावा दिया। वह लोगों के प्रत्येक वर्ग को यह आश्वासन देने की आवश्यकता के प्रति पूरी तरह से जागरूक थे कि उनकी संस्कृति, धर्म, आर्थिक और सामाजिक हित स्वतंत्र भारत में सुरक्षित रहेंगे। जब भारत स्वतंत्र हुआ और वह पहले प्रधान मंत्री बने तो उन्होंने सभी वर्गों के अधिकारों और हितों की सुरक्षा सुनिश्चित करने का भरपूर प्रयास किया। जवाहर लाल नेहरू का यह विश्वास था कि धर्म अथवा जाति अथवा भाषा अथवा क्षेत्र के नाम पर होने वाले झगड़े मूलतः सामाजिक और आर्थिक कारणों से होते हैं। उन्होंने इस बात पर जोर दिया कि प्रत्येक वर्ग के लोगों का कर्त्तव्य है कि वे पूरे देश के कल्याण के बारे में सोचें और उन्हें निहित हितों के विरुद्ध लड़ना चाहिए।

नेहरू जी ने यद्यपि औपचारिक शिक्षा प्राकृतिक दर्शन शास्त्र में ग्रहण की थी जिसमें रसायन शास्त्र और वनस्पति विज्ञान पर विशेष बल दिया गया था परंतु वे मूलतः एक इतिहासवेत्ता थे तथा वे अपनी ऐतिहासिक पृष्ठभूमि कभी नहीं भूले। मैं राष्ट्रीय एकता के संदर्भ में भारत की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि के केवल दो या तीन उदाहरण दूंगा जो भारत के स्वतंत्रता आंदोलन के दौरान अत्यंत महत्वपूर्ण माने गये थे जैसे साम्प्रदायिकता, जिसे सुलझाना हमारे लिए आज भी बहुत बड़ी समस्या है। उन्हें धार्मिक सहिष्णुता की भारतीय परम्परा पर गर्व था, जिसका अनेक प्रबुद्ध राजाओं ने अनुसरण किया तथा विभिन्न धर्मों के संतों ने जिसे प्रतिपादित किया। इस परम्परा को वे राष्ट्रीय एकता का आधार माने हैं जो कि स्वतंत्रता संग्राम के लिए बहुत महत्वपूर्ण था।

इस संबंध में मैं पाठकों का ध्यान एक तरफ यूरोप और पश्चिम एशिया की तथा दूसरी तरफ भारत की सोलहवीं सदी में विरोधात्मक स्थिति की ओर आकर्षित करना चाहता हूं।

उस सदी के मध्य में मध्य यूरोप में प्रोटेस्टेंट धर्म के उदय होने पर जर्मनी के कई राज्य धर्म के नाम पर लड़ते रहे और एक संधि के साथ ये युद्ध समाप्त हुए। इसका सिद्धांत यह था कि प्रत्येक राजा अपना धर्म चुनेगा और वही उसके लोगों का धर्म समझा जायेगा।

पेरिस में, जो कि विश्व का सुन्दरतम शहर है, 1572 में सेंट बार्थोलोम्यू के दिन धार्मिक असहिष्णुता के कारण भीषण नरसंहार हुआ था। वह सत्रहवीं शताब्दी के प्रारंभ की ही बात है कि फ्रांस में इस बात का दावा किया जाने लगा था कि नान्तीस के परमादेशों के फलस्वरूप फ्रांसीसी ह्यूगनाट्स दल में सहिष्णुता पैदा हो गई। आगे चलकर प्रसिद्ध फ्रांसीसी सम्राट लुई चौदहवें ने 1698 के अंत में इन आदेशों को पुनः प्रमुखता दी।

परशिया के नजदीक सफाविद राजवंश शासन कर रहा था। यह शिया राजवंश था और सुन्नियों पर अत्याचार करने से नहीं हिचकता था। मध्य एशिया में एक सुन्नी उजबेक राजवंश का शासन था, जिसने शिया लोगों पर अत्याचार किया। वास्तव में उस समय का सुन्दरतम स्मारक, जो बचा रह गया था, "मदरसा" है जिसका निर्माण शिलालेख के अनुसार शिया धर्म के खिलाफ लड़ने के लिए किया गया था।

परंतु भारत में अकबर ने सुलह-ए-कुल दर्शन (सब के साथ शांति) को अपनाया जहां पर किसी भी धर्म के अनुयाइयों के विरुद्ध कोई भेदभाव न तो बरता जाता और न सहन किया जाता और लोगों को अपना धर्म बदलने की भी छूट थी, बशर्ते कि धर्मान्तरण स्वैच्छिक हो, किसी दबाव या लालच के अधीन न हो। सहिष्णुता की यह परम्परा भारत की प्राचीन परम्परा है जिसे पहली बार महान सम्राट अशोक ने प्रमुखता से अपनाया। राष्ट्रीय प्रतीक को अशोकचिन्ह से लेने का यह एक कारण है।

18वीं शताब्दी में ईस्ट इंडिया कम्पनी के गवर्नर जनरल लार्ड कार्नवालिस ने मैसूर के शासक टीपू सुल्तान पर विजय प्राप्त करने के बाद हिन्दू राजाओं को पत्र भेजा कि उसने टीपू सुल्तान के विरुद्ध सिद्धांत रूप से इसलिए कार्यवाही की है क्योंकि वह हिन्दू विरोधी था और मुसलमान शासकों से उसने यह कहा कि उसने टीपू सुल्तान के विरुद्ध इसलिए कार्यवाही की क्योंकि उसने मराठों से मेल मिलाप कर लिया था। लार्ड कार्नवालिस को स्वाभाविक रूप से यह उम्मीद थी कि इसका यह धार्मिक तर्क भारत के शासकों पर गहरा प्रभाव छोड़ेगा। शासकों के उत्तर सौभाग्यवश मौजूद हैं। वे साम्प्रदायिक झांसे में नहीं आये। उन्होंने कार्नवालिस को केवल उसकी सफलता पर बधाई दी।

चार दशक पूर्व 1753 में एक बहुत प्रसिद्ध ब्रिटिश यात्री ओरमन, ने भारत के बारे में एक पुस्तक लिखी थी। उसे यह जानकार आश्चर्य हुआ था कि इस देश में हिन्दू और मुसलमान एक दूसरे से नहीं लड़ते हैं। फिर उसने अपना मत प्रकट किया जिसे अनेक भारतीय नेताओं ने स्वीकार किया कि मुसलमान ठंडे प्रदेश से आये हैं और हिन्दू गर्म देश

में रहते हैं। हिन्दुओं का मुसलमान शासन को स्वीकार करने का एक कारण यह भी है। यूरोपियन, भारत की सहिष्णुता की संस्कृति और एक साथ रहने की कला पर आश्चर्यचकित थे। पंडित जी ने अपने ऐतिहासिक दृष्टिकोण से इसे समझा और इस पर जोर दिया।

स्वतंत्रता संग्राम के दौरान अपने भाषणों में उन्होंने इस तथ्य पर जोर दिया कि हिन्दुओं और मुसलमानों को एक दूसरे के विरुद्ध लड़ने नहीं दिया जाना चाहिए। दोनों समुदायों के निहित स्वार्थी तत्व ही लड़ रहे थे।

नेहरू की आत्मकथा से लिये गये इस छोटे से पैराग्राफ में उनके विचार प्रकट होते हैं :—

> "भारत को एक धार्मिक देश माना जाता है और हिन्दू और मुसलमान और सिख तथा अन्य सभी लोगों को अपने मतों पर गर्व है और एक दूसरे का सिर फोड़कर इसका सबूत देते हैं। भारत में और अन्यत्र, धर्म की इस धारणा अथवा संगठित धर्म से भयग्रस्त हूं और मैंने बार-बार इसकी निन्दा की है और चाहता हूं कि इसका बिल्कुल सफाया हो जाये। लगता है ये सब अंधविश्वास और प्रतिक्रिया, हठधर्मिता, तामसी निष्ठा और शोषण निहित स्वार्थों के संरक्षण के लिए है फिर भी मैं अच्छी तरह जानता हूं कि इसमें कुछ ऐसी बात है, कुछ ऐसी चीज जो मानव जाति में गहराई तक जाती है अन्यथा यह असीम शक्ति कैसे हो सकती थी जो अनगिनत घायल दिलों को शांति और आराम देती है।"

मेरी दृष्टि में यह नेहरू की धर्म के प्रति मूल प्रवृत्ति का द्योतक है। उन्होंने महसूस किया था कि धर्म को निहित स्वार्थी तत्वों द्वारा सिरों को फोड़ने के लिए उपयोग नहीं करने देना चाहिये बल्कि उसे इस रूप में देखा जाना चाहिए कि लोगों की अंतरात्मा के लिए शांति और आराम लाने के लिए इसमें कहीं अधिक गहराई है।

हम ऐसा धर्मनिरपेक्ष संविधान बनाने के लिये जवाहर लाल नेहरू के नेतृत्व के ऋणी हैं, जो भारतीय लोगों की उन जरूरतों को दर्शाता है जो अब तक न तो स्पष्ट थीं और न ही सुपरिभाषित। जवाहर लाल नेहरू के इसी ऐतिहासिक अवबोधन के कारण ही साम्प्रदायिक समस्या का यह नवीन हल निकल पाया।

धर्म को छोड़कर राष्ट्रीय एकता का दूसरा पहलू जिसका मैं उल्लेख करना चाहता हूं वह है जाति। गांधी जी की भांति, जवाहर लाल नेहरू जाति के आधार पर भेदभाव करने का कोई औचित्य नहीं पाते थे और जातिवाद का सर्वाधिक घृणित स्वरूप अस्पृश्यता थी। इसलिये संविधान ने अस्पृश्यता का उन्मूलन कर दिया है। संसद ने, जो लोग किसी भी रूप में अस्पृश्यता बरतते हैं, उन्हें दण्ड देने के लिये कानून बना दिया है। परन्तु अस्पृश्यता से तब तक नहीं लड़ा जा सकता, जब तक हम जातिवाद के विरुद्ध न लड़ें। जवाहर लाल ने लोगों के साथ उनकी जाति के आधार पर कभी भेदभाव नहीं किया।

चुनावों के नाम पर जाति और जातिवाद को, निहित स्वार्थी राजनीतिक नेताओं द्वारा नया जीवन दिया जा रहा है। यदि वे नेहरू का अनुकरण करते हैं, तो उन्हें जातिवाद के विरुद्ध निरन्तर लड़ना चाहिये और जहां पर ऐसा प्रतीत हो कि उन्हें जाति से लाभ मिलेगा, वहां उसके लालच की भावना से बचना होगा। परन्तु स्वतंत्र भारत के इतिहास ने इसे पर्याप्त रूप से स्पष्ट कर दिया है कि ये लाभ भी अल्पकालिक हैं। अन्ततः इनसे देश को हानि होती है और यह उस राजनीतिक दल को भी हानि पहुंचाता है जो जातिवाद की शरण में जाता है।

जब दूसरी बार जवाहर लाल नेहरू भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के अध्यक्ष थे—मैं 1936 में लखनऊ कांग्रेस का उल्लेख कर रहा हूं—उन्होंने उन क्षेत्रों की ओर झांकने का विशेष रूप से प्रयास किया, जिनके प्रति उपेक्षा बरती गई थी। मैं ब्रिटिश कानूनों के अंतर्गत तकनीकी शब्द का प्रयोग कर रहा हूं—और उन्होंने अखिल भारतीय कांग्रेस समिति कार्यालय को इन उपेक्षित क्षेत्रों के लोगों के हितों को देखने का निर्देश दिया। उन्होंने महसूस किया कि इन क्षेत्रों में तथा अन्य स्थानों पर जनजातियों को राष्ट्रीय मुख्यधारा से अलग रखा गया था और उस रूप में उन्हें विकसित नहीं होने दिया गया था जैसे देश के अन्य भाग। इसीलिये संविधान में अनुसूचित जनजातियों और अनुसूचित क्षेत्रों के लिये जिनमें इन जन-जातियों के लोग रहते हैं, इतने अधिक सुरक्षोपायों की व्यवस्था की गई है।

नेहरू को इन लोगों के कल्याण की बेहद चिन्ता थी। वे नहीं चाहते थे कि भारत सरकार ऐसे कोई कदम उठाये जिससे इन जन-जातियों के लोगों की पहचान खत्म हो जाये। वे नहीं चाहते थे कि वे अजायबघर के प्राणी बने रहें। वे चाहते थे कि वे लोग स्वयं आगे बढ़ें, अपनी योग्यतानुसार बढ़ें तथा अपनी गरीबी और पिछड़ेपन को दूर करें। अनुसूचित जनजातियों के विकास में उनके योगदान और उनके प्रति उनके कल्याण की भावना, जो उन्होंने देश के राजनीतिक नेतृत्व में उत्पन्न की, को हमेशा याद रखा जायेगा और इसके लिये हम उनके आभारी हैं।

राष्ट्रीय एकता के जिस अन्य पहलू पर नेहरू ने जोर दिया, वह था—भाषा। हम इस लक्ष्य को नहीं भूल सकते कि संविधान में भारत के प्रत्येक वर्ग के लोगों को अपनी भाषा, अपनी संस्कृति और अपनी लिपि के संरक्षण के अधिकार की गारन्टी दी गई है और संविधान की एक अनुसूची में भारत की वे सभी प्रमुख भाषाएं सूचीबद्ध की गई हैं जिनको राष्ट्रीय भाषा का दर्जा दिया गया है। स्पष्ट है कि हमारे जैसे संघीय देश में एक सम्पर्क भाषा का होना आवश्यक है और यह महसूस किया गया कि वह भाषा हिन्दी ही हो सकती है! परन्तु यह नेहरू की राजनीतिज्ञता और दूरदर्शिता थी कि उन्होंने सरकार की ओर से संसद में जो यह आश्वासन दिया था, एक ऐसा आश्वासन जिसका सम्मान संसद ने तब से अब तक लगातार एकमत से किया, कि जब तक गैर-हिन्दी भाषी राज्य हिन्दी

को सम्पर्क भाषा के रूप में न स्वीकार कर लें, अंग्रेजी सहायक सम्पर्क भाषा बनी रहेगी और सभी किस्म के व्यावहारिक प्रयोजन के लिये उन सभी राज्यों से पत्राचार अंग्रेजी के माध्यम से किया जायेगा।

यह राष्ट्र और राष्ट्रीय एकता के लक्ष्य के लिये जवाहर लाल जी की अति महत्वपूर्ण देन है। यह केवल औपचारिक निर्णय ही नहीं था, बल्कि इसका बहुत गहरा अर्थ था और वह अर्थ था कि हमारे देश के प्रत्येक क्षेत्र को इस बात के लिये पूरी तरह आश्वस्त किया गया था कि वह अपनी प्रतिभा सुरक्षित रख सकता है और वह अपनी इच्छानुसार अपना विकास कर सकता है तथा उसे राष्ट्रीय सम्पत्ति का बराबर हिस्सा मिलेगा, लेकिन इसके लिये उसे अपनी पहचान खोने के लिये बाध्य नहीं किया जायेगा।

जिन लोगों ने पंडित जी को बोलते हुए सुना है, उनको वह उपमा याद आयेगी कि वे अक्सर भारत को एक ऐसी माला के रूप में बतलाते थे जिसका अपना सौंदर्य इसलिये है कि इसमें भिन्न-भिन्न रंगों और किस्मों के फूल हैं, और फिर भी यह सम्पूर्ण रूप में एक सुन्दर माला ही बनी हुई है, क्योंकि यह एक साथ पिरोई गई है। उन्होंने यह उपमा कई बार दी थी, और यह बात आज भी उतनी ही युक्तिसंगत और सत्य है।

सभी लोगों की सांस्कृतिक पहचान, उनकी भाषा, उनकी लिपि, उनका धर्म, उनके रहने के ढंग को सुरक्षित रखने के अधिकारों को सुनिश्चित करते समय जवाहर लाल नेहरू संकीर्णता और उग्र प्रांतीयता को बढ़ावा देने वाले उन धार्मिक अथवा भाषायी नारों के खतरे के प्रति कम चिन्तित नहीं थे जिनसे राष्ट्र की एकता खतरे में पड़ सकती थी। इसलिये उन्होंने वैज्ञानिक दृष्टिकोण की वकालत की। नेहरू द्वारा प्रारूपित वैज्ञानिक नीति संकल्प, जिसे 1958 में संसद के दोनों सदनों में रखा गया था, के अनुसार देश में वैज्ञानिक रुझान के सृजन पर बल दिया गया था। इसमें तर्कवाद की भावना तथा अंधविश्वास और ज्ञान के विरोध को अस्वीकार करने की क्षमता अन्तर्निहित थी। नेहरू का विचार था कि देश की अखण्डता सुनिश्चित करने के लिये, ये उपयोगी और शक्तिशाली औजार साबित होंगे।

हम प्रायः वैज्ञानिक रुझान के सृजन की बात तो करते हैं परन्तु इस संबंध में हम असफल ही रहे हैं। संप्रदायवाद, जातिवाद और भाषायी कट्टरता के प्रेत ने अभी हमारा पीछा नहीं छोड़ा है। यह आवश्यक हो गया है कि हम अपनी शिक्षा प्रणाली की पुनरीक्षा करें और यह सुनिश्चित करें कि इसमें राष्ट्रीय एकता के मूल्यों का प्रतिबिम्ब उभरे।

12

डा. गोपाल सिंह

आदर्श लोकतंत्रवादी नवाहरलाल नेहरू

हमने सुसंस्कृत आदर्शवादी जवाहरलाल नेहरू के बारे में बहुत कुछ पढ़ा और सुना है, जिन्होंने अपनी मातृभूमि की आजादी के लिए लम्बे समय तक संघर्ष किया। वह एक धनी महान पिता के एकमात्र पुत्र थे, जिन्होंने परेशानियों का वरण किया और अपने को निर्धनतम व्यक्ति के साथ जोड़ दिया। वह एक जन्मजात लोकतंत्रवादी थे, जिन्होंने समाजवाद को लेकर अपने परामर्शदाता महात्मा गांधी के साथ भी अनेक बार लड़ाई की। उन्होंने हमारे देश के बंटवारे से उत्पन्न हुई उथल-पुथल का सामना किया और व्यवस्था कायम की। वे 50 करोड़ जनसंख्या वाले पिछड़े कृषि प्रधान देश को भारी कठिनाइयों का सामना करते हुए विश्व के औद्योगिक देशों की श्रेणी में लाए। वह एक महान देशभक्त होते हुए भी इतिहास के विश्व दृष्टिकोण के साथ गहराई से जुड़े हुए थे। उन्होंने धार्मिक विद्वेष से बुरी तरह बंटे हुए एक राष्ट्र में धर्मनिरपेक्षता को एक नई सार्थकता प्रदान की। वह अभावग्रस्त रखे गए राष्ट्र के ऐसे ईमानदार नेता थे, जिसे न तो धन का लालच विचलित कर सकता था और न ही जिसे ताकत के बल पर झुकाया जा सकता था और उन्होंने महाशक्तियों को छोड़कर जो आज की तरह उस समय की छोटी-छोटी बातों के लिए दलित राष्ट्रों को अपनी दया पर आश्रित रखते थे, गुटनिरपेक्षता का चयन किया और इस तरह विश्व भर के सभी निर्धन व्यक्तियों को नैतिक गरिमा प्रदान की और उनमें आशा का संचार किया..... और बावजूद इसके कि उन्हें पूर्ण शक्ति प्राप्त थी और अपने समस्त देशवासियों का संपूर्ण प्यार और आदर प्राप्त था, वह अपने विचारों और कार्यों में हमेशा ही लोकतंत्रवादी रहे।

विनम्रता

यह सर्वविदित है, यद्यपि लोगों द्वारा अपनी व्यक्तिगत आकांक्षाओं और उस समय की परिस्थितियों के अनुरूप उनका मूल्यांकन किया गया, तथापि, कोई भी इतिहास के अमर व्यक्तियों की श्रेणी में उनके स्थान को इन्कार नहीं कर सका है। लेकिन उनकी जन्मजात विनम्रता की भावना, लोकतांत्रिक और मानवतावादी मूल्यों में उनकी अटूट

आस्था, क्षमाशीलता और सहानुभूति तथा दूसरे व्यक्ति के दृष्टिकोण को समझने और अपने विरोधी के साथ भी समझौता करने की तत्परता की उनकी धार्मिक भावना के बारे में लोगों को कम जानकारी है।

उनकी उपलब्धियां सचमुच महान हैं लेकिन जो कुछ उन्हें प्राप्त नहीं हुआ या वे प्राप्त नहीं कर सके, उसका कारण यह नहीं था कि उसके लिए उन्होंने प्रयास नहीं किया अपितु इस कारण कि गांधी जी के साथ-साथ उनका भी यह दृढ़ मत था कि साधन भी उतने ही महत्वपूर्ण हैं जितने कि लक्ष्य, महान लक्ष्य संकीर्ण दृष्टिकोण से प्राप्त नहीं किए जा सकते और यदि बेईमानीपूर्ण चालों, झूठ, हिंसा अथवा कपट से कुछ प्राप्त भी कर लिया जाता है, तो वह अधिक समय तक नहीं टिक सकता। यह सत्ता सम्पन्न व्यक्ति कितना विरला था कि उसके चले जाने के बाद कोई भी कह सकता है, "वह महान और शक्तिशाली थे, लेकिन इससे भी अधिक बात यह थी कि वह एक अच्छे व्यक्ति थे।"

महत्वपूर्ण प्रसंग

पंजाब स्टूडेंट्स फेडरेशन के अध्यक्ष के रूप में 1936 में मेरा जवाहरलाल नेहरू से परिचय हुआ। हमने पंजाब के अमृतसर स्थित एकमात्र सिख कालेज में ब्रिटिश समर्थक प्रबंधकों के विरुद्ध, जिन्होंने हमारे कुछ राष्ट्रवादी प्रोफेसरों और छात्रों को बर्खास्त कर दिया था. 21 दिवसीय हड़ताल की थी। इसमें हम केवल आंशिक रूप से सफल रहे, परिस्थितियां हमारे बहुत अधिक प्रतिकूल थीं, यद्यपि हम कालेज भवन पर कांग्रेस का तिरंगा झंडा फहराने में सफल हुए, जिसे हमने प्रतिष्ठा का प्रश्न बना लिया था। उस युवावस्था में जिस बात ने हमारे जीवन को सर्वाधिक रोमांचकारी मोड़ दिया, वह थी देश के सबसे बड़े राजनीतिक व्यक्तित्व के साथ हमारी निकटता। पंजाब और सीमांत प्रांत के समस्त राष्ट्रवादी नेतृत्व ने हमारे पास आकर और हमारे युवा संवेदनशील मस्तिष्कों को अपनी देशभक्ति की भावना से ओतप्रोत करके हमारा समर्थन किया। लेकिन सर्वाधिक अप्रत्याशित बात थी—देशभर में नौजवानों के आदर्श जवाहरलाल नेहरू के एक संदेश से प्राप्त हुई प्रेरणा, जिसने समूचे वातावरण में स्फूर्ति का संचार कर दिया था जो कोई दूसरा व्यक्ति नहीं कर सकता था।

उन्होंने कहा (मैं स्मरण शक्ति से उन्हें उद्धृत कर रहा हूं) कि हमें इस बात की चिंता नहीं करनी चाहिए कि हम अपने संघर्ष में तत्काल सफल होते हैं अथवा नहीं, लेकिन यदि हमारा उद्देश्य सही है और हम इसके लिए त्याग करने के लिए तैयार हैं, तो अंततोगत्वा हमें सफलता अवश्य मिलेगी। यद्यपि उन्हें तेज-तर्रार व्यक्ति समझा जाता था, उन्होंने हमसे हमारे कार्यकर्त्ताओं में कठोर अनुशासन बनाए रखने और ऐसा कुछ न करने के लिए कहा जिससे अधिकारियों को हमारे पक्ष को कमजोर बनाने अथवा दमनकारी उपाय करने का मौका मिले।

हमें ऐसा भी कुछ न करना चाहिये जिससे किसी को जानमाल का नुकसान हो अथवा जिससे कटुता पैदा हो और हमें सम्मानजनक समझौता करने के लिए सदैव तैयार रहना चाहिये। यह हमारे लिये अत्यधिक आश्चर्य की बात थी, जब उन्होंने वास्तव में कहा, "अपने संकल्प से विचलित नहीं होना चाहिये अथवा दमन के सामने झुकना नहीं चाहिये। लेकिन साथ ही तथ्यों से इंकार करने का दुराग्रह भी नहीं करना चाहिये।" मैं चाहता हूं कि कोई व्यक्ति विभिन्न मुद्दों पर आज के आन्दोलनकारियों तक यह संदेश पहुंचाये। हम कितनी ही बार कुछ राजनीतिक आकांक्षाओं को जीवन के सर्वोपरि सिद्धांत समझ बैठते हैं।

देश का विभाजन हुआ। पाकिस्तान से सैलाब की तरह गैर-मुस्लिम शरणार्थी आ रहे थे और उनके साथ आ रही थी कत्ल, बलात्कार और अपरहण की दिल दहलाने वाली घटनाएं और निर्दोष भारतीय मुसलमानों से इसका भयंकर प्रतिशोध लिया जा रहा था। लेकिन यहां के भारत के सहृदय प्रधानमंत्री स्वयं व्यक्तिगत रूप से दिल्ली के दंगाग्रस्त क्षेत्रों का दौरा कर रहे थे और धर्म के आधार पर इस देश का विभाजन हो जाने के बावजूद लोगों को सांत्वना दे रहे थे, साम्प्रदायिक मार-काट में लगे लोगों को फटकार रहे थे, उसे रोक रहे थे और उन्हें अलग कर रहे थे। साम्प्रदायिकता से कितनी दूर थे वह।

हम इस बात से अवगत हैं कि जवाहरलाल नेहरू ही थे जिन्होंने अपने तीव्र मतभेदों के बावजूद जयप्रकाश नारायण को 1953 में केन्द्रीय मंत्रिमंडल में स्थान दिया था जिसे जयप्रकाश जी ने अपने 14 सूत्री समाजवादी कार्यक्रम को क्रियान्वित करने हेतु ग्रहण करने से इंकार कर दिया और प्रजा सोशलिस्ट पार्टी के कांग्रेस में विलय की समझौता वार्ता असफल हो गई। लेकिन जवाहर लाल नेहरू ने राष्ट्र को अपनी पूर्णरूपेण निःस्वार्थता से अवगत करा दिया था।

नि:स्वार्थता

हमारे स्वाधीनता संग्राम में उनके एक समय के सम्मानित साथी मास्टर तारा सिंह ने समयपूर्व अलग रास्ता अख्तियार कर लिया था और स्वतंत्रता-प्राप्ति से कुछ समय पूर्व उन्होंने अनेक आन्दोलनों का नेतृत्व किया, जिनमें सब से खराब 1959 का आन्दोलन था। उन्हें गिरफ्तार कर लिया गया और धर्मशाला जेल भेजा गया।

उनके छोटे भाई प्रोफेसर निरंजन सिंह ने, जो एक प्रसिद्ध राष्ट्रवादी और किसी समय मेरे रसायन विज्ञान के प्रोफेसर रहे थे, मुझ से मास्टर तारा सिंह की रिहाई के लिये, क्योंकि वे जेल में गंभीर रूप से बीमार हो गये थे, जवाहर लाल नेहरू के साथ उनके अच्छे संबंधों का उपयोग करने की दृष्टि से, प्रजा सोशलिस्ट पार्टी के नेता श्री जयप्रकाश नारायण के पास उनके साथ चलने के लिये कहा। उनके भाई की दलील थी कि "जयप्रकाश जी ही एकमात्र ऐसे व्यक्ति हैं, जिनकी बात वह सुनेंगे।"

सांत्वना देने वाला स्वभाव

मैं समझ नहीं सका कि क्या कारण था? जयप्रकाश राजनीतिक रूप से जवाहर लाल जी के कट्टर विरोधी थे, यद्यपि व्यक्तिगत रूप से उनके परस्पर बहुत अच्छे संबंध थे। जयप्रकाश हस्तक्षेप करने के लिये तैयार हो गये और अगले ही दिन मास्टर तारा सिंह को रिहा कर दिया गया। इससे प्रत्येक व्यक्ति को आश्चर्य हुआ, और जयप्रकाश ने जवाहर लाल जी के समक्ष यह तर्क रखा था — "मास्टर तारा सिंह सबसे महान स्वतंत्रता सेनानियों में से एक हैं और विपक्षी नेता के रूप में एकदम सत्यनिष्ठ हैं। हमें उन्हें जीवित एवं स्वस्थ रखना चाहिये।"

अपनी कार्यशैली के अनुरूप कुछ महीने बाद मास्टर तारा सिंह ने आमरण अनशन करने की धमकी दी क्योंकि उनका विचार था कि उन्हें कांग्रेस दल और खासतौर पर जवाहरलाल नेहरू के "जोड़ तोड़" द्वारा शिरोमणि गुरुद्वारा प्रबंधक कमेटी के अध्यक्ष के चुनाव में हराया गया है।

वह दिल्ली आये और अपने निर्णय की घोषणा कर दी। मैं मास्टर तारासिंह से मिला (यद्यपि मैं उनकी साम्प्रदायिक नीतियों के कारण उनका सदैव आलोचक रहा लेकिन फिर भी उनकी सम्मान और एकनिष्ठता की भावना के लिये मैं उनका आदर करता था) और एक निराधार शिकायत को लेकर उनसे आमरण अनशन न करने का अनुरोध किया।

मेरे अनुरोध पर मास्टर तारासिंह ने पंडित जी को एक पत्र लिखा, जिसमें उन्होंने अपने आमरण अनशन पर जाने के कारण बताये और मेरे समझाने के बावजूद गुरुद्वारा प्रबंधक कमेटी के चुनाव में अपनी पराजय के लिये उनको जिम्मेदार ठहराया। मैं उसी शाम पंडित जी से मिला और समूची पृष्ठभूमि उनके समक्ष स्पष्ट की और कथित शिकायत के आधार पर पुराने सिख नेता को ठेस पहुंची भावनाओं को शांत करने का अनुरोध किया।

कुछ संकोच के बाद पंडित जी ने कहा, "आप जानते हैं, इस व्यक्ति से निपटना असंभव है। उन्हें अपने दिमाग का ही पता नहीं है। वह अपनी बातों पर दृढ़ नहीं रहते। वह कठिनाइयां पैदा करते हैं और अपने राष्ट्रवादी दृष्टिकोण तथा देश की स्वतंत्रता और बलिदान के लिये विख्यात समुदाय में साम्प्रदायिकता भड़काते हैं। वह देश की तुलना में इस समुदाय के हितों को अधिक नुकसान पहुंचा रहे हैं।" मैं उनसे सहमत नहीं था फिर भी मैंने नेहरू जी के समक्ष दलील रखी कि मास्टर तारा सिंह द्वारा पैदा की गई नाजुक स्थिति को रोका जाना चाहिये।

पंडित जी मेरी दलीलों के सामने झुक गये और उन्होंने मास्टर तारा सिंह के पत्र का उत्तर देते हुए उनकी भावनाओं को शांत करते हुए पत्र लिखा। जब मास्टर तारा सिंह को यह पत्र मिला तो अखबार वालों ने इस पत्र का पाठ जानना चाहा लेकिन मास्टर जी ने इसे प्रकट नहीं किया यद्यपि उन्होंने पत्र मिलने के तुरंत बाद अपना आमरण अनशन छोड़ने के निर्णय की घोषणा कर दी।

इस पर समाचार पत्रों तथा आम जनता में तीखी टिप्पणियां की गईं और अटकलें लगाई गईं। लेकिन जब मास्टर तारा सिंह ने वह पत्र मुझे दिखाया तो मैं आश्चर्यचकित रह गया।

पत्र में नेहरू जी ने मास्टर तारा सिंह की पराजय में अपनी किसी भी तरह की जिम्मेदारी से इंकार किया और कहा कि राजनीतिक कारणों से किये जाने वाले अनशन लोकतंत्र विरोधी हैं। उन्होंने गांधी जी के अनशनों का भी विरोध किया था। इसके साथ-साथ नेहरू जी ने लिखा, कि वह मास्टर तारा सिंह द्वारा बताई जाने वाली सिखों की किसी भी परेशानी की चर्चा करने के लिये तैयार हैं। अंत में जवाहरलाल ने लिखा था, "तथापि, यदि आप अब भी यह अनुभव करते हैं कि मैंने किसी भी तरह आपकी भावनाओं को ठेस पहुंचाई है, तो मैं आपसे क्षमा मांगता हूं।"

मैं तथा मास्टर तारा सिंह दोनों ही शोकमग्न थे, वृद्ध संत मुझसे कह रहे थे "केवल इसी एक वाक्य के कारण मैंने यह पत्र प्रैस को नहीं दिखाया। जवाहर लाल इतने विनम्र थे कि उन्होंने मुझसे, उनके द्वारा मुझे पहुंचाये गये किसी भी दुख के लिये क्षमायाचना की। क्या मैं इतना अधम हूं कि इसका प्रैस में प्रचार करूं।"

शेख मोहम्मद अब्दुल्ला के बहुत वर्षों तक नज़रबंद रहने के कारण भी वह नाखुश थे। और उनके उपकार का एक अंतिम कृत्य शेख अब्दुल्ला को बिना किसी शर्त के रिहा करना तथा न केवल अपने पास रहने का निमंत्रण देना बल्कि बाद में उन्हें भारत और उसके पड़ोसी पाकिस्तान के बीच स्थायी शान्ति स्थापित करने के लिये अपना व्यक्तिगत दूत बना कर वहां भेजना भी था। किन्तु दुर्भाग्य से यह न होना था और शेख अब्दुल्ला अभी पाकिस्तान में ही थे कि जवाहर लाल का निधन हो गया। उनके निधन का शोक शेख अब्दुल्ला से अधिक किसी को नहीं हुआ।

केवल उन्हीं के नैतिक स्तर और आदर्शवादी मिजाज का व्यक्ति ही अंतिम वायसराय को स्वतंत्र भारत का प्रथम गवर्नर-जनरल बनाने के लिये आमंत्रित कर सकता था और लगभग दो दशक तक राष्ट्रमंडल के विचार का विरोध करने के बावजूद उसमें रहने के लिये सहमत हो सकता था। भारत के भीतर भी उन्होंने विभिन्न वर्गों के बीच विरोध या दमन के बजाए सहयोग और सद्भाव की नीति को अपनाया।

मुझे असम से प्रजा सोशलिस्ट पार्टी के संसद् सदस्य हेम बरुआ से संबंधित एक घटना की जानकारी है। वह एक दिन मेरे पास आये, (क्योंकि हम संसद् सदस्य के नाते साउथ अवेन्यू एपार्टमेंट्स में पड़ोसी थे) और रोने लगे। मैंने उनसे पूछा कि उन्हें किस बात का इतना दुःख हुआ है कि वह इस प्रकार रो रहे हैं। उन्होंने बताया कि आज बहुत ही गलत काम किया है। अधिक दबाव डालने पर उन्होंने रोते हुए बताया, "आज मैंने सदन के भीतर पंडित जी की कटु आलोचना की है। किन्तु जब मैं लाबी में आया तो

पंडित जी मेरे पीछे-पीछे आये और मेरे कंधे पर हाथ रखकर पूछने लगे हेम, असमी साहित्य से संबंधित तुम्हारी पुस्तक कैसी चल रही है?" अपनी आत्मा पर उनकी उदारता के बोझ से मैं इतना दब गया कि मेरी इच्छा हुई कि पृथ्वी फट जाये और मैं उसमें समा जाऊं।

1962 के अंत में कृष्ण मेनन को जिन परिस्थितियों में मंत्रिमंडल से निकाला गया उससे हम सब परिचित हैं। उन्हें अत्यधिक आघात पहुंचा था। उनका विचार था कि वे दोषी नहीं हैं। समूचे मंत्रिमंडल ने निर्णय लिये थे जिनका उन्होंने पालन किया।

किन्तु, अपने महान नेता के निधन के पश्चात उनके मुख से उनके व्यक्तित्व या नीतियों के विरुद्ध प्रलोभनों या उकसाये जाने के बाद भी कभी एक शब्द भी नहीं निकाला। इस प्रकार की निष्ठा उन्हें अपने विश्वासपात्र मित्रों से प्राप्त हुई थी।

पंडित जी डा. एस. राधाकृष्णन, डा. जाकिर हुसैन, सर जान मथाई, डा. बी. आर. अम्बेदकर, डा. सी. डी. देशमुख, सर गोपाल स्वामी अयंगर, डा. तारा चन्द तथा बहुत से अन्य सुविख्यात बुद्धिजीवियों को, जो उनके साथ किसी भी क्षमता में काम करना चाहते थे, किस प्रकार लाये, यह प्रतिभा और चरित्र के प्रति उनके प्रेम का प्रमाण है।

एक सच्चे लोकतांत्रिक के रूप में उन्होंने जब कभी यह देखा कि सत्ताधारी दल गलती पर है तो वह विपक्ष (जबकि उसमें बहुत कमजोर और महत्वहीन वर्ग शामिल थे) के समक्ष झुके। उन्होंने, कई बार विपक्ष का मुंह रखने के लिये जानबूझ कर अपनी हार स्वीकार की, हालांकि वह उनके मामले की कमजोरियों के विषय में जानते थे। 1936 में कांग्रेस अध्यक्ष के रूप में उन्होंने कलकत्ता के "मार्डन रिव्यू" में "राष्ट्रपति की जय" शीर्षक से एक लेख (अज्ञात) लिखा था जिसमें उन्होंने लोगों को अपने ही विरुद्ध सावधान किया कि उन्हें इतनी जल्दी इतना ऊंचा न उछालें कि वह एक अन्य सीजर बने और लोगों की इच्छाओं की उपेक्षा करने लगें। इतिहास में ऐसा दुर्लभ उदाहरण कहां मिल सकता है ?

चीन ने इस देश का बहुत बुरा किया था किन्तु उन्होंने संयुक्त राष्ट्र या अन्य मंचों पर उसे अपना समर्थन देना नहीं छोड़ा। पाकिस्तान ने प्रायः उन्हें धमकाने और ब्लैकमेल करने का प्रयत्न किया। वह इस देश में मुसलमानों के प्रबल संरक्षक रहे और अरब समुदाय के सच्चे मित्र रहे।

उन्होंने इस देश की महिलाओं को सदियों की दासता से मुक्त कराया और शायद ही कोई अन्य व्यक्ति ऐसा कर सकता था। वह कहा करते थे, "भारत के प्रधानमंत्री के रूप में मेरा मुख्य योगदान इस रूढ़िवादी और पुरुष प्रधान समाज में महिलाओं को स्वतंत्रता और विशेषाधिकार—संपत्ति, तलाक और सार्वजनिक रोजगार का अधिकार दिलाना है।"

जब हम अपने चारों ओर तृतीय विश्व के देशों में अशान्ति देखते हैं और प्रजातंत्र तथा आधुनिकता से विमुख होते देखते हैं तो हम ईश्वर का धन्यवाद करते हैं कि हमें जवाहर लाल नेहरू और बाद में उनकी यशस्वी पुत्री और नाती का नेतृत्व मिला और हम उन सभी नियामतों का भोग कर पाये, जिनसे विकासशील देशों के नागरिक स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् भी वंचित हैं।

मुझे भी उनसे मित्रता प्राप्त करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ और विभिन्न जन समस्याओं पर उनके साथ किया गया मेरा पत्र व्यवहार मेरे जीवन की गौरवशाली निधि है। आप एक दिन मिलने की अनुमति मांगते हैं और अगले ही दिन संदेशवाहक आपके घर आपको सूचित करने आ जाता है कि इसकी व्यवस्था हो गई है और जैसे ही आप उनके साथ बैठते हैं तो ऐसा प्रतीत होता है कि आपका दर्जा बढ़ गया है क्योंकि वह आपकी अच्छाइयों को उभारते थे (न कि आपकी बुराइयों को)।

वह कितने शान्त और अनुद्विग्न थे, अपने व्यवहार में कितने स्नेहशील और मृदु थे, अपना समय देने में कितने उदार थे और उनमें आदर्शवाद की कितनी भावना थी। उन्होंने किसी भी बुद्धिजीवी को, जिसकी प्रतिभा और सत्यनिष्ठा की वह कदर करते थे, "न" नहीं कहा। मैंने उन्हें कभी भी क्रोध में नहीं देखा हालांकि उनके क्षणिक क्रोधी स्वभाव के बारे में कई किस्से प्रचलित हैं। कई बार तो विनम्रता का भाव इतना अधिक होता था कि आप सोचते थे कि यह मानव है या कोई देवता।

उनके कार्यकाल के अंतिम कुछ वर्षों के दौरान यह कानाफूसी चल रही थी कि वह अपनी पुत्री को अपने उत्तराधिकारी के रूप में तैयार कर रहे हैं। किन्तु सारी दुनिया ने देखा है कि हम में से कुछ के प्रयत्नों के बावजूद ऐसा कुछ नहीं हुआ। किसी अन्य व्यक्ति ने उनका स्थान ग्रहण किया।

और बाद में जब इंदिरा गांधी सत्ता में आयीं तो राष्ट्र के समक्ष कोई अन्य विकल्प नहीं था।

वह चापलूसी के कितने विरोधी थे यह मुझे तब मालूम हुआ जब अक्तूबर 1962 में चीनी आक्रमण के दौरान हमारी पराजय के पश्चात कर्नाटक से राज्य सभा में एक कांग्रेस के संसद सदस्य ने सदन में विदेशी मामलों पर चर्चा आरंभ करते हुए अपना भाषण नेहरू और उनके महान पिता की प्रशंसा से आरंभ करने का प्रयत्न किया। पंडित जी गुस्से से भर उठे और दो मिनट के पश्चात डा. जाकिर हुसैन, जो कि सदन के तत्कालीन सभापति थे, से उन्हें रोकने के लिये कहा, "महोदय, यह चर्चा चीन के बारे में है न कि मेरी या मेरे परिवार की पृष्ठभूमि के बारे में।"

योग्य सांसद अत्यन्त दीनता और नाराजगी के साथ चुपचाप से अपने स्थान पर बैठ गये।

जब मैं बाद में कांग्रेस पार्टी की ओर से उनके प्रस्ताव का समर्थन करने के लिये उठा, तो मैं संघर्ष की उत्पत्ति, विश्व मत पर पड़े हमारे अपमान के प्रभाव (चीन को पृथक् करने में), गुट निरपेक्ष संबंधी हमारी नीति के समर्थन में, (उक्त मामलों में करार केवल दस दिन बाद समाप्त हुआ और अमरीका और रूस दोनों ही हमारे बचाव के लिये आये) बोला था।

मैंने कहा कि इससे हमारा राष्ट्र अपनी रक्षा व्यवस्था संबंधी कमजोरियों के प्रति पहले की अपेक्षा कहीं अधिक सतर्क हो गया और वह किसी राष्ट्र के नारों आदि पर विश्वास नहीं करेगा। जवाहरलाल नेहरू के मुख पर स्वीकृति की असाधारण मुस्कान छा गई, जिससे ऐसा प्रतीत होता था कि मैंने अपना कार्य उचित रूप से किया था और मेरे सहयोगियों सहित समस्त सभा में प्रसन्नता की लहर दौड़ गई और इसमें भारत के प्रधान मंत्री ने उत्साह से भाग लिया।

किसी ने कहा है, "उन्होंने जो कुछ हासिल किया वह उससे अधिक नहीं कर सकते थे क्योंकि वह कठोर निर्णय नहीं ले सकते थे। क्योंकि उन्होंने इतिहास और अपने समय के विश्व को आत्मसात् किया, और क्योंकि वह आदर्शवादी थे, राजनीति में भटके संत की भांति।"

महान व्यक्ति, जीवन के मंच पर थोड़े समय के लिये अधिकार के आवरण में लिपटे हुए ऐंठ कर चलते हैं। किन्तु अन्ततोगत्वा, इतिहास उन्हीं जैसे कुछ लोगों को सम्मानित करता है, न कि अवसरवादियों या तानाशाहों को, जो जब तक जिन्दा रहते हैं लोग उनसे डरते हैं या उनसे फायदा उठाते हैं और मृत्यु के पश्चात् उन्हें इतिहास में भुला दिया जाता है। उस दिन धरती दोबारा दहल उठी थी जिस दिन उनका पार्थिव शरीर अग्नि को समर्पित किया गया।

जैसा कि आयंस्टीन ने गांधी जी के बारे में कहा था उसी प्रकार क्या आने वाली पीढ़ियां यह विश्वास करेंगी कि इस प्रकार का कोई व्यक्ति इस धरती पर रहा होगा। निःसंदेह वह सब से अधिक बुद्धिमान राजनयिकों में से एक थे और महान इतिहास पुरुष थे, किन्तु जो बात उन्हें भावी पीढ़ियों के लिये सर्वोच्च आसन पर बिठायेगी, वह यह है कि इन सब के अलावा वह एक अच्छे इन्सान और भारत माता के सच्चे सपूत थे।

13

फ्रैंक एंथोनी

कुछ संस्मरण

सन् 1942 से केन्द्रीय विधान मंडल में, तत्पश्चात् संविधान सभा में और बाद में लगातार लोक सभा में, सिर्फ मोरारजी देसाई के शासन में ढाई वर्ष की अवधि को छोड़कर, अपनी लम्बी सेवा अवधि के कारण, मुझे जवाहर लाल नेहरू के साथ अनेक बार काम करने का मौका मिला।

राष्ट्र गान

संविधान सभा में मैं संविधान समिति का सदस्य था। जवाहर,लाल नेहरू इसके चेयरमैन थे। संविधान सभा की कार्यवाही के संबंध में निर्देश देने के लिए हम अक्सर मिला करते थे। राष्ट्र गान संबंधी एक मामले ने मेरे मन में एक अमिट छाप छोड़ी है। राष्ट्र गान के संबंध में कुछ मतभेद था। जैसा कि पता है वंदेमातरम को अत्यधिक भक्तिभावपूर्ण समर्थन मिला था। एक सुझाव यह था कि इसे राष्ट्र गान बनाया जाना चाहिए। अंततोगत्वा जवाहरलाल नेहरू के हस्तक्षेप से "जन गण मन" राष्ट्र गान बना और वन्देमातरम हमारा राष्ट्रीय गीत माना गया।

संयुक्त राष्ट्र के लिए पहला शिष्टमंडल

जवाहर लाल नेहरू ने मुझे स्वतंत्र भारत के संयुक्त राष्ट्र-जाने वाले पहले शिष्टमंडल में मुख्य प्रतिनिधि के रूप में जाने के लिए कहा। मुझे इस अनुरोध को स्वीकार कर प्रसन्नता हुई। मेरे विचार से श्रीमती विजयलक्ष्मी पंडित के नेतृत्व में वह शिष्टमंडल केवल मुख्य प्रतिनिधियों के कारण ही शक्तिशाली नहीं था बल्कि इसलिए भी शक्तिशाली था कि उसमें सहायक प्रतिनिधि के रूप में भी महत्वपूर्ण व्यक्ति शामिल थे। इस शिष्टमंडल का विशेष योगदान यह था कि हम फील्ड मार्शल स्मट को दक्षिण अफ्रीका की नीति पर हटाने के लिए पर्याप्त समर्थन जुटाने में सफल हुए थे जो मेरे विचार में एक महत्वपूर्ण घटना थी।

हमारे अद्वितीय जवान

दूसरी एक बात जो मुझे भलीभांति याद है वह यह है कि मैं उस छोटी समिति में था जिसे जवाहर लाल ने बनाया था और 1962 में जब चीन ने हम पर आक्रमण किया था, तब उस समिति की बैठक प्रतिदिन होती थी। चीनियों के आगे बढ़ने और हमारी सेना के पीछे हटने का समाचार बहुत घबरा देने वाला था। मेरा विचार था कि सेना की विभिन्न शाखाओं के आसूचना विभागों के बीच समन्वय की कमी थी। जहां तक मुझे याद है, वायु सेना के अनुसार चीनियों की संख्या उतनी नहीं थी जितनी कि सेना ने अनुमान लगाया था। मुझे विश्वास है कि मूल कमजोरी उस सर्वोच्च नेतृत्व में थी जिसे सेना के स्थान पर लाया गया था। चीनियों के आक्रमण के बाद वादविवाद में मैंने एक जोरदार भाषण दिया और लद्दाख में लड़ रहे अपने अद्वितीय जवानों के नेतृत्व की तुलना इसके साथ की। लद्दाख में लड़ते हुए हमारी सेना की एक कम्पनी ने न सिर्फ अपनी संख्या से कहीं अधिक चीनी सैनिकों का मुकाबला किया बल्कि उन्हें मार भी गिराया।

सह-राजभाषा के रूप में अंग्रेजी

मुझे एक अन्य महत्वपूर्ण घटना भलीभांति याद है। इसका संबंध राजभाषा के मामले में जवाहरलाल जी की भूमिका से है। अनुच्छेद 344 के अंतर्गत एक ऐसी समिति के चुनाव का उपबंध था जो राष्ट्रपति को अपनी रिपोर्ट देगी। मैं उस समिति का एक सदस्य था। समिति के सभी सदस्य 1965 के बाद भाषा पैटर्न से अंग्रेजी को जहां बिल्कुल हटा देने के पक्ष में थे वहीं अकेला मैं इससे सहमत नहीं था। मेरी असहमति के कारण यह मामला संसद में आया। मैंने जोश खरोश के साथ अंग्रेजी के पक्ष में दलील दी।

अप्रैल, 1959 में मैंने संविधान की आठवीं अनुसूची में अंग्रेजी को शामिल करने के लिये एक संकल्प रखा। मैंने जवाहरलाल जी के साथ इस मामले पर लंबी चर्चा की। उनके अपने विचार जो कुछ भी रहे हों, उन्होंने यह महसूस किया कि हिन्दी समर्थक लॉबी प्रबल रूप से राजनीतिक दृष्टि से हावी थी। अंग्रेजी की स्थिति संबंधी मेरे संकल्प के उत्तर में जवाहरलाल जी ने 7 अगस्त, 1959 को राजनीतिक और ऐतिहासिक घोषणा की कि जब तक अहिन्दी भाषी लोग चाहेंगे अंग्रेजी सह/वैकल्पिक राजभाषा के रूप में बनी रहेगी। कुछ वर्षों बाद इसे कानून में बदल दिया गया।

मेरा दृढ़ विश्वास है कि जवाहरलाल नेहरू के इस दूरदर्शितापूर्ण दृष्टिकोण और उनके द्वारा अंग्रेजी को दिए गए सह-राजभाषा के स्थान के कारण आज अंग्रेजी देश में एकता की मुख्य शक्ति बन सकी है। जैसा कि राजाजी ने कहा था, अंग्रेजी भारत को सरस्वती का एक उपहार है। इसी उपहार के कारण भारत आज अग्नि की सफलता के माध्यम से आणविक देशों की पंक्ति में आ गया है। इसके लिये भारतीय वैज्ञानिकों ने अपनी कुशलता और ज्ञान अंग्रेजी के माध्यम से प्राप्त किया है।

यह बहुत ही जरूरी है कि सभी वर्ग के नेता अंग्रेजी को भारतीय भाषा के रूप में मान्यता दें। बम्बई उच्च न्यायालय में मुख्य न्यायाधीश छागला के समक्ष मोरारजी देसाई की इस अभ्युक्ति कि सिर्फ एंग्लो-इण्डियनों को जिनकी मातृभाषा अंग्रेजी है, अंग्रेजी माध्यम में शिक्षा दी जा सकती है, के विरोध में दलील देते हुए मैंने अंग्रेजी की इस स्थिति के महत्व को स्पष्ट किया था। न्यायाधीश छागला ने उस अभ्युक्ति को खारिज कर दिया और उन्होंने एक शानदार निर्णय दिया कि एंग्लो–इंडियन के साथ जो एक अल्पसंख्यक परन्तु इज्जतदार समुदाय है, भेदभाव नहीं किया जा सकता है, किसी भी व्यक्ति को अंग्रेजी माध्यम से शिक्षा प्राप्त करने का अधिकार है। मुख्य न्यायाधीश छागला के विचार में आठवीं अनुसूची की अनेक भाषाओं की तुलना में अंग्रेजी भाषा अधिक भारतीय है क्योंकि यह संविधान की भाषा है, उच्चतम न्यायालय की भाषा है, कानून की भाषा है और इन सबसे ऊपर एक मुख्य संपर्क भाषा है। आज अंग्रेजी एकमात्र विश्वभाषा है और भारत में एकता की एक मुख्य शक्ति है। इस प्रकार जवाहरलाल नेहरू का अंग्रेजी को सह/वैकल्पिक राजभाषा घोषित करना पूर्णतया तर्कसंगत था।

अंग्रेजी अंग्रेजों के लिये भी विदेशी भाषा थी: यह एंजेल्स, सैक्सन्स और जूटस की बोलियों के माध्यम से अंग्रेजों की भाषा बनी जो वहां एक विजेता के रूप में गए। अंग्रेजों, आयरलेंडवासियों और वेल्सवालों की मूलभाषा सेल्टिक थी।

आज 200 वर्षों तक भारतीय परिस्थितियों में ढली विश्व की एकमात्र भाषा अंग्रेजी एक महासागर की तरह है, जिसका अमेरिकी अंग्रेजी, आस्ट्रेलियाई अंग्रेजी, कनेडियाई अंग्रेजी रूपी अनगिनत नदियों के मिलने से और अनवरत बढ़ती भारतीय अंग्रेजी रूपी नदी के मिलने से लगातार विस्तार हो रहा है।

आज अंग्रेजी भारतीय एकता की मुख्य शक्ति है। प्रशासनिक एकता अखिल भारतीय सेवाओं के माध्यम से आती है, न्यायिक एकता अदालतों के उच्च सोपानों से आती है और सबसे महत्वपूर्ण शायद यह बात है कि यह पूरे देश में विचारशक्ति और कर्मठ नेताओं की सम्पर्क भाषा है, विशेषकर उत्तर और दक्षिण के बीच के नेताओं की।

लोकतंत्र और धर्मनिरपेक्षता

मेरा यह विश्वास है कि जवाहरलाल जी का प्रमुख योगदान लोकतंत्र और धर्मनिरपेक्षता के मूलभूत सिद्धान्तों के प्रति उनकी समर्पित और स्पष्ट प्रतिबद्धता थी जिससे देश की सरकार प्रभावित हुई।

14

बी.ए. मासोदकर

पंडित जी : एक प्रतिभाशाली समाजवादी दार्शनिक

स्वर्गीय पंडित जवाहरलाल नेहरू पर यह लेख उनके यशस्वी व्यक्तित्व के प्रति एक भेंट और उनकी सदैव प्रेरणाप्रद स्मृति की प्रशंसा, एक महान भारतीय राजनीतिक नेता के प्रति श्रद्धाजंलि और उनके राजनीतिक दर्शन का एक मूल्यांकन है।

पंडितजी के बारे में सोचना उनकी बहुमुखी सर्वोत्कृष्ट प्रतिभा और उनके महान व्यक्तित्व के बारे में सोचना है। पंडितजी एक उदात्त, हितैषी, दयालु तथा उदार, कर्मठ और स्वप्नद्रष्टा, एक सच्चे यथार्थवादी और एक उत्कट आदर्शवादी, राजनीतिज्ञ, व्यावहारिक और गंभीर विचारक थे। पंडितजी ऐसे व्यक्तियों की शृंखला में शायद अन्तिम व्यक्ति हैं जो राजनीतिक दर्शन के उत्कृष्ट सिद्धान्तों के प्रतीक रहे। उनके ज्ञान का क्षेत्र राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय सीमाओं से परे था।

चूंकि उन्हें भारत माता की ऐतिहासिक धरोहर पर गर्व था और इसी तरह से वह मानवता के भविष्य के प्रति पूरी तरह से आशावान थे, इसलिये वह राजनीतिशास्त्र और दर्शन शास्त्र दोनों के बारे में स्वयं से मौलिक प्रश्न पूछा करते थे। मानवतावाद और समतावाद के संबंध में उत्तर की खोज करने और मानव समाज में नैतिकता की भावना लाने के लिये वह उस अपरिहार्य संघर्ष के एक अंग बन गये जिसमें वह सिपाही, नायक और फिर इस विशाल देश के नेता बने। विकराल समस्याओं के समाधान के अपने मानदण्डों के बावजूद वह निरन्तर बढ़ते हुए संकट का सामना करने के लिये विभिन्न नीतियां अपनाते थे। पंडित जी अपने उन लाखों देशवासियों के जिन्हें राष्ट्रपिता महात्मा गांधी ने "लाखों बेजुबान मेहनतकश लोग" कहा था, दुःखों से बहुत अधिक द्रवित थे और इसलिये पंडित जी ने अपनी सारी आशाएं उनमें सही चेतना जगाने तथा उनकी दशा सुधारने पर टिकाई। लोगों में उनका यह अटल विश्वास उनके कार्यों और उनके विचारों को शक्ति देता था। जो लोग उनके चारों ओर आकर एकत्र हो जाते थे उनके जीवन से उन्होंने जीवन संघर्ष का सबक सीखा था। इससे लोगों में उनके प्रति एक स्वाभाविक प्यार

और स्नेह की भावना आई। स्वतंत्रता संग्राम के दौरान और उसके बाद भी सभी जगह लोग उनके चारों ओर भीड़ लगाकर खड़े हो जाते थे और उन्हें न केवल अपने नेता के रूप में अपितु अपने एक ऐसे भाग्यनिर्माता, एक पथप्रदर्शक के रूप में मानते थे जो उन्हें मुक्ति और आजादी के युग की ओर ले जायेगा। लोगों में उनके प्रति विश्वास था। वह उनके सच्चे मित्र थे और वह उन्हें विदेशी, साम्राज्यवादी और सामाजिक व्यवस्था में व्याप्त दासता की ताकतों से मुक्त कराना चाहते थे। उनको देखकर लोगों की जो भीड़ उमड़ पड़ती थी उसके संपर्क में आकर ही उनकी अपनी मौलिक सामाजिक-आर्थिक दार्शनिक विचारधारा बनी थी। जागृति लाने की भावना से ओतप्रोत होकर उन्होंने एक ऐसा मार्ग तैयार किया जिसमें सभी समुदायों के लोगों को समानता और आजादी प्राप्त हो सके।

भारतीय गणतंत्र के निर्माताओं की विशिष्ट मंडली में पंडित जी का स्थान एक स्वतंत्र विकासशील राष्ट्र के निर्माता का रहा है। इसका अपना अलग ऐतिहासिक महत्व है। सच तो यह है कि उन्हें भारतीय लोगों, उन लोगों के अतीत और वर्तमान जीवन ने ढाला था क्योंकि वह सदैव उनके बारे में जानना चाहते थे और इसके परिणामस्वरूप लोगों की सामाजिक-आर्थिक और सांस्कृतिक स्थिति की जटिलताएं उनके सामने आईं। अपने सपनों के भारत का निर्माण करते समय भी वह सदैव आम लोगों के निकट तथा उनके प्रिय बनकर रहे। लोगों की भलाई और कल्याण के लिये उन्होंने स्वयं अपनी मौलिक राजनीतिक विचारधारा को विशेष रूप से बताने का प्रयास किया। गंभीरता के साथ और कभी-कभी भावनाओं में बहकर और उस समय उपलब्ध राजनीतिक साधनों से वह समाजवाद की ओर अग्रसर हुए और फिर भी वह शान्ति, अहिंसा और मानवता के स्वयं अपने द्वारा बनाए गए मार्ग पर चलकर इसके लक्ष्यों को प्राप्त करना चाहते थे। उनके लोगों की गरीबी, निरक्षरता, उनकें पिछड़ेपन, कुपोषण से प्रभावित होने और सर्वत्र व्याप्त राजनीतिक और सांस्कृतिक दासता के फलस्वरूप समाजवादी आदर्शों वाले कल्याणकारी राज्य का उदय हुआ। इसमें पहली और अन्तिम भूमिका लोगों की ही थी।

"उदास" चेहरे और "धंसी हुई" आंखों वाले लोग निराश होकर उनके पास आते थे।[1] लोगों की गरीबी से उनके भावुक मन पर गहरा प्रभाव पड़ता था और इससे उनके मन में राजनीतिक और आर्थिक प्रश्न उभर आते थे। इससे पीड़ित और विक्षुब्ध होकर वह उन प्रश्नों में उलझे रहते थे और उनके समाधान की खोज करते थे। इस प्रकार वह हमेशा खोज संबंधी कार्य में तल्लीन रहते थे। उन्होंने नेता के रूप में अपना संघर्ष निरन्तर जारी रखा परन्तु उनके भीतर जो दार्शनिकता थी वह कुण्ठित हो गयी थी। उन्होंने देखा कि "महिलाओं और पुरुषों की दशा बड़ी दयनीय थी परन्तु उनके चेहरों पर तेज झलकता

1. *थॉट्स आफ जवाहरलाल नेहरू* — मंत्रिमंडल सचिवालय, जवाहरलाल नेहरू जन्म शताब्दी कार्यान्वयन समिति, पृष्ठ 55

था और उनकी आंखों में चमक थी जिससे ऐसा लगता था कि उन्हें ऐसी आशा है कि कोई ऐसा चमत्कार अवश्य होगा जिससे लम्बे समय से चली आ रही उनकी तंगहाली दूर हो जायेगी।[2] "

> "उन्होंने हम पर अपने स्नेह की वर्षा की और अपनी प्यार तथा आशा भरी आंखों से हमारी ओर इस प्रकार देखा, मानो हमारे पास उनके लिये कोई अच्छा समाचार है और हमें उनके स्वप्नों को साकार करना है।"[3]

वह लोगों के दुःखों, कष्टों और उनकी गरीबी के इस बोझ को हमेशा अपने ध्यान में रखते थे और उनकी आत्मा एक विद्रोही के रूप में संघर्ष करती रहती थी। वह इस बात को स्वीकार करते थे कि "लोगों को उनके कष्टों और उनकी भारी कृतज्ञता को देखकर मैं शर्म और दुःख में डूब जाता था। शर्म मुझे अपने आरामतलब और सुखपूर्ण जीवन और शहर की अपनी उस तुच्छ राजनीति पर आती थी जो भारत के भारी संख्या में अर्ध नग्न पुत्रों और पुत्रियों की उपेक्षा करती थी और दुःख इसलिये होता था क्योंकि भारत में घोर गरीबी है और यहां लोगों का अपमान होता है।" और फिर "मेरे सामने भारत की नग्न, भूखी, दलित और अत्यधिक तंगहाली की एक नयी तस्वीर सामने आयी और दूर-दराज के शहरों से आये हम आगन्तुकों के प्रति उनका विश्वास मुझे और परेशान कर देता था और मुझे एक ऐसी नई जिम्मेदारी महसूस कराता था जिससे मुझे डर लगता था।"[4] फिर भी उन्हें उन लोगों में कभी धूमिल न होने वाली *"भारत माता"* की छवि तथा देश की आशा दिखाई दी। वस्तुतः भारत माता तो ये लाखों लोग ही हैं और भारत माता की विजय इन लाखों लोगों की विजय है। आप इस *भारत माता* का अंग हैं। मैंने उन्हें बताया कि आप स्वयं ही *भारत माता* हैं और जैसे ही यह विचार उनके मन में आया, उनकी आंखें इस प्रकार चमकने लगीं कि मानो उन्होंने कोई बड़ी खोज कर ली हो।"[5]

उनके सभी सामाजिक राजनीतिक विचारों में *भारत माता* के रूप में इन लोगों की यह झलक और गरीबी की समस्या हमेशा एक केन्द्र-बिन्दु रही। 3 फरवरी, 1958 को बम्बई में भारतीय वाणिज्य मंडल के स्वर्ण जयन्ती समारोह के अवसर पर बोलते हुए उन्होंने बाइबिल के प्रसंग का उल्लेख किया। उन्होंने कहा कि वह कोई धर्मोपदेशक नहीं हैं परन्तु फिर भी मैं अपने भाषण में बाइबिल के एक सुप्रसिद्ध पाठ का उल्लेख करना चाहूंगा : *"प्रत्येक व्यक्ति के पास जो कुछ है उसे उससे अधिक दिया जायेगा परन्तु उसके पास जो कुछ भी है वह उससे लिया नहीं जायेगा।"* अन्ततः इससे उनकी दार्शनिकता और राजनीतिक सिद्धांत का पता चलता है।

---

2. *वही*, पृष्ठ 56
3. *वही*
4. *वही*, पृष्ठ 56-57
5. *वही*, पृष्ठ 60

उसी भाषण में उन्होंने कहा कि देश गरीबी के दलदल से निकलने के लिये संघर्ष कर रहा है, ताकि देश अविच्छिन्न रूप से आर्थिक विकास के युग में प्रवेश कर सके। वह चाहते थे कि राष्ट्र पहले गरीबी को दूर करे और दूसरे, एक ऐसी स्थिति उत्पन्न करे जिसमें स्वतः विकास हो। उनका आर्थिक मूल्यांकन यह था कि भारत की वर्तमान स्थिति में गरीब और अधिक गरीब बन जाता है। गरीबी स्वयं अभिशाप बन जाती है। यह पिछड़ेपन का द्योतक है और इससे पिछड़ेपन में वृद्धि होती है। आर्थिक दासता और गरीबी को बढ़ाने वाले कारकों का पर्याप्त समाधान करने की आवश्यकता है।

उनके दिल और दिमाग पर छाये गम्भीर चिन्तन में केवल यही चिन्ता का विषय होता था कि लोगों को गरीबी से कैसे मुक्ति दिलाई जाये और उनको अभाव की स्थिति से कैसे निकाला जाये। स्वतंत्रता संग्राम के समय से ही वह लोगों की राजनीतिक और आर्थिक स्वतंत्रता में विश्वास रखते थे। उनके विचार में दोनों ही एक दूसरे से सबद्ध थीं और इसके लिये समुचित आर्थिक और राजनीतिक नीति की आवश्यकता है। उन्होंने राजनीति के क्षेत्र में और आर्थिक प्रबन्ध के क्षेत्र में एक साथ समाधान की तलाश की। गांधीवादी दर्शन का अभिन्न अंग होने के नाते उन्होंने गांधीवाद के सिद्धांतों के अंतर्गत ही इसके समाधान की खोज की। वह समाजवादी विचारधारा से आकर्षित हुए और इससे उनका मार्गदर्शन भी हुआ। विद्यमान स्थिति पर गहन विचार करके अंत में उन्होंने एक ऐसा स्वर्णिम मध्यमार्ग निर्धारित किया जो उनके विचार में सामाजिक-आर्थिक दासता की शक्तियों को नियंत्रण में रख सकता है और समानता तथा स्वतंत्रता के आधार पर एक समतावादी कल्याणकारी युग में प्रवेश करा सकता है। यह निर्धारित मार्ग मध्यम मार्ग है। न तो पूर्ण और अत्यधिक समाजवाद और न ही मुक्त उदार, आर्थिक अहस्तक्षेप इस मार्ग के अंग हैं। अत्यधिक समाजवाद का परिणाम कठोर अनुशासन होता है और इससे बचा जाना चाहिये। न तो कठोर अनुशासन और न ही अत्यधिक स्वतंत्रता ही उचित है। उनके द्वारा अपनाए गए बीच के रास्ते में नियोजित आर्थिक व्यवस्था की, जिसमें राज्य का केवल आवश्यक हस्तक्षेप शामिल था, परिकल्पना की गई थी। इसके साथ-साथ लोगों में स्वस्थ प्रतियोगिता को प्रोत्साहन देने तथा जीवन के सभी महत्वपूर्ण पहलुओं में अधिक से अधिक सहकारिता के सिद्धांतों को उतारने की भी परिकल्पना की गई थी। इस रास्ते पर उन्होंने इस जटिल राष्ट्र के कार्यों का संचालन किया। इस रास्ते पर उन्होंने उन्नति तथा विकास के बीज बोए। उन्होंने सोचा कि इसी रास्ते के द्वारा सही अर्थों में स्वतंत्रता, बन्धुत्व और समानता लाई जा सकती है।

सम्पन्न परिवार में जन्मे तथा पले पंडित जी हलचल भरे युग की देन थे। जिन बातों ने उनके मस्तिष्क तथा आत्मा पर समतावादी उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए प्रभाव डाला वही आसपास के राजनीतिक विश्व को लगातार अपनी ओर आकर्षित कर रही थीं। यद्यपि विज्ञान भयावह युद्धों से प्रभावित हो रहा था, फिर भी विकास के लिए समाधान प्रस्तुत कर रहा था। यहां तक कि राजनीतिक सिद्धांत भी वैज्ञानिक आधार पर बनाए जा रहे थे।

इतिहास की नई व्याख्या की जा रही थी जबकि धर्म और उसके आधार को चुनौती दी जा रही थी। इन सब बातों का पंडित जी के वैज्ञानिक मन तथा उनकी राजनीतिक और आर्थिक विचारधारा पर प्रभाव पड़ रहा था। स्वतंत्रता संग्राम के दौरान वह कम से कम नौ बार जेल गए। इससे उन्हें उन समस्याओं पर विचार करने का पर्याप्त अवसर मिला जिनसे समाज तथा लोग घिरे हुए थे।

चौथे दशक के प्रारम्भ में उन्होंने अपने आपको समाजवादी घोषित कर दिया। मुक्ति के राजनीतिक दर्शन के रूप में समाजवाद के प्रति अत्यधिक तथा चिरस्थायी प्यार में उनके मन में कभी लेश मात्र भी कमी नहीं आई तथा वह जीवन भर बना रहा। यह बड़ी दिलचस्प बात है कि समाजवाद के जनक सोवियत रूस जैसे देश की समाजवादी विचारधारा में आए वर्तमान राजनीतिक परिवर्तनों के बाद भी पंडित जी को वैज्ञानिक समाजवाद के एक बेजोड़ प्रतिपादक के रूप में याद किया जाता है। हाल ही में प्रोफेसर उलीयानोवस्की ने नेहरू की वैज्ञानिक समाजवादी धारणा का आकलन करते समय शानदार श्रद्धांजलि भेंट की। सोवियत रिव्यू (जुलाई, 1989) में लिखते हुए विद्वान प्रोफेसर यह कहते हैं कि वैज्ञानिक समाजवाद के प्रति नेहरू का दृष्टिकोण उनकी गहरी राजनीतिक अंतर्दृष्टि का परिचायक था। काफी पहले 1933 में उन्होंने अपने प्रसिद्ध प्रेस वक्तव्य में यह कहा था कि वह साम्यवाद की मूल विचारधारा को और इसकी इतिहास की वैज्ञानिक व्याख्या को ठीक समझते हैं। लखनऊ में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के 1936 में हुए अधिवेशन में नेहरू ने निर्भीक तथा स्पष्ट शब्दों में कहा था: "मैं इस बात से संतुष्ट हूँ कि विश्व की समस्या तथा भारत की समस्या का एकमात्र समाधान समाजवाद है और जब मैं यह बात कहता हूँ तो मैं ऐसा गोलमोल मानवीय दृष्टिकोण मात्र से नहीं कहता हूँ बल्कि वैज्ञानिक, आर्थिक अर्थों में कहता हूँ ....".

> "मैं भारतीय लोगों की गरीबी, बेरोजगारी, अवनति तथा दासता को समाप्त करने का समाजवाद के सिवाय और कोई रास्ता नहीं देख पाता हूं। इससे हमारे राजनीतिक और सामाजिक ढांचे में काफी बड़े तथा क्रांतिकारी परिवर्तन होंगे। जमीन तथा उद्योग के हितों को छोड़ना पड़ेगा... एक सीमित अर्थ को छोड़कर इसका अर्थ निजी सम्पत्ति की समाप्ति और लाभ कमाने की वर्तमान प्रवृत्ति के स्थान पर सहकारी सेवा के ऊँचे आदर्श लाना है... संक्षेप में इसका अर्थ है वर्तमान पूंजीवादी व्यवस्था से पूर्णतया भिन्न एक नई सभ्यता।"[6]

प्रोफेसर ने यह टिप्पणी करते हुए सही कहा है कि प्राणीमात्र तथा चेतना के अतिश्रेष्ठ दर्शन संबंधी मामलों में तथा परोक्षज्ञान तथा व्यक्ति के आध्यात्मिक तथा नैतिक विकास संबंधी उनके सिद्धांत के मामले में नेहरू पर हिन्दुओं की धार्मिक नैतिक परम्पराओं तथा

---

6. *सोवियत रिव्यू*, जुलाई, 1989 पृष्ठ 6-7

यूरोप की तर्कबुद्धिपरक अनीश्वरवाद का मिला-जुला प्रभाव था।[7] उन्होंने यह भी कहा कि नेहरू ने पुरानी भारतीय संस्कृति की परंपराओं तथा इसकी आजादी के राष्ट्रीय आंदोलन के समृद्ध इतिहास, विशेष रूप से गांधीवाद के दर्शन तथा व्यवहार को आत्मसात् कर लिया था। यूरोपीय बुर्जुआ उदारवाद के घर ग्रेट ब्रिटेन में अध्ययन करते समय उन्होंने यूरोपीय बुर्जुआ उदारवाद के सभी सिद्धांतों को आत्मसात कर लिया था। परन्तु बाद में भ्रम टूटने पर उनका झुकाव प्रारम्भ में फेबियन समाजवाद की ओर हो गया। वैज्ञानिक समाजवाद के सिद्धान्तों एवं उसके व्यावहारिक पहलू का अध्ययन करने के उपरान्त वह राष्ट्रीय स्वतंत्रता आन्दोलन के नेताओं में ऐसे पहले व्यक्ति थे जिन्होंने मार्क्सवादी-लेनिनवादी दर्शन की व्यावहारिकता एवं महत्व तथा ऐतिहासिक घटनाक्रम की तार्किकता तथा वैज्ञानिक समाजवाद के लिए समय की पुकार को समझा था।

प्रोफेसर उलियानोवस्की के इन वक्तव्यों से समाजवाद के दर्शन में नेहरू के अटूट विश्वास का पता चलता है परन्तु उन्होंने लोगों की समस्याओं के संबंध में उनके सम्पूर्ण दार्शनिक दृष्टिकोण के साथ न्याय नहीं किया है। पंडित जी ने कभी भी समाजवाद के प्रति अपने प्रेम को नहीं छिपाया। उनके विचार में साम्यवादी क्रान्ति मानव इतिहास में एक बहुत बड़ी उपलब्धि थी। किन्तु उन्होंने मन से न कभी इस हिंसात्मक क्रान्ति के तरीकों को स्वीकार किया और न ही कभी समाज के सामाजिक-आर्थिक ढांचे में जबरन परिवर्तन करने को स्वीकार किया।

पंडित जी के निजी विचारों को देखने से उनमें विचारों की श्रेष्ठता, दृष्टिकोण में स्पष्टता तथा अपनी बात को कहने के साहस का स्पष्ट प्रमाण मिलता है। समाजवाद से संबंधित उनके मूल विचारों में कोई संदेह नहीं है। 22 सितम्बर, 1928 को उन्होंने समाजवाद के लिए कहा था कि "आज के दिग्भ्रमित विश्व की यह एकमात्र आशा है।"[8]

एक दशाब्दी के बाद राष्ट्रीय कांग्रेस को संबोधित करते हुए उन्होंने कहा था कि उनके लिए समाजवाद केवल एक आर्थिक सिद्धांत ही नहीं है बल्कि एक महत्वपूर्ण मत है जिसे वह दिलोजान से स्वीकार करते हैं। उन्होंने स्पष्ट किया कि उन्होंने भारत की स्वतंत्रता के लिए इसलिए प्रयास किया क्योंकि उनके अन्दर की राष्ट्रिकता विदेशी शासन सहन नहीं कर सकती थी और उन्होंने इसके लिए इसलिए अधिक कार्य किया क्योंकि सामाजिक तथा आर्थिक बदलाव के लिए यह एक अपरिहार्य कदम था।"[9]

उसी वर्ष बम्बई में एक सभा को सम्बोधित करते हुए उन्होंने पुनः दृढ़ता से कहा कि यदि विश्व में ऐसा कोई देश है जिसे इसकी अर्थात स्वतंत्रता और समाजवाद की अत्यधिक आवश्यकता है तो वह गरीबी से जकड़ा हुआ हमारा अपना देश है और उन्होंने यह आशा

---

7. *वही*
8. *थॉट्स ऑफ जवाहर लाल नेहरू* —मंत्रिमंडल सचिवालय, जवाहरलाल नेहरू जन्मशताब्दी कार्यान्वयन समिति — पृष्ठ 85
9. *थॉट्स ऑफ पंडित जवाहरलाल नेहरू* —पूर्व उद्धृत पृष्ठ 86।

व्यक्त की कि हमारे देशवासी समाज को पुनर्गठित करने के लिए पूरा प्रयास करेंगे ताकि देश का समाजवाद के सिद्धान्तों द्वारा मार्गदर्शन किया जा सके और साथ ही यह मानवता की आजादी के लिए किए जा रहे प्रयासों में योगदान भी कर सके।[10]

उन्होंने यह स्पष्ट किया कि उनके लिए समाजवाद एक आर्थिक सिद्धांत है जिसके द्वारा उन चीजों का उचित वितरण होगा जिनका हम उत्पादन करेंगे। इसके फलस्वरूप लोगों का जीवन-स्तर हर तरह से ऊंचा उठेगा। इसका अर्थ यह है कि निहित स्वार्थों को समाज का शोषण नहीं करना चाहिए और उत्पादन के प्रमुख साधन निजी हाथों में नहीं होने चाहिए और इसका अर्थ है बड़े पैमाने पर समानता।[11] उन्होंने राजनीतिक स्वतंत्रता के साथ-साथ आर्थिक क्रांति की आशा करते हुए, जैसे-जैसे देश ने उपनिवेशवाद की शक्तियों तथा आर्थिक दासता से स्वतंत्र होने के लिए संघर्ष किया अपने लक्ष्य निर्धारित किए।

इस प्रकार स्वतंत्रता-प्राप्ति तक हमेशा ही उंनका दर्शन "वैज्ञानिक समाजवाद" का रहा। उन्होंने आशा की कि इस दर्शन के अन्तर्गत ही वह लोगों को राजनीतिक तथा आर्थिक दृष्टि से स्वतंत्र करा पाएंगे। इस तरह उनके अन्दर एक प्रकार का विद्रोही बैठा हुआ था जो लोगों को दासता की बेड़ियों को उतार फेंक कर स्वयं को अपने पैरों पर खड़ा होने के लिए प्रेरित कर रहा था। राजनीतिक न्याय तथा आर्थिक न्याय दोनों एक दूसरे से अलग नहीं किए जा सकते हैं। उन्होंने बार-बार पूरी ताकत और जोश के साथ उसी बात पर बल दिया।

भारत की राजनीति से उन्हें कटुसत्यों का अनुभव हुआ। उनका यह दृष्टिकोण सामाजिक-आर्थिक वास्तविकताओं तथा उनकी मूल दार्शनिक और कुछ हद तक मानव जीवन की आध्यात्मिक अनुभूति के संघर्ष का परिणाम है। वह अपने उद्देश्य तक पहुंचने के लिए रास्तों का चयन कर रहे थे और उन्होंने एक सुविचारित रास्ता अख्तियार किया। भारत का प्राचीन इतिहास और वैज्ञानिक युग का प्रबल गतिवाद सुरक्षित राजनीतिक भूमिका बांधने में सहायक सिद्ध हुए। उनके समाजवादी दर्शन के पर्याप्त प्रमाण विद्यमान हैं। यह बात संदर्भित थी। उन्होंने लोगों की समस्याओं और कठिनाइयों को ध्यान में रखते हुए समाजवादी विचारधारा को भारतीय रूप प्रदान किया।

उनकी आत्म-कथा में समाजवादी सिद्धान्तों के बारे में उनके चिन्तन तथा उनकी व्यावहारिकता का स्पष्ट विवरण है। उन्होंने यह कहा कि उन्होंने समाजवाद में लम्बा प्रशिक्षण लिया है तथा रूस की साम्यवादी व्यवस्था ने उन्हें काफी प्रभावित किया है। साथ ही उन्होंने यह भी कहा कि वह निर्दयता के साथ दमन, पूरे समाज के कठोर नियंत्रण और अनावश्यक हिंसा को, जो कि साम्यवाद के परिणामस्वरूप देखने को मिली, पसन्द

10. *वही*, पृष्ठ 88-89।
11. *वही*, पृष्ठ 90-91।

नहीं करते हैं।[12] राजनीति में भी उनका दृष्टिकोण न तो नैतिक मान्यताओं को और न ही शांति के मूल्यों को छोड़ पाया।

वह यहीं नहीं रुके। उनका दृष्टिकोण स्पष्ट है जैसा कि वह कहते हैं कि केवल सिद्धान्त के आधार पर ही रूस में जो कुछ भी हुआ उसका अन्धानुकरण करना अनुचित होगा *क्योंकि इसे उस देश में लागू करना वहां विद्यमान विशिष्ट परिस्थितियों और उसके ऐतिहासिक घटनाक्रम की विभिन्न आस्थाओं पर निर्भर करता था।*[13] एक सच्चे वैज्ञानिक की तरह आगे और खोज करते हुए उन्होंने अन्य राजनीतिक समाजों का भी अध्ययन किया।

वह न केवल सोवियत संघ में होने वाली घटनाओं को बल्कि जर्मनी, इंग्लैंड, अमेरिका, जापान, चीन, फ्रांस, स्पेन, इटली तथा मध्य यूरोप के देशों में होने वाली घटनाओं पर सावधानी से विचार करते थे ताकि "सामयिक मामलों की जटिलता"[14] को समझ सकें। अपने राजनीतिक दर्शन को मूर्त रूप देने से पहले उन्होंने सभी मिश्रित तथा परस्पर संबद्ध अनुभवसिद्ध आंकड़ों का अध्ययन किया था। इस प्रकार भारत की समस्या के मौलिक समाधान का उनका लक्ष्य उनके विभिन्न देशों की मौजूदा सामाजिक-राजनीतिक परिस्थितियों के गहन तथा पारस्परिक अध्ययन का परिणाम था।

अपने अंतर्द्वंद्व तथा शंकाओं का समाधान करने तथा पैटर्न चुनने के बाद उन्होंने अपना परिष्कृत मार्ग निर्धारित किया। ऐसा करते समय उन्होंने यह स्पष्ट रूप से कहा कि मार्क्सवादी सिद्धांत तथा दर्शन ने उनकी बहुत-सी गलतफहमियां दूर की हैं। उनको इतिहास के बारे में नई जानकारियां मिलीं तथा मार्क्सवादी व्याख्या ने उन पर महत्वपूर्ण प्रकाश डाला। कुछ उद्देश्यों से यह एक खुला ड्रामा बन गया यद्यपि इसके पीछे किसी हद तक अनभिज्ञता क्यों न रही हो। आखिरकार उन्होंने कहा, "अतीत तथा वर्तमान कठिनाइयों के बावजूद भविष्य आशायुक्त तथा उज्ज्वल है यद्यपि बहुत से खतरे आने हैं।"[15] मताग्रह से मुक्ति तथा मार्क्सवाद की वैज्ञानिक विचारधारा जैसे महत्वपूर्ण मुद्दों ने उनको सबसे अधिक प्रभावित किया।

भारतीय राजनीति की अपनी स्पष्ट कमियां तथा विभिन्न परस्पर विरोधी बातें थीं। ये परस्पर विरोधी बातें उन परिस्थितियों के कारण थीं जिनके द्वारा इतिहास को उद्घाटित किया जाता था। उनको इन कठिनाइयों के बारे में न केवल अतीत के परिणाम के रूप में बल्कि साम्राज्यवादी तथा विदेशी शासन द्वारा विकृत कर दिये गये भारतीय समाज के मूलभूत ढांचे के बारे में अनुभूति थी। किसी राष्ट्र का निर्माण तथा समाज का पुनर्गठन करते समय इन पर समाजवादी विचार-विमर्श की आवश्यकता थी। उनका कहना था,

12. *जवाहरलाल नेहरू* —एक आत्मकथा पृष्ठ 301
13. *वही*, पृष्ठ 362
14. *वही*, पृष्ठ 363
15. *वही*, पृष्ठ 362-63

"समाजवाद में जीवन तथा इसकी समस्याओं के प्रति मनोवैज्ञनिक दृष्टिकोण शामिल है। यह मात्र तर्क से कहीं अधिक है। आनुवंशिकता, शिक्षा, अतीत के अनदेखे प्रभावों तथा हमारे मौजूदा पर्यावरण पर आधारित अन्य दृष्टिकोण भी इसी तरह के हैं। जीवन अपने कटु अनुभवों से हमें अलग ढंग से सोचने को मजबूर करता है। शायद हम इस प्रक्रिया में मदद करते हैं। शायद "आन रिकोंट्री सा डिस्टनी सोवेंट पारलेस चैमिन्स क्यू आन प्रेंड पोर लेबिटर"[16] विषयों की यह मनोहारी दृष्टि उनकी पसन्दों तथा भावी राजनीतिक सिद्धांतों और राजनीतिक व्यवहार में दिखाई देती रही।

एक ओर सोवियत संघ की क्रांति का तीव्र आख्यान तथा दूसरी ओर भारतीय जनता पर प्रभाव रखने वाले जटिल राजनीतिक तथा सामाजिक-आर्थिक तथ्यों ने पंडितजी के दर्शन का मार्ग निर्धारित किया। एक तरह से यह किसी ईमानदार राजनीतिज्ञ की उपयुक्त समाधान खोजने के लिए तलाश थी। एक तरह से एक विचारक तत्काल प्रेरक तथा आलोकमय यात्रा पर निकल पड़ा था। लोगों तथा युगों-युगों से उन्हें बनाने वाली शक्तियों के गहन अध्ययन ने राजनीति तथा उपयुक्त शासन कला की संभावित आवश्यकता के मानदंड निर्धारित किये हैं। लोगों को आजादी, सम्मान तथा न्याय दिलाने के लिए मूलभूत मुद्दों का समाधान करने की तीव्र इच्छा इस धारणा का आधार बिन्दु थी जो यथार्थवादी दर्शन की ओर ले जाती है तथा जिसका वर्गीकरण नहीं किया जा सकता। यह किसी विशिष्ट सीमा के अंतर्गत निर्धारित नहीं है बल्कि यह तत्वतः समतावादी तथा मानवतावादी अवधारणा है जिसके अंतर्गत समाजवादी विचारधारा समाज तथा राष्ट्र के पुनर्गठन अथवा सुधार की मांग करती रही है। यह मानवता रूपी करघे पर प्रतिभापूर्वक बुने गये विभिन्न समाजवादी सिद्धांतों का एक उपयुक्त संयोजन है।

यह कहना असत्य न होगा कि पंडितजी के पूर्व समाज़वादी दर्शन के दो महत्वपूर्ण दृष्टिकोण थे। इनमें से एक दृष्टिकोण बुद्धिवाद तथा दूसरा मानवतावाद था। पहले दृष्टिकोण बुद्धिवाद से, जहां जरूरी हो राज्य का हस्तक्षेप तथा उसकी जरूरत की शक्तिशाली विचारधारा निकली, ताकि मूलभूत मानवीय मूल्यों को सुरक्षित रखा जा सके। दूसरे दृष्टिकोण मानवतावाद से शांति, अहिंसा तथा सुधार के सिद्धांतों का जन्म हुआ। समाजवाद, बुद्धिवाद तथा मानवतावाद की सिद्धांत त्रयी तीन पवित्र नदियों के संगम की तरह है। इस विचारधारा में शाश्वत मूल्यों की आश्चर्यजनक दीप्ति है। पंडितजी द्वारा राज्य के मामलों पर लागू प्रक्रिया तथा उन प्रक्रियाओं के वास्तविक कार्यकरण से अंततः यही पता चलता है।

14 अप्रैल, 1956 को व्याख्यान देते हुए उन्होंने यह बात स्पष्ट की कि वह "समाज का समाजवादी ढांचा" चाहते हैं तथा इस वाक्यांश को एक शब्द "समाजवाद" में

---

16. जवाहरलाल नेहरू—एक आत्मकथा, पृष्ठ 368-69

अभिव्यक्त किया गया है। उन्होंने स्पष्ट किया कि इसमें कोई मताग्रही चिंतन शामिल नहीं है क्योंकि ऐसा चिंतन संकीर्णता को जन्म देता है तथा चिंतन की संकीर्णता बुरी होती है।[17] उन्होंने उदात्त भाव से एक मूल राजनीतिक दर्शन प्रस्तुत किया जिसका लक्ष्य मानवीय तरीकों से स्थापित किये जाने वाला समाजवादी समाज था।

4 जनवरी, 1957 को अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी को सम्बोधित करते हुए उन्होंने अपनी इस अवधारणा को और स्पष्ट किया। उन्होंने कहा कि उनका विश्वास है कि समाजवाद के विभिन्न रूप हो सकते हैं। एक अत्यंत विकसित औद्योगिक समाज का समाजवाद एक अलग प्रकार का समाजवाद हो सकता है जब कि कृषि प्रधान देशों का समाजवाद इससे कुछ अलग प्रकार का हो सकता है। "यह बात मेरी समझ में नहीं आती कि हम दूसरे लोगों की नकल करने की कोशिश क्यों करें जबकि हमें किसी भी देश के अनुभवों का लाभ उठाना चाहिये।"[18]

उन्होंने समाज के पूंजीवादी ढांचे को अस्वीकार कर दिया क्योंकि यह "अर्जनशील समाज" की स्थापना का कारण बनता है। उनके विचार से समाजवादी समाज को अर्जनशीलता की इस प्रवृत्ति से बचने की कोशिश करनी चाहिये तथा इसके स्थान पर परस्पर सहयोग करना चाहिये। यद्यपि यह गांधी जी के "समग्र आत्मत्याग" जैसा नहीं है तथापि इसमें मानवीय आदर्शों की तीव्र गूंज है। मूल अवधारणा को स्पष्ट करते हुए उन्होंने पूछा कि "समाजवाद क्या है।" इसका एक सुस्पष्ट उत्तर देना कठिन है तथा इसकी बहुत सी परिभाषाएं हैं ..... । मूल रूप से समाजवाद की अवधारणा पूंजीवाद की अवधारणा से अलग है, यद्यपि मेरा विचार है कि यह सत्य है कि इन दोनों के बीच के बड़े अंतराल को कम किया जाना चाहिये क्योंकि समाजवाद की बहुत सी धारणाओं को पूंजीवादी ढांचे में अपनाया जा रहा है। समाजवाद न केवल एक जीवनमार्ग है बल्कि यह *सामाजिक तथा आर्थिक समस्याओं से निपटने की एक विशिष्ट वैज्ञानिक अवधारणा भी है। अतः समाजवाद को इन राजनीतिक तत्वों अथवा हिंसा की अनिवार्यता से अलग समझना चाहिये।* इससे हमें पता चलता है कि किसी समाज के सामाजिक, राजनीतिक तथा बौद्धिक जीवन के सार्वजनिक चरित्र का निर्धारण उसके उत्पादक संसाधनों से होता है। इन उत्पादक संसाधनों का परिवर्तन और विकास होने से समाज के जीवन तथा चिंतन में परिवर्तन हो जाता है।"[19]

उनका यह विश्वास था कि *"समाजवादी दर्शन का विस्तार धीरे-धीरे विश्व के सभी सामाजिक ढांचों में हो गया है* तथा विवाद का एकमात्र मुद्दा समाजवाद के पूर्ण लक्ष्य को पाने की गति तथा तरीके हैं। *यदि भारत अपनी गरीबी तथा असमानता को समाप्त करना*

---

17. *थॉट्स ऑफ ज.ला. नेहरू*, पृष्ठ 92
18. *थाट्स ऑफ ज.ला. नेहरू*, पृष्ठ 93
19. *वही*, पृष्ठ 95

चाहता है तो उसे भी समाजवाद को अपनाना होगा यद्यपि वह अपने समाज की विशिष्टता के अनुसार अपने तरीके तथा आदर्श अपना सकता है।[20]

पंडितजी का दृष्टिकोण बुद्धिवादी, मानवतावादी तथा समानतावादी था तथा वे समग्र रूप में लोगों की भलाई के लिये समाजवादी युग लाने के लिए हमेशा संघर्ष करते रहे। उन्होंने राज्य के हस्तक्षेप के सिद्धांत तथा इसके अंतर्गत समाज के आर्थिक जीवन में सरकारी क्षेत्र के महत्व को स्वीकार किया। यद्यपि उन्होंने बेहतर मध्यवर्ती मार्ग को अपनाकर मिश्रित अर्थव्यवस्था अपनाने की अनुमति दी लगती है किंतु उन्होंने आर्थिक जीवन में प्रतिस्पर्धा सुनिश्चित करने के लिये ऐसा किया। सरकारी तथा गैर-सरकारी क्षेत्र में परस्पर प्रतिस्पर्धा होनी चाहिये ताकि उनके सम्मिलित प्रयासों से देश की अर्थव्यवस्था का विकास हो सके। उन्होंने 14 दिसम्बर, 1953 को यह टिप्पणी की कि यदि भारत को ठोस आर्थिक नींव रखनी है और उन्नति करनी है तो सरकार को इसमें सहयोग देना चाहिये। इस प्रकार सरकारी क्षेत्र का महत्व अधिक हो जाता है।[21] पुनः 22 दिसम्बर, 1954 को कांग्रेस संसदीय दल को सम्बोधित करते हुए उन्होंने यह स्पष्ट किया कि सरकारी क्षेत्र को अपना अपेक्षित स्तर बनाए रखने हेतु एक प्रतिस्पर्धी गैर-सरकारी क्षेत्र बनाए रखना होगा। कुल मिलाकर गैर-सरकारी क्षेत्र ऐसे क्षेत्र का होना अच्छी बात है, जहां ऐसे लोगों, जिन्हें सरकारी क्षेत्र में रोजगार न मिला हो, की फालतू शक्ति का इस्तेमाल किया जा सके, बशर्ते कि हम उस गैर-सरकारी क्षेत्र का नियंत्रण राष्ट्रीय योजना के हित में करें।[22] पुनः 1956 में राष्ट्रीय विकास परिषद् को सम्बोधित करते हुए उन्होंने कहा कि गैर-सरकारी क्षेत्र के मालिकों के लिये कार्यकलाप का कोई क्षेत्र निर्धारित नहीं है परन्तु राज्य के लिये कार्यकलाप के कुछ क्षेत्र निर्धारित होने चाहिये। शेष क्षेत्र सबके लिये खुला है और उसमें हमें गैर-सरकारी उद्यमों को पनपने के लिये प्रत्येक अवसर तथा आजादी प्रदान करनी चाहिये। हमें प्रत्येक क्षेत्र को उत्पादन करने और राष्ट्र के निर्माण में मदद करने के लिये प्रोत्साहित करना चाहिये बशर्ते गलत प्रवृत्तियों को प्रोत्साहन नहीं दिया जाये।[23]

आयोजना के साथ-साथ उसमें राज्य का नियंत्रण आवश्यक है। उन्होंने अपनी इस टिप्पणी द्वारा इस बात पर बल दिया कि *जैसा कि पूंजीवादी प्रणाली में होता है यदि सामान्य आर्थिक ताकतों को स्वतंत्र छोड़ दिया जाता है तो इसमें कोई सन्देह नहीं है कि गरीब और गरीब होते जायेंगे और कुछ अमीर लोग और अधिक अमीर हो जायेंगे। यह बात महत्वपूर्ण है कि राज्य का कुछ नियंत्रण अवश्य होना चाहिये।* "राज्य अमीरों

---

20. *वही*, पृष्ठ 158
21. *वही*, पृष्ठ 63
22. *वही*, पृष्ठ 64
23. *वही*, पृष्ठ 66

की समृद्धि से गरीब लोगों को शिक्षा, स्वास्थ्य सेवाएं, मकान तथा अन्य सुविधाएं देगा।"[24]

पुंजीभूत ताकतों, जो अमीर व्यक्ति को और अधिक अमीर बनाती हैं, को रोकने के लिये राज्य का नियंत्रण आवश्यक हो जाता है। सरकार को इन पुंजीभूत ताकतों पर नियंत्रण करना है जिससे गरीब व्यक्ति गरीबी की विभीषिका से छुटकारा पा सकेंगे। यहां एक कल्याणकारी राज्य के भीतर एक नये स्वस्थ समाज की पुनःसंरचना तथा पुनर्निर्माण के लिये कई दार्शनिक प्रवृत्तियों को एक साथ मिलाने के लिये भूमिका बांधी गई है।

इससे ऐसा लगता था मानो परम्परागत समाज में परिवर्तन को या उससे हटकर जो बात होती है उसे "एक अत्याधुनिक समाज माना जा रहा है।" किसी देश के सामाजिक ढांचे में परिवर्तन न होने से वह अपनी श्रेष्ठता खो देता है और पिछड़ जाता है। आधुनिक जीवन में विज्ञान और विज्ञान के निष्कर्ष, तकनीकों, प्रौद्योगिकी, आदि का अत्यधिक महत्व होता है। इनसे हमारा जीवन शासित होता है और जीवन परिस्थितियों में परिवर्तन आता है।[25] वैज्ञानिक विकास लाना एक महान कार्य है। उसमें राष्ट्र तथा देश का निर्माण और समानता, निष्पक्षता तथा न्याय के सिद्धान्तों पर आधारित एक नये समाज का उदय सन्निहित है। किसी राष्ट्र अथवा देश के निर्माण का कार्य "कभी पूरा नहीं होता"। यह कार्य चलता रहता है और कोई भी व्यक्ति इसकी प्रगति—किसी गतिशील राष्ट्र की प्रगति को रोक नहीं सकता है।" राष्ट्र को आगे बढ़ना ही है।

उन्होंने यह टिप्पणी की, "जब हम कोई बड़ा काम शुरू करते हैं, तो ऐसा करते समय हमें अपना दृष्टिकोण उदार रखना होगा। संकीर्ण विचारधारा वाले राष्ट्र बड़े निर्माण कार्य शुरू नहीं कर सकते। जब हम बड़े निर्माण कार्य देखते हैं तो उनके साथ हमारे आकार में भी वृद्धि हो जाती है और हमारा दृष्टिकोण थोड़ा व्यापक हो जाता है।[26]

यह पंडित जी के दर्शन की मूल बात है। उनके विचारों तथा इनकी अभिव्यक्ति और उनके दृष्टिकोण, जिनसे उन्होंने शासन कार्य निष्पादित किए, से सदैव सामाजिक गतिशीलता के मूल सिद्धान्त झलकते थे। उनके विचार अत्यधिक विश्लेषणात्मक थे और उन्होंने विश्व के राजनीतिक घटनाक्रम का गहन अध्ययन किया था, इसलिये पंडित जी के विचारों को मूलरूप से उनके अपने विचार कहा जा सकता है तथा वे प्रेरणादायक होते थे। दर्शन और राजनीति के मार्ग पर चलने वाले बौद्धिक यात्री के रूप में उन्होंने कभी भी अपने शोध कार्य को नहीं रोका चाहे वह भारतीय लोगों की असाधारण समस्याओं को सुलझाने के संबंध में किसी प्रकार के समन्वय के लिये ही कार्य क्यों न कर रहे हों। उनका कार्य में समन्वय संबंधी शोध चिन्तन और कार्य दोनों क्षेत्र में एक बड़े कार्य का प्रतिभाशाली और परिष्कृत स्वरूप प्रस्तुत करता है।

---

24. *वही*, पृष्ठ 70

25. *वही*, पृष्ठ 147

26. *वही*, पृष्ठ 145

उनके मानवतावाद का एक और जीवन्त पहलू है। अहमदनगर के किले में पंडित जी के भीतर के कवि एवं दार्शनिक ने चंद्रमा को "जेल में उनके एक साथी के रूप में देखा जो कि निकट सम्पर्क के कारण उनका एक घनिष्ठ मित्र बन गया था और जो इस सुन्दर विश्व में जीवन के उतार-चढ़ाव, अन्धकार के बाद प्रकाश और मृत्यु के बाद पुनर्जीवन जो बारी-बारी से आते रहते हैं, की याद दिलाता था। सतत परिवर्तनशील, फिर भी समरूप, मैंने उसे सायंकाल में जैसे-जैसे परछाइयां लम्बी होती जाती हैं, रात के सन्नाटे में और जब ऊषाकाल की शीतल बयार आने वाले दिन की सूचना देती है, विभिन्न आकारों तथा इसके अनेक रूपों को देखा है।"[27] सम्भवतः उन्होंने भगवान बुद्ध के बारे में जो कुछ अनुभव किया वही उनके द्वारा उदात्त भावना, साहस तथा दृढ़ विश्वास के साथ की गई उनकी एकमात्र खोज पर लागू होगा। उन्होंने यह अनुभव किया, "बुद्ध ने लोकप्रिय धर्म, अन्धविश्वास, आडम्बरों और पुरोहित प्रपंचों और उनसे जुड़े सभी निहित स्वार्थों पर आक्रमण करने का साहस किया। उन्होंने अतिलौकिक और धर्मशास्त्रीय दृष्टिकोण, चमत्कारों, श्रुतियों और लोकोत्तर बातों की भी निन्दा की। *उनका दृष्टिकोण तर्कसंगत, युक्तिसंगत और अनुभवपूर्ण था। नैतिकता पर उन्होंने बल दिया और उनके सोचने का तरीका मनोविश्लेषण का था, जिसमें मनोविज्ञान का स्थान तो था लेकिन आध्यात्मिकता का नहीं। निराधार अभौतिक कल्पनाओं की बासी हवा के बाद उनका चिंतन पर्वतों से आई वायु के ताजे झोंकों की भांति है।*[28] प्रबुद्ध नेहरू और उनका प्रबुद्ध राजनीतिक दर्शन उसी सोच और चिन्तन की देन थे। यह कहना अतिशयोक्ति नहीं होगा कि पंडितजी में वैसा ही साहस और विश्वास था। इस लक्ष्य के लिए उन्होंने प्रतिभाशाली विचारकों से प्रेरणा ली और ऐसे आधार की खोज की जिस पर भारतीय जीवन को पुनर्व्यवस्थित किया जा सके। ऐतिहासिक और आधुनिक संदर्भ में उन्होंने ऐसे साधनों के बारे में सोचा जिनसे समाज में नैतिक व्यवस्था लाई जा सके। उन्होंने समूची मानवता के बारे में सोचा था और उनमें जीवन की समग्र दृष्टि थी। भारत की आत्मा और भावना को टटोलते हुए और उस पर गहराई से विचार करते हुए उन्होंने एक नयी शक्ति के बारे में सोचा जिससे भारत का निर्माण किया जा सके और उसे अक्षुण्ण बनाया जा सके। भारत की गतिशील सामर्थ्य पर उनका अटूट विश्वास था। प्रकृति परिवर्तनशील है और विगत में जो युद्धस्थल थे, उनको फूलों और हरी घास से ढक देती है तथा वहां जो रक्त बहा वह मिट्टी को सींचता है और नवजीवन को शक्ति और स्फूर्ति देता है[29]....."। जब तक हम जान पाएं, उससे पहले ही वर्तमान अतीत के गर्त में चला जाता है, आज जो वर्तमान है वह कल (अतीत) की देन है। वर्तमान, भविष्य को अपना स्थान देगा[30] उनके भीतर की आशावादी भावना यह मानती थी।

---

27. जवाहरलाल नेहरू—*भारत की खोज*—पृष्ठ 1
28. *वही*, पृष्ठ 120
29. *वही*, पृष्ठ 499
30. *वही*, पृष्ठ 500

उज्ज्वल भविष्य के लिए योजना आवश्यक थी। इसकी सफलता अनिवार्यतः न सिर्फ उत्पादन पर बल्कि राष्ट्रीय सम्पत्ति के समान और समुचित वितरण पर भी निर्भर करती है। योजना के साथ एक योजनाबद्ध समाज से ही सामाजिक कल्याण किया जा सकता है। गतिशील विकास पर बल देना आवश्यक है। गतिशील दृष्टिकोण के बिना गतिहीनता और ह्रास होता है और सिद्धांतों के बिना विघटन और विनाश। समाज की खामियां और बुराइयां व्यवस्था और शांति के लिए खतरा पैदा करती हैं। इसके पीछे शक्ति और प्रभावकारिता बनाए रखने के लिए हमें बहुमत द्वारा संचालित संवैधानिक सरकार चाहिए और इसमें सामाजिक शक्तियों के पारस्परिक संबंध प्रतिबिम्बित होने चाहिये।

> "वे व्यक्ति जो विश्व की नैतिक व्यवस्था और सदाचार की अंततोगत्वा विजय में विश्वास करते है, दर्शक या मददगार के रूप में कार्य करते हैं और वे उसका दायित्व भगवान पर डाल देते हैं। बेहतरी की आशा और खराब स्थितियों के लिये तैयारी के साथ दूसरों को यह दायित्व अपने कमजोर कंधों पर वहन करना होगा।"[31]

पंडित जी के अंदर का राजनीतिक दार्शनिक सिर्फ समाज की नैतिक व्यवस्था की बात करके चुप नहीं बैठा था बल्कि उन्होंने उसे परिभाषित करने की भी कोशिश की। उन्होंने कहा,

> "हमें सत्य, सौन्दर्य और स्वतंत्रता की भावना को, जो जीवन को सार्थक बनाती है, को पुनर्जीवित करना होगा तथा उस गतिशील दृष्टिकोण और साहस की भावना को फिर से विकसित करना होगा, जिसमें हमारे उन पूर्वजों को वैशिष्ट्य प्रदान किया है जिन्होंने पुराने युग में इस मजबूत और टिकाऊ नींव पर हमारे समाज का निर्माण किया। मानव इतिहास की आदि काल की पुरानी स्मृतियों के साथ हमें वर्तमान के अदम्य उत्साह और नवयौवन और भविष्य में इसके विश्वास के साथ अपने को वर्तमान के अनुरूप युवा बनाना है।"[32]

पंडितजी के विचारों में सत्य अंतिम सत्य है और यह शाश्वत, अविनाशी, अपरिवर्तनीय है। मनुष्य को अपनी सीमित बुद्धि से अनन्त शाश्वत अपरिवर्तनीय सत्य का, उसकी सम्पूर्णता में बोध नहीं हो सकता है। मनुष्य समय और काल की बाधाओं तथा अपने मस्तिष्क के सीमित विकास और काल के मौजूदा चिन्तन के कारण सत्य के सिर्फ कुछ पहलुओं को ही समझ सकता है।"[33]

---

31. *वही*, पृष्ठ 509
32. *वही*, पृष्ठ 510
33. *वही*,

वास्तव में यह वक्तव्य पंडित जी के चिन्तन को दर्शाता है। राजनीति या प्रशासन के क्षेत्र में अपनी अनुभूति और दर्शन से उन्होंने जो देखा और समझा, उसे वह अपने जीवन में उतारते रहे, व्यवहार में लाते रहे और उसका प्रचार करते रहे और यह नैतिक मान्यताओं के बहुत समीप था। उन्होंने समूची मानवता को जीवन की ऐसी समग्र दृष्टि देने की कोशिश की जो मानववादी दर्शन और विज्ञान को प्रोत्साहित करे और इससे परे की सभी चीज़ों के प्रति उनकी श्रद्धा थी।

> "इस प्रकार हम जीवन की एक ऐसी समग्र दृष्टि विकसित कर सकते हैं, जो अपने में भूत और वर्तमान को उसके सभी पहलुओं के साथ अंगीकृत करे और भविष्य की ओर अविचलित अग्रसर हो ..... मनुष्य की जीवन यात्रा में सुख और दुःख दोनों शामिल हैं; और इसी से हम सीखते हैं और आगे बढ़ते हैं। मनुष्य की यह पीड़ा असह्य होती है और यह स्वयं उसे ही भोगनी होती है। बाहरी घटनाएं और उसके परिणाम हमें अत्यन्त प्रभावित करते हैं पर फिर भी आन्तरिक भय और द्वंद्व से हमारे मन-मस्तिष्क को भारी झटके झेलने पड़ते हैं। हम नहीं जानते हैं कि इस जीवन यात्रा का कोई चरम लक्ष्य भी है या नहीं परन्तु इसके कुछ प्रतिफल होते हैं और उनसे ऐसा लगता है कि इससे अनेक लक्ष्य प्राप्त होंगे और वहां से व्यक्ति पुनः आगे बढ़ता है।"

उनके अन्दर के दार्शनिक ने इस तरह सृजन और पुनःसृजन, ह्रास और अनवरतता को परिभाषित किया है और उसका वर्णन किया है। उनका दृष्टिकोण मनुष्य की एकजुटता पर आधारित सत्य की निर्भीक खोज था।

वह प्रत्येक जीवित प्राणी के देवत्व की ओर ध्यान देने और मानव विकास की उच्चतर स्थिति और स्वतंत्रता को जोड़ने के लिए व्यक्ति और मानव जाति के समग्र विकास के लिए इसे मुक्त करने के इच्छुक थे।[34] वह युग चेतना को समानता और मानव के सभी प्रकार के शोषण का विरोध करना मानते थे। उनके लिए समानता, लोकतंत्र और समष्टिवाद इस उद्देश्य के साधन थे :-

उनके अनुसार :

> *"समानता का अभिप्राय है सभी व्यक्तियों के लिए समान अवसर और किसी व्यक्ति अथवा समूह की उन्नित के मार्ग में किसी राजनीतिक, आर्थिक अथवा सामाजिक बाधाओं का न होना।* इसका अभिप्राय है मानवता में विश्वास और यह विश्वास कि कोई भी जाति अथवा दल ऐसा नहीं है जो अवसर दिये जाने पर प्रगति न कर सके।"[35]

---

34. *वही*, पृष्ठ 515
35. *वही*, पृष्ठ 521

"एक ऐसी अपेक्षित आर्थिक प्रणाली के निर्माण को कार्यान्वित करने के समान अवसर, जो इसकी अवधारणा के अनुरूप हों और इसे प्रोत्साहन देते हों। राजनैतिक परिवर्तन के साथ-साथ आर्थिक परिवर्तन भी नितांत आवश्यक है।" [36]

"ऐसा परिवर्तन *लोकतांत्रिक रूप से योजनाबद्ध समष्टिवाद* की दिशा में होना चाहिए।"[37]

"*समष्टिवाद* का अभिप्राय निजी सम्पत्ति को समाप्त करना नहीं है, अपितु *इसका अभिप्राय है बुनियादी और बड़े उद्योगों पर सार्वजनिक स्वामित्व। इसका अभिप्राय है सहकारी अथवा सामूहिक रूप से* भूमि पर नियंत्रण।"[38]

लोकतांत्रिक समष्टिवाद की ऐसी प्रणाली के लिए सावधानीपूर्वक सतत आयोजन और लोगों की बदलती हुई आवश्यकताओं को पूरा करने की आवश्यकता है। समष्टिवाद में सामुदायिक उत्तरदायित्व और सामूहिक प्रयास सम्मिलित हैं। पंडित जी के मतानुसार ऐसी प्रणाली समाजवाद की अवधारणा के अनुरूप है। इसका केन्द्र बिन्दु एक स्वशासी प्रणाली हो सकती है। इसके परिणामस्वरूप स्वशासी गांव की परिकल्पना की जा सकती है। एक स्वतंत्र, प्रगतिशील राज्य के लोकतांत्रिक संगठन में सामूहिक एवं सहकारी सिद्धांतों के आधार पर संगठित ग्राम समुदाय महत्वपूर्ण भूमिका अदा करेगा।

समाजवादी दर्शन की पंडितजी की वैचारिक अभिव्यक्ति और इसमें उनके विश्वास और समाज के समाजवादी ढांचे के रूप में इसका सुनिश्चित प्रारूप उनकी सम्पूर्ण राजनैतिक अवधारणा को अभिव्यक्त करता है जिसकी पृष्ठभूमि राष्ट्रीय विशिष्टता है। यह मूल प्रसंग कठिन संकट के समय भी राष्ट्रों और समाजों को एकजुट करने के लिए सामाजिक शक्तियों की लोच को निर्धारित करता है। एक सच्चा बुद्धिवादी और मानवतावादी होने के नाते उन्होंने मानवता के कल्याण के लक्ष्यों तक पहुंचने के लिए समाजवादी विचारधारा का चयन किया। वास्तव में उनकी दार्शनिक दूरदर्शिता को भारत तक ही सीमित करना व्यंगपूर्ण होगा क्योंकि वह मानव परिवार को एक समझते थे और पृथ्वी पर उसके अस्तित्व को अनिवार्य मानते थे।

स्पष्टतः विशेष रूप से विकासशील समाज में मानव इतिहास की सतत प्रक्रिया की व्याख्या और द्वंद्वात्मक भौतिकवाद के सिद्धांत द्वारा प्रस्तुत व्याख्याओं के बारे में मार्क्सवादी सिद्धांतों को स्वीकार करते हुए वह प्रत्यक्ष बातों को नहीं छोड़ सके। ऐसे समाजों में, जो कि राजनैतिक और आर्थिक स्वतंत्रता प्राप्त करना चाहते थे, परस्पर विरोधी सामाजिक हितों के टकराव, जिससे समाज में अन्तरविरोध को निरन्तर बढ़ावा मिलता है, इतिहास का अंग है। इन शक्तियों का विश्लेषण करते हुए पंडित जी सदा

36. *वही*, पृष्ठ 521-22
37. *वही*, पृष्ठ 522
38. *वही*, पृष्ठ 522

इस बात को ध्यान में रखते थे कि विकास और प्रगति में मानव का क्या संबंध हो। उनका अपना दृढ़ दृष्टिकोण था जिसमें वैज्ञानिक और तर्कसंगत पहलुओं की झलक मिलती थी। समाज भी इसका अपवाद नहीं था। इसी प्रकार स्वभाव से दार्शनिक होने के कारण उन्होंने ऐसे तरीकों की खोज की जिनसे सामाजिक ढांचे में सुधार हो सकता था। उनकी अथक खोज सदा नवीन होती थी और इसमें आशा और विश्वास की भावना विद्यमान रहती थी। उनके अनुसार सामाजिक न्याय और समानता का सिद्धान्त लक्ष्य प्राप्ति के मूल तत्व हैं और आर्थिक तथा राजनैतिक स्वतंत्रता उसकी मूल शर्त हैं। यह सत्य है कि महात्मा गांधी के राजनैतिक तथा नैतिक स्वतंत्रता पर आधारित राजनैतिक सिद्धांत तथा शांतिपूर्ण अहिंसात्मक आंदोलन ने न केवल सिद्धांत को अपितु पंडित जी की राजनीति के मूलभूत दर्शन को भी प्रभावित किया है। गांधीवादी विचारधारा के परिणामस्वरूप आत्मकथा में राजनीति के अध्यात्मीकरण के बारे में सुस्पष्ट रूप से कहा गया है। इस पहलू पर पंडितजी ने स्पष्ट रूप से कहा, "राजनीति के अध्यात्मीकरण का विचार मेरी दृष्टि से बहुत अच्छा है। यदि इस शब्द का संकीर्ण धार्मिक नजरिये से प्रयोग न किया जाये। *सही उद्देश्य को प्राप्त करने के लिये सही साधन होने चाहिए।* यह न केवल नीति शास्त्र का सिद्धान्त है, बल्कि व्यावहारिक राजनीति का ठोस पहलू भी है। क्योंकि यदि साधन ठीक नहीं हैं तो प्रायः उद्देश्य प्राप्त नहीं किया जा सकता है तथा इसके परिणामस्वरूप नयी समस्याएं और कठिनाइयां भी उत्पन्न हो सकती हैं। किसी भी कठिनाई से निकलने के लिये ऐसे गलत साधनों का प्रयोग करना किसी भी व्यक्ति या राष्ट्र के आत्मसम्मान के लिये अशोभनीय और अपमानजनक प्रतीत होता है। इससे कलंकित होने से कोई भी नहीं बच सकता? यदि हम धीरे-धीरे तथा रेंग-रेंग कर चलेंगे तो हम प्रगति के पथ पर तत्परता तथा सम्मान के साथ आगे कैसे बढ़ सकते हैं?[39]

उनके समाजवाद के सिद्धांतों में बुद्धिवाद तथा मानवतावाद दोनों का सम्मिश्रण है। उनके चिन्तन में मौलिक मानवीय संवेदना और मूल्यों का समावेश है जिसने उनके दर्शन को एक नया मौलिक तथा उद्दीप्त रूप तथा नया ओज और उत्साह प्रदान किया। संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि उन्होंने युद्ध और हिंसा के स्थान पर शांति तथा अहिंसा का मार्ग चुना। सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रमों की स्थापना करके तथा गरीब तथा अमीर वर्ग के बीच की खाई को कम करके समाज का पुनर्गठन करना होगा चाहे इसके लिए राज्य को हस्तक्षेप ही क्यों न करना पड़े। बेहतर अवसर प्रदान करके समानता के क्षेत्र को व्यापक बनाना होगा जिससे लोगों के जीवन-स्तर में वास्तविक गुणात्मक सुधार लाया जा सके। देश को आवश्यक बेहतर मूलभूत ढांचा प्रदान करने के लिये देश के आर्थिक क्रियाकलापों में सहयोगवाद तथा समष्टिवाद को लाना होगा और इसके साथ-साथ राज्य तंत्र अपने सफलतापूर्वक कार्य निष्पादन के लिये अपना आवश्यक मूलभूत ढांचा बनाता रहे।

---

39. *जवाहर लाल नेहरू—एक आत्मकथा*, पूर्वोद्धृत, पृ. 73

यहां पर यह स्पष्ट है कि पंडितजी के राजनीतिक दर्शन का अपना विशिष्ट ढांचा तथा एक विशिष्ट निश्चित स्वरूप था। कभी-कभी कुछ विचारक यह सोचते हैं कि यह दर्शन समाजवाद की मूल भावना को कम कर रहा है और उदारवाद को जन्म दे रहा है। इस तरह का दृष्टिकोण उनके दर्शन के पीछे उनके अद्वितीय व्यक्तित्व की और उन समस्याओं की, जिनको वह हल करना चाहते थे, अनदेखी करता है। अपने विचारों और कार्यों में पंडित जी लोकतांत्रिक थे। समाजवाद उनका प्रिय लक्ष्य था। लेकिन वहां तक पहुंचने के लिए वह मौलिक मानवीय मूल्यों को छोड़ने के लिए तैयार नहीं थे। वह मौलिक मानवता के सबसे बड़े हिमायती और समर्थक थे। उनकी विचारधारा में शांति और सच्ची आध्यात्मिकता हमेशा परिलक्षित होती थी। अच्छाई के लिए कार्य करने और जीने की उनकी ललक थी। इसी के साथ उनका प्रभुत्व बना रहा और वह भारतीयता की भावना को बल प्रदान करते रहे। जब कोई उनके सहज उद्‌गारों पर, चाहे वे राष्ट्रवाद के बारे में हो अथवा अंतर्राष्ट्रीयवाद के बारे में हों, धर्म या विज्ञान के बारे में हों, सामंतवाद अथवा लोकतंत्र के बारे में हों, अतीत के बारे में हों अथवा वर्तमान के बारे में, विचार करता है तो वह यह पाता है कि उनके व्यक्तिगत विचार दुनियां के अनेक अंधेरे और निराशापूर्ण कोनों को आशा की किरणों से प्रकाशित करते रहते हैं।

"आमूलचूल *पुनर्निर्माण*" की विचारधारा के युग में, जिसमें वास्तव में उन देशों में जो समाजवादी क्रांतियों के केन्द्र रहे हैं, समाजवादी दर्शन के कठोर दृष्टिकोण को नरम बता दिया गया है और राष्ट्रीय आत्मनिरीक्षण तथा समाज सुधारों के लिए चिन्तन के नए द्वार खोल दिए गए हैं, पंडित जी की सहानुभूतिशील विचारधारा में उनकी पूर्ण बुद्धिमत्ता और उदात्त दृष्टिकोण को समझना अच्छा होगा। मानवीय मूल्यों के आधार पर राज्य और समाज का पुनर्निर्माण करने के लिए उनके द्वारा तीस वर्ष पहले व्यक्त किए गए विचारों को अब स्वीकार किया जा रहा है। एक अमरीकी नीति निर्माता श्री फुकुयामा ने इस संबंध में एक रोचक टिप्पणी की है :

> "हम न केवल शीतयुद्ध की समाप्ति अथवा युद्धोत्तर इतिहास की एक विशेष अवधि को गुजरता हुआ देखेंगे, अपितु इतिहास के आखिरी छोर को अर्थात् *समस्त मानवजाति के वैचारिक विकास के छोर को और मानवीय सरकार के चरमोत्कर्ष के रूप में पश्चिम के उदारवादी लोकतंत्र को समस्त विश्व में फैलता हुआ देखेंगे।*[40]

"अधिक समाजवाद के साथ अधिक लोकतंत्र" की मांग हो रही है। पंडित जी का उनके जीवन और चिन्तन में समाजवाद के प्रति अद्वितीय विचारात्मक दृष्टिकोण था क्योंकि उन्होंने इसे लोकतंत्र, बुद्धिवाद और मानववाद के सिद्धांतों के साथ मिला दिया था। उन्होंने एक मिश्रित स्वरूप प्रदान किया जिसमें व्यावहारिक प्रबल राजनीतिक दर्शन का निर्माण हुआ जो मौलिक और वास्तविक था।

---

40. *टाइम* द्वारा उद्धृत, सितम्बर, 1989, पृष्ठ 43

पंडित जी का राजनीतिक दर्शन इतना व्यापक था कि विभिन्न रूपों और चरणों में उसका लक्ष्य न्याय पर आधारित मानव समाज का पुनर्निर्माण करना था। उनका हृदय विशाल था और वह उदार चित्त वाले व्यक्ति थे। वह एक कट्टर देशभक्त थे। उन्होंने राष्ट्र की आत्मा को जाग्रत करने का प्रयास किया ताकि समय की नई चुनौतियों का सामना किया जा सके। इस प्रकार वह एक पैगम्बर, सच्चे सपूत और भारतीय इतिहास की देन थे। राजनीतिक लोगों में नैतिकता की भावना जागृत करने के साथ-साथ उन्होंने समाजवादी प्रणाली अपनाकर उस समय सक्रिय ऐतिहासिक शक्तियों को आजादी के लिए प्रेरित किया। अन्ततः 14 अगस्त, 1947 को स्वाधीनता का झण्डा फहराते हुए उन्होंने स्वयं को तथा देश को "नियति से मिलन" की बात याद दिलायी और प्रत्येक व्यक्ति को उस प्रतिज्ञा को न केवल पूरी तरह से अपितु, व्यावहारिक रूप से पूरा करने का आह्वान किया। "अर्द्धरात्रि को जब समूचा विश्व सो रहा होगा, उस समय भारत जीवन और स्वाधीनता के लिए जाग रहा होगा।"

पंडित जी को उच्च कोटि का राजनीतिक और दार्शनिक विचारक कहा जा सकता है। उन्होंने परिवर्तनशील इतिहास पर अपनी अमिट छाप छोड़ी है। डा. एच. जान टेलर ने उनको 'एक गहन दार्शनिक विचार वाले और सम्पूर्ण सत्यनिष्ठा वाले व्यक्ति' के रूप में माना है। उनके जैसे दार्शनिक समय की सीमाओं से परे होते हैं। वह किसी एक युग के नहीं हैं। वह शाश्वत हैं। उनकी अपनी एक नित्य नूतन आभा और चमक है। सबसे अच्छी श्रद्धांजलि तो गुरुदेव रवीन्द्रनाथ टैगोर के शब्दों में है जिन्होंने पंडित जी के बारे में ये विचार व्यक्त किए : "मानवता की प्रवाहित एक गहरी धारा उलझनों को समाप्त कर हमें एक ऐसे व्यक्ति तक पहुंचाती है जो अपने कार्यों से भी अधिक महान है और जो अपने परिवेश से भी अधिक सच्चा है।"

सोवियत रूस के प्रसिद्ध दार्शनिक डा. ए. डी. लिटमैन ने उनके बारे में विचार व्यक्त करते हुए कहा कि नेहरूजी "एक महान विचारक, मानववादी और एक दूरदर्शी राजनेता थे।"[41]

यह कहना अधिक उपयुक्त होगा कि "वह प्रतिभासंपन्न व्यक्ति थे।" उनका व्यक्तित्व आकर्षक था और वह महान थे। उनमें मानवीय गतिवाद की आभा थी। वह मुख्यतः राजनीति के क्षेत्र में एक दार्शनिक रहे।

---

41. *सोवियत रिव्यू*, अगस्त, 1989, पृष्ठ 12

15

मोहम्मद यूनुस

जवाहर लाल नेहरू के साथ यात्रा

मैंने पहली बार जवाहर लाल जी के साथ उस समय यात्रा की थी जब वे मेरे साथ मेरी नीली एम.जी. में आकर बैठ गए थे ताकि ठीक हमारे पीछे कार में आ रहे बादशाह खान के कारों के काफिले से आगे जाया जा सके। यह वर्ष 1938 की बात है। यह स्थान पेशावर तथा कोहाट के बीच जनजातीय क्षेत्र था जो सूखा, पथरीला तथा धूल भरा था। यह उनकी सीमांत क्षेत्र की पहली यात्रा थी तथा वे बादशाह खान के साथ खुली कार में बैठे थे, जबकि मुझे उनसे आगे चलने के लिए कहा गया था ताकि मैं खुदाई खिदमतगार के स्वयंसेवकों को चेतावनी देते हुए उन्हें रास्ते के दोनों ओर पंक्ति बनाकर खड़ा होने के लिए कह सकूं। किसी-किसी समय उनकी तथा हमारे बीच की दूरी बहुत कम रह जाती थी और इसीलिए जब उन्हें रास्ते में एक बंदूक फैक्ट्री दिखाई जा रही थी, वे मेरे पास आए और कहा, "यह क्या मजाक है कि आप तो अपनी रेसिंग कार में आगे निकल जाते हैं और हम सबको खाक खानी पड़ती है। मैं अब आपके साथ जाऊंगा।" बादशाह खान द्वारा आतंकवाद ग्रस्त इस क्षेत्र की उपेक्षा पर नाराजगी प्रकट करना स्वाभाविक ही था, तथा इस बात के लिए उन्होंने मुझे डांटा भी था। मैं जवाहरलाल नेहरू जी के शैतानी भरे बाल सुलभ हाव भावों को देख रहा था जो मुझपर अपने मजाक के परिणाम को देख रहे थे। बाद में उन्होंने बादशाह खान को बताया कि जो कुछ हुआ है उसके लिए वह दोषी हैं न कि मैं।

वे एक शानदार साथी थे तथा उनके साथ किसी दूसरे व्यक्ति को बात करने में झिझक नहीं रहती थी। वे उन सबका ध्यान रखते थे जो उनके साथ होते थे तथा वे इस बात को पसंद नहीं करते थे कि उनको लेकर किसी बात का कोई बतंगड़ बनाया जाये। उनके साथ मेरा दीर्घकालिक साहचर्य मेरे जीवन का एक बहुमूल्य हिस्सा रहा है। यह मेरा सौभाग्य था कि मैं उनके साथ रहा तथा उनके साथ काम किया। यह उनका बड़प्पन था कि उन्होंने मुझे यह कभी महसूस नहीं होने दिया कि मैं आयु में बहुत छोटा हूं तथा अनुभवहीन हूं तथा धृष्ट हूं। यद्यपि मैं उनसे 26 वर्ष छोटा था, वह नवम्बर, 1889 में

पैदा हुए थे तथा मैं जून 1916 में। मुझे याद है जब मैंने उन्हें उनका 3 वर्ष की लम्बी अवधि का आतिथ्य ग्रहण करने और उनके मार्गदर्शन से लाभान्वित होने के लिए धन्यवाद दिया था। वे इतने अधिक अच्छे थे कि मेरी बजाय वे मुझे ही अपने साथ रहने के लिए धन्यवाद देने लगे। उन्होंने कहा, *"बहुत लोग आते हैं और चले जाते हैं। कभी गांधी जी किसी को भेज देते हैं और कभी कोई और। वे रिश्ते अक्सर टूट जाते हैं। मगर आपने आकर इस घर में हर किसी के दिल में एक खास जगह पैदा कर ली है। मैंने भी आपसे बहुत कुछ सीखा और आपकी बातें अच्छी लगने लगी हैं। अब आप इस घर को अपना ही घर समझें।"**

जब भी मैं जवाहरलाल जी के संबंध में सोचता हूं तथा ऐसा अक्सर होता है तो उनके व्यक्तित्व में एक नया पक्ष उद्घाटित होता दिखता है जिनमें कुछ समृद्ध और बहुआयामी तथ्य वाले होते हैं जिसमें उस व्यक्ति के बारे में पता चलता है। उन्होंने विभाजन पूर्व के दिनों में एक बार मुझसे कहा था कि मैं उत्तर पश्चिमी सीमांत क्षेत्र के संबंध में एक पुस्तक लिखूं तथा उस समय सीमांत क्षेत्र में चल रहे अपहरणों के संबंध में प्रेस में दिए जा रहे निंदात्मक वर्णन का खंडन करूं। उनके परामर्श तथा उनके द्वारा दिए जाने वाले निरंतर प्रोत्साहन से मैंने पठानों के इतिहास के संबंध में एक पुस्तक लिखी। इसमें आदिवासियों के कार्यकलापों तथा खान अब्दुल गफ्फार खान के जीवनी और आंदोलन से संबंधित अध्याय शामिल थे। मैंने इसे "फ्रंटियर स्पीकस्" का नाम दिया था किन्तु जवाहरलाल जी ने कहा था, " यह केवल बोलते नहीं गरजते हैं और विपक्षियों पर करारा प्रहार करते हैं। अंग्रेज़ों ने 1942 में इस पुस्तक पर रोक लगा दी थी। जवाहर लाल जी ने इस पुस्तक का आमुख लिखा था, तथा बाद में उन्होंने कहा था कि यद्यपि उन्होंने बहुत-सी पुस्तकें लिखी हैं लेकिन अंग्रेजों ने उनमें से किसी पुस्तक पर कोई ध्यान नहीं दिया था। किन्तु आपने एक पुस्तक लिखी है और उन्होंने इस पर रोक लगा दी है।" यह उनकी सम्मोहक परिहास प्रवृत्ति तथा प्रोत्साहन देने की कला थी। अपनी उनके साथ प्रशिक्षण की अवधि के दौरान मैंने पाया कि वे बहुत ही छोटे तथा हल्के से विषय को इस प्रकार जीवन के विस्तृत संदर्भ से जोड़ देते थे कि वे इतिहास का एक अध्याय बन जाता था। उसमें कोई प्रवचन, कोई मार्गनिर्देश तथा कोई दबाव नहीं होता था।

उनके संबंध में मेरे संस्मरण बहुत विस्तृत और घटनाओं से परिपूर्ण रहे हैं। ऐसे अनगिनत अवसर आए हैं जब मैं उनसे सहमत नहीं हुआ किन्तु यह असहमति सदा

---

* हाल ही में मेरे एक मित्र ने मेरा ध्यान जवाहरलाल नेहरू द्वारा 26 मार्च, 1943 को अहमदनगर किले से अपनी पुत्री को लिखे गए एक पत्र की ओर दिलाया, जिसमें उन्होंने कहा था कि "तुम्हें यह जानकर दुःख होगा कि यूनुस बहुत बीमार है तथा वे पहले से बहुत अधिक दुर्बल हो गए हैं। इस समय वे एबटाबाद में नजरबंद हैं। उन्हें टी.बी. हो गयी है। इसलिए बेटी उन्हें पत्र लिखना। मुझे उनके बारे में चिंता है। वे अब तक मेरे करीब आए लोगों में से मुझे सबसे अधिक प्रिय रहे हैं।" *सिलेक्टिड वर्क ऑफ जवाहरलाल नेहरू*, खंड तेईस।

भयरहित रही थी। उन्होंने मेरी आलोचना को हंसी में लिया परन्तु वे इसके प्रति गंभीर भी हुए और वह अक्सर इस बात को स्पष्ट करते थे कि उन्हें भिन्न-प्रकार से व्यवहार क्यों करना पड़ता था। ऐसे ही समय में मैं उनकी कार्य करने की क्षमता और जीवन के प्रति उनके उत्साह की प्रशंसा करता था। वह एक अनुशासनप्रिय व्यक्ति थे और जो भी कार्य वे करते थे उन्हें वे बड़े प्रशंसनीय और प्रभावी ढंग से करते थे।

जो कुछ भी मैं प्राप्त कर सका हूं उसका सारा श्रेय जवाहरलाल जी से प्राप्त प्रेम, स्नेह और अर्थपूर्ण मार्गनिर्देश को जाता है। इस संबंध में मुझे उनके निधन के पश्चात् एक बड़ी बहन से प्राप्त तार की भाषा याद आती है। "अफसोस है कि तुमने अपने पिता समान मित्र को खो दिया है।" मैंने ऐसी अभिव्यक्ति पहले कभी नहीं सुनी थी लेकिन मैंने अचानक महसूस किया कि "पिता समान मित्र" इन दो साधारण शब्दों ने हमारे वास्तविक संबंधों को अभिव्यक्त किया है और उस अवसाद को स्पष्ट किया है जो मेरे दिलो दिमाग में छा गया था।

संघर्ष और स्वतंत्रता के आरंभिक वर्षों के दौरान जवाहरलाल जी के साथ जिस तरह की यात्राएं की गई थीं वे वैसी नहीं थीं जैसे कि आज हैं। यात्रा के लिए यातायात के किसी भी साधन का उपयोग किया जाता था जैसे तांगे और बैलगाड़ी से लेकर हवाई जहाज तक अथवा कश्मीर या कुल्लू की सुंदर वादियों में पैदल जाना पड़ता था। ऐसे अवसरों पर राजनीति का महत्व न रहता था। जो चीज अनिवार्य रूप से उभर कर सामने आती थी वह थी इंसान की मानवता। रेलगाड़ी से यात्रा करना अत्यंत रोचक होता था, यद्यपि द्वितीय श्रेणी में यात्रा करना उतना रोचक नहीं होता था लेकिन मध्य और तृतीय श्रेणी में यात्रा करने का अपना अलग ही मजा होता था। यह यात्रा 1936 में शुरू हुई थी और मई 1964 में उनके निधन के साथ समाप्त हुई। मैं असाधारण रूप से चुस्त दुरुस्त इस व्यक्ति के, जो अत्यंत कर्मठता के साथ अपना कर्तव्य निभा रहा था, नये रूप को देखता रहता था। वह अनिवार्यतः अपने अधिकारों अथवा विशेषाधिकारों के स्थान पर अपने कर्तव्यों की ओर ध्यान देते थे। इससे मेरी यह धारणा पुष्ट होती है कि भारत में हम इस बात में सौभाग्यशाली हैं कि हमारे स्वतंत्रता के प्रारंभिक वर्षों के दौरान उन जैसा व्यक्ति हमारा नेता हुआ है।

रामगढ़ में कांग्रेस के एक बहुत अधिक गहमागहमी वाले अधिवेशन और तेज बारिश के प्रभाव को झेलने के बाद जवाहरलाल जी रेलगाड़ी से इलाहाबाद के लिए रवाना हुए। हम प्रयाग रेलवे स्टेशन पर उतर गए थे जो इलाहाबाद पहुंचने से कुछ पहले आता है। जैसे ही हम कार में बैठे तो वह कुछ चिंतित दिखाए दिए और उन्होंने कहा, "सरदार वल्लभ भाई की बंबई जाने वाली रेलगाड़ी कई घंटों के बाद छूटेगी। वह स्टेशन पर क्या करेंगे? आप वहां जाओ और उन्हें लेकर आओ।" इसलिए उन्हें आनंद भवन में छोड़कर मैं रेलवे स्टेशन गया, जहां मैंने देखा कि सरदार और उनकी पुत्री मणीबेन

जलपान गृह की ओर जा रहे हैं। वह मुझे देखकर आश्चर्यचकित रह गए तथा उनकी चिंता और गहन हो गई जब मैंने उन्हें कहा कि जवाहरलाल जी ने मुझे कहा है कि वह मेरे साथ घर आएं। वह बार-बार यही पूछते रहे कि क्या बापू का कोई संदेश आया है। हम जल्दी ही आनंद भवन पहुंच गए जहां जवाहरलाल जी बाहर बरामदे में ही हमारी प्रतीक्षा कर रहे थे। सरदार और उनकी पुत्री को हाथ मुंह धोने के लिए अलग-अलग कमरे दिए गए और बाद में हमने साथ-साथ नाश्ता किया। उसके बाद वे मेरे साथ सरदार को विदा करने गए।

स्टेशन से लौटते समय मैंने उन्हें बताया कि आनंद भवन आने के निमंत्रण से सरदार काफी हैरान थे। यह सुनकर उन्होंने कहा, "आज ऐसा पहली बार हुआ है जब सरदार आनंद भवन तब आए हैं जब कार्यकारी समिति की बैठक नहीं हुई है। बाद में उच्च कांग्रेसी नेताओं के साथ रहते मुझे पता चला कि उनमें से एक दूसरे के बीच बहुत कम सामाजिक संपर्क रहा है, यद्यपि एक ही आदर्श की प्राप्ति के लिए उन्हे बहुत अधिक समय तक अत्यधिक कष्ट उठाने पड़े थे।

एक अन्य अवसर पर एक मोटा सहयात्री रेल के डिब्बे में इजन से भी अधिक तेज़ आवाज में खुरटि भर रहा था। जवाहरलाल जी स्वभावतः परेशान हो गए और उन्होंने धीरे से मुझसे कहा, "यदि उसकी नाक पर चिकोटी काटी जाए तो वह खुरटि भरना बंद कर देगा। "मैं अपने स्थान से उठा और उसकी नाक पर इतनी जोर से चिकोटी काटी कि वह उछल पड़ा और जोर से चिल्लाने लगा *टक्कर लग गई, टक्कर लग गई*। मैं उसे शांत करने के लिए खिड़की से बाहर देखता रहा और हमें तब बड़ा सुकून मिला जब वह अगले स्टेशन पर उतर गया था।

जवाहरलाल जी एक बार रेल गाड़ी से इलाहाबाद से कानपुर जा रहे थे। चूंकि बिजला जलती रहने के कारण वे सो नहीं सके तथा उन्हें पता था कि तृतीय व मध्य श्रेणी के डिब्बों में स्विच नहीं होते हैं, इसलिए वे सीलिंग लाईट को ढकने के लिए खादी का एक छोटा सा काला थैला लेकर चलते थे। मुझे याद आता है कि उनके इस तरीके से एक रेल यात्रा में मुझे अति महत्वपूर्ण व्यक्ति वाला सम्मान मिला था। मैंने भी ऐसे ही थैले लेकर चलना शुरू कर दिया और एक यात्रा के दौरान एक सहयात्री ने ऊंची आवाज में यह कहा, "*यह नौजवान पंडित जी का साथी लगता है। उन्हीं की तरह बत्तियों को ढक रहा है।*" इलाहाबाद लौटने पर मैंने आनन्द भवन में इस घटना का उल्लेख किया और सुझाव दिया कि इस आवरण को "जवाहर स्विच" कहा जाए।

कानपुर पहुंचने पर, जवाहरलाल जी का स्वागत करने के लिए एक बड़ी भीड़ जमा थी। चूंकि भीड़ उन्हें सही ढंग से नहीं देख पा रही थी, उन्होंने डिब्बों का दरवाजा खोल दिया और दरवाजे और खिड़की की तरफ पैर फैलाकर खड़े हो गए और डिब्बे की छत को दोनों हाथों से पकड़कर उन्होंने अपने लिए मंच तैयार कर लिया। उसी समय एक

लड़का अपनी ऑटोग्राफ पुस्तिका के साथ आगे आया तथा जवाहरलाल जी से उस पर हस्ताक्षर करने को कहा। शुरू में जवाहरलाल जी गुस्से में आ गए लेकिन जल्दी ही वह शान्त हो गए तथा कहा कि *क्या मुंह से लिखूं?* इससे उन्हें हंसी आ गई और भीड़ ने भी ठहाका लगा दिया।

जवाहरलाल जी ने मई, 1940 में पेशावर की यात्रा की जहां वह हमारे पारिवारिक गृह में ठहरे * वहां सर्वत्र जोश खरोश था और कुछ सैनिक अधिकारियों तथा अनेक संख्या में कांग्रेस कार्यकर्ता, जो कि बादशाह खान के इशारों के लिए हमेशा तैयार रहते थे, के अतिरिक्त सभी तरह के लोग उन्हें देखने आते थे। शेख अब्दुल्ला ने इस पार्टी को काश्मीर ले चलने के लिए दो कारें भेजीं, लेकिन मैं जवाहरलाल जी और बादशाह खान को अपनी वाल्जली 25 में ले गया था। यह एक काफी जगह वाली कार थी तथा लम्बी यात्रा के लिए सर्वथा उपयुक्त थी। हम अटोक में अपने एक साथी से मिलने के लिए रुके जिसका घर सिन्धु नदी के किनारे स्थित था। हम दोपहर के भोजन के परोसे जाने की प्रतीक्षा कर रहे थे तो मेजबान ने उस स्थान की तरफ इशारा किया जहां पर सिकन्दर महान ने भारत पर आक्रमण के समय एक पुल बनवाया था। इससे जवाहर लाल जी की उत्सुकता बढ़ी और उन्होंने वहां तैरने का इरादा किया। पानी तेजी से बह रहा था और स्वाभाविक रूप से चट्टानें काई के कारण फिसलन भरी हो गई थीं। उन्हें फिसलता हुआ देखकर बादशाह खान आशंकित हो गए तथा उन्हें रुकने के लिए चिल्लाते रहे। वहां से हम रात्रि विश्राम के लिए एबटाबाद की तरफ बढ़ चले। मैंने एक मित्र के पास अपनी कार छोड़ दी तथा काश्मीर से भेजे गए वाहन में चढ़ लिए। रास्ते में भारी भीड़ ने हमारा अभिनन्दन किया। जवाहरलाल जी द्वारा राष्ट्रीय ख्याति अर्जित करने के बाद अपने पैतृक प्रान्त की उनकी यह पहली यात्रा थी। हम शाम को श्रीनगर पहुंचे, वहां पर हमारा भारी स्वागत हुआ और झेलम नदी से नाव जलूस से हम अमीरा कदल के पास एक जगह पहुंचे। वहां से हम मोटर के द्वारा चमन हुजूरी पहुंचे जहां पर राष्ट्रीय नेताओं को सुनने के लिए एक भारी भीड़ जमा थी। इसके बाद काश्मीरी पंडितों द्वारा

---

* उन्होंने इंदिराजी को इस यात्रा के संबंध में एक पत्र लिखा था जिसे उनके 'सिलेक्टेड वर्क्स' के खंड ग्यारह में पुनः उद्धृत किया गया है। उन्होंने कहा, " मैंने पेशावर में दो दिन बिताए। मैं अपने एक नौजवान मित्र, जिसके बारे में एक बार तुम्हें लिखा था—मोहम्मद यूनुस — जो कि इलाहाबाद में हमारे साथ ठहरे थे का अतिथि था। मैंने तुम्हें बताया था कि उसके बयालिस भाई और बहन थे। आठ माताएं थीं। यूनुस परिवार में सबसे छोटा था, और उसका जन्म तब हुआ था जब उसके पिता नब्बे वर्ष के थे। वह वृद्ध व्यक्ति आखिरी समय तक स्वस्थ एवं प्रसन्न थे और एक दुर्घटना में उनकी मृत्यु हुई थी। उस समय उनकी आयु इक्यान्वे वर्ष थी। उनका पारिवारिक मकान पेशावर शहर के बीचोंबीच था जो कि पुरानी शैली का एक बड़ा मकान था तथा किले जैसा मजबूत था। वैसे परिवार की मातृ भाषा एक तरह से पश्तो थी परन्तु बातचीत कभी पश्तो, फारसी, हिन्दुस्तानी तथा कभी-कभी अंग्रेजी में होती थी।

एक शानदार भोज दिया गया। दिन के व्यस्त कार्यक्रम के बाद हम मध्य रात्रि को अपने निवास पहुंचे। बादशाह खान काफी थके हुए थे और सोने के लिए लेट गए। लेकिन उन्होंने देखा कि जवाहरलाल जी कुछ कागजात पढ़ रहे हैं और उन्होंने मुझसे कहा कि मैं शेख साहब से पूछूं कि क्या कोई और दूसरा काम भी करना है। बादशाह खान ने यह सुना, वह उत्तेजना में उठे और कहा, '*जवाहर सुबह चार बजे से अब रात में बारह बजे तक चक्कर में पड़े हुए हो। अब और क्या करना चाहते हो। बाहर जाकर नाचो।*' हम सुबह चार बजे से घूमने में हैं और अब आधी रात हो चुकी है। अब आप क्या करना चाहते हैं? बाहर जाकर नाचिए। उन्होंने कुछ कागजातों को पढ़ने की विनयपूर्वक अनुमति मांगी और उसके बाद विश्राम करने का वचन दिया।

वर्ष 1940 में काश्मीर के पहले दौर के समय जवाहरलाल जी, बादशाह खान, शेख अब्दुल्ल और हम में से कुछ लोगों को ठंडी हवा खाने के लिए डल झील में *शिकारे* पर घूमने और अलंकृत *समार* से परोसे गए काश्मीरी *कहवा* पीने और थोड़े-थोड़े अंतराल में दिए जाने वाले स्वादिष्ट *कुलचे, बाकरखानी और कबाब* खाने का अवसर मिला। जवाहरलाल जी एक दूसरे *शिकारे* में, जो कि अतिरिक्त खाद्य और पेय पदार्थ लिए हमारे साथ चल रहा था, बजाए जा रहे स्थानीय लोक संगीत से विशेष रूप से प्रभावित हुए।

पार्टी में किसी को भी यह मालूम नहीं था कि शेख साहब को एक सुरीला गला मिला हुआ है। मुझे इस बात का पता था और मैंने उन्हें कुरान से कुछ आयतें सुनाने का अनुरोध किया। उन्होंने कुछ संकोच के बाद आयतें सुनाईं। बाद में उन्हें गाना गाने के लिए मनाया गया। उन्होंने पहले हमें इकबाल के *हिमाला* और *नया शिवाला* की कुछ पंक्तियां सुनाकर रोमांचित कर दिया। ऐसे माहौल ने जवाहरलाल जी को भी इसी तरह के मनोरंजक सैरसपाटे और समुद्री पर्यटन, जो कि उन्होंने इंग्लैंड में अपने विद्यार्थी काल में किए थे, के बारे में बताने को प्रेरित किया। बादशाह खान ने भी स्वाट प्रांत में स्थित सुन्दर स्थानों का जिक्र किया और अपने लड़कों के साथ शिकार पर जाने के अपने शौक की बात बताई। उन्होंने उस समय सब लोगों को हंसा दिया—जब उन्होंने अपने प्रति उनकी इस शिकायत का जिक्र किया कि वह अपनी भूरे रंग की खादी की चद्दर से पक्षियों को भगा देंगे। उन्होंने कहा कि शिकार का मजा पक्षियों को मारने में नहीं बल्कि उनको ढूँढ़ने में है।

दिसम्बर, 1941 में बारदोली में कांग्रेस कार्यकारी समिति की बैठक होने के बाद, सदस्य वर्ष के आखिरी दिन अपने-अपने गन्तव्य स्थानों को चल दिए। जवाहरलाल जी, गोविंद वल्लभपंत, डा. खान साहब, इंदिरा जी, श्री और श्रीमती आसिफ अली और मैं कार से सूरत चल पड़े जहां से सुबह के लगभग 2 बजे फ्रंटियर मेल पकड़नी थी। स्टेशन पर टहलते हुए जवाहर जी को अचानक नए साल की पूर्व संध्या का विचार

आया। उन्होंने सोचा कि कुछ किया जाना चाहिए। मैंने आधी रात के लगभग एक चाय बेचने वाले को एक कोने में चाय की मेज लगाने के लिए पकड़ा। भोजन कक्ष छोड़ने के बाद हमने देखा कि बेचारे चाय बेचने वाले ने *मर्दाना और जनाना* शौचालय के निकट हमारी चाय की मेज लगा दी थी। आसिफ भाई की बेचैनी स्पष्ट हो रही थी लेकिन मैंने उन्हें गालिब का शेर याद दिलाया जो मस्जिद के साथ बैठकर मौजमस्ती मनाने की बात कहता है और यदि देश के प्रेमी *मयखाने* के लिए कोई नई जगह चुनते हैं तो उनको नए साल की पूर्व संध्या को असाधारण ढंग से मनाने में बुरा नहीं मानना चाहिए।

युद्धकालीन वर्षों के दौरान इलाहाबाद से दिल्ली की यात्रा की कुछ जानकारी पूर्ण बनाने के लिए पूरी यात्रा का वर्णन करना होगा। द्वितीय विश्वयुद्ध अभी शुरु ही हुआ था। सर स्टैफोर्ड क्रिप्स पहले निजी हैसियत में आए थे और आनंद भवन में ठहरे हुए थे। आचार्य नरेन्द्र देव, जयप्रकाश नारायण, श्रीप्रकाश और कुछ अन्य कांग्रेसी नेताओं को उनसे मिलने के लिए आमंत्रित किया गया था। मैं भी वहाँ ठहरा हुआ था। बातचीत में सहभागी हुआ करता था। अतः मुझे विभिन्न विषयों पर सर क्रिप्स के विचार सुनकर आश्चर्य होता था। उनका आकलन एकदम विभिन्न लगता था तथा मैंने अपने प्रतिष्ठित मेजबान को स्पष्ट रूप से यह बताया कि *मुझे तो ये बिल्कुल-पागल लगता है।* जवाहर जी को मेरी टिप्पणी अच्छी नहीं लगी और उन्होंने मुस्कराते हुए बात को आया गया कर दिया।

दो वर्ष बाद वही क्रिप्स केबिनेट मिशन का प्रमुख बनकर आए जिनके पास भारत की समस्या का समाधान करने का आदेश था। इंदिरा जी की शादी हुई ही थी और जवाहरलाल जी अगले दिन दिल्ली चले गए। मैं उनके साथ था तथा-कई बार विभिन्न स्टेशनों पर एकत्रित भारी भीड़ के द्वारा जगा दिया गया था। कुछ मेहमान, जो कि शादी में शामिल हुए थे, भी उसी रेल से अलग-अलग डिब्बों में यात्रा कर रहे थे। वे सभी गाजियाबाद में हमारे पास आ गए, जहां रेल गाड़ी को दो घंटे के लिए रुकना पड़ा था। इफ्ती की हंसी बड़ा मनोरंजन किया करती थी और इस मौके पर तो और भी अधिक मनोरंजन होता था।

दिल्ली वार्ता लम्बी खिंचती चली गई क्योंकि क्रिप्स बार-बार अपने विचार बदलते रहे और अंततः यह अपमानजनक ढंग से समाप्त हो गई। इसके अंत में जवाहरलाल जी ने एक प्रेस सम्मेलन आयोजित किया। देश बंधु गुप्ता ने इस प्रयोजन के लिए अपने बगीचे में एक शामियाना लगवाया। दिल्ली में इतना विशाल प्रेस सम्मेलन कभी नहीं हुआ था जिसमें भारतीय और विदेशी दोनों मिलाकर लगभग पांच सौ संवाददाता थे। राजनीतिक प्रश्नों के अतिरिक्त एक अंग्रेजी पत्रकार ने जवाहरलाल जी से क्रिप्स के बारे में उनके विचार पूछे तो उन्होंने उत्तर दिया कि "वह अनिश्चित बुद्धि वाले राजनीतिज्ञ हैं।" सम्मेलन से वापिस आते समय मैंने उन्हें हमारे बीच दो वर्ष पूर्व हुई बातचीत के बारे में स्मरण कराया और पूछा। "अनिश्चित बुद्धिवाले राजनीतिज्ञ और एक बेवकूफ के बीच

क्या अंतर है?" उन्होने वह घटना याद की और ठहाकार लगाकर हंसे तथा कहा, *"आप के क्या कहने। आप तो आदमी को जल्दी परख लेते हैं।"* बाद में उन्होंने यह घटना गांधी जी को सुनाई, उन्होन मेरी पीठ इतनी जोर से थपथपाई कि मेरे सारे शरीर में झनझनाहट फैल गई। तब उन्होने मुझसे कहा, "तुमने मुझे यह सब क्यों नहीं बताया" जैसे कि वह अपनी सारी नीतियां और नियम बदल देंगे। तब मुझे ज्ञात हुआ कि ऐसी घटनाओं के संबध में बापू की प्रतिक्रिया उनके आस-पास के सभी व्यक्तियों को स्तंभित कर देती थी।

अब मैं उन वार्ताओं के बारे में आपको कुछ और भी बताता हूं। क्रिप्स वार्ता अनिर्णय की स्थिति में लम्बी खिंचती रही और कभी-कभी यह क्षोभकारी स्थिति में पहुंच जाती थी। हर कोई इसके परिणाम के लिए उत्सुक था। एक दिन जब हम इस लम्बी बैठक के बाद लौट रहे थे तो जवाहरलाल जी ने सोचा कि मैं भी कुछ प्रश्न करने के लिए उत्सुक हूं। उस समय वह अपने दिल का बोझ हल्का करना चाहते थे इसलिए उन्होंने अधीरता से मुझसे कहा, "मुझसे कोई प्रश्न पूछो?" मैं कुछ हिचकिचाया। उन्होंने मुझे कंधे से हिलाया और दुबारा कहा, "तुम कुछ पूछते क्यों नहीं हो?" मैंने सकुचाते हुए कहा, "मुझे इसकी आवश्यकता नहीं है। मैं इसके बारे में कल समाचारपत्रों में पढ़ लूंगा। यदि मैं आज आपसे कुछ पूछूँ। और कल प्रेस में कुछ उद्घाटित हो जाए तो आप मुझ पर दोष लगाएंगे कि मैंने इसे उद्घाटित कर दिया।" वह मुस्कराए। और हम गाधी जी से मिलने मोटर मे चले गए, जहां उन्होंने यह घटना विस्तारपूवरक बताई। बापू बहुत खुश हुए और उन्होने अनुशासन की उस भावना के लिए मेरी बहुत प्रशसा की जो मैंने बादशाह खान से सीखी थी।

विभाजन के समय भारत में जो दंगे हुए थे वे अत्यंत व्यथापूर्ण और अपमानजनक थे। इसकी याद अभी भी मन को अवसाद से भर देती है। एक दिन सोनीपत के एक कांग्रेसी कार्यकर्ता ने जवाहरलाल जी को यह सूचना दी कि बरछों, चाकुओं और कुछ बन्दूकों से लैस हजारों व्यक्ति शहर के नजदीक एक शिविर पर जहां पाकिस्तान जाने वाले मुस्लिम शरणार्थी एकत्रित हुए थे, आक्रमण करने आ रहे हैं। ऐसे समय पर जवाहरलाल जी की निर्भयता और साहस अपनी बुलंदी पर पहुंच जाता था। वह शीघ्रता से अपनी कार में बैठे और उस स्थान पर पहुंच गए। दंगाइयों ने तुरन्त ही उन्हें पहचान लिया और उनकी कार को घेरकर *"इंकलाब जिन्दाबाद"* और *"जवाहरलाल नेहरू की जय"* के नारे लगाने लगे। वह अपनी कार की छत पर चढ़ गए ताकि सारे लोग उन्हें देख सकें और उन्होंने उन्हें संबोधित करना शुरू कर दिया। यह एक अविस्मरणीय दृश्य था। उस समय वह उसी भीड़ के सामने खड़े थे जो लूट, आगजनी और मार-काट करके आई थी तथा उनके हथियार खून से भरे हुए थे और वे शिविर में रह रहे लोगों का भी खून बहाना चाहते थे। उन्होंने उन्हें स्वतंत्रता संघर्ष के बारे में स्मरण कराया कि किस तरह युवा पुरुष और महिलाओं ने अंग्रेजों का विरोध करने के लिए यही नारे लगाए थे।

''आज मैं उन्हीं व्यक्तियों के मुंह से नारा फिर से सुन रहा हूं जो अपने ही देशवासियों को मारना चाहते हैं।'' उनके इस वाक्य ने जादू का असर किया। अगले ही क्षण हिन्दू-मुस्लिम एकता की आवाज़ गूंजने लगी और वे अपने क्रूर कृत्य के लिए पछतावा व्यक्त करने लगे।

दिल्ली आने के बाद जवाहरलाल जी सीधे गांधीजी के पास गए और उन्हें यह सारी घटना बताई। बाद में उन्हें आकाशवाणी से एक भाषण देना था। उसमें उन्होंने वही बात कही जो उन्होंने सोनीपत में दंगाइयों से कही थी और जो उन्होंने बापू को बताई थी। अपने भाषण में उन्होंने घृणा को समाप्त करने और एकता के लिए कार्य करने के लिए कहा। उनके साहस और ईमानदारी की प्रशंसा करने के बजाय पाकिस्तान ने उस भाषण का संयुक्त राष्ट्र में भारत की छवि धूमिल करने के लिए उपयोग किया। यह कहा गया कि भारत में मुसलमान सुरक्षित नहीं हैं और उसका प्रमाण जवाहरलाल नेहरू ने स्वयं ही दे दिया है। इस आरोप से भारत का यह महान सपूत विचलित नहीं हुआ। वह निरन्तर इस बात को कहते रहे, 'मैं हिन्दू भारत का प्रधान मंत्री नहीं बनना चाहता हूं। मैं उन सभी की सेवा करना चाहता हूं जो यहां पैदा हुए और बड़े हुए और यहां भारत में रहना चाहते हैं। उन्हें शांति और सम्मान से रहने का अवसर मिलना चाहिये। मैं इस तरह के भारत के लिये जीवित रहना और मरना चाहूंगा।'

इसी साहस और चिन्ता का प्रदर्शन उन्होंने कुछ दिन पूर्व किया था। डा. जाकिर हुसैन ने रात्रि ग्यारह बजे बड़ी हड़बड़ाहट के साथ मुझे बुलवाया। उन्होंने बताया कि कैसे जामिया को भीड़ ने घेर लिया था, तथा वह वहां अन्दर फंसे लोगों को जान से मारने की धमकी दे रहे हैं। स्थिति को बेकाबू होते देख उन्होंने दुखी आवाज में *खुदा हाफिज* कहा। मैंने फोन रखा और उनके पास अध्ययन कक्ष में गया। वह काम में मशगूल थे। जो कुछ जाकिर साहब ने कहा था मैंने उन्हें बताया। हम तुरन्त जामिया मिलिया इस्लामिया गये तथा वहां डा. जाकिर तथा उनके सहयोगियों को निराशा की स्थिति में पाया जबकि बाहर हिंसक भीड़ तबाही मचा रही थी। अर्ध-रात्रि को हाल में प्रधानमंत्री को आते देख, कांपती हुई आवाज में किसी ने कहा, 'आपने शान से जिंदा रहने का सबक भी दिया, और आधी रात में आकर इज्जत से मरना भी सिखा दिया। अब हमें कोई डर नहीं रहा।'

इसी बीच यह बात सरदार पटेल तक पहुंची। उन्होंने पाया कि दिल्ली के आस-पास कानून व्यवस्था के खराब होने के कारण जामिया में भेजने के लिये कोई पुलिस बल नहीं था। अतः उन्होंने माउन्टबेटन को बुलाया जिन्होंने अपने अंगरक्षक सैनिकों को जामिया भेजा और खुद उसकी अगुवाई की। उहोंने देखा कि जवाहर लाल जी एक बहुत बड़ी भीड़ से घिरे हुए थे। उन्होंने अपने सैनिकों को बन्दूक ऊपर उठाकर उन्हें संरक्षण प्रदान करने को कहा। परन्तु तुरन्त ही उन्होंने पाया कि जवाहर लाल जी अपनी कार के ऊपर खड़े होकर भीड़ को इस तरह के पागलपन में हिस्सा लेने के लिए डांट रहे हैं।

'भारत छोड़ो' आन्दोलन के दौरान अहमदनगर किले से उनकी रिहाई के पश्चात जवाहर लाल जी ने कश्मीर का दूसरी बार दौरा किया। श्रीमती इंदिरा गांधी और राजीव वहां पहले से ही मेरे साथ ठहरे हुए थे। फिर वह भी हमारे पास आ गये और हमने उन सुन्दर वादियों में कुछ दिन शांतिपूर्वक बिताये। बादशाह खान और मौलाना अबुल कलाम आजाद ने भी कुछ समय वहां बिताया।

एक दिन हम घोड़े पर सवार गुलमर्ग से लौट रहे थे और तंगमर्ग पहुंचने में देर हो गई थी। जवाहर लाल जी अधीर हो रहे थे और उन्होंने पूछा कि हमें इतनी देर क्यों हो गई। मैंने उन्हें बताया कि इफ्ती अर्थात् मियां इफ्तिखार उद्दीन गिर पड़े थे और उन्हें सिर में चोट लगी थी। इससे स्वभावतः सबको काफी चिन्ता हो गई परन्तु उन्होंने यह कह कर सभी को हंसा दिया. 'वही बेचारे का वीक स्पाट है, और वहीं चोटें लगती हैं।'

वर्ष 1946 में शेख अब्दुल्ला पर मुकद्दमा चलने के दौरान उन्होंने काश्मीर का तीसरी बार दौरा किया और मुझे उनके साथ रावलपिंडी से आगे यात्रा करने के लिए बुलाया गया। हमें गिरफ्तार कर लिया गया था तथा उरी में तीन दिन नजरबन्द रखने के बाद हमें वापिस दिल्ली भेज दिया गया था। वह एक माह बाद श्रीनगर लौट गए। वहां उनके साले सी.बी. कौल, जो कि श्रीनगर में इम्पीरियल बैंक के मैनेजर थे, ने उन्हें चाय पर आमंत्रित किया। महाराजा का मुख्यमंत्री रामचन्द्र काक शरारत में लगा हुआ था। हमने देखा कि नेशनल कांफ्रैंस द्वारा प्रदत्त एक पुरानी कार, जो कि हमारी हाउस-बोट के पास खड़ी थी, के पैट्रोल टैंक से पैट्रोल निकल रहा था। अतः समय पर पहुंचने के लिए हमको वैकल्पिक वाहन की तलाश करनी पड़ी। शाह नवाज और मैंने शहर की तरफ दूध के कई मटके ले जाता हुआ एक *तांगा* देखा। जवाहरलाल जी तांगे वाले के साथ आगे बैठ गए और शाहनवाज और मैं पिछली सीट पर बैठ गए। यह एक हास्यास्पद दृश्य था लेकिन इससे उस व्यक्ति के अपने निश्चय को पूरा करने का संकल्प झलकता था। जब हम रास्ते में थे तो हमने श्री बृज लाल नेहरू और उनकी पत्नी को उनकी बड़ी लिमूसीन कार न. जे एंड के 1936 में जाते हुए देखा। उन्होंने हमें अपने साथ बिठा लिया क्योंकि वे भी उसी पार्टी में शामिल होने जा रहे थे। नेहरू ने इस पर अपना उपदेश देना शुरू कर दिया कि जवाहर लाल को क्या करना चाहिए और अपना प्रोग्राम सही तरीके से न बनाने के लिए उन्हें झिड़कना शुरू कर दिया। जवाहर लाल जी के लिए यह बात बहुत बड़ी थी। वह भड़क उठे और अपने से बड़े चचेरे भाई पर अपने दिल की भड़ास निकाल दी और उन्हें शर्मिंदा कर दिया। गन्तव्य पर पहुंचने पर हमने चाय का मजा लिया लेकिन बड़े बीजू भाई, जैसाकि मैं उन्हें कहता था और उनकी पत्नी बिना बोले एक कोने में बैठे रहे।

जनवरी, 1949 में उन्होंने लखनऊ का एक अल्पकालिक दौरा किया। हाल ही में आए मिश्र के तत्कालीन राजदूत इस्माइल कामिल बे और मैं उनके साथ गए और

तत्कालीन राज्यपाल श्रीमती सरोजिनी नायडू के साथ राज भवन में ठहरे। एक अच्छी मेजबान बनते हुए श्रीमती नायडू ने राजदूत को बताया कि अपने मेहमानों की भावना की कद्र करते हुए उसने (नायडू) उनको हैम और बीफ परोसने से परहेज किया है। विस्मित राजदूत ने पलट कर पूछा कि तब आप नाश्ते में क्या देते हैं? जवाहरलाल जी न केवल मुदित हुए बल्कि मिश्र के राजदूत में रुचि लेने लग गए, जिन्होंने कई घटनाएं सुनाकर तथा अनेक देशों में बादशाह फारुख के दूत के रूप में प्राप्त अपने अनुभवों को बताकर हमारा मनोरंजन किया।

अगस्त, 1949 में जवाहरलाल जी ने स्थानीय नेताओं से कुछ अत्यावश्यक विचार विमर्श करने के लिए काश्मीर का दौरा किया। बाद के वर्षों में ऐसे दौरे बार-बार करने पड़े यद्यपि 1953 के बाद इनमें व्यवधान पड़ गया था। ब्रिटेन के उच्चायुक्त, सर आर्किबाल्ड नाये, जो कि भारत के विभाजन पूर्व मद्रास के गवर्नर थे और उनकी पत्नी, महासचिव, गिरिजा शंकर बाजपेयी, जवाहरलाल जी के निजी कर्मचारी और मैंने एक डकोटा विमान, जिसे दबावयुक्त नहीं किया गया था, से उड़ान भरी। बनिहाल दर्रे पहुंचने पर जवाहरलाल जी अपने अतिथियों से बाहर का "शानदार दृश्य" देखने के लिए कहने लगे। सर गिरिजा कुछ बैचेन थे और उस दृश्य का आनन्द नहीं उठाना चाहते थे। बाद में उन्होंने मुझे चुपचाप बताया "भैया, प्राइम मिनिस्टिर साहब तो बड़े ज़बरदस्त आदमी हैं। हमें जान की पड़ी है और यह कह रहे हैं कि बनिहाल देखो, जिसने देखना हो वह देखे। मैं तो सोने लगा हूं।"

सितम्बर, 1956 में जवाहरलाल जी ने साउदी अरब का दौरा किया। यह दौरा स्वेज संकट के बाद किया गया था, जब अरब देशों में भारत का बहुत अधिक सम्मान था। उनका बड़ा हार्दिक स्वागत किया गया और पूरे रास्ते में भारी भीड़ पंक्तिबद्ध खड़ी थी तथा *"रसूल अस सलाम"* के नारे लगा रही थी। जिसका अर्थ है शांति के दूत का स्वागत है। इस उपाधि से पाकिस्तान में कट्टर रूढ़िवादियों को बहुत निराशा हुई क्योंकि उर्दू में *रसूल* केवल पैगम्बर मोहम्मद के लिए है। वे एक गैर-मुस्लिम को यह उपाधि देने के लिए साउदी अरब के लोगों से नाराज हो गए। कराची के "डान" ने "अलास साउद" शीर्षक से एक प्रमुख समाचार प्रकाशित किया। अरब के कुछ विशिष्ट व्यक्तियों ने इस रवैये का मजाक उड़ाया और उन्होंने अरबी भाषा सिखाने के लिए पाकिस्तानियों को झिड़की दी। अरबी भाषा में *रसूल* का अर्थ दूत है।

साउदी अरब में बिताए गए दो दिनों में बेहतरीन खातिरदारी की गई। सम्राट ने एक भव्य हॉल में भोज दिया जबकि अमीर फैज़ल, जो उस समय युवराज थे, और प्रधानमंत्री ने अपने-अपने निजी आवासों, जो सम्राट के महल से कहीं बहुत अधिक छोटे थे, में स्वागत किया। विदाई के समय हमारे सबके लिए अरबी पोशाकें और स्विस घड़ियां तथा प्रधानमंत्री के लिए हरी केडिलेक कार उपहार में दी गई। उनकी उसमें कोई अभिरुचि

नहीं थी और उन्होंने कहा कि "मैं इस लिमोसिन कार के साथ लौटना पसन्द नहीं करता हूं।" मैंने तत्काल कहाः "अगर मोटर न दें तो फिर क्या दें। इनके पास तो तेल है या फिर रेत।" जवाहरलाल जी ने मेरी बात को समझा और जोर से ठहाका लगाकर हंसे तथा मुझसे साउदी अरब के मिनिस्टर इन वेटिंग अली मोहम्मद रजा से चाबियां लाने के लिए कहा। कार अभी भी विदेश मंत्रालय के प्रोटोकोल प्रभाग में ठीक प्रकार से चल रही है।

जवाहरलाल जी के साथ यात्रा करने से मुझे न केवल उन्हें एक स्नेही व्यक्ति के रूप में जानने का अवसर मिला बल्कि उन्होंने मेरे जैसे आयु में छोटे व्यक्ति के लिए राजनीतिक अनुभव, बौद्धिक जिज्ञासा का समूचा संसार सामने रखा और मनुष्य की स्थिति के संबंध में मेरे मन में एक गहरी संवेदनशीलता पैदा की।

16

सुभाष काश्यप

संसदीय लोकतंत्र का स्वर्णिम युग

संविधान के लागू होने से लेकर नेहरू युग के अन्त तक भारतीय संसद का कार्य*

स्वतंत्रता प्राप्ति से पहले केन्द्रीय विधान सभा में जनता के प्रतिनिधियों के और उस समय की सरकार के हितों में समानता नहीं थी। दोनों एक दूसरे के विरोधी थे, ऐसे नहीं जैसे कि विभिन्न राजनीतिक दल होते हैं, बल्कि इस अर्थ में कि जनता के प्रतिनिधि तो विभिन्न पहलुओं पर राष्ट्रीय हित के पक्षधर थे, परन्तु सरकार नहीं थी। यह एक ऐसी स्थिति थी जिसमें जनता के प्रतिनिधि राष्ट्र का भाग्य बदलने के लिए प्रयत्नशील थे परन्तु वे ऐसा कर नहीं पा रहे थे, और शासक ऐसा करने में समर्थ थे परन्तु कर नहीं रहे थे। आज़ादी मिलने के बाद स्वाभाविक रूप से स्थिति एकदम पलट गई। संसद एक प्रमुख मंच बन गया जहां लोगों के समक्ष राष्ट्रीय समस्याओं पर खुली चर्चा होती है और जहां विपक्ष के विभिन्न राजनीतिक दल अपने चुनावी वायदों को पूरा करने के प्रयास में शासक दल के साथ शक्ति परीक्षण करते हैं। संसद अब ऐसे गम्भीर लोगों का निकाय बन गया जो अपनी जिम्मेदारी समझते थे और अपनी शक्ति से सब कुछ कर सकते थे। संसद अब वास्तव में राष्ट्र का प्रतिनिधित्व करती थी और आज़ादी से पहले सरकार और जनता के प्रतिनिधियों के बीच जो खाई थी वह अब नहीं रही।[1]

अगस्त, 1947 और मार्च 1952 के बीच का समय बहुत महत्वपूर्ण था क्योंकि यह पुरानी विधान सभा और नई संसद के बीच के अन्तराल को जोड़ने वाली कड़ी था। इसके दौरान नये मंत्रियों और प्रशासन के वरिष्ठ अधिकारियों को नये संविधान के कार्यकरण से सुपरिचित होने में सहायता मिली। साथ ही संसद सदस्यों को संसदीय परम्पराओं के अनुरूप चलना सीखने और उन्हें स्वतंत्र भारत तथा भारतीय संसद की आवश्यकताओं के अनुकूल बनाने का अवसर मिला। इस अवधि के दौरान प्रक्रिया संबंधी नियमों का विस्तार करने में और सभा के कार्य को विनियमित करने तथा कार्यपालिका के साथ सभा के सम्बन्धों को विनियमित करने के लिए विभिन्न समितियों की स्थापना करने में काफी प्रगति हुई।[2]

---

* लेखक की आगामी कृति *"पोलिटिकल सिस्टम एण्ड इन्स्टिट्यूशन बिल्डिंग अंडर जवाहर लाल नेहरू"* से उद्धृत।

1. सत्यनारायण सिन्हा, *"आर्गेनाइजिंग द बिजनेस ऑफ पार्लियामेंट, सिल्वर जुबली कामेमोरेशन वोल्यूम*, लोक सभा सेक्रेटेरिएट, (नई दिल्ली, 1954), पृ. 27
2. टी.टी. कृष्णमाचारी, *"पार्लियामेंटरी लाइफ इयूरिंग" 1929-54*, वही, पृ. 23

चुनाव

नये संविधान के अधीन 1952 में जब आम चुनाव हुए तब तक संसदीय लोकतंत्र की जड़ें गहरी जम गई थीं। समूचे विश्व में संसदीय लोकतंत्र के इतिहास में यह चुनाव अद्वितीय था। इस तथ्य के बावजूद कि देश में करोड़ों लोग—जिनमें से अधिकांश निर्धन और निरक्षर थे—पहली बार अपने मताधिकार का प्रयोग कर रहे थे, इस प्रणाली के अधीन स्वतंत्र तथा निष्पक्ष चुनाव हुए। इन चुनावों के संचालन की सभी ने प्रशंसा की। वर्ष 1957 तथा 1962 के क्रमशः दूसरे तथा तीसरे आम चुनावों में भी ऐसा ही हुआ। जनता की स्वतंत्र इच्छा की अभिव्यक्ति इन चुनावों की मुख्य बात रही। हालांकि बाद के प्रत्येक आम चुनाव में निर्वाचकों की संख्या बढ़ती ही गई, फिर भी नेहरू के अधीन चल रही प्रणाली को इस बात का श्रेय जाता है कि चुनाव प्रक्रिया और व्यवस्था के विरुद्ध शिकायत की बहुत कम गुंजाइश रही। इन तीनों आम चुनावों में जवाहर लाल नेहरू के नेतृत्व में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस लोक सभा में व्यापक बहुमत से सत्ता में आयी।

संसदीय संस्थाओं का निर्माण

पंडित नेहरू भारत की राजनीतिक संस्थाओं के प्रमुख निर्माता थे। देश में संसदीय लोकतंत्र के विकास में उनका योगदान अद्वितीय था। उन्होंने ही भारत में संसदीय संस्थाओं के ढांचे और प्रासाद का ईंट-ईंट करके निर्माण किया। संविधान के लागू होने के बाद के वर्षों का समय राष्ट्र के लिए तथा विश्व के लिये बहुत कठिनाई का काल था। उसका भारत की प्रतिनिधि संस्थाओं ने सामना किया, जो संसदीय प्रणाली के प्रति नेहरू की गहरी आस्था और सम्मान का प्रतीक है। पंडित नेहरू के नेतृत्व में संसद ने आरम्भ के वर्षों (1950-64) में जटिल समस्याओं का समाधान करने तथा राष्ट्रीय अखण्डता का निर्माण करने में भारी योगदान किया। "राष्ट्र की महान न्यायसभ्य संस्था" के रूप में इसे लोगों की समस्याओं और कठिनाइयों को हल करने और उनकी विभिन्न शिकायतों पर विचार करने और उन्हें दूर करने वाला मंच माना जाने लगा। नये भारतीय गणतंत्र के पहले चौदह कठिन वर्षों में भारत के प्रथम प्रधान मंत्री के रूप में जवाहर लाल नेहरू ने ही संसदीय प्रणाली स्थापित करने के संवैधानिक जनादेश को पूरा किया जिसके अधीन व्यक्ति को सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक न्याय, स्वतंत्रता, समानता और गरिमा की गारंटी दी गई और जिस ढंग से उन्होंने यह कार्य किया उससे उन्होंने संविधान के उपबंधों को सही रूप, अर्थ तथा सार्थकता प्रदान की।

सदन—अन्तरिम संसद (1950-52), पहली लोक सभा (1952-57), दूसरी लोक सभा (1957-62) और तीसरी लोक सभा (1962-64)—के नेता के रूप में

नेहरू जी ने स्वस्थ प्रथाएं और दृष्टांत स्थापित करने में बहुत ही महत्वपूर्ण भूमिका अदा की। नेहरू जी का विश्वास था कि वयस्क मताधिकार के आधार पर संसद के निष्पक्ष और स्वतंत्र चुनाव कराना लोकतंत्र का एक बहुत ही पुनीत कार्य है। वह संसद और संसदीय प्रथाओं तथा प्रक्रियाओं का भारी आदर करते थे। यह बात संसद के सदनों के भीतर और बाहर उनके आचरण से स्पष्ट हो जाती है। पीठासीन अधिकारियों तथा संसद-सदस्यों के साथ उनके सम्बन्ध बहुत ही मधुर और सौहार्दपूर्ण थे। वह सभी संसद-सदस्यों के पत्रों का उत्तर सर्वदा स्वयं ही और अत्यन्त शीघ्र देते थे।

नेहरू जी की संसद में पूरी आस्था थी और वह इसे लोगों की सर्वोच्च प्रतिनिधि संस्था मानते थे। वह संविधान के अन्तर्गत संसद को सौंपे गये क्षेत्र में उसे प्रमुख और सर्वोपरि मानते थे। न्यायपालिका की भूमिका और न्यायिक पुनरीक्षा की सीमा के मामले में नेहरू जी ने दृढ़ रुख अपनाया और कहा कि न्यायालय तृतीय विधायी सदन नहीं बन सकते; उनका काम संसद द्वारा बनाये गये कानूनों की व्याख्या करना है, न कि स्वयं कानून बनाना। उनके सतर्क प्रयासों से ही संसद को देश के शासनतंत्र में प्रमुख स्थान मिला। एक संस्था के रूप में संसद की प्रभावशीलता कई बार सिद्ध हो चुकी है।[3]

सदन में गरिमा और मर्यादा

नेहरू जी संसद में शिष्टाचार प्रदर्शित करने के बड़े कायल थे; सदन में प्रवेश करने का उनका ढंग, सदन में अपना स्थान ग्रहण करते समय या सभा से जाते समय हर बार अध्यक्षपीठ को झुक कर नमस्कार करना, संसदीय शिष्टाचार का कड़ाई से पालन करना और उत्तेजक व्यवधानों के उत्तर देने के लिए भी तैयार रहना अनुकरणीय थे। भारत के राष्ट्रपति श्री आर. वेंकटरामन के अनुसार "नेहरू जी की सहज सौम्यता और सज्जनता ने उन्हें संसद की शोभा बना दिया था।"[4] वह प्रश्नकाल में बड़ी दिलचस्पी लेते थे और इस दौरान कभी अनुपस्थित नहीं रहते थे। वह बड़े मसलों पर वाद-विवाद के दौरान प्रायः उपस्थित रहते थे और सदस्यों के भाषण ध्यान से सुनते थे। कई प्रसिद्ध संसदविदों ने यह बताया है कि नेहरू जी कैसे गरिमा और दक्षता से तथा सुन्दर और प्रभावकारी ढंग से प्रश्नों के उत्तर देते थे। श्रीमती वायलेट अलवा ने एक बार कहा था कि नेहरू जी "जोश से बोलते थे परन्तु दुर्भावना से नहीं"। कई बार वह ग़लत बातों की "एक विद्रोही की भांति बुराई करते थे लेकिन वह पीछे कोई जख़्म नहीं छोड़ते थे।" वह "किसी भी कठिन प्रश्न में हस्तक्षेप कर सकते थे और उसका उत्तर दे सकते थे तथा किसी उलझे हुए वाद-विवाद को सुलझा सकते थे।"

सदन में शिष्टाचार और अनुशासित व्यवहार बनाये रखने के मामले में नेहरू जी सदस्यों से अच्छे व्यवहार की आशा करते थे और उनसे ऐसी कोई बात न करने की प्रार्थना करते थे जिससे सदन की गरिमा कम होती हो। सदन में कभी-कभी अनुशासनहीन व्यवहार देखने के अवसर आते थे परन्तु वह उनका कड़ाई से सामना करते

थे। वह एक संसद सदस्य के लिए अशोभनीय आचरण का दोषी पाये जाने पर अपने दल के सदस्यों तक को भी लोक सभा की सदस्यता से निष्कासित करवा देते थे। 1951 में जब एक संसद सदस्य (एम.जी. मुदगल) ने कुछ लेकर बम्बई सराफा बाज़ार संघ की ओर से प्रचार करने के लिए सदस्य होने की अपनी स्थिति का प्रयोग करने का प्रयास किया तो नेहरू जी स्वयं उसके खिलाफ एक संसदीय समिति द्वारा जांच का प्रस्ताव संसद के समक्ष लाये, यद्यपि वह नेहरू जी का अपने दल का सदस्य था। मुदगल जी का आचरण एक संसद सदस्य के लिए अशोभनीय पाया गया और उन्हें त्यागपत्र देना पड़ा।[5]

लगभग 13 वर्ष बाद 18 फरवरी, 1963 को जब एक साथ समवेत संसद के दोनों सदनों के समक्ष राष्ट्रपति के अभिभाषण के समय कुछ सदस्यों ने अनुशासनहीन व्यवहार किया तो नेहरू जी ने लोक सभा में अधिक कड़ाई से अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त की। इन सदस्यों के आचरण की जांच करने के लिए नियुक्त समिति ने सिफारिश की कि उन सदस्यों की भर्त्सना की जानी चाहिये। समिति के प्रतिवेदन पर चर्चा का उत्तर देते हुए नेहरू जी ने कहा :

> "हमारे सामने केवल यह प्रश्न है—यह बहुत ही महत्वपूर्ण है कि इस संसद का काम गरिमापूर्वक और प्रभावकारी ढंग से चलाने के लिए हम किन नियमों और परिपाटियों की स्थापना करें। ऐसा पहली बार हुआ है और यदि इस सदन या संसद द्वारा इसकी कटु आलोचना किये बिना ऐसा होते रहने दिया गया तो यह हमारी लोकतांत्रिक संस्थाओं के लिए और विशेष रूप से संसद के लिए अशुभ दिन होगा। इस संसद से केवल सही ढंग से कार्य करने की ही अपेक्षा नहीं की जाती, अपितु इससे शिष्टाचार के कुछ सिद्धान्त और परिपाटियां निर्धारित करने की भी आशा की जाती है।"
>
> "महोदय, मैं आपसे तथा सभा से निवेदन करता हूं कि कम से कम इसे स्वीकार किया जाये और इस प्रकार इस सभा को, देश को तथा भारत की अन्य विधान सभाओं को यह स्पष्ट कर दिया जाये कि हम ऐसे आचरण का पालन अवश्य करेंगे जिसकी संसद जैसे उच्च विधान मण्डल और भारत की अन्य प्रतिनिधि संस्थाओं से अपेक्षा की जाती है। हमें इस सम्बन्ध में एक उदाहरण स्थापित करना होगा और यदि हम इस मसले में कमज़ोर पड़ते हैं तो यह संसद के लिए और हमारे भावी कार्य के लिए अशुभ दिन होगा। अतः मेरा यह अनुरोध है कि उपाध्यक्ष द्वारा पेश किये गये संकल्प को बिना अधिक तर्क के स्वीकार किया जाये।"[6]

---

3. सुभाष काश्यप (सं.), *नेहरू और संसद*, लोक सभा सचिवालय, नई दिल्ली, 1986, प्रस्तावना
4. काश्यम (सं) में आर. वेंकटरामण, *वही*, पृष्ठ 25
5. श्याम लाल शकधर, ग्लिम्पसेज़ ऑफ द वर्किंग ऑफ पार्लियामेंट, (नई दिल्ली, 1977) अध्याय 7, *द कन्डक्टर आफ ए मेम्बर ऑफ पार्लियामेंट : द मुदगल केस*, पृष्ठ 111-136.
6. *लोक सभा वाद-विवाद*, खण्ड 15, 19 मार्च, 1963, पृष्ठ 4770-71.

संसदीय पहल और प्रभाव

एक अवसर, जो सम्भवतः सर्वाधिक स्मरणीय था, 1955-56 में आया जब संसद अपने अधिकार पर दृढ़ रही। उस समय राज्य पुनर्गठन आयोग के प्रतिवेदन के संदर्भ में राज्यों के पुनर्गठन की समस्या पर विचार हो रहा था। आयोग के प्रतिवेदन पर 1956 में जो जबरदस्त बहस हुई वह इस बात का पर्याप्त प्रमाण थी कि संसद कार्यपालिका अथवा सत्तारूढ़ दल की "रबड़ की मोहर" नहीं है। वास्तव में, द्विभाषी बम्बई राज्य बनाने के लिये लिया गया अन्तिम निर्णय सहज संसदीय पहल का ही परिणाम था। यह एकदम नया प्रस्ताव था। साथ ही और भी निर्णय लिये गये और वे समान रूप से महत्वपूर्ण थे तथा वे भी राज्य पुनर्गठन के विषय पर हुए संसदीय वादविवाद से ही निकले थे। भाग 'क' और भाग 'ख' राज्यों के उच्च न्यायालयों के न्यायाधीशों के वेतनों में असमानता दूर करना, राज्यों के "क", "ख" और "ग" श्रेणियों में वर्गीकरण को समाप्त करना, भाषायी आयोग बनाना, मध्य प्रदेश के लिये विधान परिषद् बनाना आदि कुछ अन्य ऐसे निर्णय थे जो संसद द्वारा की गई पहल के परिणाम कहे जा सकते हैं।[7]

एक और भी उदाहरण है जिसमें संसदीय सरकार में मंत्रिमंडल के दायित्व की सर्वोच्च परम्पराओं के अनुरूप, केन्द्रीय रेल मंत्री (लाल बहादुर शास्त्री) ने एक गम्भीर रेल दुर्घटना के लिये अपनी जिम्मेदारी को स्वीकार किया और त्यागपत्र दे दिया।[8]

संसदीय शक्ति का एक प्रभावोत्पादक प्रदर्शन तब हुआ जब भारतीय सिविल सेवा के एक सचिव (एच. एम. पटेल) और एक शक्तिशाली वित्त मंत्री (टी.टी. कृष्णम्माचारी) को मुंधा के मामले में, जिसमें जीवन बीमा निगम के धन के निवेश आदि संबंधी प्रश्न अन्तर्ग्रस्त थे, अपने-अपने पदों को छोड़ना पड़ा था। इस मामले को लोक सभा में उठाया गया था और एक जाने माने सांसद फिरोज गांधी ने इसे आगे चलाया था।[9]

बेरूबारी मामले में सरकार ने एक समझौते के तहत संघ के राज्य क्षेत्र के कुछ भागों को पाकिस्तान के हवाले करने का निर्णय लिया था। संसदीय दबाव ने सरकार को इस मामले को उच्चतम न्यायालय को सौंपने और संसद के समक्ष एक संवैधानिक संशोधन लाने पर विवश कर दिया। उच्चतम न्यायालय की राय ने इस सिद्धान्त को स्थापित कर दिया कि सरकार संसद के अनुमोदन के बिना और संसद द्वारा संविधान में संशोधन किए बिना भारत संघ के राज्य क्षेत्र के किसी भाग को किसी अन्य देश के हवाले नहीं कर सकती।[10]

कुछ विवाद और कथित मतभेदों के कारण जब सेना के एक जनरल (थल सेनाध्यक्ष, जनरल थिमैय्या) ने अपना त्यागपत्र दे दिया तो प्रधानमंत्री नेहरू ने लोक सभा में दृढ़तापूर्वक और स्पष्ट घोषणा की कि भारत में "सिविल अधिकार सर्वोपरि है

और अवश्य रहना ही चाहिये।" कुछ पड़ोसी देशों में लोकतंत्र के साथ जो हुआ विशेष रूप से उसके संदर्भ में ये शब्द महत्वपूर्ण और स्मरणीय थे।[11]

चीन के आक्रमण के पश्चात 1962 की पराजय में रक्षा मंत्री (वी. के. कृष्ण मेनन) को संसद के दबाव के कारण त्यागपत्र देना पड़ा था। इससे जहां एक ओर संसद की शक्ति का पता चलता है, वहीं दूसरी ओर यह नेहरू की महामनस्कता, दूरदर्शिता तथा संसदीय लोकतंत्र के सर्वोच्च सिद्धान्तों के प्रति उनकी गहरी वचनबद्धता का द्योतक है। जब उन्होंने देखा कि कांग्रेस दल में और संसद में बहुमत उनके निजी पूर्वाग्रहों के विरुद्ध है तो वे तुरन्त, स्वेच्छा से और विनम्रता से उसके सामने झुक गये।[12]

अनिवार्य जमा योजना का, जो 22 मई, 1963 को लागू हुई थी, लोगों ने और संसद ने भारी विरोध किया। इसे वर्ष समाप्त होने से पहले ही वापस ले लिया गया।

सेराजुद्दीन काण्ड में खान और तेल मंत्री (के.डी. मालवीय) को यह स्वीकार करने के बाद कि उन्होंने सेराजुद्दीन से राजनीतिक उद्देश्यों के लिये धन लिया था और उच्चतम न्यायालय के एक न्यायाधीश द्वारा मामले की जांच किये जाने के बाद, त्यागपत्र देना पड़ा।[13]

भारत और अमरीका के बीच कथित वी.ओ.ए. सौदे के कारण संसद में काफी गरमागरमी हुई और विरोध हुआ और अन्ततः सरकार को समझौते को रद्द करना पड़ा।[14]

24 अप्रैल, 1964 को पुरःस्थापित संविधान संशोधन विधेयक, जिसका आशय आपात के दौरान अधिकारियों की कतिपय कार्यवाही के लिये क्षतिपूर्ति करना था, सरकार द्वारा लोक सभा में इसके विरुद्ध हुई तीव्र प्रतिक्रिया को ध्यान में रखते हुए वापस लिया गया।[15]

इस प्रकार कई अवसरों पर संसद ने, विशेष रूप से राष्ट्रीय महत्व के मुद्दों पर, अपने अधिकार पर डटे रहना ठीक समझा।

विपक्ष को साथ लेकर चलना और आलोचना स्वीकार करना

राष्ट्र के व्यापक हितों को ध्यान में रखते हुए, नेहरू विपक्ष को हमेशा साथ लेकर चलने को तत्पर रहते थे। वह विपक्ष की बात बड़े ध्यान से सुनते थे। विपक्ष द्वारा सरकार की आलोचना को वह पूर्णतः लोकतंत्रात्मक मानते थे। उनकी मान्यता थी कि विपक्ष की रचनात्मक आलोचना से सरकार को मदद मिलती है। यद्यपि उस समय विपक्ष के सदस्यों की संख्या बहुत कम थी, नेहरू जी उसे काफी महत्व देते थे। उनका विचार था कि "विपक्ष को ऐसा न लगे कि हम बदले की भावना रखते हैं। वैसा लगना हमारे लिए अच्छी बात नहीं है।"[16] वह महत्वपूर्ण विषयों पर विचारों का आदान-प्रदान करने के लिये विपक्ष के नेताओं से प्रायः मुलाकात करते रहते थे। जो अच्छा भाषण देते थे और अहम

मामले उठाते थे उनकी प्रशंसा करना वह कभी नहीं भूलते थे। वह उनसे बात भी करते थे। कई विपक्षी सदस्यों के साथ उनके संबंध काफी मधुर और मैत्रीपूर्ण थे। संसद के विपक्षी सदस्यों के प्रति उनकी निर्विवाद शिष्टता और सम्मान भावना की भूरि-भूरि प्रशंसा की गई है। नेहरू न केवल अपने दल के सदस्यों के प्रति अपितु विपक्ष के सदस्यों के प्रति भी अपनी जिम्मेदारी समझते थे। वस्तुतः वह समग्र राष्ट्र के प्रति अपना उत्तरदायित्व महसूस करते थे। वह इस तथ्य के प्रति सदैव जागरूक रहते थे कि वह सारे देश के प्रधानमंत्री हैं और संसद में केवल बहुमत-दल के नेता ही नहीं है अपितु सम्पूर्ण सभा के नेता हैं।

नेहरू जी के नेतृत्व में सदस्यों के अधिकार और विशेषाधिकार सुरक्षित रहे और सभा की गरिमा तथा प्रतिष्ठा बनी रही। वह कहते थे, "मुझे इस सभा की शक्तियों से ईर्ष्या होती है और मैं नहीं चाहूंगा कि कोई भी इन शक्तियों की सीमा बांधे।"

एक बार जब कुछ विपक्षी सदस्यों ने यह महसूस किया कि नेहरू जी के तत्कालीन विशेष सहायक (एम.ओ. मथाई) ने कुछ ऐसी बातें कही हैं जिनसे सभा का अपमान हुआ है और वे एक विशेषाधिकार हनन का प्रस्ताव लाए तो नेहरू ने अध्यक्ष से मामले को विशेषाधिकार समिति को सौंपने का अनुरोध किया। उन्होंने कहा :

> "जब सभा का एक बहुत बड़ा वर्ग यह महसूस करता है कि कुछ किया जाना चाहिये तो बहुमत के लिये उनकी इच्छाओं को दबाना उचित नहीं है। ..... इस विषय को यहीं छोड़ देने का सुझाव ठीक नहीं होगा क्योंकि उससे ऐसा प्रतीत होता होगा कि मामले को दबाने या समाप्त करने का प्रयास हुआ है। इस तरह की भावना को जन्म लेने देना उचित नहीं है।"[17]

नेहरू सभी पक्षों की प्रबुद्ध आलोचना का स्वागत करते थे और वैध मुद्दों को बेहिचक स्वीकार कर लेते थे। एक बार राष्ट्रपति के अभिभाषण पर चर्चा के दौरान एक विपक्षी नेता

---

7. शकधर, *पूर्वोल्लिखित*, पृ. 214-215, लो.स.वा.वि., 6 अगस्त, 1956, स्त. 2333; 9 अगस्त, 1956, स्त. 2574 और 2593-94; 7 अगस्त, 1956, स्त. 2474-75.
8. *लो.स.वा.वि.* 26 नवम्बर, 1956, स्त. 993-97
9. *वही*, 4 सितम्बर, 1957, ता. प्र. 1476; 18 फरवरी, 1958, स्त. 1282.
10. *वही*, 12 सितम्बर, 1958, स्त. 6200-09; बेरूबारी स्थानान्तरण विधेयक और संविधान (नौवां संशोधन) विधेयक, 16 दिसम्बर, 1960 को लोक सभा में पुनः स्थापित किये गये थे।
11. *वही*, 2 सितम्बर, 1959, स्त. 5857
12. *वही*, 11 नवम्बर, 1962
13. *वही*, 17 अगस्त, 1963 स्त. 954-57
14. *वही*
15. *वही*, 29 अप्रैल, 1959, स्त. 13766-80 और 24 अप्रैल, 1964, स्त. 12501-24.
16. *वही*, 2 मई, 1963, स्त. 13404

अशोक मेहता ने राष्ट्रपति के अभिभाषण को नीरस, रंगहीन और सामान्यतः गतिहीन अभिभाषण की संज्ञा दी और इसके लिये सरकार को दोषी माना। वादविवाद का उत्तर देते हुए नेहरू ने सबसे पहले इस बात को लिया और कहा :

> "महोदय, सर्वप्रथम मैं श्री अशोक मेहता की उस आलोचना का उल्लेख करूंगा जिसमें उन्होंने राष्ट्रपति के अभिभाषण को नीरस, रंगहीन और सामान्यतः गतिहीन कहा है। हम सरकार में हैं और राष्ट्रपति का अभिभाषण तैयार करने की जिम्मेदारी हमारी है। इसलिये निश्चित रूप से यह आलोचना हम पर लागू होती है। मैं यह कहने को तैयार हूं कि आलोचना कुछ हद तक उचित है।"[18]

संसद में सरकार की जो 'सदाशय आलोचना' होती थी नेहरू जी उसका स्वागत करते थे और कहते थे कि उससे सरकार को लाभ होगा। पर वह अपने आलोचक को यह कह कर चुप करा देते थे कि आलोचना के बिन्दुओं के अलावा अधिकांश आधारभूत बातों पर हमारा एक मत है और फिर वह मतैक्य के क्षेत्र का विश्लेषण करने लगते। नेहरूजी कभी-कभी "आलोचना, अवरोध और अनिश्चय के प्रति, जो कि प्रजातांत्रिक विधान सभाओं की एक विशेषता है," अधीर होते प्रतीत होते थे, लेकिन वास्तव में वह आलोचना का स्वागत करते थे। वह इतना आत्मनिरीक्षण करते थे कि लीक से हट कर भी दूसरों के विचार ग्रहण कर लेते थे। वह "अपने दृष्टिकोण की विरोधियों द्वारा की गई आलोचना से अच्छी बातें लेने का पूरा प्रयास करते थे और उसके अनुरूप अपनी योजनाओं और विचारों को पुनः ढालने का धैर्य भी उनमें था।"[19] इस प्रकार उन्होंने स्वस्थ वाद-विवाद को प्रोत्साहित किया और विपक्षी सदस्यों ने जो मूल्यवान सुझाव दिए उन्हें स्वीकार किया। विपक्षी दलों के विचारों को और समाचार पत्रों के माध्यम से आम लोगों द्वारा अभिव्यक्त विचारों को यथोचित सम्मान देकर नेहरूजी ने भारत में संसदीय लोकतंत्र की महान संसदीय परम्पराओं का शैशवास्था में पोषण किया। इस प्रक्रिया में उन्होंने संसदीय जीवन के उच्चतम मूल्य स्थापित किये।

कांग्रेस दल के अन्दर भी नेहरूजी ने वाद-विवाद और विचार-विमर्श की अनुमति दी तथा विभिन्न विषयों पर विभिन्न विचारधाराओं को आमंत्रित किया। इसीलिए कांग्रेस में अलग-अलग विचारधाराओं के समावेश के लिए काफी लचीलापन रहा। इसमें भिन्न-भिन्न विचारों और समालोचनाओं के विकास की काफी गुंजाइश रही। इसमें जो विचार-विमर्श होता था उसका सार प्रायः आम जनता की जानकारी और समीक्षा के लिए समाचार पत्रों को दिया जाता रहा। दल की कार्य करने की इस विशिष्टता के कारण सभा में इसकी स्थिति काफी मजबूत रही। सत्ताधारी दल की बैठकों में जो विचार-विमर्श होता

---

17. *वही*, खण्ड 25, 1959, पृष्ठ 169
18. *वही*, खण्ड 50, 23 फरवरी, 1961, पृष्ठ 1677
19. काश्यप (सं.) में उमाशंकर दीक्षित, *पूर्वोल्लिखित*, पृ. 127

था और जो घटनाएं घटती थीं उनका सरकारी नीतियों के निर्धारण में तथा जनमानस की राय के अनुसार कार्य करने में खासा प्रभाव रहता था। प्रशासन पर दल का प्रभाव शायद उतना ही रहता था जितना कि संसद का था। यद्यपि प्रशासन सत्तारूढ़ दल के प्रति सीधा उत्तरदायी नहीं होता, पर परोक्ष रूप में दल के नेता प्रशासन की जो आलोचना करते हैं वह सभा में अभिव्यक्त की जाती है और विभिन्न संसदीय प्रक्रियाओं का सहारा लेकर प्रशासन का उत्तरदायित्व निर्धारित किया जा सकता है।[20]

नेहरू जी की संसदीय विधा उनकी अपनी थी। उनके तर्क अकाट्य होते थे और उनकी कुशल हाजिर जवाबी, वाक्चातुर्य और हास्य-विनोद पटुता सभा को भावविभोर कर देते थे। वह शुद्ध अंग्रेजी या शुद्ध हिन्दी में बोलते थे। वह अवसर के अनुरूप भाषा का प्रयोग करते थे। उनकी हिन्दी, या विशेषकर हिन्दुस्तानी, उनकी अपनी होती थी। उनका शब्दों का उच्चारण विशेष प्रकार का होता था और वह प्रायः एक अध्यापक की भांति अपनी बात को बड़ी कुशलता से समझाते थे।

अध्यक्ष पद की स्थिति

नेहरू ने सभा में अध्यक्ष पद के सम्मान को ऊंचा रखकर इस विषय में अमूल्य परिपाटियां स्थापित कीं। उनकी मान्यता थी कि सभा में अध्यक्ष का स्थान सबसे महत्वपूर्ण होता है और वह सभा की गरिमा और स्वतंत्रता का प्रतीक होता है। उससे यह आशा की जाती है कि वह सदस्यों के अधिकारों और विशेषाधिकारों की रक्षा करेगा। विट्ठल भाई पटेल की प्रतिमा का उद्घाटन करते हुए उन्होंने कहा था :

> "महोदय, अब मैं, विशेषकर सरकार की ओर से, यह कहूंगा कि हम सम्मानित अध्यक्षपीठ से यह अपेक्षा करते हैं कि वह अब और हमेशा ही हर सम्भव खतरे से, यहां तक कि कार्यपालिका के हस्तक्षेप के खतरे से भी, सभा की स्वतंत्रता की रक्षा करेंगे। यह खतरा एक राष्ट्रीय सरकार से भी हो सकता है कि वह दूसरों के ऊपर अन्धाधुन्ध हावी होने का प्रयास करे, बहुमत से हमेशा यह खतरा रहता है कि वह अल्पमत के विचारों पर अन्धाधुन्ध हावी होने का प्रयास करे, और ऐसी स्थिति में ही अध्यक्ष की यह भूमिका आती है कि वह किसी प्रमुख ग्रुप या प्रमुख सरकार की ऐसी अनुचित कार्यवाही से प्रत्येक सदस्य की या प्रत्येक ग्रुप की रक्षा करे। ..... अध्यक्ष का औहदा किसी व्यक्ति विशेष का औहदा नहीं है, न किसी व्यक्ति को दिए गए सम्मान का। अध्यक्ष सभा का प्रतिनिधित्व करता है। वह सभा की गरिमा, सभा की स्वतंत्रता का प्रतिनिधित्व करता है और चूंकि सभा एक विशिष्ट तरीके से, सारे राष्ट्र का प्रतिनिधित्व करती है, इसलिए अध्यक्ष राष्ट्र की स्वतंत्रता और

---

20. शकधर, *पूर्वोल्लिखित*, पृ. 198

स्वच्छन्दता का प्रतीक बन जाता है। अतः उसके पद का सम्मान होना ही चाहिए। उसे पूर्ण स्वतंत्रता होनी चाहिए और इस पद पर सर्वदा ऐसे व्यक्ति को ही नियुक्त किया जाना चाहिए जो असाधारण योग्यता वाला और निष्पक्ष हो।[21]

एक बार जब अध्यक्ष मावलंकर प्रधान मंत्री से उनके कार्यालय में मुलाकात करना चाहते थे तो नेहरूजी ने कहा था कि मुझे अध्यक्ष कक्ष में जाना चाहिए, न कि उन्हें मेरे कार्यालय में आना चाहिए। इस घटना से पता चलता है कि नेहरूजी कितने महान थे, कितने विनम्र थे, संसदीय परिपाटियों का कितना पालन करते थे और संसदीय संस्थाओं का कितना सम्मान करते थे। लोक सभा के भूतपूर्व महासचिव श्री श्याम लाल शकधर ने, जिन्होंने श्री एम.एन. कौल के साथ-साथ संसद में नेहरू जी के काम के तरीकों को काफी निकट से देखा था और जिन्हें लोकतांत्रिक संस्थाओं के साथ नेहरूजी के संबंधों के विषय में विशेषज्ञ माना जा सकता है, स्वतंत्रता के बाद के आरम्भिक वर्षों में दो महत्वपूर्ण संसदीय संस्थाओं के पदधारियों, अर्थात् प्रधान मंत्री और अध्यक्ष, के बीच के निकट संबंधों के नाजुक संतुलन का वर्णन किया है। श्री शकधर के शब्दों में :

"प्रधान मंत्री नेहरू सभा की गरिमा बनाये रखने और इसके प्राधिकार को बढ़ाने के अभ्यस्त थे। उन्होंने इसका आभास उन छोटे-छोटे कार्यों में दिया जो इस समय अन्य लोगों द्वारा अनुकरणीय स्थायी पूर्वोदाहरण बन गये हैं और जो इस प्रकार शाश्वत प्रणाली की नींव को मजबूत करते हैं। वह इस बात को भली-भांति जानते थे कि सदन का प्रवक्ता होने के नाते अध्यक्ष भी उतना ही आदरणीय है जितना कि स्वयं सदन है। अतः इसी कारण जब कभी उन्हें अध्यक्ष के साथ किसी बात पर चर्चा करनी होती थी तो वह समय लेकर अध्यक्ष के कक्ष में आते थे और जब भी कभी अध्यक्ष ने उनसे मिलने की इच्छा व्यक्त की तब भी नेहरूजी उनके कक्ष में आते थे। मुझे मालूम है कि जब अध्यक्ष के नेतृत्व में संसदीय शिष्टमंडलों को विदेशों का दौरा करना होता था तब भी वह अध्यक्ष के कक्ष में आकर वहां उन्हें सम्बोधित करते थे। ऐसा करके उन्होंने न केवल अध्यक्ष के पद के सम्मान और गरिमा को बढ़ाया, बल्कि अपनी गरिमा तथा प्राधिकार को भी बढ़ाया। इतनी विनम्रता बहुत कम लोगों में होती है।"[22]

नेहरूजी अध्यक्ष की न्यायप्रियता तथा निष्पक्षता के गुणों के सबसे बड़े प्रशंसक थे। उन्होंने कहा था, "अध्यक्ष को राजनीति के सभी विवादास्पद विषयों पर चर्चा में सक्रिय रूप से भाग लेने से दूर रहना पड़ता है। कहने का सार यह है कि अध्यक्ष को अपने आप को एक न्यायाधीश की स्थिति में रखना होता है। उसे किसी भी प्रकार के पक्षपात से

---

21. शकधर, पूर्वोल्लिखित, पृ. 37-38

22. कश्यप (सं) में शकधर, पूर्वोल्लिखित, पृ. 163-64

पृथक रहना होता है जिससे कि किसी विशेष विचार के पक्ष में या विरोध में अनजाने में होने वाले झुकाव से बचा जा सके और इस प्रकार वह अपनी सत्यनिष्ठा तथा निष्पक्षता के बारे में सदन के सभी वर्गों में विश्वास पैदा कर सके।"[23]

नेहरूजी ने यह कभी नहीं चाहा कि अध्यक्ष सभा में अपना विनिर्णय देते समय सत्तारूढ़ दल के विचारों के अनुरूप कार्य करे या सत्तारूढ़ दल का किसी प्रकार से पक्षपात करे। उन्होंने नियमों तथा प्रक्रियाओं से सम्बंधित किसी भी मामले में अध्यक्ष को पूर्ण समर्थन दिया। सदन में जब पीठासीन अधिकारी के पद की आलोचना की जा रही थी उस समय अपने एक प्रशंसनीय भाषण में नेहरूजी ने कहा था :-

> "हमें अपने सम्मान का ध्यान है, हमें उस व्यक्ति के सम्मान का भी ध्यान रखना है जो संसद की गरिमा तथा प्रतिष्ठा को बनाये रखता है। मैं यह नहीं कहता कि अध्यक्ष के विरुद्ध प्रस्ताव लाना बिल्कुल सम्भव नहीं है। निस्संदेह संविधान में इसका उपबंध किया गया है। पर प्रश्न कानूनी अधिकार का नहीं है बल्कि इसे करने के औचित्य तथा वांछनीयता का है।"

स्वस्थ संसदीय परम्पराएं

इस प्रकार नेहरू ने सभा की गरिमा को बनाये रखने की आवश्यकता पर बल देने में पहल की। प्रमुखतः संसद के प्रति नेहरूजी के रवैये तथा दृष्टिकोण के कारण ही स्वतंत्र भारत में संसद के प्रथम डेढ़ दशक (1950-64) में स्वस्थ संसदीय परम्पराओं का विकास हुआ। नेहरूजी के जीवनी लेखक डा. एस. गोपाल के शब्दों में :

> "राष्ट्रीय आन्दोलन के कारण राजनीति का जो स्वरूप उभरा उसे देखते हुए नेहरूजी ने परम्परागत परिपाटी को त्यागकर वयस्क मताधिकार प्रणाली लागू की। विधान सभाओं के चुनाव में निहित घृणित प्रतिस्पर्धा को नेहरू जी बिल्कुल पसन्द नहीं करते थे, अतः उन्होंने अभियानों को सजीव तथा उत्साह भरा बनाया; और चुनावों के बीच उन्होंने संसद की प्रतिष्ठा तथा शक्ति को बनाये रखा। उन्होंने लोक सभा के नेता तथा संसद में कांग्रेस दल के नेता के रूप में अपने दायित्वों को गम्भीरता से लिया। वह प्रश्न काल और सभी महत्वपूर्ण वाद-विवादों में सदन में नियमित रूप से बैठते थे; वे दोनों सदनों के पीठासीन अधिकारियों का पूर्ण सम्मान करते थे; वे *व्यंग्यात्मक तथा हास्यमय वाक्यों का कुशलतापूर्वक प्रयोग करके वाद-विवाद को* दिलचस्प बनाये रखते थे और उन्होंने संसदीय गतिविधि को देश के जन-जीवन में एक महत्वपूर्ण स्थान दिया। संसद में उनके अपने भाषणों का लहजा उस लहजे से बहुत अलग था जो वह जन सभाओं को सम्बोधित करते समय अपनाते थे। उनके भाषणों में विद्वत्ता का अनावश्यक प्रदर्शन नहीं होता था। फिर भी कभी-कभी वह असंगत बात भी कह जाते थे, परन्तु साथ ही आलोचकों द्वारा उठाये गये प्रश्नों पर

---

23. एस. एम. भाले राव (सं) में जी.एस. पाठक, द सैकंड चैम्बर (नई दिल्ली, 1977), पृ. 168

विचार करने के लिए, नीति पर विचार-विमर्श करने हेतु देश के उच्चतम विधानमंडल को सहयोजित करने के लिए और उसकी महत्ता को कम करने की प्रवृत्ति का नाश करने के मामले में सीख देने के बजाय तर्क दिया करते थे। संसद को अपने कुछ निजी अधिकार देकर उन्होंने संसदीय प्रणाली की जड़ें जमाने में सहायता की।"[24]

सच्चे लोकतांत्रिक होने के नाते नेहरूजी ने संसद के सदनों में महत्वपूर्ण विषयों पर खुली चर्चा का समर्थन किया। नेहरूजी को संसद को जनहित में जानकारी न देने का बहाना अच्छा नहीं लगता था और कभी-कभी वे उस जानकारी को देने के लिए हस्तक्षेप कर देते थे जिसे देने से संबंधित मंत्री ने ऐसे आधार पर इन्कार किया हो। वह राष्ट्रीय सुरक्षा जैसे मामलों में भी संसद को पर्याप्त जानकारी देने के लिए तैयार रहते थे। वह यह चाहते थे कि राष्ट्रीय नीतियों को प्रतिपादित करने, निर्धारित करने और उनका मूल्यांकन करने संबंधी मामलों पर संसद में चर्चा हो। विज्ञान नीति तथा औद्योगिक नीति संबंधी संकल्प इसके महत्वपूर्ण उदाहरण हैं। उन्होंने संसद को एक वैज्ञानिक दृष्टिकोण की आवश्यकता महसूस कराने तथा लोगों के बीच वैज्ञानिक भावना पैदा करने के लिए प्रयास किये। विदेश मंत्री के रूप में उन्होंने यह तय किया हुआ था कि अन्तर्राष्ट्रीय स्थिति पर चर्चा अवश्य की जाये और इस प्रयोजनार्थ वह प्रायः स्वयं सभा में यह प्रस्ताव प्रस्तुत करते थे कि अन्तर्राष्ट्रीय स्थिति पर विचार किया जाये। इसका परिणाम यह होता था कि भारतीय संसद में हो रहे वाद-विवादों की ओर न केवल भारत के लोगों का बल्कि समूचे विश्व के लोगों का ध्यान आकर्षित होता था। विदेशी मामलों पर चर्चा की बड़ी बेसब्री से प्रतीक्षा की जाती थी। ऐसी सभी चर्चाओं के दौरान दर्शक दीर्घाएं तथा राजनयिक दीर्घाएं खचाखच भरी होती थीं। स्वेज नहर के राष्ट्रीयकरण पर चर्चा जैसे कुछ महत्वपूर्ण अवसर भी आये। वाद-विवादों से प्रायः तनावों को समाप्त करने, विवादों को हल करने और इस प्रक्रिया में भारत के प्रभाव तथा योगदान को उजागर करने में सहायता मिलती थी। नेहरू ने सदैव इस बातपर बल दिया कि मंत्रियों को अन्वेषणात्मक संसदीय प्रश्नों तथा शिक्षात्मक वाद-विवाद का स्वागत करना चाहिए, क्योंकि वह संसद को एक "कामरेड और मंत्रियों के लिए आवश्यक सहायक" मानते थे।[25]

अन्य व्यक्तियों के दृष्टिकोण को स्वीकार करने और समाज की भलाई के लिए उपयोग करने हेतु उनसे अच्छी बातें निकालने की योग्यता जवाहरलाल नेहरू के व्यक्तित्व की अत्यन्त असाधारण विशेषता थी। यह स्मरणीय है कि एक बार जब श्रीमती रुक्मिणी अरुन्डेल के गैर-सरकारी सदस्य विधेयक, पशुओं के प्रति क्रूरता निवारण विधेयक, पर चर्चा हो रही थी तो नेहरूजी ने संसद में आकर घोषणा की कि सरकार विधेयक के सिद्धान्तों के प्रति वचनबद्ध है और इस संबंध में वह अपना स्वयं का विधान लायेगी।

---

24. एस. गोपाल, जवाहरलाल नेहरू—ए बायोग्राफी (नई दिल्ली, 1979) खंड 2, पृ. 304
25. कामथ (सं.) में एन.जी. रंगा, पूर्वोल्लिखित, पृ. 135

इस प्रकार के दृढ़ रवैये और जायज सुझावों को मान लेने की भावना के कारण ही नेहरूजी ने विश्व के सबसे बड़े लोकतंत्रीय देश की संसद की नींव रखी और उसे राष्ट्र निर्माण, सामाजिक विनिर्माण, आर्थिक पुनर्निर्माण तथा राष्ट्रीय अखंडता का एक सक्षम माध्यम बनाया।

इस प्रकार भारत के इतिहास में मई, 1964 में नेहरू युग के अचानक समाप्त होने से पूर्व ही संसदीय सरकार की दृढ़ नींव रख दी गई थी। स्वतंत्र भारत—भारत के प्रभुसत्तासम्पन्न लोकतंत्रात्मक गणराज्य — की संसद को बने लगभग 14 वर्ष हो गये थे। इस अवधि के दौरान राष्ट्र प्रतिनिधिक संसदीय लोकतंत्र प्रणाली को चलाने और, जहां आवश्यक हुआ वहां उसे भारत के अपने नैतिक मूल्यों, आवश्यकताओं तथा आकांक्षाओं के अनुकूल ढालने में सफल रहा। यह देश का सौभाग्य था कि देश की बागडोर स्वतंत्रता संग्राम के महान सेनानी स्वयं पंडित नेहरू के नेतृत्व में अनेक अति-विख्यात तथा सक्षम व्यक्तियों के हाथों में रही। वे इतने ही श्रेष्ठ राष्ट्रनिर्माता तथा प्रशासक सिद्ध हुए जितने वे श्रेष्ठ राष्ट्रभक्त तथा स्वतंत्रता सेनानी थे। साथ ही, प्रतिनिधिक संस्थानों में दृढ़ विश्वास रखने वाले एक सुसंगठित और उपयुक्त रूप से अनुशासित राजनीतिक दल भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस—का अस्तित्व में होना संस्थानों के निर्माण, स्वस्थ परम्पराओं के विकास, संसद तथा राज्य विधान मंडलों और केन्द्र तथा राज्य स्तरों पर कांग्रेस सरकारों के प्रभावी कार्यकरण को सुनिश्चित करने, आदि के लिए एक वरदान सिद्ध हुआ।

प्रक्रिया सम्बन्धी उपाय तथा नवीनताएं

स्वतंत्रताप्राप्ति के पूर्व अविलम्बनीय लोक महत्व के मामलों पर सभा में चर्चा कराने के लिए सदस्यों को प्रक्रिया सम्बन्धी बहुत कम उपाय उपलब्ध थे। अधिकतर स्थगन प्रस्ताव की प्रक्रिया पर ही उनको संतोष करना पड़ता था। ये प्रस्ताव निन्दा प्रस्ताव का असर नहीं रखते थे क्योंकि उन दिनों सरकार सभा के प्रति उत्तरदायी नहीं थी। इसके परिणामस्वरूप केंद्रीय विधान सभा में यह परिपाटी बन गई थी कि सभी महत्वपूर्ण मामलों पर चर्चा स्थगन प्रस्ताव लाकर की जाये। वस्तुतः केन्द्रीय विधान सभा के अध्यक्ष को स्थगन प्रस्तावों के माध्यम से ही चर्चा की अनुमति देनी पड़ती थी। इस परिपाटी की जड़ें इतनी गहरी थीं कि जब कार्यपालिका संसद के प्रति पूर्ण रूप से जवाबदेह बनी, तो सदस्यों ने इस बात को नहीं समझा कि इस परिवर्तन के बाद यह आवश्यक नहीं रहा है कि सभी मामलों पर स्थगन प्रस्ताव लाकर ही चर्चा करायी जाये। यदि देखा जाए तो प्रधान मंत्री नेहरू तथा अध्यक्ष मावलंकर तथा लोक सभा के उनके बाद के अध्यक्षों की सूझबूझ तथा दूरदर्शिता का ही यह परिणाम था कि उन्होंने सभा में चर्चा के अवसरों का विस्तार करने के लिए बड़े उत्साह से कार्य किया ताकि सदस्य महत्वपूर्ण मामलों पर अन्य तरीकों से भी चर्चा करा सकें।

इस उदारता की पहली शुरुआत आधे-घंटे की चर्चा की शुरुआत के रूप में हुई। शीघ्र ही इस तरीके को पर्याप्त लोक-महत्व के ऐसे विषयों पर चर्चा करने के लिए जोर-शोर से अपनाया जाने लगा जो हाल ही के किसी मौखिक अथवा लिखित प्रश्न की विषय वस्तु रहे हों। तदुपरांत, अल्पकालिक चर्चा संबंधी नियम बने। इन नियमों के अन्तर्गत अविलम्बनीय लोक महत्व के किसी मामले पर ढ़ाई घंटे से अनधिक समय तक चर्चा की जा सकती थी बशर्ते अध्यक्ष ने अविलम्बनीयता तथा महत्व के आधार पर उसकी सूचना को स्वीकार कर लिया हो और सरकार उसके लिए समय निकालने के लिए सहमत हो। एक तरह से यह स्थगन प्रस्ताव का ही कार्य करती थी। लेकिन यह कुछ मायनों में अलग था। ऐसा कोई भी प्रस्ताव तैयार नहीं किया जाता था जिसका आशय सभा का निर्णय लेना हो तथा ऐसे प्रस्ताव पर सभा का कोई निर्णय नहीं होता था। यदि प्रस्ताव स्वीकार हो जाता था, तो विषय को चर्चा के लिए सम्मिलित कर लिया जाता था और सदस्य सभा में उस पर अपने विचार प्रस्तुत करते थे और सरकार उनका उत्तर देती थी। सभा के किसी निश्चित निर्णय को अभिलिखित नहीं किया जाता था। सदस्यों ने निश्चय ही इस तरीके को लाभदायक पाया क्योंकि एक ओर तो यह स्थगन प्रस्ताव का कार्य करता था तथा दूसरी ओर इससे सरकार की किसी तरह से निन्दा भी नहीं होती थी।

इन तरीकों के बावजूद सदस्यों की यह धारणा थी कि कुछ अत्यंत अविलम्बनीय मामलों को समय पर सभा में नहीं उठाया जा सका और उनको उठाने के लिए सदस्यों को स्थगन प्रस्तावों का सहारा लेना पड़ा। अतः इस मामले पर नियम समिति ने विस्तार से विचार किया जिसके परिणामस्वरूप ध्यानाकर्षण प्रस्ताव की प्रक्रिया का जन्म हुआ। अचानक घटने वाली अविलम्बनीय लोक महत्व की घटनाओं की ओर सरकार का ध्यान आकर्षित करने तथा उन पर सरकार के विचार जानने का यह बड़ा ही लोकप्रिय तथा शक्तिशाली हथियार सदस्यों के पास था। यदि अध्यक्ष द्वारा ध्यानाकर्षण प्रस्ताव की सूचना स्वीकार कर ली जाती थी, तो सरकार को तत्काल उसका जवाब देना होता था अथवा ज्यादा से ज्यादा वक्तव्य देने के लिए वह समय मांग सकती थी। यह प्रणाली विधान मण्डलों के सुचारु कार्यकरण में बड़ी सहायक सिद्ध हुई। वस्तुतः किसी अविलम्बनीय विषय पर तुरन्त जवाब चाहने वाले सदस्यों को बस इतना भर करना आवश्यक था कि वे ध्यानाकर्षण प्रस्ताव की सूचना दे दें, और स्थगन प्रस्ताव प्रणाली का प्रयोग करने की आवश्यकता उनको तभी पड़ती थी जबकि कोई बिल्कुल गलत चीज़ हो गई हो, जिसके लिए सरकार की अप्रत्यक्ष रूप से निन्दा किये जाने की आवश्यकता हो। अति गम्भीर मामलों में सदस्य सीधे अविश्वास प्रस्ताव का भी सहारा ले सकते थे जो पारित होने पर सरकार को गिराने का कारण बन सकता था। वास्तव में प्रक्रिया संबंधी ये तरीके जान बूझ कर शुरू किये गये थे जिनका एक उद्देश्य यह भी था कि प्रक्रिया सम्बन्धी पर्याप्त उपायों के अभाव के कारण गैर-सरकारी सदस्यों को अविलम्बनीय लोक महत्व के मामले विधान मण्डल के समक्ष लाने में कोई कठिनाई न हो।

यह एक आम धारणा थी कि गैर-सरकारी सदस्यों के विधेयक अधिनियम की शकल नहीं ले सकते। लेकिन सत्य कुछ और ही है। वस्तुतः हमारे विधायी इतिहास में 1950 से 1964 की अवधि ऐसी थी जबकि गैर-सरकारी सदस्यों द्वारा कई गैर-सरकारी विधेयक लाये गये जिनके परिणामस्वरूप संसदीय अधिनियम बने। इनमें से कुछ महत्वपूर्ण विधेयक इस प्रकार थेः मुस्लिम वक्फ विधेयक, 1952, दण्ड प्रक्रिया संहिता (संशोधन) विधेयक, 1953, संसदीय कार्यवाही (प्रकाशन-संरक्षण) विधेयक, 1958, श्री फीरोज़ गांधी द्वारा लोक सभा में पुरःस्थापित किया गया हिन्दु विवाह संशोधन विधेयक, 1963 तथा संसद सदस्य वेतन तथा भत्ता (संशोधन) विधेयक, 1964। ऐसे मौके आये जबकि नेहरू जी ने खुद ही सभा को आश्वासन दिया कि सरकार गैर-सरकारी सदस्यों द्वारा लाये गये गैर-सरकारी विधेयकों सम्बन्धी विषयों पर उपयुक्त सरकारी विधेयक लायेगी। दहेज प्रतिषेध विधेयक, 1952, पशुओं के प्रति क्रूरता का निवारण विधेयक, 1953 आदि इसके कुछ उदाहरण हैं।

एक और आम धारणा यह भी थी कि हमारे द्वारा स्वीकृत संसदीय प्रक्रिया एक प्रकार से ब्रिटिश प्रक्रिया का ही प्रतिरूप है। यह बात सच्चाई से परे है। यदि हम अपनी प्रक्रिया पर सूक्ष्म तौर पर विचार करें तो निश्चय ही हम पायेंगे कि कई मामलों में हमने हाउस ऑफ कामन्स की परिपाटी का अनुसरण नहीं किया है। जहां तक प्रक्रिया सम्बन्धी विवरण का सम्बन्ध है, हमारी प्रक्रिया वैस्टमिनिस्टर प्रक्रिया से कई तरह से भिन्न है। भारत में ब्रिटिश शासन के समय या स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद किसी भी समय ब्रिटिश प्रणाली का हूबहू अनुसरण नहीं किया गया। यह बात दूसरी है कि ब्रिटिश शासन काल में यह अनुसरण न करने के दूसरे कारण रहे। यह कहा गया है कि जब भारतीय संसद का जन्म हुआ, उस समय उसकी विधायिका की अपनी ही परम्पराएं थीं। संसदीय संस्थाएं तथा प्रक्रियाएं भारत की धरती पर ही उपजीं तथा पनपीं। बदलते समय के साथ-साथ हम प्रयोग करते रहे तथा नये-नये विचारों को ग्रहण भी करते रहे। 1950-64 की अवधि के दौरान विशेषरूप से ब्रिटेन की संसदीय प्रक्रिया से हटकर भिन्न प्रक्रिया अनेक बार अपनाई गई और स्वतंत्र भारत की प्रवृत्ति तथा आवश्यकताओं के अनुकूल कई नई-नई पहलें की गईं। ब्रिटेन की प्रक्रिया से हटकर अपनाई गई प्रमुख प्रक्रियाओं के अतिरिक्त हमारी प्रक्रिया में कई विधानमंडल कम से कम दो महत्वपूर्ण दिशाओं में अग्रणी कार्य करने का दावा कर सकते हैंः

(क) सुनिश्चित समय सारणी के अनुसार कार्य संचालन और (ख) सभा द्वारा दिये गये निदेशों पर अनुवर्ती कार्यवाही तथा यह सुनिश्चित करना कि सभा में दिए गए विभिन्न आश्वासनों, वचनों तथा प्रतिज्ञाओं का वास्तव में अनुपालन हो। पहला कार्य सभा की कार्य मंत्रणा समिति, जिसका गठन बहुत पहले 14 जुलाई, 1952 को किया गया था, के कारण संभव हुआ। इसका काम उन विभिन्न विधेयकों तथा अन्य उपायों के लिए, जिन्हें सरकार समय-समय पर सभा के समक्ष लाती है, समय का आवंटन करना है। यदि

किसी कार्य-विशेष के लिए समय सारणी के बारे में मतैक्य नहीं होता है तो समिति सामान्यतया प्रत्येक व्यक्ति को स्वीकार्य न्यूनतम समय देने के लिए सहमत हो जाती है और अध्यक्ष को उस कार्य के लिए नियत समय में वृद्धि करने के लिए प्राधिकृत करती है बशर्ते सभा में चर्चा की प्रवृत्ति पर विचार करने के बाद अध्यक्ष महसूस करे कि कार्य-विशेष के लिए अधिक समय दिया जाना चाहिए। इस समिति के गठन से पहले अध्यक्ष को स्वयं यह निश्चित करना होता था कि कब किस वाद-विवाद को समाप्त होना चाहिए। नई प्रक्रिया के अन्तर्गत वाद-विवाद की अवधि के बारे में सभा ही निर्णय लेती है। कार्य मंत्रणा समिति के गठन के बाद वाद-विवाद को समाप्त करने की प्रक्रिया का कभी भी प्रयोग नहीं किया गया। इससे निःसंदेह अध्यक्ष काफी हद तक आरोप से बच जाता है तथा सरकार को अपने कार्य के निपटाने के लिए पहले से योजना बनाने में भी सहायता मिलती है। चूंकि समिति की सत्र के दौरान लगभग प्रत्येक सप्ताह बैठक होती है, इसलिए अध्यक्ष के लिए सदस्यों की भावनाओं, विशेष रूप से पीछे बैठने वाले सदस्यों की भावनाओं को जानने के लिए यह एक अच्छा साधन है। अध्यक्ष उन विषयों के चयन में, जिनमें उसे अपना विवेक प्रयोग करने का पूरा अधिकार है, अपने इस ज्ञान का अच्छा प्रयोग कर सकता है और सदस्य महसूस करेंगे कि अध्यक्ष पीठ लोक महत्व के विषयों के प्रति जागरूक है तथा सदस्यों के सुझावों को सुनती है।

कार्य मंत्रणा समिति की तरह सरकारी आश्वासनों संबंधी समिति भी एक महत्वपूर्ण भारतीय पद्धति है। यह समिति, जिसका पहली बार दिसम्बर, 1953 में गठन किया गया था, यह निगरानी रखती है कि क्या मंत्रियों द्वारा सभा में दिये गये आश्वासनों, वचनों, प्रतिज्ञानों को उचित समय में पूरा किया गया है तथा उन्हें उस तरीके से पूरा किया गया है जिस तरीके से सभा उन्हें पूरा करना चाहती थी। हमारे विधान मंडलीय स्वरूप में इस संस्थागत व्यवस्था से सदस्यों में ऐसी विश्वास की भावना पैदा हुई है कि सभा में किसी मंत्री द्वारा दिए गए वचन के प्रति सरकार चुप नहीं रह सकती है।

हमारे विधान मंडल में व्यवहार और प्रक्रियाएं कभी स्थायी नहीं रहीं। इनका विकास नई परिस्थितियों की अनिवार्यता और बढ़ते हुए कार्य को पूरा करने के लिए काम के अधिक उपयुक्त तरीकों की निरंतर खोज से हुआ। यद्यपि हमारी पद्धतियां तथा प्रक्रियाएं हमेशा ही संसदीय प्रक्रियाओं के विश्वव्यापी बुनियादी सिद्धान्तों पर आधारित रहीं, किन्तु हम नई आवश्यकताओं के अनुसार उनमें फेर बदल करने एवं नई प्रक्रियाओं का विकास करने में कभी भी नहीं झिझके।

संसद की सफलता एवं उपलब्धियां

व्यवहार और प्रक्रिया के पालन के अतिरिक्त लोकतंत्र में विधायकों को जनता के प्रति, अपने उत्तरदायित्व को महसूस करना चाहिए क्योंकि वे उन्हें चुनकर भेजते हैं। उन्हें आम आदमी की समस्याओं का पता होना चाहिए। यह श्रेय प्रधानमंत्री नेहरू जी को जाता है

कि भारतीय संसद ने अपने पहले पन्द्रह वर्षों के दौरान उस महान जिम्मेदारी को पूरी तरह से निभाया जो जनता ने उसे सौंपी थी। संविधान में यथा निर्धारित राज्य नीति के निदेशक सिद्धान्तों के अनुरूप संसद ने अपने समक्ष देश के लिए एक कल्याणकारी राज्य तथा समाजवादी समाज के सिद्धान्तों का लक्ष्य रखा। संसद ने जनता के रहन-सहन के स्तर को उठाने तथा आर्थिक असमानताओं को कम करने के कार्य की शुरुआत उत्पादक उद्यमों में सरकार को अधिक भागीदार बनने तथा चरणों में अधिक आर्थिक समानता लाने के लिए आर्थिक उपाय करने की इजाजत दे कर की।[26]

कानून बनाने वाले सर्वोच्च निकाय के रूप में संसद सामाजिक निर्माण, प्रगति तथा योजनाबद्ध आर्थिक विकास के लिए एक प्रेरक एजेंट और प्रभावकारी साधन सिद्ध हुई। संसद ने जितने सामाजिक कानून बनाये तथा 1950-64 की अवधि के दौरान विभिन्न क्षेत्रों में सामाजिक परिवर्तन लाने के लिए जो कदम उठाये, वे इसके उदाहरण हैं। संसद सामाजिक सुधारों के लिए हमेशा अग्रणी रही है। संविधान के लागू होने के बाद बड़ी संख्या में सामाजिक सुधार के कानून पारित किये गये तथा उन्हें क्रियान्वित किया गया। उदाहरण के लिए समाज के पिछड़े, पद्दलित अथवा परम्परा से पीड़ित वर्गों—अनुसूचित जातियों, अनुसूचित जनजातियों, पिछड़े वर्गों, महिलाओं, बच्चों, श्रमिकों आदि को आरक्षण, सामाजिक सुरक्षा, अयोग्यता निवारण, न्यूनतम मजदूरी, कतिपय प्रमुख उद्योगों का राष्ट्रीयकरण, वृद्धावस्था पेंशन, भूमि सुधार, आवास जैसी विशेष सुविधाएं, गारंटियां तथा लाभ देने के लिए कानून बनाये गये।[27]

प्रणाली की उपयुक्तता

संसदीय लोकतंत्र के भारत के सफल प्रयोग ने यह सिद्ध कर दिया कि यह प्रणाली एक व्यापक पंचमेल जनसंख्या तथा अनेकानेक विपरीत खिंचावों एवं दबावों वाले अनेकवादी बहुल समाज के लिए सर्वाधिक उपयुक्त है। इसने इस दावे को असत्य प्रमाणित कर दिया कि संसदीय सरकार केवल इंग्लैंड जैसी परिस्थितियों और सजातीय जनसंख्या के लिए उपयुक्त है।[28]

संसद ने विभिन्न वर्गों को समान भागीदारी तथा स्व-अभिव्यक्ति के पर्याप्त अवसर प्रदान किए। इसने आमने-सामने बैठ कर बातचीत करने और एक राष्ट्रीय मतैक्य

---

26. *पहली संसद 1952-57 : ए सौविनियर*, लोक सभा सचिवालय पृष्ठ 109, जीवन मेहता, पार्लियामेंट एण्ड सोशियल चेंज: श्यामलाल शकधर द्वारा सम्पादित दि कांस्टीट्यूशन एण्ड दि पार्लियामेंट इन इण्डिया : दि *ट्वन्टी फाइव इयर्स ऑफ दि रिपब्लिक* (नई दिल्ली 1976) पृ. 250

27. सुभाष काश्यप, ह्यूमन राइट्स एंड पार्लियामेंट (नई दिल्ली, 1978) अध्याय 9, पार्लियामेंट एण्ड सोशियो इकोनामिक लेजिस्लेशन, पृष्ठ 124-33

28. सुभाष काश्यप, कमीटीज इन लेजिस्लेचर, जान डी लीस तथा मल्काम शा (ड्यूक, 1978) (सं) में कमीटीज इन इंडियन लोक सभा, पृष्ठ 228.

विकसित करने के निमित्त विभिन्न राजनीतिक प्रतियोगी शक्तियों और स्वार्थों को इकट्ठा करने का काम किया। यह संसद ही है जहां समय-समय पर राष्ट्रीय आकांक्षाएं स्पष्ट हुईं और सरकारी नीतियाँ परिमार्जित हुईं जो बाद में संगत सामाजिक कानून बने। इस प्रकार संसद हमारी राज व्यवस्था के समग्र राजनीतिक ढांचे का अवलम्ब सिद्ध हुई। यह बिना किसी झिझक के कहा जा सकता है कि गणतंत्र के प्रारंभिक वर्षों में नेहरू की महान राष्ट्रीय उपलब्धियों में एक उपलब्धि थी उत्तरदायी और प्रतिनिधि संसदीय सरकार के ठोस आधार का निर्माण। कोई भी अन्य प्रणाली सष्ट्र की एकता और अखंडता को इससे बढ़िया ढंग से सुरक्षित नहीं रख सकती थी। विभिन्न ताकतों, आंतरिक तथा बाह्य, व्यक्तियों एवं ग्रुपों से इस प्रणाली को उत्तरवर्ती वर्षों में जो आघात पहुंचते रहे उनका दृढ़ता से मुकाबला किया गया क्योंकि संविधान निर्माताओं ने इस लोकतांत्रिक प्रणाली की आंतरिक शक्ति का बड़ी मेहनत से निर्माण किया था। थाम्स जैसे लोगों ने संदेह और आश्चर्य व्यक्त करते हुए कहा था कि इतनी अधिक जनसंख्या, इतनी गरीबी तथा भाग्यवाद, निरक्षरता और जाति-पांति के भेदभाव से ग्रस्त भारत जैसे देश में लोकतांत्रिक संसदीय संस्थाएं कभी सफल नहीं हो सकेंगी। उनके संदेह और गलतफहमियां निराधार सिद्ध हुईं। निडर पानी में उतरने वाली बतख की तरह भारत ने भी स्वाभाविक रूप में संसदीय सरकार प्रणाली अपनाई। भारतीय हाथों में इस प्रणाली ने उल्लेखनीय कार्य किया है और समय की परीक्षा में खरी उतरी। इस तथ्य के संदर्भ में भारत की उपलब्धि विशिष्टतया असाधारण रही कि इसके पड़ोस के कुछेक ही देश संसदीय सरकार तथा प्रतिनिधि संस्थाओं को बचाए रखने में सफल हुए। तथापि, संसदीय सरकार प्रणाली निरंतर विकसित होती रही। इसे बदलती हुई सामाजिक आवश्यकताओं से सामंजस्य स्थापित करना पड़ा। जैसा कि नेहरू जी कहा करते थे, चारों ओर की दुनियां तेजी से बदल रही है, घटनाएं तूफानी गति से घट रही हैं। सरकार का कार्य दिन-प्रतिदिन अधिकाधिक जटिल तथा कठिन हो रहा था। ऐसी परिस्थिति में, संसदीय सरकार, विधायी संस्थाएं तथा प्रक्रियाएं केवल पूर्वोदाहरणों, परम्पराओं एवं परिपाटियों से बंधी नहीं रह सकीं। भारत ने संसदीय लोकतांत्रिक प्रणाली को जानबूझकर केवल इसलिए नहीं अपनाया कि लोकतांत्रिक प्रक्रिया मानव स्वभाव के अनुकूल है और न केवल इसलिए भी कि हम पहले से ही कुछ सीमा तक इस दिशा में विचार करते आए हैं, अपितु इसलिए अपनाया कि हमारे विचार से यह हमारी अपनी प्राचीन परम्पराओं से भी मेल खाती थी। और फिर, नेहरू जी के अपने शब्दों में हमने लोकतांत्रिक प्रक्रिया को इसलिए स्वीकार किया :

> "क्योंकि हम समझते हैं कि इससे अंतिम विश्लेषण में, मानव और समाज का विकास होता है, क्योंकि जैसा कि हमने अपने संविधान में कहा है, हम व्यक्ति स्वातंत्र्य को महत्व देते हैं, क्योंकि हम चाहते हैं कि आदमी की रचनात्मक तथा

साहसिक भावना का विकास हो।"[29]

25 फरवरी, 1956 को संसदीय लोकतंत्र पर अखिल भारतीय सेमिनार में बोलते हुए नेहरू जी ने कहा था : —

"हमारा लोकतंत्र में विश्वास है। जहां तक मेरी अपनी बात है, मैं इसमें विश्वास करता हूं; प्रथमतः इसलिए कि मेरे विचार से यह लक्ष्य प्राप्ति का सही साधन है और यह एक शांतिपूर्ण तरीका भी है। दूसरे, इसलिए कि यह उन दबावों को दूर करता है जो किसी अन्य प्रणाली की सरकारें व्यक्ति पर लादती हैं। यह प्राधिकारियों द्वारा लादे गए अनुशासन को प्रायः स्व-अनुशासन में बदल देता है। यहां स्व-अनुशासन का अर्थ है कि जो लोग अल्पसंख्यक हमसे सहमत नहीं हैं वे भी हमारे समाधानों को पहले स्वीकार कर लें क्योंकि उन्हें स्वीकार करना ही बेहतर है और बाद में, यदि आवश्यक हो, तो शांतिपूर्ण तरीकों से उनको बदलें। अतः, मेरे लिए लोकतंत्र का अर्थ है, शांतिपूर्ण ढंग से समस्याओं के हल के लिए प्रयास करना। मेरे विचार से यदि यह शांतिपूर्ण ढंग नहीं है, तो यह लोकतंत्र नहीं है। यदि मैं दूसरे कारण के और विस्तार में जाऊं तो मैं कहूंगा कि लोकतंत्र व्यक्ति को विकास का अवसर प्रदान करता है। ऐसे अवसर का अर्थ अराजकता नहीं है, जिसमें प्रत्येक व्यक्ति अपनी इच्छानुसार कार्य करता है। किसी सामाजिक संस्था को जीवित रहने के लिए कुछ अनुशासन अवश्य बनाए रखना होगा। इसे या तो बाहर से लागू किया जा सकता है अथवा यह स्व-अनुशासन के रूप में होगा। बाहर से थोपा जाने का अर्थ होगा एक देश द्वारा दूसरे पर शासन करना अथवा तानाशाही या सत्ताशाही स्वरूपी सरकार। जो सही लोकतंत्र होगा, वहां अनुशासन स्व-आरोपित होगा। यदि अनुशासन नहीं है तो लोकतंत्र भी नहीं है।"[30]

नेहरू जी यह मानते थे कि संसदीय प्रणाली की सरकार अन्य प्रणालियों की अपेक्षा "आकांक्षाओं तथा उनकी पूर्ति के बीच की रिक्ति" को भरने में अधिक सक्षम है जबकि अन्य प्रणालियां "कुछ हद तक तानाशाही की तरफ ले जाती हैं। अपनी सभी कमियों के बावजूद संसदीय लोकतंत्र में जीवन के बदलते ढांचे के अनुरूप स्वयं को ढालने के गुण होते हैं।"[31]

---

29. प्रथम लोक सभा (1952-57) की अवधि की समाप्ति पर नेहरू जी द्वारा दिया गया विदाई संदेश, लोक सभा वाद-विवाद खंड-I, भाग-II, 28 मार्च, 1957 स्तंभ 120-94 तथा 4 जनवरी, 1957 को इंदौर में अखिल भारतीय कांग्रेस समिति में दिया गया भाषण दोनों को सुभाष कश्यप की "नेहरू और संविधान" (नई दिल्ली, 1982) पृ. 374 और 378 पर उद्धृत किया गया है।

30. कश्यप, वही, पृ. 376

31. 6 दिसम्बर, 1957 को संसदीय लोकतंत्र पर एक गोष्ठी का सम्बोधन करते हुए नेहरूजी, वही, पृष्ठ 382-83।

संसदीय सुधार

हर जगह संसदों के समक्ष आने वाली समस्याओं से अवगत होने के नाते नेहरू जी ने कुछ संसदीय सुधारों की सिफारिश की। नेहरूजी के लिए संसद की सार्थकता उसकी गतिशीलता में है। समय की बदलती आवश्यकताओं के साथ-साथ संसद को भी अपने कार्यों और प्रक्रियाओं में परिवर्तन करते रहना चाहिए। नेहरूजी के शब्दों में, "तेजी से बदलते इस युग में संसद को तीव्र गति से काम करना होगा"[32] साथ ही यदि लोकतंत्र और स्वतंत्रता को कायम रखना है और प्रतिनिधि संस्थाओं को अभेद्य बनाना है तो संसद और उसके सदस्यों के प्रति लोगों के परम्परागत सम्मान और आदर को पुनः प्रतिष्ठापित करना होगा। श्रीमती गांधी ने एक बार कहा था :

> "संसदीय प्रणाली के कुशल कार्यकरण हेतु समूचे राजनीतिक जीवन के स्वरूप में सुधार लाना तथा उसे ऊँचे स्तर पर बनाए रखना बहुत आवश्यक है। यदि इस स्तर में कमी होने दी जाती है तो इससे लोगों की लोकतांत्रिक संस्थानों के प्रति आस्था को ठेस पहुंचेगी।"[33]

यह नेहरू जी की दूरदर्शिता और समझदारी है कि उन्होंने सन् 1950 में ही विधान पर गहराई से विचार करने के लिए मुख्यतः विषय आधारित अथवा मंत्रालय/विभाग आधारित संसदीय समितियों को बनाने की वांछनीयता के प्रश्न पर विचार करने पर बल दिया — आज कुछ उसी तरह की बात की चर्चा संसद को अधिक सुसंगत बनाने और उसके कार्यकरण को अधिक प्रभावी बनाने के संदर्भ में की जा रही है।[34] उन्होंने यह स्वीकार किया कि " सरकार की समस्याएं इस हद तक बढ़ गई हैं कि हमें यह शक होने लगा है कि क्या सामान्य लोकतांत्रिक प्रक्रियाएं इनसे निपटने के लिए पर्याप्त हैं।"

उन्हें ऐसा लगता था कि संसदीय लोकतंत्र अनिवार्यतः आर्थिक लोकतंत्र की दिशा में अग्रसर हो रहा है, उसका रूप चाहे जो भी हो। "आर्थिक समस्याओं का समाधान करने पर ही यह राजनीतिक क्षेत्र में भी सफल हो सकता है। यदि आर्थिक समस्याओं का समाधान नहीं किया जाता तो राजनीतिक ढांचा कमजोर पड़ जाता है और वह छिन्न-भिन्न हो जाता है।"

इस दिशा में नेहरू जी के नेतृत्व में जो सबल प्रयास किए गए उनसे मार्ग प्रशस्त हुआ। वास्तव में यह कहा जा सकता है कि जब देश की बागडोर नेहरू जी के हाथों में थी (1950-64), वह समय संसदीय लोकतंत्र और संसद के लिए स्वर्णिम युग था। लेकिन यात्रा यहीं समाप्त नहीं होती। यद्यपि राजनीतिक संस्थाएं बहुत महत्वपूर्ण हैं लेकिन उनकी वास्तविक सार्थकता और सार उनके कार्यकरण के ढंग में निहित है। उन्हें

---

32. वही, पृष्ठ 381।
33. पहली बार, तीन विषय अथवा मंत्रालय/विभाग आधारित (1) विज्ञान और प्रौद्योगिकी (2) कृषि और (3) पर्यावरण और वन संबंधी संसदीय समितियाँ इस वर्ष (1989) बनाई गई है।
34. 27 फरवरी, 1981।

सफलतापूर्वक चलाने के लिए कुछ व्यक्तियों की आवश्यकता होती है। यदि पीढ़ी दर पीढ़ी योग्य और चरित्रवान व्यक्तियों पर इन्हें चलाने की जिम्मेदारी सौंपी जाए तो ये संस्थान सुरक्षित रहेंगे और उनका उत्तरोत्तर विकास होगा और सशक्त बनेंगे। यदि ऐसा नहीं होता तो उनका क्षय निश्चित है।

"हमारी सभी संस्थाएं, जिनमें संसदीय संस्थाएं भी सम्मिलित है, वास्तव में लोगों के आचरण, चिंतन और लक्ष्यों का प्रतिबिम्ब हैं। लोगों के आचरण, विचार और चिंतन के अनुरूप होने पर वह सशक्त और स्थायी होती हैं। अन्यथा वे टूटने लगती है।"[35]

नेहरू की विरासत

संसदीय प्रणाली की स्थापना में नेहरू के योगदान के पीछे प्रेरणा स्रोत थी, उनकी अटूट लोकतांत्रिक भावना, जिसकी अभिव्यक्ति न केवल संसदीय संस्थाओं की स्थापना में हुई अपितु ऐसे उचित वातावरण को जुटाने में भी हुई जिसमें ऐसी संस्थाएं फल-फूल सकें। एक बार जब उनसे पूछा गया कि भारत को उनकी देन क्या होगी तो नेहरू जी ने जवाब दिया: "आशा है 40 करोड़ लोग अपना शासन चलाने में सक्षम होंगे।" आज हमारी जो संसदीय प्रणाली तथा संस्थाएं हैं जिनका बदलते वक्त के साथ विकास होता जा रहा है, वास्तव में नेहरू की महान विरासत का एक अंतरंग भाग हैं।

अगर हम पीछे देखें तो हम पाएंगे कि आज भी हम उन महान लोकतांत्रिक आदर्शों से अधिक प्रेरित हैं जिनके प्रति नेहरू अडिग रहे और जिनके लिए उन्होंने संघर्ष किया। संसद तथा उसकी स्वस्थ परिपाटियां और परम्पराएं जो आज हमारी लोकतांत्रिक व्यवस्था का आवश्यक और स्थायी अंग बन गई हैं और जिनका विकास उनके जीवन काल में हुआ है, उनको स्थापित करने का श्रेय अधिकांशतः जवाहर लाल नेहरू के संसदीय लोकतंत्र को सदा सशक्त और लचीला बनाए रखने के सतत प्रयासों को ही जाता है। संसद को राष्ट्र की आकांक्षाओं का प्रतीक बनाने का नेहरू का सपना साकार हो गया है। हम सब जानते हैं कि इन मानदण्डों और परम्पराओं के पालन के प्रति वह कितने अत्यधिक सतर्क थे और अपनी आखिरी सांस तक उन्होंने उनका पालन किया।

उनके जीवनी लेखक डा. सर्वपल्ली गोपाल ने लिखा है :

> "अपने जीवन के आखिरी महीनों में, जबकि वह स्पष्टतया अस्वस्थ थे, तब भी वह किसी भी एक सत्र में अनुपस्थित नहीं रहे और सदन की गरिमा को बनाए रखने के लिए प्रश्नों का उत्तर देते समय या चर्चा के बीच में कुछ बात कहते समय काफी दिक्कत के बावजूद खड़े होते थे, हालांकि अध्यक्ष और सभा के सदस्य उनसे बार-बार बैठे रहकर उत्तर देने का आग्रह करते थे।"

---

35. 25 फरवरी, 1956 को संसदीय लोकतंत्र पर हुए एक सेमिनार में नेहरूजी ने कहा। पूर्वोल्लिखित काश्यप लिखित "नेहरू एंड दी कांस्टीट्यूशन" पृष्ठ 377-78।

यह लोकतांत्रिक भावना का आवेश नहीं तो और क्या था जो उन्हें सभी भौतिक सीमाएं पार करने को बाध्य करता था? जब हमारे लोकतंत्र का निर्माता अपेक्षित मानदंडों और मूल्यों का पालन इतनी सतर्कता से कर सकता है तो यह स्वयं में लोगों और उनके प्रतिनिधियों के लिए एक सबक है। जब हम सभा के मान और गरिमा की बात करते हैं तो हमें स्वतः ही नेहरू का ध्यान आ जाता है। निस्संदेह हमारी भावी पीढ़ियां उनके अन्य योगदान के साथ-साथ उन्हें भारत में संसदीय लोकतंत्र के जनक के रूप में याद करके उनके प्रति नतमस्तक होंगी।[36]

36. काश्यप वही, पृष्ठ 17

17

विजय लक्ष्मी पंडित

एक बहिन के संस्मरण

किसी ऐसे व्यक्ति के बारे में जिसे हम प्यार करते हैं लिखना इतना सरल नहीं है और मैं अपने भाई को बेहद प्यार करती थी। इतना ही नहीं, मैं उनके बहुमुखी व्यक्तित्व और उनकी प्रतिभा की भी प्रशंसा करती थी। जब मैं केवल पांच वर्ष की थी तो वह हैरो चले गये थे और मेरा बाल्यकाल आनन्द भवन में बीता। उनसे मेरा सम्पर्क केवल पोस्टकार्डों और नई पुस्तकों के माध्यम से होता था जिन्हें वह नियमित रूप से मुझे भेजते थे। भारत में किसी भी परिवार में भाई का एक विशेष महत्व होता है और जब भाई काफी बड़ा हो तो उसके प्रति प्यार के साथ विशेष आदर भी जुड़ जाता है। हमारे बीच 10 वर्ष का अन्तर था।

हमारा परिवार गर्मियों में प्रायः पहाड़ों पर चला जाता था। यह लगभग 1916 की बात है। हम मसूरी गए थे। लिण्डेल नामक हमारा घर बहुत बड़ा था जहां पर शिकार की सम्भावनाएं थीं। मेरे पिताजी शिकार और निशानेबाजी के शौकीन थे, इसलिए उन्हें यह घर बहुत अच्छा लगा। हमेशा की तरह उनके साथ उनके दोस्तों और रिश्तेदारों की पूरी मण्डली थी और वे सभी निशानेबाजी में रुचि रखते थे। वह चाहते थे कि भाई भी उनके साथ शरीक हों परन्तु भाई की जानवरों और पक्षियों को मारने में कोई रुचि नहीं थी। पहले ही दिन जब वह एक ग्रुप के साथ गये, जिसके साथ जाने की अनुमति मुझे भी मिल गए थी। हमने एक हिरणी देखी जिसे किसी ने गोली मार दी थी। वह निरीह प्राणी दम तोड़ रहा था और अपनी सुन्दर आंखों से हमें देख रहा था, मानो अपनी सहायता के लिए बुला रहा हो। मेरी आंखों में आंसू उमड़ आये परन्तु मुझे यह देखकर आश्चर्य हुआ कि भाई की भी लगभग वैसी ही स्थिति थी। मेरे पिताजी और उनके दल के अनेक साथियों द्वारा दी गई अनेक उलाहनाओं के बावजूद वह दुबारा कभी शिकार के लिए नहीं गये। उसके पश्चात् भाई कभी भी शिकार पार्टियों के साथ नहीं गये।

भाई को घुड़सवारी में बड़ा आनन्द आता था। उनके घोड़े की काठी बड़ी शानदार होती थी और वे बड़े आराम से तथा बिना प्रयास किये सवारी करते थे। मुझे बचपन में ही घुड़सवारी सिखा दी गई थी और मैंने इलाहाबाद में सभी स्थानीय खेलकूदों में भाग लिया, जिनमें से अनेक खेल जाड़ों में होते थे। भाई और मैं प्रत्येक सुबह दूर-दूर तक

घुड़सवारी का आनन्द उठाते थे। घुड़सवारी करते समय वह प्रकृति और इतिहास संबंधी सभी विषयों पर बातें किया करते थे जिनके बारे में मेरे अध्यापकों ने कभी परवाह नहीं की। यह मेरे लिए मनोरंजक था और मैंने उनसे बहुत कुछ सीखा। भाई बहुत अच्छे तैराक भी थे और तैराकी पसन्द भी करते थे। परन्तु इस मामले में मेरे संबंध में वह असफल रहे। उनके सारे प्रयासों के बावजूद मैंने तैरना नहीं सीखा क्योंकि मैं पानी से डरती थी। मेरे विचार से इसका एक कारण आनन्द भवन का काफी बड़ा और अन्धकारमय तरणताल रहा हो। यद्यपि वहां पर काफी प्रकाश रहता था फिर भी तरणताल हमेशा मेरे मन में एक अन्धकारमय स्थान के रूप में रहा। कई वर्षों के बाद जब मेरे बच्चे सीखने लायक बड़े हो गए, भाई ने मेरे सबसे बड़े बच्चे को, जो केवल तीन वर्ष का था, पकड़ा और उसे ताल के मध्य में फेंक दिया और उसके पीछे गोता लगाने लगे। मैं किनारे पर बैठी थी और चिल्लाई क्योंकि मुझे निश्चित रूप से ऐसा लगा जैसे कि बच्चा डूब जायेगा। तथापि वह छोटी बच्ची सख्त जान थी और मेरे आश्चर्य का ठिकाना नहीं रहा जब वह थोड़ी देर तक पानी में फड़फड़ाने के बाद ताल के दूसरे छोर पर पहुंच गई। वह शीघ्र ही एक अच्छी तैराक बन गई।

मैं पहाड़ों पर जब भी भाई के साथ लम्बी सैर के लिए निकली, वे पैदल यात्राएं मेरे लिए सबक के समान थीं और उससे कहीं अधिक रुचिकर थीं जो मेरे अध्यापकों ने मुझे पढ़ाये थे। आज भी मुझे जो मैंने अपनी अध्यापिकाओं अथवा प्रोफेसरों से सीखा था उसकी अपेक्षा वह अधिक स्पष्ट रूप से याद है जो मैंने उनसे सीखा था। उनकी बड़ी इच्छा थी कि मैं पढ़ने के लिए विदेश जाऊं परन्तु मेरे पिता को नहीं समझा सके क्योंकि सभी चचेरे भाई जो वहां गए थे वहां से लौट चुके थे और मेरे पिताजी का कहना था कि मेरी देखभाल करने वाला वहां पर कोई नहीं होगा। पिताजी के इस दृष्टिकोण से मैं काफी खिन्न हुई क्योंकि मेरे पिताजी के कुछ अभिन्न मित्रों की पुत्रियां विदेशों में पढ़ रही थीं और वे सभी रूढ़िवादी परिवारों की थीं। मुझे अंग्रेजी पढ़ाने वाले अध्यापक इलाहाबाद विश्वविद्यालय के प्रो. जेनिंग्स थे। वह और उनकी पत्नी दोनों मुझमें रुचि लेते थे और उन्होंने मुझे अपनी ही बच्ची की तरह प्यार किया। वह समरविले कालेज, आक्सफोर्ड में थी और मुझे वहां भेजने के लिए उत्सुक थी परन्तु अफसोस, ऐसा नहीं हुआ और शिक्षा के लिए मैं कभी भी बाहर नहीं जा पाई।

सर्दियों की शामों में भाई और मैं डिकन्स, थैकरे, जेन आस्टिन और कई दूसरे लेखकों की रचनाएं एक साथ पढ़ा करते थे। कभी-कभी हम गिलबर्ट और सुलिवान के गेय नाटक भी पढ़ते थे। जब ऐसा होता था हम अलग-अलग पात्र बन कर बारी-बारी से पढ़ते थे और उसमें खूब आनन्द लेते थे। हमने कविताएं भी काफी पढ़ी थीं और वह जिन कविताओं को पसन्द करते थे उनके कुछ अंशों को मुझे याद कराया करते थे। मेरे हिन्दी के अध्यापक पंडित मदन मोहन मालवीय के भतीजे थे और उन्हें तुलसीदास कृत रामायण प्रिय थी जिसे उन्होंने मुझे पढ़ाया। इस ग्रन्थ के इतने अंश मुझे याद थे कि वयस्क होने पर जब मैंने भी स्वतंत्रता संग्राम में भाग लिया तो मैं भाई को उनके भाषणों

के लिए हमेशा उसमें से समुचित उद्धरण बता देती थी। वह इस बात की बड़ी सराहना करते थे। वह इस किस्म के व्यक्ति नहीं थे कि जब तक वास्तविक प्रशंसा का कार्य न हो प्रशंसा कर दें। इसलिए जब वह मेरे सहित किसी व्यक्ति की प्रशंसा करते थे तो वह समझता था कि उसने कुछ अर्जित किया है।

हमारे जीवन में महात्मा गांधी के आने से मैं कांग्रेस की स्वयंसेविका बन गई थी और मैंने गांवों में काम किया। मैंने इससे पहले न तो गांव देखे थे और न ही वह दुःख और गरीबी जिसके संपर्क में मैं अब आई थी। भाई सत्याग्रह में लगे थे जिसके पश्चात जलियांवाला बाग की दारुण घटना घटित हुई और कभी-कभी मैं उन गांवों में जाया करती थी जहां भाई भाषण देते थे। वह देहाती भाषा नहीं बोल सकते थे परन्तु वह साधारण हिन्दी में जब तक गांव वाले यह न समझें कि वह क्या कह रहे हैं, बार-बार अपनी बात को दोहराते थे। यह खादी आन्दोलन का समय था और गांधी जी भारत का दौरा कर रहे थे और सत्याग्रह सभा के उन सदस्यों के लिए चन्दा इकट्ठा कर रहे थे जिन्हें गिरफ्तार कर जेल भेजा जाना था। वह इलाहाबाद भी आए और स्वाभाविक था आनन्द भवन में ठहरे। मेरी मां परेशान थी क्योंकि जिस ढंग के कमरे में वे रहते थे उनके लिए उसी ढंग का कमरा तैयार करने के लिए हमारे पास बहुत कम समय था। सब ठीक हो गया था। कमरे में फर्श पर खादी का दस्तरखान बिछा दिया गया था परन्तु नौकरों की वर्दी की समस्या फिर भी थी। व्यवस्था यह की गयी कि मेरी मां और कमला भाभी उनकी सेवा करेंगी और उनके साथ के लोगों की सेवा नौकर करेंगे। परन्तु भाई चिन्तित थे। तब तक उन्हें गांधी जी की पसन्द और नापसन्द मालूम हो गयी थी और उन्हें मालूम था कि उन्हें वर्दी पहने नौकरों का पता लग जायेगा भले ही वे उनके कमरे में न जायें। उस समय और कुछ नहीं किया जा सकता था। उनका पड़ाव शान्तिपूर्वक गुजर गया। एक जन सभा में गांधी जी ने काफी चन्दा एकत्र किया और भारत के दूसरे भागों के लिए चले गये। परन्तु आनन्द भवन उसके बाद पहले जैसा कभी नहीं रहा। ऐसा लगता था कि वहां से कोई तूफान गुजरा है।

जलियांवाला बाग की घटना ने भारतीय दिलों में एक गहरा घाव छोड़ा था और हमारे सभी परिवार इससे प्रभावित हुए थे। खादी समय की पुकार बन गई। मेरे भाई का जीवन और भोजन भी सादा हो गया। योरोपीय भोजन जिसके हम आदी थे, वह दूर हो गया। इसके स्थान पर भाई रात के भोजन में एक कटोरी दूध और रोटी लेते थे, जो मेरे पिताजी को, जो बड़े चाव से भोजन करते थे, को बड़ा कष्टकर लगता था। उसके बाद विधान सभा के चुनाव आ गए। चुनाव लड़ने के लिए चुने गए उम्मीदवारों में एक मैं भी थी। देश में सब जगह कांग्रेस की विजय हुई और आठ प्रान्तों में कांग्रेस की सरकार बन गई। उत्तर प्रदेश में पंडित गोविन्द बल्लभ पंत मुख्य मंत्री बन गए। एक दिन मुझे उनका तार मिला जिसमें लिखा था "क्या आप रफी, काटजू आदि लोगों के साथ मेरे मंत्रिमंडल में शामिल होंगी।" मुझे बड़ा आश्चर्य हुआ क्योंकि मैं अपनी औपचारिक शिक्षा की कमी के प्रति काफी सजग होने के कारण स्वयं को किसी मंत्री से बहुत छोटा समझती थी। मैं

अपने भाई के पास गई और उन्हें वह तार दिखाया और बहुत भावुक हो गई। उन्होंने मुझे समझाया कि यह एक बहुत अच्छा अवसर है क्योंकि उस समय उत्तर भारत में राजनीति में बहुत अधिक महिलाएं नहीं थीं, यह बहुत अच्छी बात होगी। मुझे याद है कि एक बार मैंने भाई से कहा था कि मुझे उम्मीद है कि मैं परिवार की प्रतिष्ठा को आंच नहीं आने दूंगी। उस समय वह हंसे थे और उन्होंने कहा था कि तुम्हारी औपचारिक शिक्षा पूरी न होने के कारण शायद तुम बेहतर मंत्री बन सकती हो।

भाई और मेरे पति दोनों ने मेरे संसदीय जीवन पर निकट से और आलोचनात्मक रूप से नजर रखी और इससे मुझे बहुत फायदा हुआ।

बार-बार की जेल यात्राओं के साथ वर्ष गुजरते गए। मेरी पहली जेल यात्रा के दौरान मेरे भाई ने मुझे लिखा था कि मैं जेल को अपना विश्व विद्यालय मानूं और मनुष्यों की समस्याओं के बारे में जानने का प्रयास करूं। इससे मुझे काफी प्रोत्साहन मिला और मैं अपनी जेल यात्रा में जेल की परेशानियों को झेलने में सक्षम हुई और अनेक प्रकार से विकास हुआ। मेरे भाई की 14 जेल यात्राओं की तुलना में मैं तीन बार जेल गई जो कुछ भी नहीं था। परन्तु मुझे विश्वास है कि मैं जेल से और अधिक कष्ट सहिष्णु बन कर आई और गांवों में पहले की अपेक्षा बेहतर कार्य कर सकती थी। अपनी दूसरी जेल यात्रा में मैंने अपराधियों के बच्चों की देखभाल करने का काम चुना और उनके लिए एक छोटा सा स्कूल खोला जिसकी सफेदी और सफाई मैंने स्वयं की और उसके बाद पढ़ाया। बाद में मुझे तत्कालीन वाइसराय लार्ड वेवेल और गांधी जी ने दक्षिण अफ्रीका में एशियाई मूल के लोगों के साथ होने वाले भेदभाव का विरोध करने के लिए संयुक्त राष्ट्र भेजा। मेरे भाई ने मेरा पूर्ण समर्थन किया, दुर्भाग्यवश मेरे पति का प्लूरिसी से पहले ही देहान्त हो गया था जिसका जेल में उचित रूप से इलाज नहीं हो सका। संयुक्त राष्ट्र में जिस व्यक्ति का मुझे विरोध करना था वह था महान जनरल स्मट्स परन्तु प्रतिनिधियों के एक दल का मुझे समर्थन प्राप्त था जिसमें सभी लोग अपने संबंधित क्षेत्रों में बहुत प्रतिभाशाली थे और उनके प्रधान मंत्री द्वारा, जो मेरा भाई था, चुनाव किया गया था। प्रतिनिधियों में हमारे वर्तमान राष्ट्रपति थे और सभी लोग मेरे लिए काफी सहायक थे। किसी भी व्यक्ति ने मुझे अपने से छोटा नहीं समझा। मैं हर तरह से उनके बराबर थी।

मेरे भाई संसद और विपक्ष का बेहद सम्मान करते थे। वह सदस्यों से बहस करते थे और कई मौकों पर उनसे असहमत भी हुए। परन्तु उनके प्रति हमेशा सम्मान रखते थे। मेरे पाठक एक छोटी सी घटना के बारे में जानकर खुश होंगे जो संसद में उस समय हुई थी जब मैं भी वहां पर थी। विपक्ष के एक सदस्य ने जो नेहरू परिवार को विशेष रूप से मेरे भाई को पसन्द नहीं करते थे, ने अपने भाषण में कहा, "मैं जवाहर लाल की रईसी के बारे में सुन-सुन कर थक चुका हूं। मुझे मालूम हुआ है कि उनके दादा बहादुर शाह के दरबार में चपरासी थे।"

कांग्रेस के सदस्यों की ओर से भारी शोरगुल हुआ और मेरे भाई जो अपनी सीट पर

बैठे थे सामान्य रूप से खड़े हुए और सदस्यों को शान्त रहने के लिए कहा। वे बेदाग सफेद अचकन और गांधी टोपी पहने हुए थे, बटन-काज में लाल गुलाब था, उन्होंने कहा, "मैं माननीय सदस्य का इस बात की पुष्टि करने के लिए आभारी हूं। जब से मैं प्रधानमंत्री बना हूं तभी से मैं यह साबित करने का प्रयास कर रहा हूं कि मैं आम आदमियों में से हूं।" चारों ओर से काफी तालियां बजीं और वह दुर्भाग्यपूर्ण घटना टल गई। उन्हें विनोद प्रियता की सुन्दर समझ थी जो उनके राजनीतिक जीवन में अकसर उनके लिए सहायक सिद्ध हुई। भाई विनम्र स्वभाव के थे। यह सच है कि उन्हें बड़ी जल्दी गुस्सा आ जाता था परन्तु जितनी तेजी से गुस्सा आता था उतनी जल्दी चला भी जाता था और वह हमेशा, जिसके प्रति उन्हें गुस्सा आता, उससे क्षमा मांगने के लिए कोई न कोई रास्ता निकाल लेते थे। एक बार पंडित हृदय नाथ कुंजरू जो तर्कों में विशेषज्ञ थे, के साथ उनकी काफी गर्मा-गर्मी हो गई थी जिसके काफी खराब नतीजे भी हो सकते थे। ऐसा हुआ कि जब वे संसद भवन से बाहर निकल रहे थे तो पंडित हृदय नाथ और मेरे भाई पोर्च में अपनी कारों की प्रतीक्षा कर रहे थे और भाई ने पंडित हृदयनाथ के कन्धे पर हाथ रखा और अपने साथ कार में चलने का आग्रह किया।

वह सामयिक परिहास को बहुत पसन्द करते थे और जन्म दिवसों पर वह प्रायः उन ड्रेसों और टोपों को पहनते थे जो उन्हें दूसरे राज्यों अथवा देशों से मिले थे। हमारे परिवार में "जन्म दिवस सप्ताह" मनाया जाता था। मेरे भाई का जन्म दिन 14 नवम्बर, हमारी अभिन्न मित्र सरोजनी नायडू की पुत्री पद्मजा नायडू का 17 नवम्बर और इन्दिरा का 19 नवम्बर था।

भाई को कई देशों से अनेक प्रशस्तियां प्राप्त हुई थीं, मेरी दृष्टि में एक बढ़िया प्रशस्ति वह थी जब वह भारत में अन्तरिम सरकार के दौरान लन्दन गए थे और विन्सटन चर्चिल से मिले थे। जब वे एक दूसरे से विदा हो रहे थे तो चर्चिल ने कहा, "नेहरू! आपने इन्सान के दो महान शत्रुओं—घृणा और भय पर विजय प्राप्त कर ली है।" यह मेरा सौभाग्य रहा कि अपने समय के अनेक "महापुरुषों" से मिलने के सुअवसर मुझे मिले। जहां वास्तव में महानता होती है, वहां से दूसरे को हमेशा कुछ प्रेरणा मिलती है। भाई के मामले में कुछ विशेष बात थी। वह एक ऐसे व्यक्ति थे जिनके हमेशा कुछ सपने और आदर्श थे परन्तु कुछ लोगों की तरह, वह हमेशा उन्हीं में नहीं खोये रहते थे, उन्हें कार्यान्वित किया जाता था। जब हम बहुत छोटे थे, वह प्रायः कविताओं के उद्धरणों द्वारा मुझसे प्रश्न पूछते थे, उनमें से एक बढ़िया प्रश्न इस प्रकार है:—

"यदि सपनों का बाजार सजा हो तो तुम क्या खरीदोगी।"

जब लोग उनके बलिदानों का उल्लेख करते थे तो उन्हें हमेशा गुस्सा आ जाता था। उनका प्रिय जवाब होता था कि जिस बात पर तुम विश्वास करते हो उसको करना, जिसे तुम नहीं चाहते हो उसे न करना, यह कोई बलिदान नहीं है। वह हर प्रकार से एक पूर्ण व्यक्ति थे।

18

बी. एन. पाण्डे

जवाहर लाल नेहरू : कुछ संस्मरण

1923 में मैं अजनी सेन्ट्रल जेल नागपुर में एक कैदी के रूप में था। वहाँ हमारे साथ विनोबा भावे, आबिद अली, सत्यदेव विद्यालंकार और डा. घिया, डा. देसाई तथा डा. हार्डिकर जैसे चिकित्सक भी थे। हममें से अनेक कैदियों को उस कारावास में स्थित कुनैन कारखाने में कुनैन की गोलियां बनाने का काम दिया गया था। वहां हम निरन्तर राजनीति की चर्चा करने में लगे रहते थे। डा. हार्डिकर के पास चर्चा के लिए एक ही विषय था कि सत्याग्रहियों को किस प्रकार संगठित और प्रशिक्षित करके कांग्रेस का एक अनुशासित बल बनाया जाए? उन्होंने यह महसूस किया कि कांग्रेस के प्रत्येक अधिवेशन में स्वयंसेवकों की भर्ती की जाती है, उनकी वर्दी पर भारी धनराशि खर्च करके उन्हें अल्पकालिक प्रशिक्षण दिया जाता है परन्तु उस अधिवेशन के बाद उनका पता नहीं चलता है। अतः एक स्थायी संगठन क्यों न बनाया जाए?

कुनैन कारखाने में हुई चर्चाओं ने एक सेवा दल के गठन के विचार को जन्म दिया। हार्डिकर को इसका एक संविधान तैयार करने और कांग्रेस के अगले अधिवेशन के समय एक सम्मेलन बुलाने का काम सौंपा गया। इस सेवा दल का प्रथम सम्मेलन जवाहर लाल नेहरू की अध्यक्षता में दिसम्बर, 1923 में काकीनाडा में हुआ। वहीं पर पहली बार मैं उनके व्यक्तिगत सम्पर्क में आया।

काकीनाडा कांग्रेस ने एक स्वयं सेवी बोर्ड नियुक्त किया। कुछ समय बाद हिन्दुस्तानी सेवा दल की जड़ें मजबूत हो गईं। दल के वर्दीधारी स्वयंसेवकों को उनके द्वारा कुशलता से कांग्रेस के उत्सवों में प्रबन्ध करने, यातायात को व्यवस्थित करते तथा कांग्रेस नगरों में लाखों लोगों की भारी भीड़ में व्यवस्था बनाए रखते हुए देखना एक आम बात हो गई थी। प्रशिक्षित स्वयंसेवकों की उपस्थिति से ध्वजारोहण तथा कांग्रेस के अध्यक्षों को गार्ड ऑफ ऑनर देने जैसे समारोहों की शोभा बढ़ गई थी। जवाहर लाल नेहरू ने सेवा दल को इतना अधिक सम्मान दिया था कि सुभाष चन्द्र बोस ने भी 1928 में कांग्रेस के कलकत्ता अधिवेशन में कांग्रेस के स्वयंसेवकों का नेतृत्व किया।

जब कांग्रेस ने 1930 में नमक सत्याग्रह आरम्भ करने का निर्णय लिया तो उस समय लोग काफी बड़ी संख्या में स्वयंसेवकों के रूप में इसमें शामिल होने के लिए आए। उसी वर्ष फरवरी में इलाहाबाद में एक स्वयंसेवक प्रशिक्षण शिविर खोला गया। यद्यपि जवाहर लाल नेहरू कांग्रेस के अध्यक्ष थे फिर भी वह स्वयंसेवकों की वर्दी पहनकर प्रतिदिन होने वाली ड्रिल तथा परेड में भाग लेते थे। स्वयं उदाहरण पेश करके उन्होंने नेताओं और स्वयंसेवकों के बीच के अन्तर को समाप्त कर दिया था। श्री प्रकाश, एस. के. डी. पालीवाल, सम्पूर्णानन्द और उत्तर प्रदेश के अन्य नेता भी परेड में भाग लेते थे।

परेडों और शिविर समारोहों में जवाहर लाल नेहरू स्वयंसेवकों के कैप्टन के आदेशों को मानते थे। मुझे याद है कि एक शिविर समारोह में कैप्टन ने उनसे एक गीत गाने को कहा। हम सब जानते थे कि जवाहर लाल नेहरू को संगीत से कोई विशेष लगाव नहीं था। परन्तु उन्होंने अपनी प्रतिभा प्रदर्शित करने का भरसक प्रयास किया। समानता की इस भावना से स्वयंसेवकों को लाठियों और गोलियों का सामना करने की प्रेरणा मिली।

जब जवाहरलाल नेहरू से दीक्षान्त समारोह में प्रशिक्षार्थियों को सम्बोधित करने के लिए अनुरोध किया गया तो उनके स्मरणीय शब्द ये थे: "जब तक कोई नेता अपने आपको एक स्वयंसेवक मानता है तब तक वह लोगों को कोई भी बलिदान देने के लिए प्रेरित कर सकता है। जब उसमें स्वयंसेवक की भावना समाप्त हो जाती है तब वह एक कार्यकर्त्ता नहीं रह जाता और जब वह कार्यकर्त्ता ही नहीं रहता तब वह एक नेता भी नहीं रहता है।"

2

किसानों के बीच भ्रमण : असहयोग आन्दोलन के प्रथम चरण में कांग्रेस कार्यसमिति ने सभी कांग्रेस कमेटियों को निदेश दिया कि वे अपनी एक तहसील को बड़े पैमाने पर सविनय अवज्ञा हेतु तैयार करें। इसके लिए गुजरात ने बारदोली और उत्तर प्रदेश कांग्रेस ने हंडिया को चुना।

1928 के आरम्भ में इलाहाबाद जिला कांग्रेस कमेटी ने बड़े पैमाने पर लगान न देने के लिए एक सत्याग्रह चलाने की तैयारी के रूप में हंडिया में जन सम्पर्क बनाने के लिए कार्यक्रम तैयार किया। इस कार्यक्रम में ये बातें शामिल थीं: खादी उत्पादन केन्द्रों की स्थापना, अस्पृश्यता उन्मूलन, हिन्दू–मुस्लिम एकता के कार्य में तेजी लाना, मद्यपान की बुराई के विरुद्ध अभियान को मजबूत बनाना, विदेशी कपड़े का पूर्ण बहिष्कार करना, स्वयंसेवकों की भर्ती करना और किसानों से यह वचन लेना कि सत्याग्रह होने पर वे अपनी जमीन गंवाने के लिए भी तैयार रहेंगे।

जवाहर लाल नेहरू और पुरुषोत्तम दास टंडन दोपहर के बाद अभियान में भाग लेते थे, ग्रामीण बैठकों में भाषण देते थे, लोगों से सम्पर्क करते थे और शाम को इलाहाबाद

लौट आते थे। कुछ सप्ताहों के बाद जवाहर लाल नेहरू ने तहसील में पदयात्रा करने का निश्चय किया। कार्यकर्ताओं को प्रेरित किया गया। ग्रामीणों को यह सूचित किया गया कि वह तहसील में पूरा एक सप्ताह बितायेंगे और समूची तहसील में एक छोर से दूसरे छोर तक पैदल यात्रा करेंगे। कई वर्षों पहले उन्होंने प्रतापगढ़ तथा रायबरेली जिलों में भी ऐसा ही किया था।

जवाहर लाल नेहरू रेलगाड़ी द्वारा हंडिया पहुंचे और तुरन्त ऋषिपुर के लिए पैदल चल पड़े। बड़ी संख्या में स्कूली बच्चों सहित हजारों लोग उनके पीछे-पीछे चले। उन्होंने रास्ते में रुककर खेतों में कार्यरत किसानों के साथ बातचीत की। उन्होंने उनके द्वारा उपयोग में लाये जा रहे कृषि उपकरणों की जांच की। उन्होंने खाद और फसल की उपज, उनकी ऋणग्रस्तता तथा जमींदारों के रवैये तथा उनके स्वास्थ्य और उनकी आदतों के बारे में पूछताछ की। किसानों ने खुशी से उनके प्रश्नों के उत्तर दिए। पहले कभी भी किसी ने उनसे इतनी सहानुभूति के साथ उनकी दशा के बारे में नहीं पूछा था। कई स्थानों पर लोग अपने कष्टों को बताते हुए रो पड़े थे। तब वह उनको सांत्वना दे देते थे।

दोपहर बाद कई गांवों के बीच के एक गांव में एक बैठक हुई जिसमें जवाहर लाल नेहरू ने एक समूह में उनसे बातचीत की। उनके कष्टों के कारण का विश्लेषण किया और उन्हें खादी द्वारा तथा मद्यपान और अस्पृश्यता इन दोनों बुराइयों का उन्मूलन करके गांधी जी के आत्मनिर्भर बनने का संदेश दिया। तत्पश्चात् उन्होंने निकट भविष्य में चलाये जाने वाले लगान न देने संबंधी सत्याग्रह के बारे में तथा उसमें कितना बलिदान करना पड़ सकता है इसके बारे में उनसे बातचीत की। उन्होंने उन्हें उस पाशविक दमन की चेतावनी दी जिसका उन्हें सामना करना पड़ सकता है।

हमने उनके रात्रि विश्राम के लिए एक तम्बू लगाने की व्यवस्था की। उन्होंने अपनी सुबह की चाय तथा नाश्ता तम्बू में ही लिया और ज्योंही वह चलने के लिए तैयार होते थे स्वयंसेवक तम्बू उखाड़कर पैक कर लेते थे और इसे रात्रि विश्राम के लिए अगले पड़ाव स्थल पर लगा देते थे।

पहले उनका यह विचार था कि वह अपने दौरे के दौरान उसी तरह से रहेंगे जैसे किसान रहते हैं। खेतों में ही शौच, आदि के लिए जायेंगे, गांव के कुएं पर स्नान करेंगे और आम के पेड़ों के नीचे सोयेंगे। परन्तु यह प्रयोग केवल एक दिन चला। सुबह से ही सैकड़ों लोग उनके तम्बू को घेर लेते थे और उन्हें एक मिनट के लिए भी नहीं छोड़ते थे। सैकड़ों ग्रामीण युवक उनके स्नान कराने के लिए गांव के कुएं से बाल्टियों से पानी निकालने में एक दूसरे से होड़ किया करते थे। इस प्रकार से उन्हें अपनी दैनिक व्यवस्था बदलनी पड़ी। तीसरे दिन से ही उन्होंने यह निश्चय किया कि शौच तथा स्नान के लिए वह एक छोटे से तम्बू का प्रयोग करेंगे।

जवाहर लाल नेहरू अपने दोपहर के भोजन के लिए अपने साथ कुछ चाय और हल्का नाश्ता ले जाते थे जिसे वह "टंच" कहते थे। वह रात्रि का भोजन किसी ग्रामीण विशेषतया किसी किसान के साथ लेते थे। उनके रात्रि भोजन के लिए व्यंजनों की संख्या दिन पर दिन बढ़ती जा रही थी। एक विश्राम स्थल पर लगभग छतीस प्रकार के व्यंजन थे। वह नाराज और दुखी हुए। हमसे नाराज इसलिए हुए कि हम फिजूलखर्ची नहीं रोक सके। और दुखी इसलिए हुए कि हमारे गांवों में जिनमें गरीबी ही गरीबी है अतिथि सत्कार की दिखावटी भावना प्रचलित है। उस दिन से उन्होंने यह निश्चय किया कि वह रात्रि के भोजन में केवल उबले हुए आलू और बिना चुपड़ी चपाती लेंगे तथा सुबह के नाश्ते में भुने हुए चने और उबले हुए मीठे आलू अथवा गाजर लेंगे।

अधिकांश हंडिया तहसील तथा फूलपुर और सोरम तहसीलों के कुछ भागों की पदयात्रा की गई। इसका किसानों पर काफी प्रभाव पड़ा। इसके परिणाम 1932 में सामने आये जब लगान न देने का आह्वान किया गया। हजारों किसानों को अपनी भूमि से वंचित होना पड़ा। मशीनगनों से लैस सेना की एक टुकड़ी ने सोरम, फूलपुर और हंडिया में किसानों को लगान देने हेतु डराने के लिए मार्च किया। परन्तु इसका कोई प्रभाव नहीं पड़ा। सेना की टुकड़ी में ब्रिटिश सिपाही थे जिन्होंने गांव वालों को उनकी ओर मशीनगनों को इंगित करते हुए डराया परन्तु पीछे की टुकड़ी में जाट रेजिमेन्ट के भारतीय सिपाही थे जिन्होंने किसानों को आश्वस्त किया कि यह तमाशा उन्हें डराने के लिए है। वास्तव में जवानों ने ग्रामवासियों को यह बताया कि उन्हें उनके साथ सहानुभूति है और वे स्वयं भी किसान हैं।

लगान न देने का सत्याग्रह : गोलमेज सम्मेलन में भाग लेने के बाद महात्मा गांधी 28 दिसम्बर, 1931 को बम्बई आने वाले थे। जवाहर लाल नेहरू कांग्रेस के महामंत्री थे। उन्हें टी.ए.के. शेरवानी, जो उत्तर प्रदेश प्रान्तीय कांग्रेस कमेटी के अध्यक्ष थे, के साथ इलाहाबाद से बम्बई आना था और जिन्हें कार्य समिति को उत्तरप्रदेश में उत्पन्न चिन्ताजनक भूमि संबंधी स्थिति की जानकारी देनी थी। पुरुषोत्तम दास टण्डन को पहले ही गिरफ्तार करके जेल भेज दिया गया था।

14 दिसम्बर, 1931 को उत्तर प्रदेश सरकार ने एक अध्यादेश जारी किया जिसमें उसने दमन चक्र चलाने के लिए व्यापक शक्तियां हासिल कर लीं। इसके अन्तर्गत इलाहाबाद के जिला मजिस्ट्रेट ने जवाहरलाल नेहरू और शेरवानी को एक महीने तक इलाहाबाद न छोड़ने का नोटिस दिया। इन दोनों व्यक्तियों ने आदेश की अवज्ञा की और वे 24 दिसम्बर को कलकत्ता-बम्बई मेल में सवार हो गए। रेल गाड़ी मुश्किल से सात मील दूर ही पहुंची थी कि यह इरादत गंज में रोक ली गयी और इन दोनों नेताओं को गिरफ्तार कर लिया गया। जवाहरलाल नेहरू को 26 दिसम्बर को दो वर्ष का कठोर कारावास का दंड दिया गया।

3

दिसम्बर, 1933 में जवाहरलाल नेहरू ने इलाहाबाद शहर और जिले के कांग्रेस के प्रमुख कार्यकर्त्ताओं को चर्चा के लिए आमंत्रित किया। कांग्रेस अभी तक एक गैर-कानूनी संगठन था। वह चाहते थे कि हम जिले की कुछ ऐसी तहसीलों को चुनें जहां किसानों को कांग्रेस का संदेश देने के लिए 15 दिन तक गहन दौरा किया जा सके। परन्तु उनकी शर्त यह थी कि हम अपने साथ एक भी पैसा लेकर न चलें। ग्रामवासी भोजन दें परन्तु यदि वे ऐसा न करें तो हमें भूखे रहना होगा। यदि वे रात को विश्राम के लिए जगह दें तो ठीक है अन्यथा हमें पेड़ों के नीचे सोना होगा। उन्होंने यह भी सलाह दी कि हम गांव-गांव पैदल जाएं और हम किसी भी वाहन का प्रयोग न करें।

शहर से केवल हम तीन व्यक्तियों — लाल बहादुर शास्त्री, फिरोज गांधी तथा मैंने अपनी सेवाएं पेश कीं। हण्डिया, फूलपुर तथा करछना से तीन जिला कांग्रेस कार्यकर्ताओं ने भी अपनी सेवाएं पेश कीं। ये तीन कार्यकर्ता थे — श्रीनाथ, सदानन्द तथा शिव सेवक। लाल बहादुर को हण्डिया तहसील, फिरोज को करछना तहसील तथा मुझे फूलपुर तहसील दी गई।

जवाहर लाल नेहरू से कार्य के बारे में समस्त जानकारी प्राप्त करने के पश्चात् हमने अपनी यात्रा शुरू की। हमने अपने कंधे पर कम्बल लिया तथा एक थैले में कपड़ों का एक जोड़ा तथा साबुन, तेल आदि डाल लिया। हमें विश्वास था कि हमारी गिरफ्तारी से हमारा यह दौरा कार्यक्रम बीच में ही रह जाएगा। लेकिन हमारे लिए यह हैरानी की बात हुई कि हम सबने अपनी यात्रा पूरी की।

किसान रबी की फसल की सिंचाई, आदि में बहुत व्यस्त थे। इसलिए हमें उनसे उनके खेतों में जाकर मिलना पड़ा। ज्योंही वे तिरंगा देखते थे वे हमारी ओर दौड़े आते थे। हमने देखा कि 1932 में "कोई लगान नहीं" अभियान के दौरान उठाई गई तकलीफों के बावजूद न तो उनका उत्साह कम हुआ था और न ही वे निराश हुए थे। हम अधिक आबादी वाले गांव में रात को रुकने का कार्यक्रम बनाते थे, ताकि शाम को ऐसी सार्वजनिक सभाएं की जा सकें जिनमें अधिक से अधिक लोग भाग लें। पुरुष, महिलाएं तथा बच्चे इन सभाओं में हमारे भाषण सुनने के लिए इकट्ठे हो जाते थे। सभा समाप्त होने के पश्चात् रात्रि के भोजन तथा विश्राम के लिए हमारे पास बहुत से निमंत्रण होते थे। हम उन किसानों के साथ रात को ठहरना पसंद करते थे जिन्होंने "कोई लगान नहीं" अभियान के दौरान कष्ट सहे थे।

गांव के रूढ़िवादी वर्ग गांधी जी के हरिजन आंदोलन का समर्थन नहीं करते थे। उनका आरोप था कि कांग्रेस वर्णाश्रम को अर्थात् पुरातन हिन्दू वर्ण व्यवस्था को नष्ट करने पर तुली हुई है। लेकिन जब हम उन्हें हरिजन आन्दोलन के महत्व के बारे में समझाते थे तो उनमें से अधिकांश हमारे मत से सहमत हो जाते थे।

अपना पन्द्रह दिन का कार्यक्रम पूरा करने के बाद जब हम जवाहर लाल नेहरू से मिले तो वे अत्यंत प्रसन्न तथा संतुष्ट हुए। वे लगभग दो घंटे तक हम तीनों से ग्रामीण जीवन के सभी पहलुओं तथा 'कोई लगान नहीं' सत्याग्रह के बाद के प्रभावों पर विस्तार से प्रश्न पूछते रहे।

इसके बाद 26 जनवरी, 1934 को मुक्ति दिवस आया। हमने जवाहर लाल नेहरू के साथ कार्यक्रम के बारे में विचार-विमर्श किया। उन्होंने मुझे शहर कांग्रेस कमेटी की ओर से इश्तहार तथा पर्चे छपवाकर एक सभा की घोषणा करने की हिदायत दी। यह निर्णय लिया गया कि मैं शपथ पढ़ूंगा और उसके बाद वे भाषण देंगे। उन्होंने मुझे यह भी कहा कि मैं गिरफ्तारी के लिए तैयार होकर आऊं।

जवाहर लाल नेहरू दो वर्ष से भी अधिक समय के पश्चात् इलाहाबाद में एक सार्वजनिक सभा को सम्बोधित कर रहे थे। मोहम्मद अली पार्क खचाखच भरा हुआ था। बड़ी संख्या में पुलिस वाले पुलिस की गाड़ी के साथ मौजूद थे। मैंने शपथ पढ़ी जिसे श्रोताओं ने मेरे पीछे-पीछे दोहराया। इसके पश्चात् जवाहर लाल नेहरू ने भाषण दिया जो डेढ़ घंटे तक चला। उन्होंने लोगों को याद दिलाया कि उन्होंने पूर्ण स्वतंत्रता प्राप्त करने की शपथ ली है। उन्होंने कहा कि स्वराज, गरीबों तथा दलितों का स्वराज होगा। ऐसा स्वराज केवल समाजवाद से ही आ सकता है।

प्रत्येक व्यक्ति का यह विचार था कि सभा समाप्त होने के पश्चात् हमें गिरफ्तार कर लिया जाएगा। परंतु ज्योंही सभा समाप्त हुई पुलिस वाले अपनी गाड़ी के साथ चले गए।

इससे पहले कि कोई अगला कार्यक्रम बनाया जाता, बिहार एक भयानक भूकम्प की चपेट में आ गया। इस विपदा का मुकाबला करने के लिए देश भर के कांग्रेसियों ने धन तथा अन्य सामान एकत्र करना शुरू कर दिया। जवाहर लाल नेहरू ने प्रभावित क्षेत्रों का दौरा किया। फरवरी के दूसरे सप्ताह में जब वे इलाहाबाद लौटे तो कलकत्ता से जारी एक वारंट पर उन्हें गिरफ्तार कर लिया गया। उन्हें कलकत्ता ले जाया गया तो दो वर्ष के कठोर कारावास की सज़ा दी गई। इलाहाबाद से उनके प्रस्थान के समय जब मैं उनसे मिला तथा अपने लिए संदेश के बारे में पूछा तो उन्होंने कहा, "राहत कार्य के लिए बहुत लोग हैं। आप में से कुछ लोग आजादी की लड़ाई को जारी रखें।"

4

1938 में जवाहर लाल नेहरू ने यूरोप का दौरा किया। उनके इलाहाबाद लौटने पर हममें से कुछ लोग उनसे मिलने गए। कुछ मिनट बाद, रफी अहमद किदवई तथा लाल बहादुर शास्त्री भी वहां पहुंच गए। जवाहर लाल नेहरू ने कहा : "हेलो, डा. डालफस।" इस पर रफी साहब सकपका गए। उन्होंने सोचा कि उन्हें नए नाम से पुकारा गया है इसलिए उन्होंने पूछा कि "मुझे नयी उपाधि क्यों दी जा रही है?"

जवाहर लाल नेहरू ने कहा, "नहीं, रफी, यह उपाधि आपको नहीं बल्कि लाल बहादुर को दी जा रही है।"

रफी साहब नहीं जानते थे कि डा. डालफस कौन थे। हममें से कुछेक ने ही उसका नाम सुना था लेकिन यह नहीं जानते थे कि डा. डालफस का कद लाल बहादुर जितना था। इस बात का पता हमें तब लगा जब जवाहर लाल नेहरू ने हमें डा. डालफस के बारे में सारी बातें बताईं। तब रफी साहब ने कहा "तो आपने अपने स्वराज्य मंत्रिमण्डल में विदेश विभाग के लिए लाल बहादुर को चुना है।"

जवाहर लाल नेहरू ने कहा, "रफी, आप निराश न हों। स्वराज्य मंत्रिमण्डल में आप गृह मंत्री होंगे बशर्ते पंत जी आपको छोड़ दें।" इसके बाद पंडित पंत के मंत्रिमण्डल में रफी साहब गृह मंत्री बने।

5

आनन्द भवन में बहुत पत्र आते थे जिनमें से अधिकांश हिन्दी में होते थे। जवाहर लाल नेहरू ने मुझसे कहा कि मैं हिन्दी पत्रों को निपटा दिया करूं। यह 1938 में मई-जून की बात है। दिन का तापमान 115° फारेनहाइट से 118° फारेनहाइट तक होता था। दोपहर 2 बजे के लगभग जब मैं आनन्द भवन पहुंचा तो जवाहरलाल नेहरू ऊपर की मंजिल पर अपने पुस्तकालय में थे। उनकी मेज पश्चिमी द्वार के निकट थी और द्वार खुला था। वहां लू आ रही थी लेकिन वे इसकी परवाह किये बिना अपना कार्य कर रहे थे। मैंने महत्वपूर्ण हिन्दी पत्रों को पढ़ा और उन्होंने मुझे इनके उत्तर संक्षेप में बताए तथा मुझे उनके उत्तर लिखने को कहा। मैंने दो घण्टे में अपना काम समाप्त कर लिया। मैं यह कार्य नैमित्तिक रूप से एक सप्ताह तक करता रहा जब तक कि वे दौरे पर नहीं चले गए। एक दिन मैंने उनसे पूछा, "पंडित जी, आप खुले दरवाजे के पास लू में घण्टों तक बैठे रहते हैं, क्या इससे आपकी सेहत पर बुरा प्रभाव नहीं पड़ेगा?"

उन्होंने कहा : "ये मौसम प्रकृति की देन हैं और मनुष्य को उनका समान रूप से आनंद उठाना चाहिए।"

6

आजाद हिन्द स्वयंसेवक दल : 1945 की बात है। हममें से अधिकांश लोग नजरबंदी से रिहा होकर आ गये थे। कांग्रेस अभी भी गैर-कानूनी संस्था थी और इसी प्रकार सेवा दल भी। आजाद हिन्द फौज के कारनामों से प्रभावित होकर हमने एक स्वतंत्र स्वयंसेवक संगठन शुरू किया जिसका नाम आजाद हिन्द स्वयंसेवक संस्था रखा। हमने आजाद हिन्द फौज के तीन अधिकारियों को इन स्वयंसेवकों को तीन ग्रुपों में — नेहरू ब्रिग्रेड, सुभाष ब्रिग्रेड और रानी झांसी ब्रिग्रेड, प्रशिक्षण देने के लिए लगाया। इसमें एक

हजार से भी ज्यादा स्वयंसेवक, जिनमें 250 महिलाएं थीं, भर्ती हुए। उन्हें एक शपथ पर हस्ताक्षर करने थे। अधिकांश स्वयंसेवकों ने उस शपथ पर अपने खून से हस्ताक्षर करना पसंद किया।

इसी दौरान अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी का अधिवेशन कलकत्ता में हुआ। समाचार पत्रों ने शपथ पर खून से हस्ताक्षर करने संबंधी इस समारोह के बारे में बड़ी-बड़ी खबरें छापीं।

जब जवाहरलाल नेहरू इलाहाबाद आए तो उन्होंने मुझे बुलवाया तथा पूछा, "यह खून से हस्ताक्षर करने वाला मामला क्या था? क्या आप यह महसूस नहीं करते कि आप इलाहाबाद में जो भी करेंगे उन सब को मुझसे जोड़ा जाएगा? मैं समझता था आप बड़े हो गए हैं लेकिन आप अभी भी छोटे हैं।"

मैंने दलील दी, "पंडित जी, भारत छोड़ो आंदोलन के दौरान, कांग्रेसियों ने असंगठित रूप से कार्य किया था। हमें अभी अन्तिम लड़ाई लड़नी है क्या यह जरूरी नहीं है कि हम अपने स्वयंसेवकों को इस प्रकार प्रशिक्षित करें कि वे अनुशासित तरीक़े से सबसे बड़ी कुर्बानी देने के लिए भी तैयार रहें।"

वे एक घण्टे तक युद्ध के बाद की स्थिति का विश्लेषण करते रहे और उन्होंने कहा, "ब्रिटेन को भारत छोड़ने में खुशी होगी। इसके लिए और भारत छोड़ो आन्दोलन की जरूरत नहीं पड़ेगी।"

मैंने पूछा, "क्या इस स्थिति में प्रशिक्षित स्वयंसेवक कोर को संगठित करने की जरूरत नहीं है?"

"नहीं, इसकी जरूरत तो होगी लेकिन किसी अन्य उद्देश्य के लिए। साम्प्रदायिकता का मुकाबला करने के लिए।"

7

युद्ध की समाप्ति के साथ ही मजदूर संघ आंदोलन की लहर चल पड़ी। भारतीय साम्यवादी दल ने अपने-आपको भारत छोड़ो आन्दोलन से अलग रखा। निस्संदेह इससे श्रमिक वर्ग में इसकी प्रतिष्ठा कम हो गई। उनकी आशाएं कांग्रेस पर बंध गईं। शहर कांग्रेस के अध्यक्ष के रूप में मैंने मजदूर संघ आन्दोलन को पूरा समर्थन दिया।

इलाहाबाद में दो आयुध कारखानों में तीस हजार से ज्यादा श्रमिक काम करते थे। इनमें से एक-तिहाई अल्पसंख्यक समुदाय के थे और मुस्लिम लीग ने स्थिति का फायदा उठाना शुरू कर दिया। लीग साम्यवादी दल के साथ मिल गई। इन रक्षा कारखानों में भारतीय क्रांतिकारी समाजवादी दल के भी कुछ समर्थक थे। राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ के भी कुछ समर्थक थे।

मुस्लिम लीग के आह्वान पर कलकत्ता में पहले ही खून खराबा हो चुका था। सिटी मुस्लिम लीग का अध्यक्ष मुस्लिम डिफेंस वर्कर्स यूनियन का भी अध्यक्ष था। उनके जहरीले भाषणों ने श्रमिकों के वातावरण को दूषित कर दिया और तभी छिवकी आयुध डिपो में साम्प्रदायिक दंगा हो गया। पुलिस को गोली चलानी पड़ी जिसमें चार लोग मारे गए।

जवाहर लाल नेहरू अभी इलाहाबाद लौटे ही थे। उन्होंने 18 जुलाई, 1946 को मुझे एक नोट भेजा :

"प्रिय बिशम्भर नाथ,

मैं काफी समय से यह चाह रहा था कि इलाहाबाद की विभिन्न घटनाओं के बारे में आपसे बात करूं किन्तु मैं यहां नहीं था और मेरे पास समय नहीं था। सी.ओ.डी. श्रमिकों के बीच हुई छुरेबाजी की घटनाओं ने मुझे वास्तव में विचलित कर दिया है और मैं परेशान हूं कि हम जिस नीति का अनुसरण कर रहे हैं वह कहां तक सही है। मैं विशेष रूप से श्रम नीति के बारे में कह रहा हूं। निस्संदेह हमें श्रमिकों से सहानुभूति होनी चाहिए। हमें उन्हें संगठित करना चाहिए तथा मजबूत बनाना चाहिए। परन्तु मुझे यह लगता है कि हम कोई जांच पड़ताल किए बिना या सोचे समझे बिना और किसी सहयोग के बिना अत्यन्त संदेहास्पद लोगों के साथ अपने आपको हर तरह के विवाद में उलझा रहे हैं। मुझे बताया गया है कि यहां पर श्रमिकों का एक संयुक्त मंच है। यह क्या है मैं नहीं जानता। लेकिन जहां तक मैं जानता हूं प्रान्तीय कांग्रेस कमेटी की ओर से ऐसा कोई निर्देश नहीं है। वास्तव में हमने पी.सी.सी. कौंसिल में इस मामले पर कई बार विचार-विमर्श किया है तथा इस बारे में सुविचारित निर्णय यह था कि कांग्रेसी कार्यकर्ताओं को अपने आपको उन अन्य ग्रुपों के साथ नहीं जोड़ना चाहिए जो राजनीतिक दृष्टि से कांग्रेस के विरोधी हैं। संकट और मुसीबत की घड़ी में कार्यकर्ता साथ-साथ कार्य कर सकते हैं लेकिन सामान्यतः कांग्रेस कार्यकर्ताओं के लिये अपने ही मंच से जुड़े रहना बेहतर है। अन्यथा कांग्रेस का विरोध करने वाले लोग सांझे मंच का लाभ उठाते हैं और वे ऐसी बातें कह जाते हैं जिनका कांग्रेस समर्थन नहीं करती है। यह बात साम्यवादियों पर खासतौर पर लागू होती है। कुछ साम्यवादी व्यक्तिगत रूप से गंभीर व्यक्ति हैं लेकिन जिस नीति का उन्होंने अनुसरण किया है और कर रहे हैं, वह कांग्रेस के लिये हानिकारक है और किसी भी सार्वजनिक मामले के संबंध में उनके साथ संयुक्त मंच बनाकर काम करना सही नहीं है। मैं समझता हूं, यही बात आर.एस.पी.आई. पर भी लागू होती है जो हमेशा हिंसा की बातें करती रही है। यह बात निश्चित रूप से समझ लेनी चाहिये कि कांग्रेस ने अहिंसा और शांतिपूर्ण तरीकों की अपनी नीति में परिवर्तन नहीं किया है। उस नीति के अतिरिक्त, हाल की घटनाओं से, जिनके कारण सी.ओ.डी. में दंगे तथा छुरेबाजी हुई, हमें पता चलता है कि हिंसा भड़काने में दिलचस्पी लेना कितना खतरनाक है।

डाक कर्मचारियों की हड़ताल पूरी तरह शांतिपूर्ण रही। लेकिन इसमें कभी-कभी किसी प्रकार के संघर्ष की आशंका बनी रही। यदि हड़ताल को सफल होना है तो इसे पूरी तरह शांतिपूर्ण होना चाहिये और इसमें किसी प्रकार का कोई दबाव नहीं होना चाहिये।

हमें यह बात ध्यान में रखनी चाहिये कि प्रान्त में कांग्रेस सरकार काम कर रही है और हमें इसका रास्ता आसान बनाना है। जब यह या इसके अधीनस्थ लोग गलती करते हैं तो हम इनके पास जा सकते हैं और मामले को ठीक करा सकते हैं। हम उन लोगों के हाथों में नहीं खेल सकते जो हर तरह से सरकार को बदनाम करना चाहते हैं।

पुलिस के साथ व्यवहार एक नाजुक बात हो सकती है क्योंकि पुलिस पुराने तरीकों का इस्तेमाल करती है। तो भी पुलिस को सरकार की नीतियों के अनुरूप कार्य करना है, और खासतौर पर ऐसे समय, जब शहर में साम्प्रदायिक अथवा कोई तनाव हो, पुलिस बल पर आरोप लगाना और उसकी आलोचना करना कोई अच्छी बात नहीं है। जहां कहीं पुलिस दुर्व्यवहार करती है तो हमें इस बात की ओर सरकार का ध्यान आकर्षित करना चाहिये।

मैं चाहूंगा कि आप अपने प्रमुख साथियों और कार्यकर्ताओं को यह सब बताएं।

आपका,
जवाहरलाल नेहरू

हमने शहर कांग्रेस कमेटी की कार्य समिति की तत्काल बुलाई गई एक बैठक में पत्र पर चर्चा की। जब मैं जवाहरलाल नेहरू से मिला तो उन्होंने मुझसे श्रमिकों की संख्या और प्रत्येक संस्थान में मजदूर संघों की संख्या सहित इलाहाबाद के मजदूर संघों की पूरी सूची, इस प्रकार के मजदूर संघों को नियंत्रित करने वाले राजनीतिक दलों के नाम तथा इनके पदाधिकारियों की सूची तैयार करने के लिये कहा। मैंने तीन दिन के अंदर एक चार्ट तैयार किया और उनके समक्ष प्रस्तुत कर दिया। उन्होंने इस संबंध में विस्तृत पूछताछ की। उस समय डाक कर्मचारियों की हड़ताल चल रही थी। इलाहाबाद में जिस तरीके से धरना दिया जा रहा था, उसे वे स्वयं देखना चाहते थे। मैं मुख्य डाकघर और रेल डाक सेवा कार्यालयों में उनके साथ गया। उन्होंने कामगारों से मुलाकात की और उनकी सेवा की दशाओं के बारे में पूछताछ की और उन्हें शांत रहने की सलाह दी। कामगार प्रफुल्लित हो गए।

जब हम आनंद भवन लौटे तो उन्होंने मुझे इस बारे में विस्तृत निर्देश दिए कि मजदूर संघ आन्दोलन चलाने में हमें क्या-क्या करना चाहिये और क्या नहीं करना चाहिये।

8

टण्डन और नेहरू : पुरुषोत्तम दास टण्डन और जवाहरलाल नेहरू स्वतंत्रता की लड़ाई में आजीवन साथी रहे। दोनों एक ही शहर में जन्मे और पले। दोनों ने एक ही उच्च

न्यायालय में वकालत की। मतभेदों के बावजूद, उनमें एक दूसरे के प्रति वास्तविक लगाव था। जहां टण्डन को हिन्दी सर्वाधिक प्रिय थी वहां नेहरू जी को समाजवाद सर्वाधिक प्रिय था। दोनों को ही भारतीय संस्कृति से अत्यधिक प्रेम था। लेकिन जहां टण्डन विशुद्ध हिन्दू संस्कृति में विश्वास करते थे, नेहरू संस्कृतियों के सम्मिश्रण में विश्वास करते थे। टण्डन को अपने राजनीतिक गुरु मदनमोहन मालवीय से पुरातन परम्पराएं विरासत में मिलीं, जबकि जवाहरलाल नेहरू को उदार परम्पराएं अपने पिता से विरासत में मिलीं। टण्डन नियंत्रित भोजन करने के आदी थे, नेहरू को ऐसी कोई आदत नहीं थी। यद्यपि वह सादा भोजन पसन्द करते थे। टण्डन उर्दू और फारसी के विद्वान थे, नेहरू थोड़ी बहुत उर्दू जानते थे लेकिन जितनी भी जानते थे उसका उन्होंने भरपूर प्रयोग किया। दोनों को संस्कृत से प्यार था और दोनों यह मानते थे कि संस्कृत ने ज्ञान के द्वार खोले हैं। नेहरू ने अपने लेखन में संस्कृत साहित्य का अत्यधिक प्रयोग किया और रीति रिवाजों में भी वे इसके प्रयोग को पसन्द करते थे। टण्डन इस बात पर बल देते थे कि रीति रिवाजों, अनुष्ठानों में संस्कृत के स्थान पर हिन्दी का प्रयोग किया जाना चाहिये। अपने पुत्रों और पुत्रियों की शादियों में उन्होंने संस्कृत के मंत्रों के हिन्दी रूपांतरण का प्रयोग किया। टण्डन परम्परावादी शक्तियों का केन्द्र बन गए, नेहरू तर्कसंगत और प्रगतिशील विचारों के प्रतीक थे। लेकिन इलाहाबाद के हम कांग्रेसजन दोनों नेताओं का अत्यधिक सम्मान करते थे।

1924-25 में टण्डन यू.पी. की प्रांतीय कांग्रेस कमेटी के अध्यक्ष थे और गांधी जी कांग्रेस अध्यक्ष थे। टण्डन गांधी जी से अप्रसन्न हो गए क्योंकि वे सभी महत्वपूर्ण पत्र उनके बजाए जवाहरलाल नेहरू को भेजते थे। उन्होंने अपना त्यागपत्र देने की पेशकश की, यदि गांधी जी को उन पर कोई भरोसा नहीं है। गांधी जी ने स्पष्ट किया कि मोतीलाल और जवाहरलाल दोनों कार्य समिति के सदस्य हैं और राष्ट्रीय मसलों पर वह उनके साथ परामर्श करने के लिये बाध्य हैं। लेकिन टण्डन इससे संतुष्ट नहीं हुए।

1925 के बाद टण्डन लाला लाजपतराय के प्रभाव में आए। लाजपतराय का निधन होने पर वे *सर्वेंट्स आफ दी पीपुल सोसाइटी* के अध्यक्ष हो गए। दि सर्वेंट्स आफ पीपुल सोसाइटी के पास आजीवन सदस्यों के रूप में कार्यकर्ताओं का एक अच्छा दल था। लाल बहादुर उनमें से एक थे। टण्डन ने उन्हें किसानों के बीच कार्य करने के लिये इलाहाबाद में तैनात कर दिया। लालबहादुर के मन में टण्डन के लिये अत्यधिक आदर था लेकिन जब वह जवाहर लाल नेहरू के संपर्क में आए तो उनके मन में नेहरू के लिये भी वैसा ही आदरभाव विकसित हो गया। बाद में वह टण्डन और नेहरू के बीच एक प्रकार का सेतु बन गए और दोनों के बीच मतभेदों को कम करने के लिये उन्होंने अपनी सम्पूर्ण विनम्रता से कार्य किया।

1947 के पश्चात कांग्रेस के इस पुराने प्रहरी ने जवाहरलाल नेहरू के नेतृत्व को चुनौती देने की सोची। लेकिन समस्या यह थी कि जब तक उत्तर प्रदेश में उनको चुनौती नहीं

दी जाती, उनका विरोध करने वालों को कोई यथेष्ट परिणाम नहीं मिल सकता था। सरदार पटेल के समर्थन से टण्डन नासिक कांग्रेस के अध्यक्ष चुने गए।

लाल बहादुर और मैं, 1929 में जब वह इलाहाबाद आए, तब से साथी थे। वर्षों तक हम बिल्कुल निकट पड़ोसी रहे। इस नये घटनाक्रम से हम डर गए क्योंकि हम समझते थे कि यह नया गठजोड़ उत्तर प्रदेश के लिये घातक सिद्ध होगा। टण्डन के साथ कार्य करने का लाल बहादुर का अपना तरीका था। हमारी पहल पर श्रीप्रकाश और बालकृष्ण शर्मा ने टकराव का रास्ता न अपनाने के लिये टण्डन से विनय की।

लेकिन टकराव को टाला नहीं जा सका। सर्वोच्च नेतृत्व के मामले पर अंततः नासिक में फैसला हुआ। नासिक का अधिवेशन परम्परावादी शक्तियों के लिए वाटरलू साबित हुआ। जवाहरलाल नेहरू एक निर्विवाद नेता के रूप में उभरे। टण्डन ने कांग्रेस की अध्यक्षता से त्यागपत्र दे दिया। उत्तर प्रदेश एक दुखद पारस्परिक संघर्ष से बच गया।

लालबहादुर जवाहरलाल नेहरू के सर्वाधिक विश्वस्त सहयोगी बन गए। वह उत्तर प्रदेश में गृहमंत्री थे और उन्हें केन्द्रीय मंत्रिमंडल में शामिल किया गया।

टण्डन ने अस्थायी रूप से राजनीति से संन्यास ले लिया। लेकिन लालबहादुर ने श्रीप्रकाश के मद्रास के राज्यपाल के पद पर नियुक्त होने के कारण खाली हुई लोकसभा की सीट के लिए खड़े होने के लिए उनसे आग्रह किया। एक बार पुनः लालबहादुर ने टण्डन और जवाहरलाल नेहरू के बीच एक सेतु के रूप में कार्य किया।

9

उनका गृह नगर : जब 1960 में जवाहरलाल नेहरू ने अपने गृह नगर इलाहाबाद का दौरा किया उस समय मैं इलाहाबाद का मेयर था। वे पैंतीस वर्ष पहले इलाहाबाद म्यूनिसिपल बोर्ड के चेयरमैन रहे थे और उन्होंने नगर की आयोजना और विकास में गहरी रुचि ली थी। म्यूनिसिपल बोर्ड की फाइलों में उन्होंने नागरिक प्रशासन के संबंध में महत्वपूर्ण टिप्पणियां छोड़ी थीं। मैंने बड़े ध्यान से उन्हें पढ़ा। उनकी एक टिप्पणी में कहा गया था :

> "एक सही नागरिक सिद्धांत वह है जिसमें सभी को समान रूप से नागरिक सुविधाएं प्राप्त हों। इन सुविधाओं में तब तक वृद्धि होती रहती है जब तक कि इनमें नागरिकों की आवश्यकता की प्रत्येक वस्तु शामिल नहीं हो जाती। सड़कें, पुल, प्रकाश व्यवस्था, जल-आपूर्ति, सफाई व्यवस्था, अस्पताल, और चिकित्सा सहायता, शिक्षा, उद्यान और मनोरंजन स्थल, खेल, समुचित आवास, संग्रहालय, कला दीर्घाएं, नाट्यगृह, संगीत आदि कुछ ऐसे कार्यकलाप हैं जिनमें प्रत्येक आधुनिक नगरपालिका को रुचि लेनी चाहिए और इसे अपने सभी नागरिकों को कुछ सुविधाएं निःशुल्क प्रदान करनी चाहिए।....."

कुछ सप्ताह पूर्व मैंने उनको सूचित किया था कि इलाहाबाद म्यूनिसिपल बोर्ड का दर्जा बढ़ाकर इसे नगर निगम बना दिया गया है और मैं इसका मेयर निर्वाचित हुआ हूँ। उन्होंने मुझे पत्र लिखा :

प्रिय बिशम्भरनाथ,

आपको और इलाहाबाद नगर निगम के अन्य नवनिर्वाचित सदस्यों को मेरी बधाई!

बहुत पहले से जब मैं स्वयं इलाहाबाद नगरपालिका से सम्बद्ध था, निगमों और नगरपालिकाओं में मेरी गहरी रुचि थी। जो भी हो, किसी अन्य कार्य की अपेक्षा अर्थात् विधायी कार्य करने अथवा ऐसी संस्थाओं में कार्य करने की अपेक्षा जो कानून पारित करती हैं और राज्य तथा देश के मामलों की प्रभारी होती हैं, इन निकायों में काम करने से व्यक्ति लोगों के जीवन के अधिक निकट सम्पर्क में आता है। जब आप दिल्ली पहुंच जाते हैं तो आम जनता से दूर हो जाते हैं। मानो आप सर्वोच्च विधायी शिखर पर बैठे हैं, जहां से आप मामलों पर कभी कभार दूर से ही दृष्टिपात कर सकते हैं। इसके विपरीत, नगरपिता नगर के लोगों और उनकी समस्याओं के निकट सम्पर्क में आते हैं। इस मानवीय समस्या और एक बड़े नगर की समस्याओं से सीधे निपटने के कार्य से कोई अन्य कार्य अधिक रुचिकर नहीं है। एक मायने में, कभी-कभी मुझे ऐसे लोगों से ईर्ष्या होने लगती है।

आपका,
जवाहरलाल नेहरू

जवाहरलाल नेहरू अपने लोक सभा निर्वाचन क्षेत्र का वर्ष में दो-तीन बार दौरा किया करते थे। 1960 में अपनी यात्रा के दौरान वह दो दिन रुके और उन्होंने अपने निर्वाचन क्षेत्र में कई सभाओं को सम्बोधित किया। उन्होंने नगर में भी एक सार्वजनिक सभा को भी सम्बोधित किया। मैंने उन्हें टंडन की गंभीर बीमारी के बारे में बताया। जवाहरलाल नेहरू ने दोपहर के बाद उनसे मिलने का फैसला किया और मुझे अपने साथ चलने के लिए कहा। वहां जाते हुए रास्ते में उन्होंने गंदी बस्तियों की सफाई, आवास तथा निगम की अन्य विकास संबंधी गतिविधियों के बारे में पूछताछ की। जब हम नई बनी संकरी गलियों में से गुजर रहे थे तो उन्होंने हमारे नगर आयोजकों की कड़ी आलोचना की :

"इन लोगों में कल्पना शक्ति नहीं है। वे सिर्फ पांच या दस साल आगे की सोचते हैं जब कि उन्हें सौ वर्ष आगे की सोचनी चाहिए। इन सड़कों की योजना कब बनाई गई थी?"

"दूसरे विश्व युद्ध के ठीक बाद।"

"ये सड़कें मुश्किल से 40 फीट चौड़ी हैं।"

"गलियां 40 फीट चौड़ी हैं और मुख्य सड़कें 60 फीट चौड़ी हैं", मैंने कहा।

पंडित जी ने कहा, "इससे यातायात की समस्या उत्पन्न हो जाएगी।" उन्होंने आगे कहा—"जब रूसी नगर योजनाकारों ने युद्ध के बाद मास्को के लिए 300 फीट चौड़ी सड़कों की योजना बनाई थी तब ब्रिटिश तथा फ्रांसीसी नगर योजनाकारों ने उनका उपहास उड़ाया था। परंतु दस वर्ष के बाद जहां लंदन और पेरिस की सड़कें जाम रहने लगीं वहीं मास्को में ऐसी कोई समस्या खड़ी नहीं हुई। यदि आप कभी मास्को गए तो आप इसे स्वयं देख लेंगे।"

उन्होंने कहा कि जब वे नगरपालिका चेयरमैन थे तो उन्होंने इलाहाबाद का सर्वेक्षण करने तथा शहर की योजना के लिए एक व्यापक रूपरेखा सुझाने हेतु प्रख्यात नगर-योजनाकार एच.वी. लैंकेस्टर की सेवाएं ली थीं। लैंकेस्टर ने अनेक महत्वपूर्ण सुझाव दिये परंतु नगर-योजनाकारों ने उनका इस्तेमाल नहीं किया।

मैंने कहा, "पंडित जी, इलाहाबाद में कोई भव्य इमारत नहीं है। यही कारण है कि इलाहाबाद साधारण शहर लगता है। क्या केन्द्र सरकार के कुछ कार्यालय यहां स्थापित नहीं किए जा सकते?"

उन्होंने कहा, "कुछ लोगों का विचार है कि यदि किसी शहर को खूबसूरत बनाना है तो वहां बड़ी-बड़ी इमारतें खड़ी की जानी चाहिए। शहर को खूबसूरत बनाना महत्वपूर्ण है परंतु खूबसूरत बनाने का अर्थ बड़ी इमारतें खड़ी करना नहीं है।"

थोड़ी देर के बाद उन्होंने आगे कहा, "क्या आप इलाहाबाद में गंगा, यमुना जैसी दो बड़ी नदियों के खूबसूरत संगम से संतुष्ट नहीं हैं?"

टंडन के घर पहुंचने के साथ ही यह वार्तालाप खत्म हो गया। जवाहर लाल नेहरू ने जब टंडन का खराब स्वास्थ्य देखा तो वह स्तब्ध रह गये परंतु टंडन का चेहरा अपने पुराने कामरेड को अपने नजदीक पाकर खिल उठा।

19

राज बहादुर

पंडित जवाहर लाल नेहरू आधुनिक भारत—उनका सबसे बड़ा स्मारक

आज जवाहर लाल नेहरू की गिनती इस शताब्दी की, विश्व की सर्वाधिक महान एवं असाधारण विभूतियों में की जाती है। इस शताब्दी में मानव-जाति के भविष्य को सांचे में ढालने एवं संवारने वाले विश्व के नेताओं की पंक्ति में सर्वाधिक दीप्तिमान व्यक्तित्व के रूप में महात्मा गांधी के बाद दुनिया के राजनीतिज्ञों में संभवतः वे ही सबसे ऊपर नजर आते हैं। अपने इसी व्यक्तित्व और चरित्र के कारण तथा इस अवधि के दौरान विश्व की घटनाओं में जो प्रमुख भूमिका उन्होंने निभाई उससे इस अवधि के विश्व-इतिहास में उनका एक अद्वितीय एवं सुरक्षित स्थान बन गया है।

इस प्रकार यह सहज अनुमान लगाया जा सकता है कि आने वाले युगों में, आज से हजार दो हजार वर्ष व्यतीत हो जाने के बाद भी महात्मा गांधी और जवाहर लाल नेहरू दो नाम ऐसे होंगे, जो इस युग के सबसे महान व्यक्तियों के रूप में अपार श्रद्धा और गर्व के साथ भावी पीढ़ियों द्वारा उसी प्रकार याद किए जाएंगे जिस प्रकार आज हम गौतम बुद्ध, सम्राट विक्रमादित्य या सम्राट अशोक के नामों को श्रद्धा एवं सम्मान के साथ स्मरण करते हैं।

हमारे भारत गणराज्य के दूसरे राष्ट्रपति डा. सर्वपल्ली राधाकृष्णन ने जो एक महान दार्शनिक-राजनीतिज्ञ थे, एक बार जवाहर लाल नेहरू के बारे में कहा था, "उनके लिए किसी श्रद्धांजलि की आवश्यकता नहीं है। उनकी सबसे बड़ी यादगार आधुनिक भारत ही है, जिसका निर्माण उन्होंने स्वयं किया है।" यह सच है कि जवाहर लाल जी ने "आधुनिक भारत" रूपी इस वैभवशाली और अनमोल नगीने को अनेक आकर्षक पहलुओं तथा व्यवहारवादी शाश्वत मूल्यों और मान्यताओं से बड़ी कुशलता से तराश कर सजाया-संवारा है।

भारत को आत्म-निर्भर बनाने के लिए, तथा लाखों संघर्षरत मूक व्यक्तियों, पददलितों, बेचारों और निम्न वर्ग के लोगों को उनकी अपार गरीबी की अथाह गहराइयों से निकालने तथा उन्हें शोषण से बचाने के लिए तथा उनकी उन्नति के लिए उन्होंने राष्ट्रीय

स्तर पर एक योजना के युग का तथा नियोजित अर्थव्यवस्था का श्रीगणेश किया, ताकि ऐसे लोगों को सामाजिक स्तर पर कम से कम न्यूनतम मूलभूत मानव गरिमा एवं जीविका प्राप्त हो सके। उनकी यह धारणा थी कि "योजना के बिना हमारा आर्थिक विकास अराजकता का शिकार हो जाएगा।"

नेहरू ने राष्ट्र के पुनर्निर्माण और प्रगति के मामले में विज्ञान तथा प्रौद्योगिकी की सबसे अहम और अनिवार्य भूमिका पर देश की जनता का ध्यान और कार्यशक्ति केन्द्रित की। उन्होंने कहा, "अब यह स्पष्ट है कि विज्ञान और प्रौद्योगिकी के बिना हम प्रगति नहीं कर सकते," और यह कि "आधुनिक जीवन विज्ञान और प्रौद्योगिकी की देन है।"

पंडित नेहरू ने सरकारी क्षेत्र को पर्याप्त प्रोत्साहन दिया, ताकि यह हमारी अर्थव्यवस्था के स्तर को ऊंचा उठा सके। उन्होंने एक ओर तो निर्मूल परम्पराओं और अंधविश्वासों का तथा दूसरी ओर संकीर्ण गुटबाजी, साम्प्रदायिकता और जातिवाद का निरंतर विरोध किया तथा आस्था और नीति के मूल सिद्धांत के रूप में देश में धर्मनिरपेक्षता को सम्मानित किया।

नेहरू के लिए प्रजातंत्र और समाजवाद जीवन मरण का प्रश्न था और उन्होंने इन्हें जीवन के प्रति अपने विश्वास और लक्ष्य के दो मौलिक सिद्धांतों के रूप में अंगीकार किया। हालांकि वह एक जाने-माने समाजवादी थे, तथापि उन पर लोकतांत्रिक स्वतंत्रता तथा सभी के लिए समान आर्थिक अवसरों संबंधी आदर्शों का स्पष्ट प्रभाव पड़ा। इस प्रकार, वह ऐसे किसी भी "वाद" विशेष से सम्बद्ध नहीं थे। उनका "वैज्ञानिक समाजवाद के कुछ मौलिक सिद्धांतों में विश्वास था, फिर भी वह मार्क्स तथा लेनिन की प्रत्येक सीख के प्रति आस्था रखने को तैयार नहीं थे।"

अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर, वह साम्राज्यवाद और उपनिवेशवाद के विरुद्ध जुझारू योद्धा के रूप में और जीवनपर्यन्त संघर्ष करते रहे। वह उन सभी राष्ट्रों के एक प्रमुख हिमायती थे, जो नस्लवादी और औपनिवेशिक प्रभुत्व से अपनी मुक्ति के लिए संघर्ष कर रहे थे।

नए स्वतंत्र हुए देशों के समक्ष आने वाली भू-राजनीतिक स्थितियों तथा सुपर या महा-शक्तियों के शक्ति की राजनीति और शीतयुद्ध संबंधी खेल के एक सतत और वस्तुपरक विश्लेषण तथा मूल्यांकन के पश्चात वह इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि विश्व के स्वतंत्र और हाल में आजाद हुए देश अपनी स्वतंत्रता और आजादी की पवित्रता और यथार्थ गुण की रक्षा और उसका अनुरक्षण करने में तभी समर्थ हो सकते हैं, जब वे विश्व को बड़ी शक्तियों के किसी भी शक्ति गुट में शामिल होने अथवा उससे गठजोड़ करने से अपने को अलग रखें। उन्होंने शांतिपूर्ण तरीके से परस्पर मिल-जुलकर रहने और सभी अंतर्राष्ट्रीय विवादों का समाधान करने की धारणा का विकास किया तथा उसे बढ़ावा दिया। उन्होंने बड़े देशों द्वारा दूसरे देशों के मामले में हस्तक्षेप करने, उन पर दबाव डालने

और उन्हें अपने कहे पर चलाने की चाहना रखने की प्रवृत्ति के विरुद्ध अपनी आवाज बुलन्द की .....।" उन्होंने इस बात पर बल दिया कि राजनीतिक, आर्थिक अथवा वैचारिक—किसी भी प्रकार का हस्तक्षेप न किया जाना, वर्तमान विश्व-स्थिति के लिए एक आवश्यक बात है। इस प्रकार वह "पंचशील" तथा "गुटनिरपेक्षता" संबंधी दर्शन के प्रवर्तक और लेखक बने। एक बार उन्होंने स्वयं अपने से ही प्रश्न किया कि "किसी गुट में शामिल होने के क्या मायने हैं? कुल मिलाकर इसका एक ही मायना हो सकता है कि किसी मसले के बारे में अपना विचार त्याग दीजिए, उक्त मसले पर दूसरी पार्टी के विचारों को स्वीकार कीजिए, ताकि आप उसे खुश कर सकें और उसकी तरफदारी हासिल कर सकें ..... और इस प्रकार हम अपने को उक्त गुट में शामिल हुआ देख सकते हैं।" उनका यह निष्कर्ष था कि यह राष्ट्रों के उभरे समूहों अथवा गुटों के बीच अपना संतुलन स्थापित करने का सवाल नहीं है। उक्त हदबंदी अथवा संतुलन के बारे में हमने कोई विचार नहीं किया है। हम एक ऐसी सकारात्मक नीति अपना रहे हैं, जिसे हम उपयुक्त समझते हैं। इसे न केवल उन्होंने भारत की विदेश नीति ही बनाया बल्कि "पंचशील" शांतिपूर्ण सह-अस्तित्व तथा "गुटनिरपेक्षता" का सम्पूर्ण दर्शन तैयार किया, जो आज की विश्व स्थिति पर छाया हुआ है।

उन्होंने गुटनिरपेक्षता के दार्शनिक सिद्धांत को अपनाने और उसे प्रोत्साहन देने के मामले में मिस्र के गमाल अब्दुल नासेर और यूगोस्लाविया के मार्शल टीटो को अपना सबसे घनिष्ठ मित्र और सह-सर्जक पाया। उनके जीवन की यह एक और ऐतिहासिक उपलब्धि थी तथा उस "आधुनिक भारत" के छत्र में यह एक मणि साबित हुई जिसका उन्होंने अपनी सबसे बड़ी यादगार के रूप में निर्माण किया है।

जहां तक उन्हें श्रद्धांजलि देने का संबंध है, उनके बारे में राष्ट्रपिता द्वारा कही गई बात सदैव बेमिसाल रहेगी। गांधीजी ने उनके बारे में कहा था, "वह स्फटिक की भांति बेदाग हैं, वह संदेह की सीमा से परे सत्यनिष्ठ तथा भय और धिक्कार की सीमा से परे एक शूरवीर हैं। राष्ट्र उनके हाथों में सुरक्षित है।" और उनके हाथों में राष्ट्र सुरक्षित रहा।

20

वी. के. आर.वी. राव

जवाहरलाल नेहरू तथा विकासात्मक आयोजना

नेहरू की दूरदृष्टि और क्रियाकलाप में व्यावहारिक रूप से भारतीय जीवन के सभी पहलुओं का समावेश था और वे राष्ट्र के प्रति अपने अधूरे स्वप्नों को अपने उत्तराधिकारियों द्वारा पूरा किये जाने के लिए छोड़ गये हैं। मैं उनके जीवन तथा योगदान और विरासत संबंधी एक महत्वपूर्ण पहलू पर एक संक्षिप्त टिप्पणी लिखना चाहता हूं जो उनके उस कार्य का उल्लेख करती है जो उन्होंने योजना बनाने और आर्थिक समृद्धि लाने तथा इस क्षेत्र में उपलब्धियां प्राप्त करने हेतु स्वतंत्र और लोकतांत्रिक भारत के अत्यंत महत्वपूर्ण उद्देश्य के रूप में किया।

नेहरू पहली बार भारत की आर्थिक परिस्थितियों से तब अवगत हुए जब वह इंग्लैंड से लौटे थे। जब उन्होंने उस प्रान्त का दौरा किया जिसमें उनका जन्म हुआ था तो वह वहां अपने अधिसंख्य देशवासियों की गरीबी और दूसरों पर निर्भरता देखकर विस्मित रह गये। उन्होंने अपनी व्यक्तिगत जानकारी के आधार पर इस बात का भी पता लगाया कि अधिकांश भारतीय जनसंख्या में गरीबी और बेरोजगारी समान रूप से व्याप्त है और राजनीतिक स्वतंत्रता का तब तक कोई अर्थ नहीं है जब तक कि इसका प्रयोग उत्पादन, गरीबी-उन्मूलन और बेरोजगारी संबंधी समस्याओं के समाधान के लिए न किया जाये। वह पहले महान कांग्रेसी थे जिन्होंने सामाजिक और आर्थिक उद्देश्यों को राजनीतिक स्वतंत्रता के साथ जोड़ने की आवश्यकता पर अत्याधिक बल दिया। उनके अनुरोध पर वर्ष 1929 में अखिल भारतीय कांग्रेस समिति ने एक संकल्प पारित किया था जिसमें आर्थिक और सामाजिक ढांचे में क्रांतिकारी परिवर्तन करने और असमानता को दूर करने की आवश्यकता पर बल दिया गया था ताकि भारत के लोगों की गरीबी और दुखों को दूर किया जा सके। 1931 में मूल अधिकारों के बारे में कांग्रेस के कराची अधिवेशन में इस संकल्प पर और आगे विचार किया गया था जिसमें अन्य बातों के साथ-साथ यह स्वीकार किया गया था कि मुख्य उद्योग तथा सेवाएं, खनिज संसाधन, रेल, जलमार्ग, पोत परिवहन तथा यातायात के अन्य साधन सरकार के स्वामित्व अथवा नियंत्रण में होंगे।"

आरम्भ से ही उनकी ऐसी धारणा थी कि उत्पादन में भारी वृद्धि किये बिना भारत में गरीबी की समस्याओं का समाधान नहीं हो सकता और वह जानते थे कि यह केवल तभी हो सकता है जब उद्योगों में विज्ञान का प्रयोग हो और बड़े पैमाने पर औद्योगीकरण किया जाये।

नेहरू ने समाजवादी सिद्धान्तों के प्रति अपनी वचनवद्धता के द्वारा गरीबी के उन्मूलन और देशवासियों को पूर्ण रोजगार उपलब्ध कराने पर भी बल दिया। 1936 में लखनऊ में हुए कांग्रेस के अधिवेशन में अपने अध्यक्षीय भाषण में उन्होंने कहा था: "मुझे यकीन हो चुका है कि विश्व और भारत की समस्याओं का समाधान केवल समाजवाद में ही निहित है और जब मैं इस शब्द का प्रयोग करता हूं तो अस्पष्ट अर्थों में अथवा मानववादी दृष्टिकोण से करता हूं। मुझे समाजवाद के अलावा ऐसा अन्य कोई मार्ग नजर नहीं आता जिससे भारतीय लोगों को गरीबी, भारी बेरोजगारी, गिरावट और पराधीनता से छुटकारा मिल सके।" उन्होंने सोवियत संघ में समाजवादी प्रयोग की प्रशंसा की, लेकिन वह हिंसा के प्रयोग और व्यक्तिगत स्वतंत्रता पर रोक के विरोधी थे जबकि ये दोनों ही बातें सोवियत संघ के समाजवादी परिवेश का अंग थी।

आर्थिक आयोजना में नेहरू की रुचि को उनके दल ने पूर्ण मान्यता दे रखी थी और तत्कालीन कांग्रेस अध्यक्ष सुभाष चन्द्र बोस की पहल पर कांग्रेस ने राष्ट्रीय योजना समिति का गठन किया था और नेहरू इस समिति के अध्यक्ष नियुक्त किये गये थे। तीसरे दशक के आखिर में और चौथे दशक के शुरू में अत्यंत व्यस्त राजनीतिक जीवन के बावजूद, जिसमें नेहरू ने प्रमुख भूमिका निभाई थी, उन्होंने राष्ट्रीय योजना समिति के अध्यक्ष के कृत्यों को भरपूर समय और ध्यान देते हुए पूरी गंभीरता से निभाया। जुलाई 1940 में मुझे लिखे गये उनके पत्र* द्वारा यह पूरी तरह स्पष्ट हो जाता है कि उन्होंने राष्ट्रीय योजना समिति के अध्यक्ष के रूप में कितने व्यवस्थित ढंग से और कड़े परिश्रम से काम किया। इससे न केवल उनकी सम्पूर्णता में, अपितु योजना के विषय में सभी सम्भव विविध दृष्टिकोण प्राप्त करने में उनकी रुचि का भी पता चलता है। यह उनके व्यावहारिक दृष्टिकोण को भी दर्शाता है। उन्होंने अनेक उप-समितियां नियुक्त की थी और उप-समितियों के प्रतिवेदनों पर विचार करने के अलावा राष्ट्रीय समिति ने स्वयं अनेक अवसरों पर देश में आर्थिक विकास के अनेक पहलुओं पर आयोजना के संदर्भ में उपरोक्त पत्र की प्रति में आर्थिक विकास के लिए राष्ट्रीय योजना के पहले प्रारूप को तैयार करने में नेहरू की संपूर्ण विचारशीलता अत्यंत स्पष्ट रूप से प्रकट होती है।

---

*इस पत्र की एक प्रति "सिलेक्टिड वर्क्स ऑफ नेहरू" नामक पुस्तक (एस. गोपाल द्वारा सम्पादित खण्ड-II (पृष्ठ 306) में प्रकाशित हुई है और इस पत्र के परिशिष्ट के रूप में उद्धृत है।

जब नेहरू जी अंतरिम सरकार के उपाध्यक्ष बने तो उन्होंने, ऐसे योजना-तंत्र के संबंध में परामर्श देने के लिए जिसकी स्थापना आर्थिक विकास के लिए की जानी चाहिए थी, एक सलाहकार बोर्ड का गठन करके आयोजना कार्य में अपनी और अधिक रुचि दिखाई। कांग्रेस की आर्थिक कार्यक्रमों संबंधी समिति, जिसने नेहरू की अध्यक्षता में 1947 से 1948 तक कार्य किया, ने एक स्थायी योजना आयोग का गठन करने की पुरजोर सिफारिश की। जनवरी 1950 में कांग्रेस कार्यकारिणी समिति ने एक संकल्प पारित किया जिसमें उसने योजना आयोग के गठन की सिफारिश की और मार्च 1950 में सरकार ने योजना आयोग की नियुक्ति की घोषणा कर दी तथा नेहरू को इस आयोग का प्रथम अध्यक्ष नियुक्त किया। इस प्रकार मात्र एक विचार से शुरू होकर आजादी के पश्चात् भारत सरकार द्वारा इस के सूत्रीकरण और क्रियान्वियन के दौरान भारतीय आर्थिक विकास के लिए इस आयोजना तंत्र के शुरू होने के पीछे नेहरू का ही हाथ रहा था।

देश के स्वतंत्रता सेनानियों ने जिन सामाजिक और आर्थिक उद्देश्यों को भारतीय संविधान का अंग बनाया, भारतीय संविधान सभा द्वारा पारित कर दिये गये थे और ये मूल अधिकारों और सरकार के नीति निदेशक सिद्धान्तों संबंधी अध्यायों में अन्तर्विष्ट कर दिये गये थे। नेहरू ने संविधान में शामिल आर्थिक उद्देश्यों को योजना के माध्यम से, संविधान के उद्देश्यों के क्रियान्वयन के द्वारा जोड़ा, और इस प्रकार उन्होंने न केवल आर्थिक उद्देश्यों को अपितु सामाजिक और राजनीतिक उद्देश्यों को भी आयोजना का विषय बनाया। ये उद्देश्य योजना आयोग के निदेश पदों में भी अभिव्यक्त किये गये, जो इस प्रकार है :-

"भारत के संविधान ने भारत के नागरिकों को कतिपय मूल अधिकारों की गारंटी दी है और कुछ राज्य की नीति के निदेशक तत्वों का भी प्रावधान किया है जिनमें विशेष रूप से यह है कि राज्य ऐसी सामाजिक व्यवस्था, जिसमें सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक न्याय राष्ट्रीय जीवन की सभी संस्थाओं को अनुप्राणित करे, की भरसक प्रभावी रूप में स्थापना और संरक्षण करके लोक कल्याण की अभिवृद्धि का प्रयास करेगा और राज्य अन्य बातों के अतिरिक्त अपनी नीति का इस प्रकार संचालन करेगा कि:-

(क) पुरुष और स्त्री सभी नागरिकों को समान रूप से जीविका के पर्याप्त साधन प्राप्त करने का अधिकार हो,

(ख) समुदाय की भौतिक सम्पदा का स्वामित्व और नियंत्रण इस प्रकार बंटा हो जिससे सामूहिक हित का सर्वोत्तम रूप से साधन हो;

(ग) आर्थिक व्यवस्था इस प्रकार चले जिससे धन और उत्पादन साधनों का सर्वसाधारण के लिए अहितकारी संकेन्द्रण न हो।

इन अधिकारों को ध्यान में रखते हुए तथा इन नीति तत्वों और सरकार द्वारा देश के

संसाधनों का भरपूर उपयोग करके, उत्पादन में वृद्धि करके, और समाज की सेवा में सभी लोगों को रोजगार के अवसर उपलब्ध कराकर लोगों के जीवन-स्तर में तेजी से सुधार करने के घोषित उद्देश्य की परिपूर्ति के लिए।"

योजना आयोग ने अप्रैल 1951 से मार्च 1956 तक की 5 वर्ष की अवधि के लिए अपनी योजना की रूपरेखा का मसौदा प्रस्तुत किया। इस योजना में वे अनेक विकास परियोजनाएं शामिल थीं जिनको पहले ही शुरू किया जा चुका था तथा जो अभी शुरू नहीं हुई थीं। नेहरू ने निम्नलिखित शब्दों में इस रूपरेखा के मसौदे को चर्चा तथा अभिमत के लिए देश के सम्मुख रखा था:

> "लोकतांत्रिक देश में योजना बनाना एक सामाजिक प्रक्रिया है सिमें प्रत्येक नागरिक को किसी न किसी रूप में भाग लेने का अवसर मिलना चाहिए। भावी विकास की प्रवृत्ति की परिकल्पना करना इतना बड़ा तथा महत्वपूर्ण कार्य है जिसमें लोकमत और समाज की आवश्यकताओं का समावेश किया ही जाना चाहिए।

इसलिये, अपने प्रस्तावों को पूरे ब्यौरों के साथ प्रस्तुत करने से पहले, हमने योजना की रूपरेखा प्रस्तुत करना आवश्यक समझा है। प्रारूप को यथासम्भव व्यापक जन चर्चा के लिये तैयार किया गया है। योजना को अंतिम रूप देने से पहले हम केन्द्रीय मंत्रियों, राज्य सरकारों तथा अपने सलाहकार बोर्डों और पैनलों से और सलाह-मशविरा करने तथा संसद सदस्यों के विचार भी प्राप्त करने की आशा रखते हैं।"

प्रारूप की रूपरेखा पर केन्द्र तथा राज्य सरकारों द्वारा और संसद तथा राज्यों के अधिकतर विधानमंडलों में विस्तृत चर्चा हुई थी। उद्योग, वाणिज्य, श्रमिकों, किसानों तथा अन्य हितों का प्रतिनिधित्व करने वाले अनेक संगठनों ने अपने विचार प्रकट किये हैं। योजना आयोग के अनुरोध पर अनेक शिक्षा संस्थाओं ने योजना का अध्ययन करने के लिये अध्यापकों और छात्रों की विचारगोष्ठियों का आयोजन किया तथा अपनी राय आयोग के पास भेजी। अनेक जिला बोर्डों तथा नगर पालिका समितियों ने भी योजना पर अपनी राय दी। प्रारूप की रूप रेखा पर प्रेस तथा पालिकाओं में भी व्यापक चर्चा हुई। स्वतंत्र लेखकों द्वारा पुस्तकों तथा पुस्तिकाओं के रूप में पर्याप्त मात्रा में तैयार किया गया साहित्य भी उपलब्ध है। इस पर हुई चर्चा में प्रारूप की रूपरेखा के प्रत्येक पहलू पर विचार किया गया है और इसकी यथासंभव जांच की गई है। परिणामस्वरूप, प्रारूप परिव्यय में न केवल वृद्धि करते हुए बल्कि कृषि, सिंचाई तथा विद्युत के कुल परिव्यय के प्रतिशत को बढ़ाकर तथा उद्योग के कुल परिव्यय को कम करके, प्रारूप योजना में व्यापक संशोधन किया गया था। इस प्रकार पहले से ही कार्यान्वित की जा रही परियोजनाओं समेत प्रारूप की रूपरेखा कार्य क्षेत्र में संतुलित थी। पहली योजना पर्याप्त रूप से सफल हुई तथा आर्थिक विकास में आयोजना की भूमिका को बहुत महत्व दिया गया।

दूसरी योजना का विषय योजना की गति में तेजी लाने की विचारधारा सहित योजना पर सही अर्थों में विचार करना था जिससे उद्योग को अधिक महत्व मिले और यही विषय योजना आयोग के अध्यक्ष पंडित जवाहर लाल नेहरू का वास्तविक योगदान था, जिन्होंने औद्योगिकीकरण में आर्थिक विकास में तेजी लाने का सर्वाधिक गतिशील रास्ता देखा तथा जिससे देश को न केवल औद्योगिकीकरण की प्रक्रिया में बल्कि मूलभूत सुविधाओं वाली परियोजनाओं में भी आत्मनिर्भरता प्राप्त हो तथा आगे बढ़ने की प्रेरणा मिल। इस प्रकार औद्योगीकीकरण पर नेहरू का बल अप्रैल, 1956 में अखिल भारतीय निर्माता संगठन के सम्मेलन में उनके भाषण में निम्नलिखित शब्दों में देखने को मिलता है :

> "यदि हम वास्तव में औद्योगिकीकरण करना चाहते हैं, तो हमें भारी, मूलभूत महत्वपूर्ण उद्योगों से शुरुआत करनी चाहिए। इसके अलावा अन्य कोई रास्ता नहीं है। हमें लोहा और इस्पात का बड़े पैमाने पर उत्पादन करके शुरुआत करनी चाहिए। हमें उन मशीनों का उत्पादन करके शुरुआत करनी चाहिए जो मशीनें बनाती हैं। जब तक आपके पास यह मूल ढांचा नहीं होगा तब तक आप दूसरों पर निर्भर करेंगे और वस्तुतः आप पूर्ण रूप से तेज विकास नहीं कर सकते हैं। ज्योंही आपके पास मूल ढांचा होगा, आप अपनी इच्छानुसार तेजी से विकास कर पाएंगे। यह आप की अपनी ऊर्जा पर निर्भर करता है, आप किसी बाहरी कारण के द्वारा बंधे नहीं हैं, आप स्वविकास की प्रक्रिया प्रारम्भ करें।"

भारत इसके लिए गैर-सरकारी क्षेत्र के प्रतिनिधियों द्वारा नेहरू जी की कड़ी आलोचना की गई, भारी उद्योगों पर अत्यधिक जोर को साम्यवादी तथा लोकतांत्रिक आयोजना के प्रतिकूल कहा गया था। परन्तु दल में अधिकतर लोगों ने तथा संसद और देश में जनमत द्वारा भी नेहरू जी का समर्थन किया गया। इस प्रकार दूसरी योजना में औद्योगिकीकरण, उद्योग में सरकारी क्षेत्र और सरकारी क्षेत्र में भारी उद्योग पर काफी जोर दिया गया। गैर-सरकारी क्षेत्र को छोड़ा नहीं गया, वस्तुतः इसके वर्तमान इकाइयों के विस्तार के साथ उपभोक्ता उद्योगों तथा मूल सामान जैसे, सीमेंट, रसायन (केमिकल्स) तथा इस्पात के लिए मशीनों के निर्माण का कार्य सौंपा गया। दूसरी पंचवर्षीय योजना के साथ नेहरूजी ने दीर्घकालिक आयोजना अथवा पंचवर्षीय योजनाओं की सफलता के लिये व्यापक आयोजना की विचारधारा भी प्रस्तुत की। इस प्रकार, पंचवर्षीय योजना न केवल हमारे संसाधनों के अनुसार परिवर्तनशील बल्कि आर्थिक विकास की दीर्घकालिक अंतिम तस्वीर का एक व्यापक ढांचा होना चाहिए। योजना के पन्द्रह वर्षीय उद्देश्य जो कि गरीबी मिटाना तथा निम्न स्तर का जीवन-यापन कर रहे विशाल जनमानस के लिये न्यूनतम जीवन-स्तर सुनिश्चित करना है, के विषय में नेहरूजी के मन में कोई शंका नहीं थी। यह परिवर्तन लाने के लिये पूर्ण रोजगार प्रदान करना मुख्य साधन था। यद्यपि नेहरू जी यह जानते थे कि औद्योगिकीकरण और प्रौद्योगिकी का अर्थ विदेशी सहायता है फिर भी वह इसके लिए तैयार थे लेकिन अनिश्चित काल तक के लिए नहीं। इसके विपरीत, वह चाहते

थे कि आर्थिक विकास का ढांचा इस प्रकार हो कि आर्थिक विकास के विदेशी साधनों पर निर्भरता यथाशीघ्र समाप्त हो। वह चाहते थे कि अर्थव्यवस्था आत्मनिर्भर बने और अपने भीतर स्वतः तेजी से आगे बढ़ने के प्रयास करे। इसीलिए वह भारी उद्योगों, लोहा और इस्पात, कोयला और तेल, रसायन उद्योगों तथा तकनीकी शिक्षा पर जोर देते थे। नेहरू जी भारतीय आयोजना के संबंध में अपने जन शिक्षा कार्यक्रम में औद्योगिकीकरण, भारी उद्योगों और आत्म निर्भरता तथा स्वविकास के विषय पर बार-बार बराबर जोर देते रहते थे। उनका बल मूल उद्योगों में उनकी इस इच्छा पर आधारित था कि देश अपने आर्थिक विकास में स्वतंत्र हो तथा वह अपने और आगे के विकास के लिए उस उद्देश्य के लिए विदेशी सहायता के बजाए भारतीय संसाधनों पर निर्भर रहे। इस प्रकार जब उन्होंने तीसरी पंचवर्षीय योजना के प्रारूप की रूपरेखा पर चर्चा आरम्भ की, तब उन्होंने लोक सभा में कहा था, "जब तक हम नींव से प्रारम्भ नहीं करते हैं, तब तक हम तीसरी या चौथी मंजिल नहीं बना सकते। हम अर्थव्यवस्था के कम महत्वपूर्ण क्षेत्रों में आगे बढ़ सकते हैं, परन्तु यदि हम मूल ढांचा नहीं खड़ा करते हैं, तो इससे हमारे करोड़ों लोगों पर कोई फर्क नहीं पड़ेगा। भारत में योजना की नीति औद्योगिकीकरण के लिए है और इसका अर्थ मूल उद्योगों को प्रथम स्थान देना है।"

देश ने अब तक उद्योग में आत्मनिर्भरता और स्वविकास तथा ऊर्जा, ईंधन, यातायात और तकनीकी कुशलता जैसी उद्योग से संबंधित गतिविधियों में जो प्रगति की है, उसका श्रेय जवाहरलाल नेहरू को जाता है। उपभोक्ता वस्तु उद्योगों तथा कृषि पर कम ध्यान देने के लिए नेहरूजी की कड़ी आलोचना की जाती है। यद्यपि नेहरूजी औद्योगिक उत्पादन पर जोर देते थे, फिर भी उन्होंने कृषि उत्पादन बढ़ाने के लिए सिंचाई, उर्वरक और विद्युत के महत्व पर भी जोर दिया और योजना के प्रथम 10 वर्षों में बाद की अवधियों की तुलना में जब हरित क्रांति के परिणामस्वरूप कृषि विकास की दर अधिक थी, कृषि में उत्पादन की दर अधिक थी। नेहरू ने सार्वजनिक रूप से कहा था कि हमारे उद्योगों का ऐसी अन्य चीजों के उत्पादन से, जिनका कि उपभोग हो सके, संतुलन होना आवश्यक है और यह भी कहा कि हमारे यहां ग्राम उद्योग तथा न केवल उपभोक्ता वस्तुओं का उत्पादन करने वाले बल्कि रोजगार के अवसर बढ़ाने वाले बड़े पैमाने पर गृह उद्योग होने चाहिएं जोकि भारी उद्योगों द्वारा नहीं किया जाता है। वास्तव में नेहरू जी ने खाद्य उत्पादन में वृद्धि करने का प्रचार इसके बावजूद किया कि वह औद्योगिकीकरण और आर्थिक विकास के महत्व पर जोर देते हैं।

यद्यपि वह भारत की आर्थिक समस्याओं को हल करने के लिए उत्पादन पर निरन्तर जोर देते रहते थे, फिर भी वह वितरण के महत्व तथा व्यापक सामाजिक उद्देश्यों, जो कि योजना के उनके उत्साह के पीछे थे, के प्रति भी बहुत जागरूक थे। वह अवसरों की समानता चाहते थे तथा वह आय और धन की असमानताओं में भारी कमी करना चाहते

थे। सरकारी क्षेत्र का विस्तार, बड़ी आय पर वित्तीय तथा अन्य नियंत्रण और सामाजिक सेवाओं का व्यापक विस्तार उनकी नीति के वे हिस्से थे जिनका वह योजना के पीछे सामाजिक उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए समर्थन करते थे। साथ ही इन उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए वह बल-प्रयोग अथवा अव्यावहारिक दृष्टिकोण का प्रयोग नहीं करना चाहते थे। उनका विश्वास था कि सामाजिक और आर्थिक परिवर्तन लाने के लिए संघर्ष करने और किसी को समाप्त करने के दृष्टिकोण के बजाय लोकतंत्र के दबाव का प्रयोग तथा एक मित्रवत और सहयोगी दृष्टिकोण से लोगों को जीतने में ही भारत की क्षमता है।

नेहरू जी ने भारतीय आर्थिक आयोजन के सैद्धान्तिक लक्ष्य के रूप में एक समाजवादी समाज की आवश्यकता बताकर अर्थव्यवस्था के योजनाबद्ध विकास के लिये सैद्धान्तिक आधार प्रदान किया जिसे उन्होंने देश के समक्ष रखा। यहां तक कि प्रधान मंत्री बनने से पहले ही उन्होंने कांग्रेस पार्टी के 1936 में हुए लखनऊ सत्र में समाजवाद के वैज्ञानिक रूप में अपना विश्वास व्यक्त कर दिया था। इसके उपरान्त भी वे समाजवाद की बात करत रहे, परन्तु उन्होंने कहा कि यह उनका व्यक्तिगत विचार है। यद्यपि उन्होंने इसके लिये पार्टी पर दबाव नहीं डाला, क्योंकि वह यह नहीं चाहते थे कि जिन लोगों से पार्टी का गठन हुआ है उनके मिले जुले ग्रुप में कोई विभाजन हो, तथापि उन्होंने उन लोगों को नैतिक समर्थन जरूर प्रदान किया जो कांग्रेस पार्टी में भारत की राजनीतिक स्वतंत्रता के लक्ष्य के रूप में समाजवाद की हिमायत करने में प्रमुख थे। प्रधान मंत्री बनने के बाद भी वह पूर्णरूपेण समाजवादी समाज की स्थापना करने के लिये जिसमें हमारे उद्योग और कृषि का राष्ट्रीयकरण भी था, बल प्रयोग करने के लिये तैयार नहीं थे। उन्होंने योजना के रोजगार और उत्पादन की परियोजनाओं के अन्तर्गत सरकारी क्षेत्र में उद्योगों की स्थापना करने, गरीबी दूर करने के लिये रोज़गार बढ़ाने और उत्पादन में वृद्धि करने और समाज के सभी वर्गों के लिये समानता और समान अवसरों के महत्व पर जोर देने के सीमित रूप में समाजवादी आयोजन की बात कही। आयोजन के पीछे सैद्धांतिक बल को 1954 में संसद द्वारा पास किये गये इस संकल्प में भी ठोस रूप दिया गया जिसमें समाज के समाजवादी रूप को सामाजिक एवं आर्थिक विकास का एक लक्ष्य बनाया गया। समाज के समाजवादी रूप के इस सिद्धांत में ये दोनों ही बातें अर्थात् समाजवाद एवं लोकतंत्र के मूल्यों तथा इस लक्ष्य की प्राप्ति के लिये परिकल्पित योजनाबद्ध विकास शामिल हैं। समाजवादी समाज और भारतीय आयोजन के बीच सम्पर्क का सर्वप्रथम एवं सुस्पष्ट निरूपण तीसरी योजना की रिपोर्ट के प्रथम अध्याय में दिया गया था, जिसे नेहरू जी ने स्वयं तैयार किया था और जिससे वह संदेह दूर हो गया जो कुछ लोगों के मन में योजना के बारे में पैदा हो गया था कि इसमें समाजवादी विकास का लक्ष्य नहीं रखा गया है। दूसरी योजना में समाज के समाजवादी रूप के बारे में बताते हुए उन्होंने स्थिति को इस प्रकार स्पष्ट किया थाः

"अनिवार्यतः इसका अर्थ है कि प्रगति की दिशा का निर्धारण करने के लिये मौलिक मानदण्ड निजी लाभ न होकर सामाजिक लाभ होना चाहिये और विकास-प्रणाली तथा सामाजिक एवं आर्थिक सम्बन्ध का ढांचा इस प्रकार आयोजित किया जाना चाहिये जिससे कि न केवल राष्ट्रीय आय और रोज़गार में उल्लेखनीय वृद्धि हो बल्कि आय और सम्पत्ति के मामले में अधिक समानता भी लाई जा सके। उत्पादन, वितरण, उपभोग तथा निवेश और वास्तव में सभी महत्वपूर्ण सामाजिक एवं आर्थिक संबंधों के बारे में प्रमुख निर्णय ऐसे अभिकरणों को करने चाहिएं जो सामाजिक प्रयोजन से अवगत हैं। आर्थिक विकास के लाभ समाज के अपेक्षाकृत कमज़ोर वर्गों को अधिक से अधिक मिलने चाहिएं और आय, सम्पत्ति और आर्थिक शक्ति के संकेन्द्रण में धीरे-धीरे कमी होती जानी चाहिये। समस्या एक ऐसा वातावरण पैदा करने की है जिसमें आम व्यक्ति अपने जीवन-स्तर को ऊंचा उठाने तथा देश को समृद्ध बनाने में अपनी पूरी कोशिश कर सके, जिसे अभी तक संगठित प्रयासों के माध्यम से विकास की असीम सम्भावनाओं को अनुभव करने का और उनमें हिस्सा लेने का अवसर ही प्राप्त नहीं हुआ है। इस प्रकार से उसकी समाजिक और आर्थिक स्थिति बेहतर हो सकती है।

समाज के समाजवादी रूप को कोई निश्चित या ठोस रूप नहीं समझना चाहिये। यह किसी नियम या सिद्धान्त से नहीं जुड़ा हुआ है। प्रत्येक देश को अपनी प्रकृति और परम्परा के अनुसार ही विकास करना होता है। आर्थिक एवं सामाजिक नीति को समय-समय पर ऐतिहासिक परिस्थितियों के अनुरूप ढालना पड़ता है। न तो यह आवश्यक है और न ही वांछनीय कि अर्थव्यवस्था संगठन का अखण्ड स्वरूप बन जाये जिसमें उसके स्वरूप और उसकी क्रियाशीलता के बारे में कोई प्रयोग ही न हो सके। न ही सरकारी क्षेत्र के विस्तार का अर्थ निर्णय लेने और प्राधिकार का प्रयोग करने का संकेन्द्रण ही होना चाहिये। दरअसल, उद्देश्य यह होना चाहिये कि कार्य का समुचित विभाजन और इस कार्य के स्पष्ट निदेशों या नियमों के ढांचे के भीतर ही सरकारी उद्यमों को काम करने की पूरी स्वतंत्रता सुनिश्चित की जाये।..... समाज के समाजवादी रूप में सकारात्मक उद्देश्य प्राप्त करने, जीवन-स्तर में सुधार लाने, सभी के लिये प्रगति के अवसरों में वृद्धि करने, असुविधाग्रस्त वर्गों में उद्यमों को बढ़ावा देने और समाज के सभी वर्गों में सहयोग की भावना का सृजन करने पर जोर दिया जाता है। ये सकारात्मक उद्देश्य बुनियादी फैसलों के लिये मानदण्डों का काम करते हैं। संविधान में उल्लिखित राज्य नीति के निदेशक तत्वों में मोटे रूप से दिशानिर्देश का उल्लेख किया गया है। समाज का समाजवादी रूप उसकी अधिक ठोस अभिव्यक्ति है। आर्थिक नीति और संस्थागत परिवर्तनों का इस तरह से आयोजन किया जाना चाहिये जिससे कि लोकतांत्रिक और समतावादी आधार पर आर्थिक प्रगति सुनिश्चित हो सके। यह कहा गया है कि लोकतंत्र कोई विशेष संस्थागत व्यवस्था न होकर जीवन का एक रास्ता है। यही बात समाजवादी रूप के बारे में कही जा सकती है।"

सभी प्रकार के समाज के पीछे यह एक अनिवार्य सिद्धान्त है परन्तु इसकी बजाए नेहरू जी ने वैज्ञानिक समाजवाद द्वारा समर्थित पद्धति को स्वीकार किया, लोकप्रिय बनाया और इस देश में लागू करने का प्रयास किया। वह चाहते थे कि कांग्रेस पार्टी एक समाजवादी पार्टी बन जाये; और उनके निधन के कुछ ही माह पूर्व उनके प्रयासों को उस समय सफलता मिली जबकि भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के भुवनेश्वर अधिवेशन में कांग्रेस के संविधान में संशोधन किया गया और कांग्रेस पार्टी का यह लक्ष्य बनाया गया कि वह शांतिपूर्ण तरीकों से लोकतांत्रिक समाजवाद स्थापित करे। दिसम्बर, 1963 में भुवनेश्वर अधिवेशन में कांग्रेस संविधान का यथा संशोधित अनुच्छेद 1 इस प्रकार है :

> "भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस का लक्ष्य भारत के लोगों की सम्पन्नता एवं उनकी प्रगति और भारत में शांतिपूर्ण तथा संवैधानिक उपायों द्वारा संसदीय लोकतंत्र पर आधारित एक ऐसे समाजवादी राज्य की स्थापना करना है जिसमें समान अवसर और राजनीतिक, आर्थिक एवं सामाजिक अधिकार उपलब्ध हो और जिसका उद्देश्य विश्व शांति और भाईचारा हो।"

जहां नेहरू जी ने समाजवादी समाज के आदर्श देश के समक्ष रखे, वहां उन्हें मानवीय दृष्टिकोण और मानवता की ऐसी असीम शक्ति में भी विश्वास था जिसे अनुशासन और बल प्रयोग द्वारा, जिसका उल्लेख सामान्यतः समाजवाद के सिद्धान्त के एक अंग के रूप में किया जाता है, उपयोगी नहीं बनाया जा सकता। नेहरू जी इस बात में विश्वास करते थे कि आयोजन के कार्य में जनता की भागीदारी हो। आर्थिक विकास के एक प्रमुख उपकरण के रूप में आयोजन द्वारा देश के संसाधनों के उपयोग के लिए उनका विकास करने के वास्ते उन्हें अपेक्षित प्रेरणा दी जाये। इसलिए नेहरू जी ने आयोजन पर ध्यान केन्द्रित करके योजना आयोग के अध्यक्ष के रूप में पंचवर्षीय योजनाएं बनाकर, सरकार के प्रमुख के रूप में उन योजनाओं को कार्यान्वित करने का प्रयास करके और आम जनता में उन्हें लोकप्रिय बनाकर तथा उनकी व्याख्या करके तथा लोगों को प्रेरित करके विकास प्रक्रिया में उनका सहयोग लेकर अपनी पसन्द का कार्य निरंतर करते रहे। इसमें कोई आश्चर्य नहीं कि उन्हें भारत में आर्थिक आयोजन के व्यवस्थापक के रूप में जाना जाता है।

परन्तु इसमें कोई सन्देह नहीं कि देश में आयोजन के परिणामस्वरूप काफी आर्थिक विकास हुआ। परन्तु विकास की गति उन लक्ष्यों की पूर्ति करने में पर्याप्त नहीं रही, जो आयोजन के पीछे थे जो इसके अतिरिक्त राष्ट्रीय उत्पादन में से धनिक वर्ग को लगातार बढ़ा हुआ हिस्सा मिलता रहा और घाटे के बजट तथा वस्तुओं पर भारी करारोपण के परिणामस्वरूप मुद्रास्फीति का और बढ़ती हुई कीमतों का बोझ लगातार बढ़ता गया। आम आदमी को जिसकी बेहतरी के लिये नेहरू जी उत्सुक थे और जिसकी समस्याओं के समाधान के लिये उन्होंने भारतीय अर्थव्यवस्था में आयोजन की शुरुआत की थी, पंचवर्षीय योजनाओं के परिणामस्वरूप कोई खास फायदा नहीं हुआ। कई दशकों के

आयोजन से जो नेहरू जी के निधन के बाद जारी रहा, बेरोजगारी दूर करने में या उद्योग या कृषि अथवा दोनों ही क्षेत्रों में उत्पादकता तथा उनके योगदान के मामले में देश के कम विकसित क्षेत्रों की समस्याओं को हल नहीं किया जा सका। इसी प्रकार से, निजी आर्थिक शक्ति का दुर्ग जो पहले कमजोर हो रहा था, अब मजबूत हो रहा है, जिसके परिणामस्वरूप आय और संपत्ति में असमानता स्पष्ट रूप से बढ़ रही है और वह हमारी आर्थिक व्यवस्था का एक उल्लेखनीय तत्व बन गई है। हम पिछड़े क्षेत्रों तथा पिछड़े वर्गों की समस्याओं को या अपनी बहुत बड़ी जनता, ग्रामीण तथा शहरी मजदूर वर्गों के रहन-सहन के घटिया स्तर को ठीक करने संबंधी समस्या को उचित ढंग से हल करने में भी सफल नहीं हुए हैं।

जवाहरलाल नेहरू अपनी मेज पर रौबर्ट फ्रोस्ट की कविता के कुछ अंश रखा करते थे जो आर्थिक आयोजना के कार्य के संबंध में बहुत प्रासंगिक थे। मैं उनमें से एक अंश यहां उद्धृत करता हूं जिसका हिन्दी अनुवाद इस प्रकार है :

"वन सुन्दर, घना और विस्तृत है
लेकिन मुझे तो वायदे निभाने हैं
और सोने से पहले मीलों दूर जाना है
सोने से पहले मीलों दूर जाना है।"

नेहरू जी ने काफी लम्बा सफर तय किया। हालांकि आर्थिक विकास के लिए योजनागत परियोजनाओं का जैसे-जैसे कार्यान्वयन किया गया वैसे-वैसे मंजिल और दूर होती गई और आर्थिक विकास में उनके योगदान के संबंध में नेहरू जी की यही विरासत दिखाई पड़ती है। हमने नेहरू जी के निधन के बाद चौथी पंचवर्षीय योजना, 3 वर्ष का योजनागत अन्तराल, पांचवीं पंचवर्षीय योजना, छठी तथा सातवीं पंचवर्षीय योजनाएं बनाईं और अब हम आठवीं पंचवर्षीय योजना के प्रारूप को अंतिम रूप देने वाले हैं। इस बात का श्रेय नेहरू जी को जाता है कि उन्होंने आयोजना को न केवल आर्थिक विकास के लिए एक प्रमुख साधन बनाया बल्कि सामाजिक उद्देश्य भी निर्धारित किये जिन्हें अभी भारतीय आयोजना में कार्यान्वित किया जाना शेष है। नेहरू जी आर्थिक तथा सामाजिक उद्देश्यों को मूल-अधिकारों तथा राज्य की नीति के निदेशक तत्वों का अभिन्न अंग बनाने में सहायक रहे। संविधान (बयालीसवां) संशोधन विधेयक, 1976 श्रीमती इंदिरा गांधी के प्रधानमंत्रित्व काल में लाया तथा पारित किया गया था जिसके फलस्वरूप संविधान की उद्देशिका में "समाजवादी" शब्द जोड़ा गया, जिसका पाठ अब इस प्रकार है — "सम्पूर्ण प्रभुत्व सम्पन्न, समाजवादी, पंथ निरपेक्ष, लोकतंत्रात्मक गणराज्य"।

मैं इस लेख का समापन 1971 में प्रकाशित अपनी पुस्तक "नेहरू लीगेसी" से लिए गए उद्धरण से करना चाहता हूं :

"इसमें तनिक भी संदेह नहीं कि नेहरू जी का प्रभाव उनके बाद भी रहेगा और

हमारी भावी पीढ़ियों पर अपनी गहरी छाप छोड़ेगा। हालांकि वे प्रकट रूप से अपने गुरु गांधी जी की भांति धार्मिक व्यक्ति नहीं थे, फिर भी शांति बनाये रखने की उमंग होने, बातचीत से तथा समझा-बुझा कर समस्याओं को हल करने में आस्था रखने, व्यक्तिगत द्वेष या कटुता का अभाव होने, मानवीय प्रतिष्ठा के प्रति आदर व्यक्त करने तथा सभी विवादों को हल करने में मूलतः अहिंसात्मक दृष्टिकोण अपनाने के कारण वे वास्तव में गांधीवादी थे। इसके साथ ही वे आधुनिक चेतना के ऐसे पुंज थे जिन्हें विवेकशीलता तथा विज्ञान में विश्वास था और जिन्हें इसमें पूर्ण विश्वास था कि विज्ञान तथा प्रौद्योगिकी की सहायता से पर्यावरण को नियंत्रित किया जा सकता है तथा समाज का पुनर्गठन किया जा सकता है। आत्मिक तथा वैज्ञानिक, पुरातन तथा नवीन, विरासतजन्य तथा अर्जित ज्ञान के समन्वय से देशवासियों की भावी पीढ़ियों पर उनकी अमिट छाप पड़ेगी।

वे किसी भी व्यक्ति को ठेस पहुंचाना या आहत करना नहीं चाहते थे, उनमें अहं भाव लेशमात्र भी नहीं था या वे अपने बारे में बढ़ा-चढ़ाकर बात नहीं करते थे। उन्होंने अपने जीवन को राष्ट्र की धरोहर बना दिया था और वास्तव में उनका जीवन गरीबों या निचले वर्ग के लोगों या दाय से वंचित लोगों के लिए समर्पित था। वे सेवा में विश्वास करते थे और सेवा के फल से गौरवान्वित होते थे किन्तु विज्ञान तथा प्रौद्योगिकी को मनुष्य की सेविका मानते थे। जनता ही उनकी स्वामिनी थी और उसकी सेवा ही उनकी पूजा थी। और अब उनकी भस्म धरती की उस माटी, जल तथा वायु में मिल गई हैं जिसे वह प्रेम करते थे और जिसके लिए उन्होंने अथक कार्य किया किन्तु नेहरू जी की विरासत शेष रह गई है, और यह हम पर निर्भर है कि उनकी विरासत को पूर्णता की स्थिति में लाने के लिए प्रयास करें।

21

ई.एम.एस. नम्बूदरीपाद

जवाहरलाल नेहरू मेरी दृष्टि में

इस प्रकाशन के सम्पादक ने जवाहर लाल नेहरू से "सम्बद्ध" व्यक्तियों में मुझे भी शामिल किया है। मैं यह बात स्पष्ट कर देना चाहता हूं कि यह सच नहीं है। मुझे उनके सम्पर्क में आने का अवसर केवल केरल के मुख्य मंत्री पद पर 28 महीनों की अवधि के कार्यकाल के दौरान ही मिला था जिसे नेहरू सरकार द्वारा बरखास्त कर दिया गया था। जिस तरह से लोग मुझे उनका निकट समझते हैं उस तरह से मैं न तो उस घटना के पूर्व और न ही उसके बाद कभी भी उनसे सम्बद्ध था।

इसका यह अर्थ नहीं है कि मैं नेहरू के विकास का, उसकी आमूल परिवर्तनवादी युवावस्था जो 1920 के उत्तरार्ध में "युवा-आदर्श" थे—से लेकर स्वतंत्र भारत के प्रथम प्रधानमंत्री बनने तक निकटता से निरीक्षण नहीं करता रहा। मैंने 1931 में नेहरू की एक लघु जीवनी अपनी भाषा (मलयालम) में लिखी जो मेरी पहली प्रकाशित कृति थी। हाल ही में उनकी शताब्दी के अवसर पर मैंने "नेहरू : आइडियोलोजी एंड प्रेक्टिस" शीर्षक की अंग्रेजी में एक पुस्तक लिखी जिसमें नेहरू के जीवन और कार्य के गुणावगुणों की समालोचना की गयी है।

58 वर्ष पूर्व जब मैंने नेहरू पर एक पहली लघु पुस्तिका लिखी तो उस समय मैं नेहरू के व्यक्तित्व और उनकी विचारधारा का मैं एक प्रबल प्रशंसक था। मैं धीरे-धीरे गांधीवाद से वामपंथी विचारधारा की ओर बढ़ने लगा। नेहरू के अन्दर मैंने एक नये नेता को पाया जिसका उस जमाने की हमारी युवा पीढ़ी ने अनुसरण किया।

मेरी पहली पुस्तक छपने के आधे दशक के भीतर ही, नेहरू के जीवन और देश में वामपंथी आंदोलन के इतिहास में एक नया अध्याय आरम्भ हुआ। मैं कांग्रेस के 1936 (लखनऊ) के अधिवेशन में नेहरू द्वारा अपने अध्यक्षीय भाषण में प्रदर्शित गतिशील नेतृत्व का उल्लेख कर रहा हूं। वामपंथ की ओर उन्मुख कार्यक्रम सहित सभी साम्राज्यवाद विरोधी शक्तियों की एकता—यही नेतृत्व नेहरू ने कांग्रेस को प्रदान किया था। इस कार्यक्रम में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस को एक अनियमित, अस्पष्ट राजनीतिक

निकाय से बदलकर परिवर्तनवादी जनसंगठन में बदलना शामिल था। जिससे श्रमजीवी वर्ग तथा कृषक वर्ग सामूहिक रूप से सम्बद्ध हैं।

मैं नेहरू का प्रभावशाली नेता के रूप में सम्मान करता हूं, जिन्होंने फासिस्टवाद के विरुद्ध विश्व की प्रगतिशील शक्तियों तथा भारत में साम्राज्यवाद विरोधी ताकतों के बीच एकता कायम करने के लिए लड़ाई लड़ी। उन्हें विश्व साम्यवादी आन्दोलन के "सहयात्री" के रूप में जाना जाता था। देश के दो प्रमुख वामपंथी बलों—भारतीय साम्यवादी दल तथा कांग्रेस समाजवादी दल के प्रति उन्हें सहानुभूति थी। मैं कांग्रेस समाजवादी दल के चार अखिल भारतीय संयुक्त सचिवों में से एक था और उसी समय एक गोपित सदस्य के रूप में भारतीय साम्यवादी दल में शामिल हुआ था। जहां तक नेहरू का सम्बन्ध है वह वामपंथी आन्दोलन से सम्बद्ध एक शक्ति के नेता थे जिसका कि मैं सक्रिय सदस्य था।

वह अवधि थोड़ी थी। नेहरू साम्यवादी आन्दोलन के तीन वर्ष भी "सहयात्री" नहीं रहे। साम्यवादी आन्दोलन के "सहयात्री" तथा महात्मा गांधी के उपदेशों के प्रति निष्ठा की अपनी धारणा के बीच द्वंद्व में पड़े वह कुछ समय के लिये दुविधा में रहे और अन्त में उस पक्ष को चुना जिसके नेता गांधी थे। 1942 के भारत छोड़ो आन्दोलन तथा उसके पश्चात हुए राजनीतिक संघर्षों (1946, 1952, 1957, 1962 के चुनाव संबंधी संघर्ष सहित) के अवसरों पर हम साम्यवादियों ने अपने आप को नेहरू के प्रतिकूल पाया। 1959 में केरल सरकार के विरुद्ध की गई कार्यवाही तथा 1959-62 में साम्यवादी दल के विरुद्ध किये गये जोरदार अभियान से पता चलता था कि साम्यवादी दल का "सहयात्री" देश में साम्यवाद विरोधी फौज को आदेश देने वाला जनरल ऑफीसर बन गया है।

यह कायापलट कैसे हुई? इस प्रश्न का उत्तर मैंने हाल ही में छपी अपनी पुस्तक में देने का प्रयास किया है। मेरे अनुमान का सार यह है कि नेहरू भारतीय बुर्जुआ वर्ग के एक विशिष्ट प्रतिनिधि थे जिसके दो रूप थे साम्राज्यवाद तथा दूसरा साम्यवाद के विरुद्ध था। बुर्जुआ वर्ग के उग्रसुधारवादी नेता के रूप में वह महात्मा गांधी के दर्शनशास्त्र को बौद्धिक रूप से समझने एवं सराहना करने में विफल रहे परन्तु वर्ग के राजनीतिक नेता के रूप में उन्हें सच्चे नेता का अनुसरण करना पड़ा जिसके नेतृत्व में जनता वर्ग स्वतंत्रता के लिये लड़ रहा था।

वर्ग के उग्रसुधारवादी नेता के रूप में विश्व में श्रमिक तथा समाजवादी आंदोलनों तथा साथ ही सोवियत रूप में पनप रही नई समाजवादी प्रणाली के प्रति उनका झुलाव था। लेकिन वह मार्क्स, एंजेल्स और लेनिन द्वारा प्रतिपादित वैज्ञानिक समाजवाद के समर्थक नहीं थे। अपितु दूसरी ओर, वह सामाजिक लोकतंत्र के दक्षिण पंथ के समर्थक थे और इस तरह

उनका मानसिक दृष्टिकोण साम्यवाद विरोधी था। भारत के श्रमिक वर्ग के आजाद क्रांतिकारी दल और बुर्जुआ वर्ग के दल के बीच निरन्तर संघर्ष से इस भावना को और बल मिला। और वह सोचते थे कि मात्र इसी से भारत आजाद हो सका।

उनकी व्यक्तिगत बौद्धिक प्रकृति में ये जटिलता और विरोधाभास आरम्भ से ही विद्यमान थे और उस समय कम्युनिस्ट पार्टी अपनी प्रारम्भिक अवस्था में थी तथा नेहरू भारत की वामपंथी राजनीति पर छाये हुए थे। तथापि चौथे दशक के मध्य में साम्यवादी आंदोलन के फिर से संगठित होने पर भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी ने अपनी महत्ता प्रकट की और भारत के बुर्जुआ वर्ग और इसके राजनीतिक दल के निर्विरोध नेतृत्व को चुनौती दी। ऐसा पहले भारत छोड़ो आंदोलन के समय और फिर केरल में कम्युनिस्ट सरकार के आने तथा फिर चीन के साथ मतभेदों के बारे में अलग-अलग मतों से प्रकट हुआ। इनमें से प्रत्येक प्रश्न पर कम्युनिस्ट पार्टी और मेरा निजी रूप से नेहरू से मतभेद रहा।

भारतीय बुर्जुआ वर्ग के विशेष रूप से वामपंथी नेता के रूप में, नेहरू दुर्भाग्यवश ऐसे समय में पैदा हुए और एक राष्ट्रीय नेता के रूप में सामने आये, जब मानव इतिहास में बुर्जुआ सामाजिक प्रणाली अत्यधिक आंतरिक संकट के समय से गुजर रही थी। मानवता पूंजीवाद से समाजवाद की ओर बढ़ी थी, जिसका भारत में भी प्रभाव पड़ा। नेहरू पूंजीवाद विरोधी नई शक्तियों से अपने आप को नहीं जोड़ सके। अपितु उन्होंने भारत में इसके खिलाफ आवाज उठाई और क्योंकि कुछ हद तक वह दुनिया की पूंजीवाद विरोधी ताकतों से सहयोग कर रहे थे। इसी से नेहरू और भारतीय कम्युनिस्टों के बीच प्यार, घृणा का संबंध उत्पन्न हुआ है जिसका उल्लेख मैंने अपनी पुस्तक में किया है।

22

वी.आर. कृष्ण अय्यर

जवाहर लाल : मानवता की देन*

मानव की भावना कितनी आश्चर्यजनक है। असंख्य कठिनाइयों के बावजूद मनुष्य ने युगों से अपने आदर्शों, सच्चाइयों, विश्वास, देश और सम्मान के लिए, अपना जीवन तथा सर्वस्व न्योछावर किया है। वह आदर्श बदल सकता है लेकिन आत्म बलिदान की वह क्षमता बराबर बनी हुई है और इसी के कारण मनुष्य की कई बातें क्षमा की जा सकती हैं और उसके प्रति आशावान न रहना असम्भव है। विपदाओं के बीच इसने अपनी प्रतिष्ठा अथवा उन मूल्यों में, जिनकी वह कदर करता है, अपना विश्वास नहीं खोया है। इस विशाल विश्व में प्रकृति की महान शक्तियों के खेल में धूल के एक बिन्दु से भी कम अस्तित्व वाले मानव ने इन प्रारम्भिक शक्तियों को चुनौती दी है और क्रांति के उद्‌गम अपने मस्तिष्क द्वारा उन पर काबू पाने का प्रयास किया। चाहे देवता कोई भी हों पर मनुष्य में देवत्व का अंश भी है, ठीक वैसे ही जैसे उसमें कुछ शैतानियत का अंश है।

भविष्य अन्धकारपूर्ण और अनिश्चित है लेकिन उसकी ओर जाने वाले मार्ग का कुछ भाग हम देख सकते हैं और उस पर हम दृढ़ पगों से चल सकते हैं, यह याद रखते हुए कि चाहे मनुष्य की जो भी भावना हो, जिसने अनेक खतरे झेले हैं, कभी काबू में नहीं की जा सकती।

सौ वर्ष पूर्व जवाहरलाल पैदा हुआ था जिसे प्रकृति और संस्कृति ने मिल कर इतना बढ़िया मानवतावादी बनाया था कि विश्व में सभी राष्ट्र उसे साहसी नव भारत के निर्माता और आधुनिक विश्व व्यवस्था को गढ़ने वाले के रूप में स्मरण करते हैं। उसे इतिहास ने जन-स्वातंत्रय के लिए संघर्ष करने; साम्राज्यवाद और फासिस्म के विरुद्ध लड़ाई करने तथा शांतिपूर्ण सह-अस्तित्व और विश्वभर में हो रही लगातार प्रगति में सभी को सहभागी बनाने के आधार पर अशान्ति रहित विश्व के निर्माण की अनिवार्यता के लिए अन्तर्राष्ट्रीय चेतना जगाने हेतु भेजा था।

---

*पेट्रिआट नई दिल्ली, 3 सितम्बर, 1989 में प्रकाशित लेखक के लेख से उद्धृत।

जवाहर लाल नेहरू का सर्वोच्च रहस्य यह था कि उनकी आत्मा का प्रत्येक कण मानवता से भरपूर था, उनके जीवन का प्रत्येक श्वास प्रत्येक दृष्टि से मानवमुक्ति के लिए उद्वेग की सुगंध से सुगंधित था और उनके जीवन का प्रत्येक क्षण मानवता का नियति से साक्षात्कार की परिपूर्णता हेतु सहानुभूतिपूर्ण चिंता से लिप्त था।

संक्षेप में वह मानवीय अभिव्यक्ति के उच्चतम प्रतीक थे। इस स्नेहिल और प्रिय जवाहरलाल नेहरू को महान आशाएं थीं और कई बार निराशा के कारण उनका मोहभंग भी हुआ परन्तु पृथ्वी और प्रिय पृथ्वीवासियों के भविष्य के बारे में उन्होंने कभी आशा नहीं छोड़ी।

आंतरिक, बाह्य, देशी, राष्ट्रीय और विश्व संबंधी अंतर्द्वंद्व उनमें भी था, आदर्शों और यथार्थ में दूरी थी, अपनी आत्मकथा से उनके द्वारा उद्धृत पंक्तियों से यह स्थिति और भी स्पष्ट हो जाती है : "दो विश्व के बीच, एक मृत, दूसरा जन्म लेने के लिए शक्तिहीन/ विश्राम के लिए नहीं कहीं कोई स्थान/उन्हीं की तरह धरती पर मैं अकेला असहाय।"

एक भरपूर व्यक्तित्व जिसमें भौतिकवाद और अध्यात्मवाद के वेदांतिक संश्लेषण की पूर्ण अभिव्यक्ति थी, अब मृत्यु से परे हमें उसकी आवाज सुनाई देती है। "हम मिलेंगे और जुदा होंगे और फिर मिलेंगे/जहां मृत व्यक्ति मिलते हैं जीवित पुरुषों के होठों पर।" (सेमुअल बटलर, लाइफ आफ्टर डेथ)

जवाहर विश्वबन्धु थे लेकिन भारत में उनकी जड़ें बहुत गहरी थीं। अतः उन्होंने अपने वसीयतनामे में लिखा : "मुझे उस महान विरासत पर गर्व हैं जो हमारी रही है और हमारी है और मुझे इस बात का अहसास है कि हम सभी की तरह मैं भी उस अटूट कड़ी का एक हिस्सा हूं जो भारत के अविस्मरणीय अतीत के इतिहास के उद्गम की ओर ले जाती है।"

इन प्रारम्भिक बातों के बाद आइये हम आरम्भ से शुरू करते हैं। जवाहरलाल नेहरू मोतीलाल के इकलौते बेटे थे जो अधिवक्ताओं के शहजादे और शहजादों के अधिवक्ता थे। अत्यन्त अमीर घराने में पैदा हुए, अभिजातीय बाहुल्य में पले-बढ़े, इंगलैंड के सर्वोत्तम स्कूल में पढ़े, अंग्रेजों की 'बार' में आमंत्रित युवा नेहरू जोर-शोर से वकालत का व्यवसाय अपना सकते थे। लेकिन ऐसा हुआ नहीं, उसी तरह जैसे मार्क्स, जो एक वकील का बेटा था, उसने स्वयं कानून की पढ़ाई की थी लेकिन उसे लगा कि यह व्यवसाय उसके अनुकूल नहीं।

जवाहर इतने संवेदनशील थे कि मनुष्य की पीड़ा और उसके शोषण को नहीं देख सकते थे। वह इतने साहसी थे कि मनुष्य के अनादर को चुप-चाप सहन नहीं कर सकते थे। वह इतने क्रांतिकारी थे कि ब्रिटिश साम्राज्यवाद को अभेद्य नहीं मानते थे, वह मानव को न्याय दिलाने के लिए इतने प्रबल आकांक्षी थे कि किसी न्यायालय में अपनी कला

नहीं दिखा सकते थे। वह इतने स्वाभिमानी और देशभक्त थे कि अंग्रेजी राज को सहन नहीं कर सकते थे और न ही औपनिवेशिक बेड़ियों को तोड़े बिना रह सकते थे। वह इतने परिश्रमी थे कि भाग्यवाद के सामने घुटने नहीं टेक सकते थे, इतने उच्च प्रकार के निःस्वार्थी थे कि अपने निजी भविष्य की ओर ध्यान नहीं दे पाते थे। उनका व्यक्तित्व इतना ओजस्वी था कि उनका दिल और दिमाग लाठी प्रहारों या जेल की सलाखों के डर से टूट नहीं सकता था। अतः वह उन उद्देश्यों और आदर्शों, जिनकी वह कदर करते थे, की प्राप्ति के लिए दृढ़ता से जुट गये।

यह अद्‌भुत मनुष्य जवाहरलाल नेहरू पूर्व और पश्चिम दोनों से जुड़ा था, उन्होंने ब्रिटेन में शिक्षा प्राप्त की थी पर उन्हें ब्रिटिश साम्राज्यवाद से घृणा थी, मानवीय दृष्टिकोण से वह गांधीवादी थे, विश्वास था समाजवाद में। नेहरू विचारों से क्रांतिकारी, ग्राम सुधार के लिए सक्रिय आध्यात्मिक अनुभूति से ओत-प्रोत थे, शोषित और असहाय लोगों का जीवन सुधारने के लिए भौतिकवादी थे। उनका पालन-पोषण कुलीन ढंग से हुआ पर उनका विश्वव्यापी दृष्टिकोण समाजवादी था। वह हिमालय और गंगा का बालक था लेकिन भारत के विकास के लिए उसने विज्ञान और प्रौद्योगिकी के औजारों से बड़ी-बड़ी योजनाएं तैयार कीं।

वैदिक संस्कृति में गहरी जड़ें होने के बावजूद परमाणु युग की ओर छलांग लगाने वाले नेहरू में प्राचीन आधुनिकता का बढ़िया संगम था, इतिहास-बोध था, भविष्य में होने वाली किसी निराशा को सहन करने की क्षमता थी और मनुष्य के भाग्य में विश्वास का भी उन्हें पता था जो हम लोग जन्म से ही रखते हैं। उनके विशाल व्यक्तित्व में कई परस्पर विरोधी बातें थीं लेकिन अमूल्य विशेषता थी उनकी मानवीयता जो उसी प्रकार तरोताजा और सुगंधित थी जैसा कि गुलाब का फूल जो वह हमेशा लगाते थे, उनकी मानवीयता नृत्य, संगीत में रुचि और बच्चों के साथ खेलने आदि में परिलक्षित होती थी।

क्या मैं अपनी बात काट रहा हूं, वाल्ट विटमेन ने एक बार पूछा। "ठीक है मैं अपनी बात काटता हूं। मेरा मन विशाल है; उसमें विविधता है।" नेहरू ऐसे ही दुर्लभ लोगों में से थे।

उनकी आत्मा के गुरुत्वाकर्षण का केन्द्र था मानवीयता और उनकी आध्यात्मिकता का पता लगता था उनकी मानव के व्यक्तित्व के प्रति प्रतिष्ठा और उसके देवत्व में विश्वास से। विश्व प्रक्रिया के संबंध में उनका दृष्टिकोण थाः मुक्त सामाजिक व्यवस्था की दिशा में समाज का प्रस्थान। अपनी तर्कबुद्धि द्वारा उन्होंने विश्व की बुराइयों की जड़ का पता लगा लिया था — मानव के अधिकारों का उल्लंघन, हिंसा तथा युद्ध, तनाव और औपनिवेशक भूख जो सभ्यता की शांति और समृद्धि की दौड़ में बाधा पहुंचाती हैं।

उनके लिए विकास का अर्थ, वस्तुओं का विकास नहीं बल्कि मनुष्य का विकास था। "वृद्धि" का अर्थ केवल कुछ लोगों की अतिशय वृद्धि और शेष लोगों के पास कमी

से नहीं बल्कि न्यायपूर्ण वृद्धि से था जिससे अर्थव्यवस्था का व्यापक विकास हो और न्यायपूर्ण ढंग से वस्तुओं का वितरण हो ताकि गरीब से गरीब भारतीय की स्थिति में सुधार हो। उनकी दृष्टि ऐसी थी, उनकी लगन ऐसी थी।

संक्षेप में वह एक समाजवादी थे जो शांतिपूर्ण ढंग से समाज का बदलाव चाहते थे। वह शांतिदूत थे और विश्व में अहिंसा को स्थान दिलाने वाले गांधी जी के प्रचारक थे।

क्या गोर्बाचौफ उनके आध्यात्मिक उत्तराधिकारी हैं जैसे कि वह स्वयं महात्मा जी के जिज्ञासु उत्तराधिकारी थे। सांस्कृतिक सम्पत्ति की विरासत के मामले में पीढ़ी-दर-पीढ़ी की बात नहीं चलती। यह भौगोलिक सीमाओं में बंधी नहीं। यहां तो आध्यात्मिक उत्तराधिकार प्राप्त होता है।

पंडित जी के व्यक्तित्व के रसायन में फेबियन इंग्लैंड के उदार मूल्यों तथा समाजवादी परिप्रेक्ष्य, भारतीय लोगों के साथ आत्मसात होने की गांधी जी की भावना, अहिंसा में अटूट तथा दृढ़ विश्वास और लघुता में सुन्दरता होती है, का दर्शन, और सभी जीवधारियों के प्रति समुद्र जैसी गहरी सहानुभूति और पुजारियों की पुरातनपंथी प्रथाओं और पशु बलि पर कड़ा प्रहार करने की क्षमता का मिश्रण था। एक बार यदि हम मानवता के प्रति उनके दृष्टिकोण, पूर्ण देशभक्ति और विश्वव्यापी विचारधारा को निहार लें तो उनके बारे में सभी बातें तथा उनकी आध्यात्मिक बहुलता की झलक बिल्कुल स्पष्ट दिखाई पड़ती है।

उनके बहुरूपी व्यक्तित्व में उनके बारे में क्या बात स्पष्ट है? वह उच्च मानवतावादी थे। बेचैन रहने वाली उनकी आत्मा बेड़ियों से मानव की मुक्ति चाहती थी। यह मुक्ति केवल राजनीतिक नहीं बल्कि आर्थिक और सामाजिक जीवन में भी होनी चाहिये। मानव को शोषण से मुक्त कराने के प्रति अपनी प्रतिबद्धता के कारण ही वह राष्ट्रीय संघर्ष में कूद पड़े। उनकी देशभक्ति की कोई राजनीतिक सीमा नहीं थी। उनके लिए भारतीय स्वतंत्रता, साम्राज्यवाद के विरुद्ध विश्वव्यापी संघर्ष का एक अभिन्न भाग थी। साम्राज्यवादी दासता, औपनिवेशिक शोषण, पूंजीवादी अन्याय और फासिस्ट आतंक अमानुषिकता के ही अलग-अलग रूप हैं, उन में से कुछ अधिक भयंकर हैं और कुछ कम। नेहरू जी का तो पूरा व्यक्तित्व ही इन निष्ठुर शक्तियों के लिए एक जोरदार चुनौती था।

जवाहरलाल में वैचारिक गहराई थी। वह गांधी जी के विचारों का प्रतिनिधित्व करते थे: "मेरा राष्ट्रीयवाद गहन अन्तर्राष्ट्रीयवाद है। मैं राष्ट्रों और धर्मों के बीच झगड़ों से तंग आ चुका हूं।"

इस पवित्र मानवतावाद के कारण उनका संघर्ष भारत के लिए राजनीतिक प्रभुसत्ता प्राप्त करने से आगे निकल गया। राजनीतिक आजादी और राष्ट्रीय प्रभुसत्ता अनिवार्य है लेकिन वह आजादी तभी सार्थक हो सकती है जब जीवन के अधिकार के साथ-साथ आर्थिक और सामाजिक न्याय भी प्राप्त हो। राजनीतिक, सामाजिक और आर्थिक न्याय और व्यक्ति की प्रतिष्ठा का अभिन्न आपसी ताल-मेल मानव अधिकारों की धुरी है।

भारत की स्वतंत्रता के लिए और विदेशी शोषण के विरुद्ध संघर्ष के पीछे उनकी वही क्विारधारा थी। वह सिविल लिबर्टीज यूनियन के प्रेसीडेंट और उग्र समाजवाद का अभियान चला रहे थे। वह विशाल बहुराष्ट्रीय कम्पनियों के विरुद्ध थे जो आर्थिक साम्राज्य स्थापित कर लेती हैं। उन्होंने फासिस्टवाद के विरुद्ध संघर्ष किया और जब वह फासिस्ट विरोधी व्यक्ति नवयुवक था तो उसने मुसोलिनी को उस समय मिलने से इन्कार कर दिया जब वह इटली का तानाशाह था।

वह साम्प्रदायिकता विरोधी थे क्योंकि यह घातक बीमारी आपस में बर्बर घृणा तथा एक दूसरे का रक्त बहाने की प्रवृत्ति को प्रोत्साहित करती है। कांग्रेस में छिपे खादी धारी कट्टर साम्प्रदायिक तत्वों पर प्रहार करने के लिए साहस की जरूरत थी। लखनऊ में 1936 में नेहरू जी अपने ऐतिहासिक सभापतीय अभिभाषण में दहाड़ पड़े।

उन्होंने कहा कि मुझे विश्वास है कि अपनी समस्याओं को उचित प्रकार से देखने का केवल यही उपाय है कि विश्व की समस्याओं के ढांचे में इन समस्याओं का उचित स्थान क्या है, इस पर दृष्टिपात किया जाये। मुझे पक्का विश्वास है कि विश्व की घटनाओं के बीच गहन संबंध है और हमारी राष्ट्रीय समस्या पूंजीवादी साम्राज्यवाद के कारण विश्व की समस्या का ही एक भाग है। प्रत्येक घटना को एक-दूसरे से अलग करके देखने और उनके बीच किसी संबंध को न समझने से त्रुटिपूर्ण विचार पैदा हो सकते हैं। आज विश्व में विशाल पैमाने पर परिवर्तन हो रहे हैं; बड़ी शक्तियां एक-दूसरे से जूझ रही हैं और क्षितिज पर भयानक युद्ध के बादल छा रहे हैं। गुलाम लोग आजादी के लिए संघर्ष कर रहे हैं और साम्राज्यवाद उसे कुचल रहा है। शोषित वर्ग शोषकों का सामना कर रहा है और आजादी तथा समानता चाहता है। इटली का साम्राज्यवाद बहादुर मिस्रवासियों पर बम बरसा रहा है, जापानी साम्राज्यवाद उत्तरी चीन और मंगोलिया पर हमले जारी रखे हुए है, ब्रिटेन का साम्राज्यवाद अन्य देशों के कदाचारों पर तो निर्दोषतापूर्वक आपत्ति करता है लेकिन भारत तथा अन्य स्थानों पर स्वयं वैसा ही कर रहा है और इन सबके पीछे आर्थिक व्यवस्था में हो रहा ह्रास है जिनसे इन सभी लड़ाई झगड़ों में बहुत वृद्धि होती है। क्या इन सभी बातों के बीच हमें एक जैविक संबंध नहीं दिखाई पड़ता? आइये हम ऐतिहासिक दृष्टि से नजर दौड़ायें ताकि इन चालू घटनाओं को सही परिप्रेक्ष्य में देख पायें और उनका वास्तविक महत्व समझ सकें। तभी हम इतिहास की गति को ठीक से समझ कर उसके साथ चल सकते हैं।

23

हीरेन मुखर्जी

महान सांसद*

जीवन में समुत्थान की अद्‌भुत शक्ति होती है। इसीलिए किसी व्यक्ति—यहां तक कि रवीन्द्र नाथ टैगोर और महात्मा गांधी जैसे लोगों की याद भी ज्यादा दिनों तक नहीं रहती। जवाहर लाल नेहरू की जन्मशती के अवसर पर यह विचार दिमाग में कौंध जाता है—जवाहर लाल को हमारे भारत का निर्माता कहा जा सकता है और वह एक विश्वव्यापी व्यक्तित्व थे। जब मई, 1964 में संयुक्त राष्ट्र संघ में उनकी मृत्यु पर शोक व्यक्त किया गया तो मोरक्को के प्रतिनिधि ने कहा: "वह विश्व के हमारे भाग में मानवजाति के शिल्पकार थे।" अतः इसमें कोई आश्चर्य नहीं कि इस अवसर पर सरकार द्वारा आयोजित कुछ कार्यक्रमों के अतिरिक्त हमारे लोगों की भावनाएं, अनुत्तेजित ही रहती हैं।

क्या भारतीय स्वतंत्रता की 40वीं वर्षगांठ की घटना अन्य किसी घटना की भांति ही नहीं निकल गई जिसके बारे में जवाहर लाल ने 1945-46 में जोश भरे ढंग से कहा था कि "यह आजादी की चिंगारी है" और क्या वह चिंगारी विभाजित भारत को मिली आजादी के बाद से अधिकतर अनजली ही नहीं रह गई है? इसके बावजूद जवाहरलाल और उनके समय को याद किया जाना चाहिये क्योंकि कोई घमंडी या सनकी व्यक्ति भी किरकेगार्ड के इस कथन की अवहेलना नहीं कर सकता कि "केवल अतीत को ही अच्छी तरह समझा जा सकता है लेकिन जीवन भविष्य में ही जीया जा सकता है।"

काफी समय से कुछ लोगों का यह शौक हो गया है कि जवाहर लाल के महत्व को कम किया जाये लेकिन इतिहास के दीर्घकाल में प्राप्त होने वाले निर्णय, जिसकी हमें प्रतीक्षा अवश्य करनी चाहिये, यह स्पष्ट हो जायेगा कि कम से कम उन लोगों को, जिन्होंने नेहरू जी को निकट से देखा है, उन्हें गर्व से याद करना चाहिये। कई असफलताओं के बावजूद उनके समय में हमारे राजनीतिक जीवन में "तुच्छता" से आजादी थी — एक ऐसा गुण जिसका अब अभाव है। आज के सार्वजनिक जीवन में जवाहर लाल के उन

* हिन्दुस्तान टाइम्स, नई दिल्ली, 14 नवम्बर, 1988 में प्रकाशित लेखक के लेख से उद्धृत।

शब्दों को, जो उन्होंने अस्थायी संसद में कहे थे, उद्धृत करना आश्चर्यजनक होगा, उस समय विभाजन के फलस्वरूप पैदा हुई गम्भीर समस्याओं से घिरे हुए नेहरू ने कहा था, "मुझे हैरानी होती है कि भारत के लोग मेरे जैसे लोगों की बात कैसे सहन कर लेते हैं जब कि पिछले कुछ महीनों में इतना कुछ हो चुका है। मुझे विश्वास नहीं है कि यदि मैं सरकार में न होता तो क्या मैं अपनी सरकार की बात सहन कर पाता।"

कुछ वर्ष बाद (अप्रैल, 1952) जब उन्हें उनके इस वायदे के पूरा न होने की याद दिलायी गयी कि अनाज का आयात बंद कर दिया जायेगा तो उन्होंने स्पष्ट रूप से कहा : "मुझे खेद है कि मेरे शब्द झूठे पड़ गये हैं और मुझे बहुत शर्म महसूस हो रही है कि राष्ट्र के सामने जो प्रतिज्ञा की गई थी, वह भंग हो गई है।" ये ऐसे शब्द हैं जो लगता है किसी अन्य युग में कहे गये थे। लेकिन नेहरू के बारे में हैरानी नहीं होनी चाहिये। क्या जवाहर लाल नेहरू के दो नातियों ने, जिन्हें अपने दादा के जनाजे में भाग लेने के लिए विमान द्वारा लन्दन से लाया गया था, नहीं कहा कि उनके प्रसिद्ध पूर्वज ने उनके विचारों को बिल्कुल भी प्रभावित नहीं किया?

जवाहर लाल ने विभिन्न प्रकार से देश के लिए जो कुछ किया, संसद में उनका कार्य केवल एक छोटा सा भाग है। यद्यपि उन्हें विधायी अनुभव बिल्कुल भी न था परन्तु जब वह वाइसराय की एक्जीक्यूटिव काउंसिल के वाइस प्रेसीडेंट बने तो उन्होंने स्फूर्ति से अपना कार्य आरम्भ किया और प्रशासन में सर्वोच्च पद पर आसीन हुए तथा "सत्ता के हस्तांतरण" के समय उन्हें प्रधान मंत्री का पद स्वतः मिल गया जिस पर वह अंत तक (मई, 1964) बने रहे। परन्तु क्या उन्होंने स्वतंत्रता से पहले के विधायकों को जैसे सी. आर. दास. तथा स्वयं अपने पिता मोतीलाल को, जिन्होंने स्वराज्य पार्टी बनाई थी, दूर नहीं रखा और क्या उन्होंने लखनऊ और फैजपुर में कांग्रेस प्रधान (1936) के रूप में कोई पदभार सम्भालने से इन्कार नहीं किया?

वह किस ढंग से सोचते थे इसका पता उस बात से चलता है, जब उन्होंने फैजपुर में कहा : "मैंने पुनः भारत के लोगों की आंखों में झलकती पीड़ा देखी है, जिस भयंकर बोझ के नीचे वे पिसे जा रहे हैं, उस से छुटकारा चाहने वाली निगाहें देखी हैं। हमारी समस्या यही है, बाकी सभी चीजें तो गौण हैं।" बौद्धिक रूप से मार्क्स से प्रभावित तथा भावनात्मक रूप से क्रांति से जुड़े होने के कारण वह अपनी आत्मकथा (1936) में यह लिख पाये "दो छलांगों में पार पाना असम्भव है; धीरे-धीरे विकास भी असम्भव है। जैसे कि सुभाषचन्द्र बोस, जिनका नाम अवश्य ही जवाहरलाल नेहरू के साथ आता है, 1938-39 में कहा करते थे कि अच्छा समाज बनाने के लिए हमें बलपूर्वक आगे बढ़ना है और उदारवादी (लिबरल्स) तो बिल्कुल धारा से कटे हुए हैं। उनके बारे में नेहरू ने "दि डिस्कवरी ऑफ इंडिया" (1945) में लिखा कि ये वे आदमी हैं जिनके लिए साम्राज्यवाद की पराजय नहीं हो सकती।

वह पक्के समाजवादी और साम्यवादी थे जो कल्पना को यथार्थ में बदलना चाहते थे। उस समय देश के विभाजन जैसी कई बातें उन्हें चुपचाप सहन करनी पड़ीं। यथास्थिति को वह बिल्कुल पसंद नहीं करते थे लेकिन ब्रिटेन की चमक-दमक वाले लोकतंत्र के प्रति उनका आकर्षण भी था और अंग्रेज उनको इस बारे में लुभाना चाहते थे। हमारी सारी राजनीतिक प्रणाली ब्रिटेन के लोकतंत्र से प्रभावित हो गयी जिस से दीर्घकाल तक समाज का शोषण हो सका है।

जवाहर लाल ने भारत में संसदीय प्रणाली के संबंध में बीच का रास्ता अपनाया और उसमें भारतीय परिस्थितियों के अनुकूल कुछ परिवर्तन किये। जब 1959 में प्रसिद्ध अमरीकी स्तम्भ लेखक लिपमैन ने, जो केवल मौखिक रूप से ही क्रांतिकारी नहीं था, "तीसरी पंचवर्षीय योजना के क्रांतिकारी उद्देश्य" के अन्तर्गत लिखा कि इनकी प्राप्ति के लिए सरकार ऐसी गतिशील तथा उद्देश्यपूर्ण होनी चाहिये जिसके नेतृत्व में ऐसा जन-आंदोलन चलाया जाये जिस से लोगों को स्वेच्छापूर्वक उन कामों को करने के लिए प्रोत्साहित किया जा सके जो साम्यवादी चीन में बलपूर्वक कराये जाते हैं। जवाहर लाल ने इसका गम्भीरतापूर्वक उत्तर दिया। एक प्रेस वक्तव्य में उन्होंने कहा कि लिपमैन की बातों में दम है और यदि हम संसदीय ढांचे में सुधार कर पाये तो ब्रिटेन से विरासत में मिले प्रशासनिक ढांचे में त्वरित गति लाई जा सकती है। केवल जवाहर लाल की ही नहीं बल्कि दक्षिणपंथी, वामपंथी लोगों और हम सभी को इस बात पर खेद होना चाहिये और हमें यह दोष भी स्वीकार करना चाहिये कि संसदीय प्रणाली के कार्यकरण में आधारभूत परिवर्तन करना तो दूर रहा हम अनिवार्य सुधार भी नहीं कर पाये। इसीलिए आज भारत की संसद इतनी घटिया दिखाई पड़ती है।

इसीलिए इसमें आश्चर्य नहीं होना चाहिये कि भारत की स्थिति को देखकर भारत के मित्र पर्यवेक्षकों जैसे गुन्नार मिर्दलद ने भी इस देश को "साफ्ट स्टेट" कहा है जो तेजी से आगे बढ़ने के लिए न्यूनतम अनिवार्य कार्य करने में भी असफल रहा है। जवाहर लाल ने संसद में और देश के लोगों के सामने जो आशाएं रखी थीं जैसे सामुदायिक विकास, राष्ट्रीय विकास ब्लाक जिनके द्वारा उन्होंने सामाजिक आर्थिक परिवर्तन की कल्पना की थी, उनके पूरी न होने पर हमें खेद और दुःख होता है। इस बात पर भी हैरानी नहीं कि अपने अंतिम दिनों में उनमें कार्य करने में शीघ्रता की भावना आ गई थी और चिन्तन के क्षणों में उन्हें इस बात पर अफसोस होता था कि उन्हें अपने वायदे पूरे करने हैं और काफी लम्बा रास्ता तय करना है।

तथापि जवाहर लाल संसद में बहुत रुचि लेते थे। सभ्य, प्रायः विचारशील भाषण देने की उनमें स्वाभाविक योग्यता थी। वह अपने सहयोगी मौलाना आजाद की भांति धुंआधार वक्ता तो नहीं थे लेकिन उन्होंने कुछ ऐतिहासिक भाषण दिये। 14-15 अगस्त, 1947 की रात को उन का 'ट्राइसट विद डेसटिनी (भाग्य के साथ साक्षात्कार) भाषण

संसद में भावपूर्ण भाषणों में विशेष स्थान रखता है। वह गोविन्द वल्लभ पंत या श्यामाप्रसाद मुखर्जी या विपक्ष के कुछ अन्य सदस्यों की भांति हाजिर-जवाब तो नहीं थे जो अपनी बात तुरंत मनवा लें, लेकिन राष्ट्रीय जीवन में इतने लम्बे समय से रहने और संसदीय प्रणाली में पूर्ण विश्वास होने जिसके अन्तर्गत विवादास्पद मामलों को भी बातचीत के माध्यम से सुलझाया जा सकता है, के कारण उन्हें सब से सम्मान मिलता था। वह नियमों संबंधी प्रक्रिया को रटते नहीं थे (जैसे कि स्वर्गीय हरि विष्णु कामथ या प्रसन्नचित्त मधु लिपये करते थे, जो कभी-कभी सीमा से अधिक नियमों पर जोर देते थे) लेकिन सारे मामले पर उनकी पकड़ रहती थी।

सम्भवतया चक्रवर्ती राजगोपालाचारी ने एक बार कहा था कि "हम सभी में से जवाहर लाल सर्वाधिक सभ्य हैं।" इस वाक्य में काफी सच्चाई है और जी.वी. मावलंकर जैसे लोक सभा के अध्यक्ष (अब जैसे नहीं जो मंत्री पद प्राप्त करने के लिए सर्वोच्च संसदीय पद से नीचे कूदने को तैयार हो जाते हैं) ने जवाहर लाल की इस कारण भूरि-भूरि प्रशंसा की है कि संसद की गरिमा और लोगों की आकांक्षाओं को पूरी करने की संस्था के प्रति उनकी पूरी निष्ठा है।

स्वतंत्र भारत की पहली संसद (1952-57) जो अत्यधिक भव्य रूप लिए थी, में जवाहर लाल को भी अपने सर्वोत्तम रूप में देखा गया। उस समय ब्रिटेन के तत्कालीन प्रधान मंत्री एंथनी ईडन ने, जो आस्ट्रेलिया से वापसी यात्रा में यहां रुके थे, कहा कि एक सांसद के रूप में वह केनबरा की अपेक्षा दिल्ली में अधिक आराम अनुभव करते हैं। यह शेखी बघारने की बात नहीं लेकिन इस बात से ए.एफ. पौलेंड की बात को झुठलाया जा सका है जो समझता था कि हिन्दू संसद से बिल्कुल अनभिज्ञ हैं या हैलशाम तथा चर्चिल का यह विश्वास भी गलत हो गया कि केवल उनके देश तथा अंग्रेजों को ही इसका ज्ञान है और सिद्ध हो गया कि हम भी संसदीय प्रणाली को सफलतापूर्वक चला सकते हैं। इस बात से हमें थोड़ी राहत मिलती है कि उन लोगों का कथन गलत हो गया जो कहते थे कि हमारी संसद प्रणाली समाप्त हो जायेगी।

पहली, दूसरी और तीसरी लोकसभा में जब तक जवाहरलाल जीवित रहे, साम्यवादी दल सबसे बड़ा विपक्षी ग्रुप रहा और जवाहरलाल सहज रूप से विपक्ष को पूरा सम्मान प्रदान करते रहे। राष्ट्रपति के अभिभाषण पर पहले ही वाद-विवाद (मई, 1952) में बहस करने के मुद्दे बिल्कुल स्पष्ट हो गये। जब साम्यवादी दल के प्रवक्ता ने कहा कि अभिभाषण भारतीय लोगों के विरुद्ध युद्ध की घोषणा है तो जवाहरलाल ने एकदम कहा कि यदि ऐसा है तो युद्ध तो उनके और हमारे बीच में है।

जब एक अन्य साम्यवादी नेता के भाषण में व्यंग्य किया गया कि पद की लालसा के कारण जवाहरलाल ने इतिहास में अपनी प्रतिष्ठा खो दी है तो उन्होंने सुंदर ढंग से कहा कि वह इतिहास में अपने स्थान की चिन्ता नहीं करते। लोगों के दिलों में यदि उनके प्रति

प्रेम है तो वह उससे संतुष्ट हैं। सभा में तनाव, चिल्लाहट, हंगामे, सभा के बहिष्कार आदि के बावजूद राष्ट्रीय सौहार्द का वातावरण रहता था। इसी कारण पहली संसद में दूसरी पंचवर्षीय योजना बन सकी (अब तक केवल वही आधारभूत योजना है) हिन्दू महिलाओं के अधिकार (विवाह, उत्तराधिकार आदि) सिक्कों की दशमिक प्रणाली, मीट्रिक बाट तथा माप और सर्वाधिक महत्वपूर्ण पंचशील की घोषणा, बांडुंग सम्मेलन (1955) बुलाना, जिसमें नासिर, सुकर्णो तथा चाऊ एन लाई ने भी जवाहर लाल को अपना बड़ा भाई कहकर पुकारा। बांडुंग सम्मेलन हिरोशिमा के दस वर्ष बाद हुआ और इसमें भारत ने नेतृत्व प्रदान किया और पश्चिम के नव साम्राज्यवाद को चेतावनी दी कि वह एशिया से तुरंत चला जाये। आजादी की लड़ाई के बाद जवाहर लाल को सर्वाधिक सम्मान उन्हीं दिनों मिला। ऐसा अधिकतर इस कारण भी हुआ क्योंकि संसद ने ऐसे अच्छे ढंग से कार्य किया जिस से लोग सम्मानित अनुभव करने लगे।

जवाहर लाल का हृदय इतना विशाल था कि सभ्य ढंग से की गई कठोरतम आलोचना को भी वह सहन कर लेते थे। यह देखकर बड़ी खुशी होती थी कि कई बार उनकी काफी खिंचाई होती थी जैसे कि यह कहना कि वह नीरस आरकेस्ट्रा बजा रहे हैं, वह एक हल्के कवि हैं जो अपना व्यवसाय भूल गये हैं, वह सर्वज्ञ बनते हैं। एक बार जब लोगों के चीखने चिल्लाने से क्षुब्ध हो कर उन्होंने सुझाव दिया कि सदस्यों को एक पूरे ग्रुप को सभा से बाहर जाने को कहा जाये तो कहा गया कि वह "सभा के नेता होने के योग्य नहीं।" इस टिप्पणी को अध्यक्ष ने कार्यवाही से निकाल दिया। (लेकिन हिन्दुस्तान टाइम्स के सांध्य संस्करण में वह छप गई थी) इससे तत्कालीन संसदीय कार्यमंत्री सत्यनारायण सिन्हा तो बेचैन हो गये लेकिन जवाहर लाल नहीं। कई बार कहा गया कि वह जैसे हैं, वैसे कांग्रेस में ही खप सकते हैं, उसकी संगति कैसी है। इन बातों से वह अधिक क्षुब्ध नहीं होते थे। लेकिन वह स्पष्ट तथा दृढ़तापूर्वक बताते थे कि उन्होंने काफी देर पहले इन का चुनाव किया था और वह अपना सम्प्रदाय नहीं चलाना चाहते। एक बार उन्होंने एक साथी से कहा था कि जयप्रकाश नारायण जैसे लोगों के लिए मेरे मन में सम्मान तथा स्नेह है लेकिन वह मेरी देशी और विदेश नीति के कट्टर विरोधी हैं (दि. 9 जून, 1957 का पत्र)।

उनके संसदीय जीवन पर उस समय धब्बा लग गया जब 1959 में देश के इतिहास में पहली बार केरल में साम्यवादी दल की निर्वाचित सरकार को गिरा दिया गया। जवाहर लाल को शायद थोड़ी शर्म महसूस हुई लेकिन उन्होंने गृह मंत्री गोविन्द बल्लभ पंत को पूर्ण समर्थन दिया जो संसदीय मामलों में उनसे अधिक कुशल थे और कठोर प्रहारों को भी सहन कर सकते थे। तथापि जवाहर लाल पूर्ण कांग्रेसी नेता थे जिन्होंने इस अभियान का पूरा लाभ उठाया। संसद में उनसे कहा गया कि उन्हें देख कर आस्ट्रिया की मारिया टेरेसा की याद आती है जो प्रशिया, आस्ट्रिया तथा रूस द्वारा पौलेंड का विभाजन किये जाने पर रोई थी लेकिन जिसने लूट का अपना पूरा भाग ले लिया।

अपने व्यक्तित्व तथा निष्पाप संसदीय तौर-तरीकों तथा निस्संदेह अपनी बुद्धिमत्ता के फलस्वरूप वह संसदीय रंगमंच पर पूरी तरह छाये रहे लेकिन पांचवें दशक के अंतिम वर्षों में उनकी पकड़ ढीली हो गई क्योंकि भारत-चीन मित्रता का उनका सपना पूरा नहीं हुआ और संसद में विपक्ष में ऐसे तत्व उभर कर आ गये जो उनकी छवि बिगाड़ने में लग गये। कांग्रेसी नेताओं में उनके पुराने सहयोगी जे.बी. कृपलानी यद्यपि कड़वाहट से भर गये लेकिन उन्होंने अपने प्रहारों में बुद्धिमत्ता को नहीं छोड़ा। लेकिन कुछ अन्य लोग थे जो उनके व्यक्तित्व पर और राजनीतिक जीवन पर कीचड़ उछालने लगे।

उन्होंने कभी यह स्वीकार नहीं किया कि वह अब संसद तथा देश को अपने ढंग से नहीं चला सकते लेकिन वर्षों तक विश्राम न करने (उनका नारा था "आराम हराम है") के कारण उनका स्वास्थ्य अत्यंत खराब रहने लगा और वर्ष 1964 में शुरू में देश में साम्प्रदायिक विद्वेष के चिन्ह दिखाई देने पर उनका दिल बैठने लगा। साहसपूर्वक वह संघर्ष करते रहे। उन्होंने गर्वपूर्वक कहा, "मैं पूर्णरूपेण स्वस्थ हूं" लेकिन निस्संदेह उनका स्वास्थ्य गिरता जा रहा था। वर्ष 1964 में मई के अंतिम दिनों में संसद को जब उनकी मृत्यु का समाचार मिला तो सभी भौंचक्के रह गये। लोगों को इतना असीम दुःख हुआ कि लगा कि उस बादल रहित दिवस को सूर्य निकला ही नहीं।

"मृत्यु तो जब आयेगी तब आयेगी ही" दुःख इतना ही है कि विज्ञान और प्रौद्योगिकी में हाल ही में हुई महान प्रगति को देखने और उसका लाभ उठाने के लिए मैं नहीं रहूंगा।" क्या ही अच्छा होता कि इस समय सत्ता प्राप्त उनके उत्तराधिकारियों में उनकी भावुकता का दसवां भाग भी होता।

24

डा. रफीक ज़कारिया

कुछ स्मृतियां

27 मई, 1964 को हम बंबई में सचिवालय अर्थात सेक्रेटैरिएट बिल्डिग के छठे तल पर राज्य की कैबिनेट की एक बैठक में चल रही गरमागरम बहस में भाग ले रहे थे; स्वर्गीय वी.पी. नाइक सभा की अध्यक्षता कर रहे थे। अचानक मुख्य मंत्री के निजी सहायक कैबिनेट कक्ष में भागते हुए आये और श्री नाइक को एक पर्ची दी। वह उसे देखते ही फूट-फूटकर रोने लगे। हमने सोचा कि शायद उनका कोई निकट संबंधी नहीं रहा। श्री नाइक ने, जो सदैव सौम्य और संयमित रहते थे, अपने को संभाला और बताया कि पंडितजी नहीं रहे।

यह धक्का हम सभी के लिए असहाय था, ऐसी विपदा का हमें बिल्कुल ही आभास नहीं था। हमें महसूस हुआ जैसे हम अनाथ हो गये हों। नेहरू हमसे इतने अभिन्न थे कि कोई उनके अभाव में जीवन की कल्पना ही नहीं कर सकता था। नेहरू के बाद क्या होगा? वह केवल एक अकादमिक प्रश्न ही नहीं था, इसके गर्भ में एक खौफनाक भविष्य निहित था। अधिकांश भारतीय नेहरू के अभाव में भारत के बारे में सोचकर ही कांप उठते थे।

नेहरू की मेरी स्मृतियां चौथे दशक के अंत के मेरे स्कूल के दिनों तक फैली हैं, ये ब्रिटिश के विरुद्ध संवैधानिक संघर्ष और हिन्दुओं और मुसलमानों के मध्य राजनीतिक तनावों के दिन थे ! यहां तक कि एक स्कूली लड़का भी इनके प्रभावों से बच नहीं सकता था। मैं समाचार पत्रों का एक गंभीर पाठक था, राजनीतिक बातों में मेरी रुची थी। मैं जितना ही उसके बारे में पढ़ता उतना ही नेहरू की ओर आकर्षित होता जाता, उनकी उत्फुल्लता, उनकी युवा ऊर्जस्विता और सबसे अधिक उनकी संघर्षधर्मिता से। उन्होंने अपने विचारों और कार्यों से मुझे मंत्रमुग्ध कर दिया था, जैसाकि उन्होंने मेरी पीढ़ी के अन्य अनेक को कर दिया था।

अप्रैल, 1936 में उनकी आत्मकथा प्रकाशित हुई, इसने राजनीतिक हलकों में तहलका मचा दिया। अंग्रेजी के मेरे अध्यापक इस कृति के साहित्यिक मूल्य की अतीव

प्रशंसा करते थे, मैंने उसकी एक प्रति खरीदी और उसे आद्यन्त पढ़ डाला। यह एक दुष्कर कार्य था लेकिन मैंने उसे शब्दकोश की सहायता से पूरा पढ़ डाला।

संपूर्ण अंग्रेजी भाषी जगत में इस पुस्तक को एक उत्कृष्टतम साहित्यिक कृति माना गया था। यह भारतीय राष्ट्रवाद हेतु विदेशों में सद्भावना उद्भावक सिद्ध हुई। मेरी पीढ़ी के भारतीयों के लिए यह बाईबिल हो गई, हमने इसे बार-बार पढ़ा।

इसके पृष्ठों में हमारी आशाओं एवम् आकांक्षाओं की गाथा की अभिव्यक्ति में इतनी संवेदनपरकता थी कि इसको पढ़ने वाला कोई भी भारतीय इसके इन्द्रजालिक प्रभाव से बच नहीं सकता था। इसके पृष्ठों में उभरने वाला लेखक का शक्ति और गरिमा से युक्त व्यक्तित्व इतना अधिक तेजोमय था कि उसकी प्रभान्विति जबरदस्त थी। इसने पाठकों को लेखक की ओर वैसे ही खींचा जैसे बतख पानी की ओर आकर्षित होती है।

मैंने 1937 के प्रारंभ में नेहरू को साक्षात देखा था। इस अवसर पर बंबई विधान सभा के लिए कांग्रेस के प्रत्याशी के समर्थन में पूना कांग्रेस समिति द्वारा एक जनसभा का आयोजन किया गया था। नेहरू इसे 10 बजे रात्रि में संबोधित करने वाले थे किन्तु वे प्रातः 2 बजे ही आ पाये थे। इतने घंटे मेरे जैसे हजारों व्यक्ति रात्रीय प्रतीक्षा और जमीन पर बैठने से होने वाली असुविधा पर ध्यान दिए बिना उनकी उत्कंठा से प्रतीक्षा करते रहे और अन्तत्वोगत्वा जैसे ही वे पहुंचे हम सबने ऐसा महसूस किया कि जैसे हमारे अंदर बिजली की लहर सी दौड़ गई हो।

एक वर्ष बाद, मैंने नेहरू को ज्यादा करीब से देखा, इस्माइल कालेज यूनियन, बंबई के एक पदाधिकारी के रूप में मैंने उन्हें उसका उद्घाटन भाषण देने के लिए आमंत्रित किया था। उनका भाषण असम्बद्ध होने के बावजूद हमारे लिए प्रबोधक था, उसके पश्चात उन्होंने हमारे साथ चाय पी। मैं उनके समीप ही बैठा था और मैंने आशा से अधिक उन्हें आकर्षक पाया। वह प्रफुल्ल, स्नेहिल, मानवीय और जीवन्त थे—अमित्रतापूर्ण नहीं किन्तु असम्पृक्त थे। मुझे यह अवश्य स्वीकार करना चाहिए कि नेहरू से आमने-सामने मिलकर मुझे पूर्णता के विचित्र भाव की अनुभूति हुई; वह मेरी आशा से अधिक थे। एक ऐसे नायक जो नायक दिखते थे और नायक की तरह ही व्यवहार करते थे।

जब भी वे बंबई आये, मैंने कभी-कभी उन्हें सामाजिक कार्यक्रमों में भी देखा था। एक अवसर पर मैंने उन्हें स्वर्गीय एम.सी. छागला, जो राष्ट्रवादी मुसलमानों के नेता थे, के निवास स्थान पर भी देखा था। मेरे गवर्ननमैंट लॉ कालेज यूनियन का महासचिव चुने जाने के बाद मैंने 1941 में नेहरू को यूनियन को संबोधित करने के लिए आमंत्रित किया था। वह अपने कार्यक्रम के प्रति निश्चित नहीं थे किन्तु उन्होंने मुझसे टैगोर, जिनका कुछ मास पूर्व ही निधन हुआ था, को श्रद्धांजलि देने के लिए एक सभा आयोजित करने के लिए कहा था। उन्होंने उसमें भाग लेने का वचन दिया था, किन्तु भाग नहीं ले सके। वह इस

बात के लिए उत्सुक थे कि युवा पीढ़ी कवीन्द्र रवीन्द्र की शिक्षाओं को जाने। उन्होंने मुझसे कहा, "टैगोर हमारे अतीत और वर्तमान के बीच एक सर्वोत्तम सेतु हैं।" मेरी यूनियन ने सभा आयोजित की जो अत्यधिक सफल रही। मैंने गांधी जी को एक संदेश भेजने के लिए लिखा जिसे उन्होंने भेजा; वह उनकी विशिष्ट शैली में निबद्ध था, उसमें कहा गया था :

सेवाग्राम
वर्धा
24.11.1941

प्रिय ज़कारिया

आपका समारोह सफल हो और आप स्मारक के लिए अच्छी खासी धनराशि जुटा सकें।

भवदीय
एम.के. गांधी

नेहरू समान रूप से इकबाल को पसन्द करते थे और उनके काव्य में रुचि लेते थे; एक बार मैंने उनसे पूछा कि वे इकबाल के उतने आलोचक क्यों नहीं जितने वे जिन्ना के हैं। मैंने पूछा "क्या उनका नजरिया उतना साम्प्रदायिक नहीं जितना कि जिन्ना का है।" उन्होंने उत्तर दिया, "कदापि नहीं, इकबाल का राष्ट्रवाद से विरोध उनकी गैर-भौतिकतावादी सोच का और इसलाम के प्रति उनका प्रेम स्वधर्म के प्रति उनके आध्यात्मिक लगाव की निष्पत्ति है। जिन्ना अपने नजरिये में न तो गैर-भौतिकतावादी और न ही आध्यात्मिक हैं। वह एक मुकद्दमा लड़ रहे वकील मात्र हैं, उनमें इकबाल की तरह किसी मूल्य के प्रति लगाव या प्रतिबद्धता का अभाव है। निःसंदेह मैं इकबाल से इन मुद्दों पर असहमत हूं लेकिन मैं उनके दृष्टिकोण की इज्जत करता हूं। वह एक स्वच्छंदतावादी, एक स्वप्नजीवी, बहुधा यथार्थ से असम्पृक्त हैं किन्तु उनकी एक अद्वितीय सृजनात्मक प्रज्ञा है। वे हमें एक वायवी संसार में ले जाते हैं जो हमारे जीवन से भिन्न है। यह कुल मिलाकर एक किन्तु ग़ह समग्रतः पर आह्लादायक अनुभव है।"

बाद में 1946 में जब नेहरू जी की कृति *"दी डिस्कवरी ऑफ इंडियां"* प्रकाशित हुई तो मैंने देखा कि जो उन्होंने मुझे बताया इसकी पुष्टि इस कृति के पृष्ठों में होती है। इसमें उन्होंने लिखाः

> "अपनी मृत्यु के कुछ महीने पहले जब इकबाल बीमार थे तो उन्होंने मुझे बुला भेजा और मैंने उनके बुलावे को सहर्ष स्वीकार कर लिया। जब मैंने बहुत से मुद्दों पर उससे बात की तो मैंने महसूस किया कि मतभेदों के बावजूद भी हमारे बीच काफी कुछ

समान था और उनसे घुल-मिलकर बात करना कितना सरल था। वे अतीत के बारे में चिन्तन कर रहे थे और अनेक विषयों के बारे में सोच रहे थे और मैंने उनकी बातें सुनीं, मैं बहुत कम बोल रहा था। मैंने उनकी और उनकी कविता की प्रशंसा की और मुझे सुखद अनुभव हुआ कि वह मुझे पसन्द करते हैं और मेरे बारे में उनकी अच्छी राय थी। मेरे वहां से चलने के कुछ देर पहले उन्होंने मुझसे कहा, "जिन्ना और आप में क्या समानता है? वह राजनीतिज्ञ हैं और आप एक देशभक्त हैं।"

इसके बाद, मैंने अगस्त, 1942 में अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी की ऐतिहासिक बैठक में नेहरू जी को देखा था, वे क्रोध में थे — साम्प्रदायिक स्थिति का अंग्रेजों द्वारा लाभ उठाने के प्रति, आंग्ल-भारतीय नौकरशाही की असहयोग की नीति के प्रति, लिनलिथगो और लंदन में उनके लॉर्डों के प्रवंचक जैसे व्यवहार के प्रति उनमें क्रोध था। उन्होंने सत्ताधारियों के प्रतिकूल रवैये के विरुद्ध विद्रोह किया और भारत की स्वतंत्रता का आह्वान किया ताकि वे मित्र राष्ट्रों के उद्देश्यों में सक्रिय रूप से सहयोग दे सकें। उन दिनों अखिल भारतीय छात्र कांग्रेस से मेरा निकटतम संबंध था। हमें गांधी जी की सीधी कार्यवाही "करो या मरो" के आह्वान से अत्यधिक प्रेरणा मिली और नेहरूजी का ब्रिटिश साम्राज्य के प्रति लोगों को जाग्रत करने के प्रबोधन से भी हमें प्रेरणा मिली। हमने अपने कालेज में हड़ताल का आयोजन किया और हममें से कई छात्रों को गिरफ्तार किया गया और कुछ समय के लिए पुलिस हिरासत में रखा गया, हमारी भूमिगत गतिविधियां जारी रहीं और हममें से कुछ लोगों ने अपने सीमित साधनों से सहायता भी दी।

जून, 1944 में जब पिछला विश्व युद्ध जोरों पर था, मैं उच्च शिक्षा के लिए लंदन चला गया। यह V-I और V-II बमों का युग था, दूसरा मोर्चा हाल ही में खोला गया था, मित्र राष्ट्रों की विजय के लिए आशा की एक किरण प्रदीप्त हुई। यूनाइटेड किंग्डम पहुंचने के तुरन्त बाद मैं श्री वी. के. कृष्ण मेनन से मिला जो ब्रिटेन में साम्राज्य के केन्द्रीय स्थान से प्रायः अकेले ही भारत की स्वतंत्रता के लिए संघर्ष कर रहे थे। उनकी इंडिया लीग के माध्यम से मैंने देश में हो रही घटनाओं से स्वयं को परिचित रखा और इसकी गतिविधियों में भाग भी लिया। राष्ट्रवादी मुस्लिम दृष्टिकोण का प्रतिनिधित्व करते हुए मैं इसके मंच पर एक प्रमुख प्रवक्ता हुआ करता था। उन दिनों हमें सबसे अधिक कठिनाई हमारे राष्ट्रीय नेताओं, विशेषकर जवाहर लाल नेहरू की नजरबन्दी की थी। मैं लंदन मजलिस का अध्यक्ष और ग्रेट ब्रिटेन तथा यूरोप में भारतीय छात्र संघ समिति का सभापति चुना गया था और मैंने नेहरू जी की रिहाई के लिए बैठकें आयोजित की थीं। हमने ब्रिटेन के जनमत को अपने आन्दोलन के पक्ष में जाग्रत किया। मैंने इस संबंध में एक महान उपन्यासकार

इतिहासकार और विचारक—एच. जी. वैल्स को लिखा था उन्होंने शीघ्र ही यह उत्तर दिया :

13 हानोवर टेरेस, रीजेन्ट पार्क,
एन. डब्ल्यू 1,
टेलीफोन, पेडींगटन 6204
शनिवार, 17 फरवरी, 1945

प्रिय श्री ज़कारिया,

मैं इस बात से सहमत हूं कि पंडित नेहरू को तत्काल रिहा किया जाना चाहिए। उन्हें पुराने असंगत साम्राज्यवाद के विरुद्ध बोलने के लिए मुक्त किया जाना चाहिए। मैं आशा करता हूं कि वे असंगत हो चुके राष्ट्रीयवाद के विरुद्ध उतने ही जोश से बोलेंगे क्योंकि अब एक विश्व बन चुका है और सभी युद्ध, गृह युद्ध हैं।

शुभाकांक्षी,
एच.जी.

युद्ध के बाद , ब्रिटेन में लेबर पार्टी की विजय हुई। कुछ समय पूर्व वाइसराय, लार्ड वैवल ने कांग्रेस और लीग को एक साथ लाने का प्रयास किया परन्तु वह गतिरोध को दूर करने में असफल रहे। लंदन में हममें से कई व्यक्ति विशेषकर युवा आन्दोलन के सदस्य क्षुब्ध थे, अपने उद्देश्य प्राप्ति के लिए जहां तक संभव हो सका। हमने ब्रिटिश नेताओं का समर्थन प्राप्त करने का प्रयास किया। इस संबंध में हमने उनमें से कई नेताओं को लिखा। उनमें से एक प्रसिद्ध नाटककार और विचारक जार्ज बर्नाड शॉ भी थे। अपने उत्तर में उन्होंने लिखाः

एयोट सैन्ट लारेंस,
वैल्विन,
हर्टस, 2.4.1945

प्रिय श्री ज़कारिया,

मुझे भारत के बारे में विशेष जानकारी नहीं है जिससे कि मैं तुम्हारे प्रश्न का उत्तर दे सकूं।

भारत की समस्याएं भारतीयों द्वारा ही सुलझाई जानी चाहिएं। भारतीयों के संबंध मे मेरे विचारों को किसी विशेष रुचि अथवा प्राधिकार के, जिसे आप मौलिक कहते हैं, के रूप में नहीं लिया जाना चाहिए। ये विचार मेरी पुस्तकों में व्यक्त किए गए हैं। भारत को एक नवीनतम संविधान की आवश्यकता है और इससे बेहतर विधान बनाने के लिए जनरल वेवल द्वारा प्रस्तुत प्रारूप से कई उपयोगी सामग्री मिल सकती है क्योंकि प्रकृति को शून्य पसन्द नहीं है।

जार्ज बर्नाड शॉ

इसके तुरन्त बाद ही क्लीमेंट एटली के नेतृत्व में नई लेबर पार्टी की सरकार ने एक उच्च शक्ति प्राप्त कैबिनेट मिशन को भारत भेजा। इसने जो सांविधानिक योजना प्रस्तुत की जिससे विशेष रूप से प्रांतों को महासंघ से अलग रहने के लिए खंड के बारे में कांग्रेस और लीग के नेताओं के मध्य उग्र विवाद पैदा हो गया। अपने मामलों को ब्रिटिश सरकार के समक्ष रखने के लिए कांग्रेस ने नेहरू और सरदार बलदेव सिंह को लंदन भेजा। वे उसी विमान से आये जिसमें मुस्लिम लीग के प्रतिनिधि श्री जिन्ना और श्री लियाकत अली खां थे। वाइसराय लार्ड वैवल भी उनके साथ थे। उसी समय मैं व्यक्तिगत रूप से जवाहरलाल नेहरू के और निकट सम्पर्क में आया।

लन्दन मजलिस के अध्यक्ष के रूप में मैंने उनके लंदन दौरे के दौरान एक प्रतिनिधि मंडल का नेतृत्व किया और यद्यपि नेहरूजी अत्यंत व्यस्त थे, उन्होंने हमें एक घंटे से भी अधिक समय दिया। मैंने उन्हें बताया कि भारतीय छात्र विभाजन की बात से कितने व्यथित एवं दुःखी हैं और वे इसके परिणाम से भयभीत हैं। उन्होंने पहले सम्पूर्ण राजनीतिक स्थिति को हमारे सम्मुख स्पष्ट किया और तब हमें आश्वस्त किया कि कांग्रेस किसी भी प्रकार के विभाजन के लिए कभी सहमत नहीं होगी। उन्होंने बताया कि ऐसे समाधान को स्वीकार करने की अपेक्षा हम अंग्रेजों से अपनी स्वतंत्रता के लिए कई और वर्षों तक लड़ना पसन्द करेंगे। हम अत्यधिक संतुष्ट थे।

अतः उनके परवर्ती समझौते से लन्दन में हम में से कइयों को धक्का लगा। मैं अब भी विश्वास करता हूं कि यह सब उनके दृष्टिकोण या विचारधारा में परिवर्तन की अपेक्षा घटनाओं और परिस्थितियों के दबाव के कारण अधिक था, जिसके कारण इसे उन्हें स्वीकार करने के लिए बाध्य होना पड़ा। वस्तुतः मैं नहीं समझता कि इस योजना को जिसने साम्प्रदायिक समस्या को सुलझाने के बजाये उसे और अधिक उग्र बना दिया, को स्वीकार कर उन्होंने गांधी जी की तरह स्वयं को माफ किया होगा। वास्तव में, भारत विभाजन के एक वर्ष से भी पहले, उन्होंने 9 जुलाई, 1948 को भोपाल के नवाब को एक पत्र में लिखा था :-

> देश का विभाजन हुआ और हमने उसे स्वीकार कर लिया क्योंकि हमने सोचा कि शायद इस तरह से यद्यपि यह दुःखद था, हमें अपनी योजनाओं के अनुसार काम करने के लिए कुछ शांति का वातावरण मिले। शायद हमने गलत काम किया। अब इसका निर्णय करना कठिन है और फिर भी, उस विभाजन के परिणाम इतने भयानक रहे हैं कि कोई भी यह सोच सकता है कि अन्य कुछ भी इससे अच्छा होता। विभाजन हुआ, और इसके साथ अन्य विस्तृत परिवर्तन आये। अब विभाजन से पहले वाला भारत नहीं हो सकता। भारत में आंगिक परिवर्तन हो चुके हैं जिसकी वजह से पहले जैसा भारत नहीं हो सकता।
>
> "फिर भी, इतिहास की मेरी सारी समझ इस अप्राकृतिक स्थिति के विरुद्ध विद्रोह करती है जो भारत और पाकिस्तान में पैदा की गई है। मैं इसे अपने वर्तमान रूप

में लम्बे समय तक चलते हुए नहीं देख सकता। जो गलत और अप्राकृतिक था, वह किया गया और इसके भयानक परिणाम हुए। इसका कोई समाधान नहीं हुआ और संघर्ष जारी है। शायद ये संघर्ष उन लोगों की गलती या उनमें क्षुद्र हितों की वजह से हैं जो भारत या पाकिस्तान में सत्ता में हैं। तथापि, मैं महसूस करता हूं कि यह उससे अधिक गहरी है और वर्तमान संदर्भ में इन संघर्षों को सभी राजनेताओं की बुद्धिमत्ता समाप्त नहीं कर सकती क्योंकि ये इस स्थिति में ही अंतर्निहित हैं। अंततः मुझे इसमें कोई संदेह नहीं। भारत और पाकिस्तान परस्पर समीप आयेंगे और हो सकता है कि उनके बीच किसी तरह का कोई संघीय सम्पर्क या किसी भी अवस्था में कोई सामान्य विषय हो। शांति का कोई अन्य मार्ग नहीं है। विकल्प सदा खराब होती हुई स्थिति और सतत संघर्ष है।"

1950 में जब मैं लंदन से लौटने के बाद नवाब साहब के कानूनी सलाहकार के रूप में कार्य कर रहा था तो उन्होंने यह पत्र मुझे दिखाया था।

नेहरू जी धर्मनिरपेक्षता के मसीहा थे। विभाजन के बावजूद वे सर्वदा दो राष्ट्र सिद्धांत के विरुद्ध रहे। वे भारत में साम्प्रदायिक प्रतिक्रियावादी ताकतों का हमेशा दृढ़ता से विरोध करते रहे बावजूद इस तथ्य के कि पाकिस्तान के निर्माण ने उनके कार्य को और अधिक कठिन बना दिया था। वे भारत को एक धर्म निरपेक्ष राज्य बनाये रखने और भारत में रह गये मुसलमानों को परेशानी से बचाये रखने के लिए दृढ़चित्त रहे। उन्होंने लिखा है :-

"मुझे इसमें बहुत कम शक है कि भारत में रहने वाले मुसलमानों में विभाजन और उसके परिणामों को देखकर भारी परिवर्तन हुआ है, मैं महसूस करता हूं कि यह प्रक्रिया जारी रहेगी और मैं इसको प्रोत्साहित करना चाहता हूं।"

शायद वे मुसलमानों में एक अपनत्व की भावना भरने में सफल न हुए हों। वास्तव में उनकी बेटी इसमें कहीं अधिक प्रभावी सिद्ध हुई लेकिन उनकी तरफ से इसके लिए इच्छा का कभी अभाव नहीं रहा। वे उनकी पहचान को खोये बिना उन्हें मुख्यधारा में लाना चाहते थे।

1954 में, जब पाकिस्तान अरब देशों में भारत को इस्लाम के शत्रु के रूप में चित्रित कर रहा था, बम्बई में हम में से कुछ लोगों ने इस खतरनाक प्रचार का अधिक सकारात्मक ढंग से सामना करने के लिए भारत अरब सोसाइटी बनाने की सोची। सौभाग्य से इस संबंध में मुझे अग्रणी भूमिका दी गई थी। इस सोसायटी का उद्देश्य भारत अरब लोगों में प्रगाढ़ मैत्री संबंध बनाना था। नेहरू जी से इसका उद्घाटन करने के लिए प्रार्थना की गई और वे तुरन्त सहमत हो गये। उनके हृदय में अरब लोगों के लिए प्यार था और उन्होंने प्रायः विदेशी दासता से आजादी के लिए उनके संघर्ष के प्रति हमदर्दी प्रकट की थी। अरब नेताओं में उनके कई मित्र थे। इसलिए उन्होंने इस सोसाइटी की स्थापना का स्वागत किया।

बम्बई के टर्फ क्लब के विशाल प्रांगण में इंडो-अरब सोसाइटी का उद्घाटन समारोह आयोजित किया गया था। उसमें अरब देशों के प्रतिनिधियों सहित विशिष्ट व्यक्ति उपस्थित थे। इस समारोह में नेहरू जी ने धाराप्रवाह भाषण दिया, किन्तु उनका भारत-अरब संबंधों का विश्लेषण बिल्कुल स्पष्ट, गहन एवं विचारोत्तेजक था। इतिहास और भविष्य की आशा एवं विश्वासपूर्ण कल्पनाओं के बारे में उनके विचार सुनना आल्हादकारी अनुभव था। नेहरू जी शब्दों के जादूगर थे और उनके शब्द सीधे दिल में उतर जाते थे।

नासिर उन्हीं दिनों सत्तारूढ़ हुए थे और नेहरू जी इस युवा क्रांतिकारी की ओर मित्रता का हाथ बढ़ाने को उत्सुक थे। समय के साथ-साथ दोनों में बहुत गहरी मित्रता हो गई और जैसा कि नासिर ने बाद में सार्वजनिक रूप से स्वीकार किया था, 1954 में बांडंग सम्मेलन के अवसर पर उनकी भारत यात्रा उनकी राजनीतिक शिक्षा का एक नया मोड़ सिद्ध हुआ। इसके अतिरिक्त पिछले विश्व युद्ध के बाद अरब पुनर्जागरण काल के दौरान दो पक्षों—आंतरिक स्तर पर धर्मनिरपेक्षता और अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर गुटनिरपेक्षता—को विशेष महत्व मिला। इन दोनों सिद्धांतों को तीसरे विश्व के समक्ष रखने में नेहरू जी ने निर्णायक भूमिका निभाई। इन दोनों नेताओं के बीच सामीप्य-संपर्क के परिणामस्वरूप ही पाकिस्तान अरब विश्व के नव स्वतंत्र देशों को अपने इस्लामी घेरे में लाने में असफल रहा। इस दृष्टि से नेहरू जी ने नासिर को बहुत प्रभावित किया था। उनके मेहमान के रूप में 1956 में मेरी मिश्र यात्रा के दौरान उन्होंने यह बात मुझे बताई थी। समय बीतता गया और मैं नेहरू जी के और समीप आता चला गया। मैंने जब भी उनसे भेंट करने को कहा, उन्होंने कभी इनकार नहीं किया। अप्रैल, 1959 में मुझे नेहरू जी पर एक पुस्तक लिखने का विचार सूझा। मैंने सोचा कि नवम्बर में वे सत्तर वर्ष के हो जाएंगे और मेरा विचार था कि इस अवसर पर उनके जीवन, उनके आदर्शों और उपलब्धियों का मूल्यांकन किया जाए। किन्तु इस पुस्तक का स्वरूप क्या होगा? हाल ही में उनकी दो शानदार जीवनियां प्रकाशित हुई हैं। उनमें से एक माइकेल ब्रेशर लिखित तथा दूसरी फ्रैंक मोरेस द्वारा रचित है। उनके व्यक्तित्व के विभिन्न पक्षों एवं फलकों के कुछ और भी अध्ययन किए गए हैं। इसलिए मैंने और अधिक विस्तृत जीवनवृत्त तैयार करने का निश्चय किया जिसमें उनकी जीवनी के साथ-साथ विभिन्न राजनीतिक नेताओं और विचारकों द्वारा उनके मूल्यांकन को भी प्रस्तुत किया जाए। चूंकि मैं उन दिनों टाइम्स ऑफ इंडिया का एक नियमित स्तंभ लेखक था, इसलिए मैंने यह परियोजना इस अखबार के प्रबंधकों को प्रस्तुत कर दी। श्री शांति प्रसाद जैन चेयरमैन थे। उन्होंने इसे स्वीकृति दे दी और मैंने 'ए स्टडी ऑफ नेहरू' पर अपना काम शुरू कर दिया जो कि एक रोमांचकारी अनुभव सिद्ध हुआ।

मैंने जीवन के विभिन्न क्षेत्रों के ऐसे अनेक भारतीय और विदेशी व्यक्तियों से संपर्क किया जो नेहरू जी से व्यक्तिगत अथवा राजनीतिक रूप से अथवा किसी न किसी क्षेत्र में उनसे परिचित थे। यद्यपि हमारे पास अत्यंत सीमित समय था, किन्तु उनकी प्रतिक्रिया

बहुत ही उत्साहवर्धक रही। अपने देश के मामलों में अपनी सभी प्रकार की पूर्व-व्यस्तताओं के बावजूद नासिर और टीटो जैसे नेताओं ने सहयोग देना स्वीकार किया। ऐसे ही इंडोनेशिया के सुकार्णो ने भी सहयोग देना स्वीकार किया किन्तु, जैसा कि उनके विदेश मंत्री ने बताया, इंडोनेशिया में 'भीषण आंतरिक संकट' पैदा हो जाने के कारण अपना सहयोग नहीं दे सके। नासिर ने नेहरू का वर्णन करते हुए कहा है कि वे पारस्परिक सूझ-बूझ के सर्वोत्तम उदाहरण थे। कहते हैं कि सच्चा कलाकार कभी अपने विचारों की भूल भुलैया में नहीं खोता, वस्तुतः जिस प्रकार नेहरू ने अपने विचारों और आदर्शों को सक्षम अभिव्यक्ति दी है, उसी प्रकार वे उन्हें कार्य रूप देने और उनके लिये संघर्ष करने में भी सक्षम थे। नेहरू जी ने 1956 में ब्रिटेन-फ्रांस-इस्राइल द्वारा मिश्र पर आक्रमण के समय नासिर और उनके देश की जनता को जो समर्थन दिया उससे उन्हें साहस मिला और नासिर के शब्दों में "हमें जवाबी युद्ध करने की प्रेरणा मिली।"

टीटो ने अपने लेख में स्वीकार किया है कि नेहरू के व्यक्तिगत संपर्क में आने से पहले ही वे उनकी कृतियों से काफी प्रभावित हुए थे। 1954 के बाद उनकी कई मुलाकातें हुईं। टीटो ने उन दिनों की याद को ताजा करते हुए कहा है, "मैं जब भी नेहरू से मिला, उनकी चारित्रिक दृढ़ता, जिन्दादिली, ओजस्विता, भावी समस्याओं के प्रति उनकी दूरदृष्टि, उनके आकर्षक तौर-तरीकों और निजी संपर्कों में स्पष्टता से अत्यधिक प्रभावित हुआ। मैंने उनमें एक ऐसे निर्भीक व्यक्ति के दर्शन किए जो जीवन की वास्तविकताओं का साहस से सामना करता है और कठिनाइयों से विचलित नहीं होता। मैं उनके प्रकृति प्रेम, मानवतावाद और अपने परिवार के प्रति निष्ठा से भी प्रभावित हुआ। समस्याओं के समाधान में उनका रवैया वायवी अथवा रूढ़िवादी नहीं था वे कठिनाइयों पर साहस एवं सच्चाई से विजय पाने का प्रयास करते थे।

श्रीलंका के स्वर्गीय श्री एस. डब्ल्यू. आर. टी. भंडारनायके ने नेहरू जी को एक विश्वसनीय व्यक्ति पाया। उन्होंने जवाहरलाल की श्रीलंका यात्रा के दौरान हुई एक रोचक घटना का वर्णन किया। ये दोनों नेता राजधानी से बाहर एक छोटे से शहर कुरु नेगाले में मध्याह्न भोजन कर रहे थे जहां प्रशंसकों की भीड़ दरवाजों और खिड़कियों से हमें देखने के लिए तांक-झांक कर रही थी।" नेहरू जी श्री भंडारनायके की ओर मुड़े और बोले, "मैं खुले तौर पर बहुत से काम कर सकता हूं, किन्तु लोगों के सामने खा सकना मेरे लिए संभव नहीं है।" श्री भंडारनायके ने अनुभव किया कि "वे अत्यंत संवेदनशील, सम्पन्न, भद्र व्यक्ति है।"

घाना के क्वामे नक्रूमा ने नेहरू का वर्णन इन शब्दों में किया है, 'नेहरू मेरी कल्पना के अनुरूप, बल्कि उससे भी बढ़-चढ़ कर थे।' वे नेहरू जी से पहली बार लंदन में राष्ट्रमंडलीय देशों के प्रधानमंत्री सम्मेलन में मिले थे।

"हर मुलाकात के साथ-साथ मुझमें नेहरू जी के प्रति प्रशंसा का भाव बढ़ता चला

गया। कुछ दिनों तक तो उन्होंने चर्चाधीन विषय के संबंध में मुश्किल से एक-आध शब्द ही बोला, या इशारे अथवा सिर हिलाकर उसे समझते अथवा उससे सहमति जताते रहे। वे जब बोलते थे, तो हम भले ही उनकी बातों से सहमत हों या नहीं, उनकी बातें सदैव सुनने योग्य होती थीं। वे मितभाषी थे अपने विचारों को सुस्पष्ट और कम से कम समय में व्यक्त करते थे। मेरे विचार से यह एक बुद्धिमान व्यक्ति का लक्षण है।"

तीन शक्तियों में से एक ब्रिटेन के प्रधानमंत्री श्री हैरल्ड मैक्मिलन ने पहले तो हमें कुछ आशा दिलाई, किन्तु अंततः निराश किया। नई दिल्ली स्थित उनके उच्चायुक्त ने इस स्थिति को इस प्रकार निरूपित किया :

"कारण यह है कि निसंदेह जैसाकि आपने सोचा होगा, श्री मैकमिलन को श्री नेहरू के साथ अपने निजी संबंधों को ध्यान में रखकर, आपके दृष्टिकोण पर विचार करना है, आपको लंदन स्थित अपने प्रतिनिधि से श्री मैकमिलन का यह उत्तर मिल ही गया होगा कि ऐसा प्रतीत होता है कि वे इस विशेष अवसर पर किसी और तरीके की बजाय श्री नेहरू को एक निजी संदेश भेजना चाहेंगे।"

है न यह खास ब्रिटिश प्रतिक्रिया!

नेहरू परिवार के सदस्यों में से, उनकी पुत्री, इंदिरा गांधी को हम एक लेख देने के लिए सहमत नहीं कर सके, उन्होंने इसके लिए साफ इंकार कर दिया। उनके पति स्वर्गीय फिरोज गांधी, पहले इसके लिए सहमत हो गए थे लेकिन बाद में उन्होंने इसके विरुद्ध निर्णय लिया क्योंकि जैसाकि उन्होंने मुझे बताया, "यह मेरे और तुम्हारे लिये उलझन में पड़ने वाली बात है।" मैंने पूछा "मेरे लिए क्यों?" "क्योंकि मैं कुछ अप्रिय बातें कह सकता हूं।" विजय लक्ष्मी पंडित बहुत सहायक सिद्ध हुईं। उनकी प्रतिभाशाली पुत्री, नयनतारा सहगल ने "लाइफ विद अंकल" नाम उत्कृष्ट रचना लिखकर अत्यधिक सहायता की। दूसरी बहन कृष्णा हठीसिंह ने एक विवादास्पद लेख लिखा जिसे अमरीकी पत्रिका **टाइम्स** ने जब पुस्तक की पुनरीक्षा की तो विशेष रूप से प्रकाशित किया। एक अन्य व्यक्ति जिसे नेहरू परिवार का सदस्य माना जाता है, से भी मैंने संपर्क किया, वह हैं पश्चिम बंगाल की राज्यपाल पद्मजा नायडू, उन्होंने भी इंकार कर दिया और लिखा :

"मुझे खेद है कि मैं अपने निर्णय पर पुनर्विचार नहीं कर सकती, लेकिन मैं नहीं समझती कि इससे कुछ फर्क पड़ता है क्योंकि आप देखेंगे कि अनेक व्यक्ति उनके बारे में लिखने के लिए उत्सुक हैं।"

भारतीय नेताओं द्वारा समस्त योगदान में से लाल बहादुर शास्त्री ने एक उत्कृष्ट लेख लिखा था। उन्होंने एक चुनाव से संबंधित घटना के बारे में लिखा था। चूंकि **ए स्टडी ऑफ नेहरू** में इसके प्रकाशन के बाद यह लेख अनेक भारतीय और विदेशी पत्रिकाओं

में पुनः उद्धृत किया गया। यह न केवल प्रवाहशील था बल्कि सारवान और संतुलित था। लेकिन इसे भेजते समय श्री शास्त्री ने मुझे लिखाः

> "मैं नहीं समझता कि ये कुछ मनोरंजक घटनाएं आपकी आवश्यकता को पूरी करेंगी? यदि आप इसे अपने प्रकाशन के लिए उचित न समझें तो कृपया इसे, मुझे लौटा दें।"

कितनी विनम्रता है और वह भी उस व्यक्ति में जो नेहरू के बाद भारत के प्रधानमंत्री बने।

मैंने श्री सी. राजगोपालाचार्य, जिन्हें राजाजी के नाम से अधिक जाना जाता है, को भी कुछ लिखने के लिए लिखा, उन्होंने यह कहते हुए इंकार कर दिया कि वे नेहरू की नीतियों के विरुद्ध हैं। वास्तव में उस समय तक उन्होंने अपनी स्वतंत्र पार्टी बनाने का निर्णय ले लिया था, जिसने बाद में भारतीय राजनीति में दक्षिण, पंथी शक्तियों की शुरुआत की।

लेकिन अपने विशिष्ट अंदाज में राजाजी ने कहा कि वह स्थायी रिकार्ड में नेहरू के विरोधी के रूप में नहीं आना चाहते हैं क्योंकि वह उन्हें बहुत पसंद करते हैं।

बाद में नेहरू के निधन पर राजाजी ने इस बात की पुष्टि की, जब उन्होंने अपनी साप्ताहिक पत्रिका **स्वराज्य** (6 जून, 1964) में लिखाः

> "मुझसे ग्यारह वर्ष छोटा, ग्यारह गुणा अधिक महत्वपूर्ण, एक सौ ग्यारह गुना राष्ट्र को अधिक प्रिय ··· मैं इन दस वर्षों में श्री नेहरू से उन बातों पर झगड़ता रहा जिन्हें मैं सार्वजनिक नीतियों में गलतियां समझता था। लेकिन मैं जानता था कि केवल वह ही उन्हें ठीक कर सकते हैं ··· वह मुझे अपनी लड़ाई में पहले से कमजोर छोड़कर चला गया है।"[1]

ए स्टडी ऑफ नेहरू का संपादन कार्य अत्यंत परिश्रमजनक कार्य था। अनेक लेख थे जिन्हें दुबारा लिखना था। अन्यों को भिन्न-भिन्न खण्डों में रखने के लिए वर्गीकृत करना था और कुछ अन्यों को काफी संक्षिप्त करना था। आधुनिक काल के महान अंग्रेजी सुधारक लॉर्ड बॉयड ओर का भी इसमें योगदान था, उन्होंने मुझे लिखा कि "कृपया मेरी लिखाई के कारण हुई गलतियों को अथवा लेख में जो भी गलतियां हों उन्हों सही कर दें।" लेकिन लेबनान के तत्कालीन विदेशमंत्री और संयुक्त राष्ट्र संघ के भूतपूर्व अध्यक्ष डा. चार्ल्स मलिक ने आवरण पत्र में मुझे यह कड़ी हिदायत दी, "कृपया मुझसे पूर्व लिखित अनुमति लिए बिना लेख में कोई परिवर्तन न करें।" पूर्व अनुमति लेने का समय नहीं था और इसलिए अनिवार्य रूप से कुछ स्वतंत्रता लेनी पड़ी। इस कारण कुछ व्यक्तियों, विशेष रूप से महाराष्ट्र के तत्कालीन राज्यपाल श्रीप्रकाश ने रोष प्रकट किया।

उन्होंने मेरे इस कार्य को "कलाकृति ध्वसंन का कार्य" बताया, अनुभवी वृद्ध साम्यवादी नेता, श्री एस.ए. डांगे भी मुझसे अप्रसन्न थे। मुझे उनके लेख को छोटा करना पड़ा था। लेकिन आमतौर पर सभी लेखकों ने मेरे सुधारों की सराहना की और कुछ ने मुझे धन्यवाद भी दिया। परिणाम समग्र रूप से अच्छा रहा।

मेरा अपने योगदान के रूप में नेहरू के जीवन पर 76 पृष्ठों का एक निबन्ध था। इतने विशाल विषय को संक्षिप्त में प्रस्तुत करना सुगम नहीं था। तथापि मुझे तब और भी खुशी हुई जब लंदन के **टाइम्स लिटरेरी सप्लीमेंट** ने इसका विशेष उल्लेख किया और इसकी प्रशंसा की कि "यह सुस्पष्टता और प्रत्यक्ष ज्ञान का नमूना है तथा इसमें झूठी प्रशंसा नहीं थी" और सुझाव दिया कि "इसे अलग से प्रकाशित किया जाना चाहिए।" यह विशिष्ट कथन कि "झूठी प्रशंसा नहीं थी" का मैंने इस पुस्तक के समेकन और संपादन के समय पूर्ण अनुसरण किया है। नेहरू के कुछ प्रशंसकों का आलोचनात्मक भाग पसंद नहीं था, उनमें से एक उनकी पुत्री इंदिरा गांधी थी। उन दिनों वे अपने पिता की आलोचना के प्रति काफी संवेदनशील थीं। उन्होंने मुझे दो टूक शब्दों में कहा :

"कितनी अभिनंदनीय पुस्तक है।"

"लेकिन यह अभिनंदनीय पुस्तक नहीं है," मैंने उत्तर दिया :

"यह आपके पिता के बारे में बहुमुखी मूल्यांकन है जिससे वह अपने समय के एक महानतम व्यक्ति के रूप में उभर कर सामने आते है।"

उन्होंने कुछ लेखों, विशेष रूप से अशोक मेहता और एस.ए. डांगे के लेखों पर आपत्ति की जो बाद में उनके निकटस्थ विश्वसनीय व्यक्ति बन गए, उन्होंने डा. खरे के लेख को असभ्य माना।

श्रीमती गांधी की प्रतिक्रिया पूर्णतः उचित नहीं थी, तीन-चौथाई पुस्तक प्रशंसा से परिपूर्ण थी, केवल एक चौथाई में ही आलोचना थी। अधिकांश संवीक्षकों ने मेरे प्रयासों की प्रशंसा की। अपने देश में, फ्रेंक मोरेस, जो भारतीय संपादकों में प्रमुख हैं, ने पुस्तक की "एक व्यक्ति के व्यक्तित्व, चरित्र और जीवन के आकलन का विवेकपूर्ण प्रयास" के रूप में प्रशंसा की, विदेश में **दि इकोनोमिस्ट**, लंदन ने एक पूरे पृष्ठ में संवीक्षा करते हुए इसके "'संतुलन" की प्रशंसा की और **दि न्यूयार्क टाइम्स** में लिखा कि आलोचनात्मक भाग ने इस पुस्तक को "वस्तुनिष्ठ और प्रामाणिक" बनाया है।

नेहरू आलोचनात्मक भाग से परेशान नहीं हुए थे उन्होंने उसे स्वीकार कर लिया। उन्होंने मुझे कहा "इन्दु मेरे बारे में की गई किसी आलोचना के प्रति संवेदनशील है लेकिन तुम्हारी पुस्तक बुरी नहीं है।" उन्होंने मुझसे कोई शिकायत नहीं की, उनके अधीन मैं कांग्रेस सरकारी ढांचे में एक उच्च स्थिति से दूसरी उच्चतर स्थिति में पहुंचता रहा और अंत तक उनका विश्वासपात्र रहा। इसी प्रकार श्रीमती गांधी का भी विश्वासपात्र रहा, जब बाद में उन्होंने महसूस किया कि मेरी मंशा गलत नहीं थी।

मैंने अंतिम बार नेहरू को उनके निधन से दस दिन पहले बंबई के शण्मुखानंद हाल में हुई अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी की बैठक में देखा था। चर्चा का मुख्य विषय कश्मीर था। शेख अब्दुल्ला को तभी जेल से रिहा किया गया था और ऐसा प्रतीत हो रहा था कि पाकिस्तान सभी कार्यों को सुगमता से संपन्न नहीं होने देना चाहता था। एक सदस्य के रूप में मैं भी बैठक में बोला और एक कविता पढ़ी जिसने सभी दर्शकों को भावुक कर दिया। नेहरू ने मुझे मंच पर बुलाया और बधाई दी। लाल बहादुर शास्त्री, जिन्हें नेहरू ने "कामराज नीतियों का शिकार होने" अथवा "सत्ता से निकाले जाने के बाद" बिना किसी विभाग के मंत्री के रूप में मंत्रिमंडल में वापिस ले लिया था, उनके साथ बैठे थे। जैसे ही मैं मंच से जाने लगा तो शास्त्री ने मुझसे कविता मांगी।

"यह उर्दू में लिखी है, महोदय" मैंने कहा।

"आप कहना क्या चाहते हैं? मैं तुमसे बेहतर उर्दू पढ़ सकता हूं। यह मत भूलो कि मैं कायस्थ हूं।"

मैंने विनम्रता से वह कागज दे दिया, जिसका मुझे उपयुक्त लाभ मिला, जब शास्त्री नेहरू के निधन के बाद प्रधानमंत्री बने तो उन्होंने वर्ष 1965 के भारत-पाक युद्ध को देखते हुए संयुक्त राष्ट्र संघ में भारत के प्रतिनिधि के रूप में मुझे भेजा।

अयूब द्वारा अकारण आक्रमण करने का एक कारण नेहरू का निधन था। अन्य देशों के समान पाकिस्तान ने भी यह महसूस किया कि भारत इस विपत्ति को सहन नहीं कर पाएगा, लेकिन जैसा कि इकबाल ने कहा है :

कुछ बात है कि ऐसी, हस्ती मिटती नहीं हमारी,
सदियों से दुनियां करती रही है साजिश।

सोवियत राजदूत को मि. ख्रुश्चेव के आलेख की आशा थी किन्तु किसी कारण से यह नहीं मिला, अपितु मुझे एक सुविज्ञात सोवियत बुद्धिवादी व्यक्ति इल्या एहरेन बर्ज से एक बहुत ही अवबोधक लेख मिला, उस बेहतरीन सोवियत लेखक ने "नेहरू के शब्दों में यदाकदा कड़वाहट" और उनकी उदास मुस्कान के बारे में टिप्पणी करते हुए उसकी तुलना चेखव के "टीडियस स्टोरी" के नायक से की थी।

अमरीका के राष्ट्रपति श्री आइजनहावर ने कहा कि वे नेहरू को पसंद करते हैं किन्तु उनके बारे में कुछ लिख नहीं सके, तथापि कई अन्य अमरीकी गणमान्य व्यक्तियों ने अपने आलेख भेजे। श्री अडलाई स्टीवेंसन ने एक लघु संरचना लिखी, यह एक स्तुत्यात्मक कविता थी। श्रीमती इलिनोर रूजवेल्ट ने भी बहुत संक्षेप में लिखा किन्तु भारतीय नेता की उन्होंने हार्दिक प्रशंसा की थी। अपनी पुस्तक "आन माई ओन" में उन्होंने अपने हाईड पार्क आवास पर दिए गए मध्यान्ह भोजन के अवसर पर जब उनके कई पोते पोतियां तथा मित्र वहां उपस्थित थे, नेहरू के बारे में लिखा "एक असाधारण व्यक्तित्व

वाले प्रधानमंत्री अपने लम्बे, गहरे रंग के कोट में थे और उनकी पतलून टखनों पर कसी हुई थी, वे तरुणों को देखकर प्रसन्नचित्त लग रहे थे और भोजन के बाद उनसे देर तक बात करने के लिए वे निवास कक्ष के फर्श के बीचोंबीच पैर पर पैर रख कर बैठ गए। वे उनसे प्रश्न पूछने के प्रति उतने ही उत्सुक लग रहे थे जितने कि वे तरुण उनके विचार जानने के उत्सुक थे और यह वह दोपहर थी, जिसे मैं चिरकाल तक याद रखूंगी।

न्यायाधीश विलियम डगलस को नेहरू मनु के समकक्ष लगे, जब मैंने उनके सतरवें जन्मदिन पर "ए स्टडी ऑफ नेहरू" की एक प्रति भेंट की तो मनु के साथ उनकी तुलना में नेहरू को गुदगुदा दिया। उन्होंने टिप्पणी की कि उन्होंने कभी यह कल्पना नहीं की थी कि महान विधि विधायक के साथ उनकी कुछ भी समानता है। मैं नहीं समझता कि वे विशेष रूप से मनु को पसंद करते थे।

श्री एटली ने अपना आलेख मुझे भेजने में काफी तत्परता दिखाई। एक पत्र में उन्होंने कहा, "यदि आप समझते हैं कि मुझे "मि." शब्द लगाना चाहिए था, तो लगा दें किन्तु एक विश्व स्तर के व्यक्तित्व के संबंध में कुछ लिखते समय यह हमेशा अटपटा सा लगता है।" मैंने एटली के सुझाव को महत्व दिया और "ए स्टडी ऑफ नेहरू" में इसका अनुसरण किया, और नेहरू के नाम के आगे या पीछे कुछ नहीं लगाया।

सर विंस्टन चर्चिल हमारे स्वतंत्रता संग्राम काल के दौरान नेहरू के एक कटु आलोचक थे। पहली बार 1950 में वे मिले थे और खुलकर बातें हुई थीं। विगत का स्मरण करते हुए चर्चिल ने नेहरू से पूछा कि ब्रिटिश जेलों में उन्होंने कितना समय बिताया "लगभग दस वर्ष" नेहरू ने उत्तर दिया। चर्चिल ने कहा, "इससे आपके मन में हमारे प्रति बहुत कड़वाहट आनी चाहिए थी। अपने दिल में आपको हमसे नफरत करनी चाहिए थी।"

"बिल्कुल,नहीं" नेहरू ने उत्तर दिया, "हमें एक ऐसे नेता नेतृत्व प्रदान कर रहे थे जिन्होंने हमें दो बातें सिखाई हैं, किसी से कभी भय मत करो और किसी से कभी नफरत नहीं करो। चूंकि हम आपसे भयभीत नहीं थे। अब हम आपसे नफरत भी नहीं करते।"

सर विंस्टन के साथ इस सुखद मुलाकात के बारे में जानने के बाद मेरा उत्साह ए स्टडी आफ नेहरू के लिए एक आलेख के लिए उनसे मिलने के लिए बढ़ा। उनके निजी सचिव ने उत्तर दिया,

"सर विंस्टन चर्चिल ने मुझे आपके पत्र के लिए आपको धन्यावाद देने के लिए कहा है। उन्हें वास्तव में खेद है कि वे आप के कहे मुताबिक लेख नहीं लिख पाये क्योंकि अब उन्होंने अपनी साहित्यिक गतिविधियां बंद कर दी है। फिर भी वे आपके प्रति आभारी हैं कि आपने उन्हें पत्र लिखने के बारे में सोचा।"

क्या चर्चिल ने जानबूझकर अपना आलेख नहीं दिया या उनके द्वारा बताया गया कारण सही था? जबसे वे दोनों राष्ट्रमंडलीय प्रधानमंत्री सम्मेलनों में निकट सम्पर्क में

आये, उनके संबंधों में काफी सुधार हुआ। भारत के स्वतंत्रता संग्राम के प्रति चर्चिल के भाव के बावजूद नेहरू ने चर्चिल को हमेशा एक "बड़ा आदमी" माना, किन्तु चर्चिल ने पहले नेहरू और अन्य कांग्रेसी नेताओं को "तुच्छ लोग" कहा था। उन्होंने समय बीतने पर महसूस किया कि वे कितने गलत थे। इलस्ट्रेटिड वीकली ऑफ इंडिया में हाल ही के एक लेख में मेरे मित्र श्री के. नटवर सिंह जो भारत के विदेश राज्य मंत्री थे, में 21 फरवरी, 1955 को चर्चिल द्वारा नेहरू के लिखे गए पत्र के एक अंश को उद्धृत किया है: "मैं अजन्ता गुफाओं की कलाकृतियों की आकर्षक पुस्तक भेजने के लिए आपके प्रति कृतज्ञ हूं। पुनःप्रस्तुतीकरण बहुत सुन्दरता से किंया गया है और ऐसी सुन्दर पुस्तक को प्राप्त करके मैं वास्तव में बहुत खुश हूं। मुझे इस बात से हमेशा प्रसन्नता होती है कि यह मुझे आपसे प्राप्त हुई है और जो कुछ हुआ उसके बावजूद हमारे व्यक्तिगत संबंध मधुर हैं। मैं आशा करता हूं कि आप "लाइट ऑफ एशिया" शब्दावली के बारे में सोंचेगे। मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि व्यक्ति की स्वतंत्रता एवं गौरव को आदर्श बनाकर भारत को नेतृत्व प्रदान करने वाला आपके सिवाय समूचे एशिया में ऐसा कोई व्यक्ति नहीं है।

लार्ड मांटगोमरी के साथ भी यही हुआ था। मुझे दिए गए अपने उत्तर में वे लगभग अशिष्ट थे :-

"मुझे खेद है कि जैसा आपने कहा मैं नहीं कर सकता। मैं जीवित लोगों को श्रद्धांजलि नहीं दिया करता।"

तथापि, दो वर्षों से भी कम समय के बाद अपनी पुस्तक "नेतृत्व का मार्ग" में मौन्टी ने एक पूरा अध्याय नेहरू को समर्पित किया और एक बेहतरीन श्रद्धांजलि प्रस्तुत की। जिसमें उनकी तुलना लिंकन से करते हुए कहा था — "यदि कोई व्यक्ति कभी महानता का प्रमाण चिन्ह हो सकता है तो वह नेहरू है।"

इसी प्रकार लेडी आस्टर जो ब्रिटिश राजनीति में उल्लेखनीय हस्ताक्षर, जन्म से अमरीकी और विवाह से ब्रितानी थी और जो स्तालिन और चर्चिल दोनों को प्रसन्न रखने में सफल रही, ने लिखा,

"मैं समझती हूं कि मैं कोई लेखक नहीं हूं इसलिए मैं संभवतः श्री नेहरू के बारे में आपकी पुस्तक के लिए कोई लेख न लिख सकूं। काश मैं उनपर लेख लिख सकती। किसी दिन भारत देखना चाहती थी। मेरी बहुत तीव्र इच्छा है। गांधी मेरे प्रिय थे।"

श्री एस. के. पाटिल जो बम्बई राजनीति के प्रभु और सरदार पटेल के एक अग्रणी सहायक थे, ने पहले तो अपना योगदान देना स्वीकार किया किन्तु बाद में पीछे हट गए। मुझे लिखे एक पत्र में उन्होंने कहा, मेरे कुछ मित्रों, जिनके साथ मैंने परामर्श किया था, का विचार है कि वास्तविक प्रस्तुति में मेरा आलेख कुछ नीतियों के प्रति किंचित

आलोचनात्मक होगा। वर्तमान परिस्थितियों में यह उचित नहीं है कि मैं किसी तरह का कोई विवाद पैदा करूं। काफी विचार-विमर्श के बाद मुझे परामर्श दिया गया है कि जबकि मैं उनका मंत्रिमंडलीय सहयोगी हूं मुझे उनके बारे में लेख लिखने का विचार छोड़ देना चाहिए। यह नेहरू के सामंजस्य का एक उदाहरण है कि उनके मंत्रिमंडल में उनके आलोचक भी सहज रूप से बने रहे।

मैं यह बात कभी नहीं समझ सका कि डा. जाकिर हुसैन जो उनकी सुपुत्री के प्रधानमंत्रीकाल के दौरान, भारत के राष्ट्रपति बने, ने नेहरू पर लिखने से इंकार क्यों किया, उन्होंने कहा, वे "इस अवसर के अनुकूल कुछ भी नहीं दे सकते।"

प्रसिद्ध वैज्ञानिक जे.बी.एस. हाल्डेन से जब हमारे प्रतिनिधि लेख के लिए मिले तो वे भड़क उठे। उन्होंने लिखा, मुझे खेद है कि दिल्ली में आपके प्रतिनिधि के व्यवहार के प्रति मुझे विरोध करना पड़ा। उन्होंने विश्वविद्यालय से मेरा एक व्याख्यान सुना और फिर मुझे नेहरू के बारे में एक लेख लिखने के लिए कहा, जब कि अन्य लोग व्याख्यान के विषय परं चर्चा कर रहे थे। मैं विश्वविद्यालयीय अध्यापन में प्रेस के व्यक्ति का यह दखल सह नहीं सकता और लेख के बारे में कार्य आरंभ करने पर विचार करने से पहले मैं क्षमा याचना के लिए कहूंगा।" मैंने क्षमा मांगी, किन्तु फिर भी जैसे कि हाल्डेन एक सनकी व्यक्ति थे उन्होंने हमें कृतार्थ करने से इंकार कर दिया।

25

श्रीमती रेणुका राय

पंडित नेहरू और लोकतांत्रिक मूल्य

जवाहरलाल नेहरू उस युग के महापुरुषों में सर्वाधिक देदीप्यमान हैं जबकि भारत में कई विलक्षण प्रतिभा वाले नेताओं का उदय हुआ था। वे कल्पनाशील एवं आदर्शवादी होने के साथ-साथ व्यावहारिक सूझबूझ के धनी भी थे जिसकी झलक हमें उस समय मिली जबकि वह ऐसे देश के प्रधानमंत्री के पद पर आसीन हुए जो सदियों से विदेशी शासकों की दासता की बेड़ियों में और उनकी चाटुकारिता में जकड़ा हुआ था। गांधी जी के आगमन के फलस्वरूप ही सभी वर्गों और व्यवसायों के लोगों के रुख और दृष्टिकोण में परिवर्तन हो सका जिसके परिणामस्वरूप अहिंसा और असहयोग के मार्ग पर चल कर हमारे लिए स्वाधीनता प्राप्त करना सम्भव हो सका।

गांधी जी द्वारा किए गए आन्दोलन में भाग लेने के लिए मैंने वर्ष 1920 में कालेज छोड़ा और जब मैं पहली बार पंडित जवाहरलाल नेहरू से मिली तो यह देखकर हतप्रभ रह गई कि उनके जैसे ऊंचे आदर्शों वाले व्यक्ति भी व्यावहारिक दृष्टिकोण की जरूरत महसूस करते थे। "पंडित नेहरू और संसद" के बारे में हम सभी ने बहुत कुछ कहा और लिखा है। वस्तुतः उन्होंने ही भारत में संसदीय लोकतंत्र की स्थापना की। किन्तु क्या हमने इस बात पर भी उतना गौर किया कि दूर-दराज के गांवों में बसी भारत की आम जनता वोट देने के अधिकार के महत्व को पूर्णतः समझती थी, जो देश के स्वतंत्र होने पर उसे विरासत के रूप में प्राप्त होने वाला था।

बंगाल के आरंभिक स्वदेशी आन्दोलन के सक्रिय नेताओं के पद-चिन्हों पर चलते हुए देशबन्धु सी.आर. दास और अन्य नेता जनसाधारण के पास गये और लोगों को यह समझाया कि स्वतंत्रता की मांग वोट देने के अधिकार और लोकतांत्रिक ढांचे में भाग लेने के अधिकार पर आधारित होनी चाहिए। देश के स्वतंत्र होने से बहुत पहले पंडित नेहरू ने ही सी.आर. दास, सरदार पटेल, राजाजी और अन्य नेताओं के साथ देश के गांव-गांव जाकर लोगों को यह बात समझायी थी कि स्वतंत्र होने पर वे देश के निर्माण में सक्रिय रूप से भाग ले सकेंगे क्योंकि अपने स्वतंत्र देश में वे वोट देने और अपना प्रतिनिधि चुनने

के अधिकार का प्रयोग कर सकेंगे। जब स्वतंत्र भारत में वयस्क मताधिकार के आधार पर पहले आम चुनाव हुए तो देश भर के गांवों और कस्बों से पुरुष और महिलाएं दोनों ही जिस प्रकार अपना वोट डालने दूर-दूर तक गए, उसे देख कर न केवल हम देशवासी बल्कि विश्व के अन्य देश भी चकित रह गए। सम्पूर्ण जनमानस इस भावना से ओतप्रोत था कि वे स्वतंत्र और स्वाधीन भारत के निर्माण में समान रूप से भागीदार बन गए हैं और वोट देने का अधिकार उनकी अनमोल निधि है।

वयस्क मताधिकार के आधार पर हुए इस पहले आम चुनाव में भी भारत की विशेष रूप से गांवों की 60% निरक्षर महिलाएं, जिनमें से अनेक आज भी निरक्षर हैं, भारी संख्या में अपना मत डालने पहुंचीं, यह स्थिति इंग्लैंड की तत्कालीन स्थिति से एकदम विपरीत थी। वहां महिलाओं को मत देने का अधिकार दिलाने के संघर्ष में जुटे लोगों को जेल तक जाना पड़ा था। फिर भी साक्षर और शिक्षित होते हुए भी अपने इस अधिकार की उपेक्षा की थी। तब 1922 में मैं लंदन स्कूल ऑफ इकनामिक्स की छात्रा थी, मेरे स्कूल के कुछ प्रोफेसर और लैक्चरर लेबर पार्टी के उम्मीदवार थे और महिलाओं से उनके लिए वोट मांगने वाले छात्रों में मैं भी थी। जब हम लंदन में घर-घर इस प्रयोजन से गए तो हमने देखा कि महिलाएं मत डालने के प्रति उदासीन थीं और उनका कहना था कि उनके पास वोट डालने के लिए समय नहीं है। कुछ मत डालने के लिए तैयार हुईं पर केवल इसलिए नहीं कि हमने उन्हें इसके लिए राजी कर लिया था बल्कि इसलिए कि हम उनकी ओर से उनके शिशुओं की देखभाल करने के लिए तैयार हो गये थे। इसके विपरीत, 1952 में पहले आम चुनाव के दौरान भारत के ग्रामीण क्षेत्रों की महिलाओं के मत डालने के उत्साह को देखकर मैं हैरान रह गई। यहां मैं यह भी बताना चाहूंगी कि कुछ पुरुष मतदाता तब मेरे पास आए थे और उन्होंने नाराजगी जाहिर करते हुए यह कहा कि क्या आप जानते हैं कि एक उम्मीदवार ने हमारे वोट खरीदने की पेशकश की है? महात्मा गांधी, देशबन्धु सी.आर. दास, जवाहरलाल नेहरू, लाला लाजपतराय, मौलाना अबुल कलाम आजाद आदि नेताओं ने हमें बताया है कि हमारा वोट अमूल्य निधि है, फिर ये उम्मीदवार यह आशा लगाए क्यों बैठे हैं कि हम पैसे लेकर वोट का सौदा कर लेंगे? हमारे नेताओं ने, जिनमें पंडित नेहरू ने प्रमुख भूमिका निभायी थी, आजादी मिलने से पहले ही जनता में ऐसी भावना भर दी थी।

अब हमारे लिए यह जान लेना आवश्यक है कि विधान-मंडलों — संसद और अन्य प्रतिनिधि संस्थाओं में जनता के प्रतिनिधियों के आचरण पर कितना कुछ निर्भर करता है। पंडित नेहरू ब्रिटेन जैसा संसदीय लोकतंत्र ही अपनाने के इच्छुक थे परन्तु उन्होंने यह स्वीकार किया कि इस प्रणाली को समुचित रूप से अपनाने के लिये द्विदलीय व्यवस्था का होना अत्यंत आवश्यक है। भारत को आजादी दिलाने का श्रेय उस कांग्रेस द्वारा चलाए गये आन्दोलन को जाता है जिसमें पूरे देश के विभिन्न दृष्टिकोण के लोगों के

प्रतिनिधि शामिल थे। इसलिए यह उचित समझा गया कि जिसके माध्यम से देश को आजादी मिली है, उसी के माध्यम से देश का विकास किया जाना चाहिए। आजादी का आनंद भोगने वाले लोगों में दो दशकों तक या इससे भी अधिक समय तक यह गांधीवादी भावना और दृष्टिकोण कायम रहा।

इस तथ्य के बावजूद कि देश में केवल एक ही दल प्रमुख था, हम संसदीय लोकतंत्र कायम करने में सफल रहे। यह इसलिए संभव हुआ कि पंडित नेहरू ने विपक्षी दलों की आवश्यकता महसूस की और अपने जीवनकाल में उन्होंने संसद में एक सुदृढ़ विपक्ष के विकास में पूर्ण सहयोग दिया। अपना विरोध करने वाले विपक्षी नेताओं के प्रति पंडित नेहरू का रवैया पूर्णतः द्वेषरहित होता था और वे सदैव यही चाहते थे कि इन नेताओं को आगे आने और अपनी प्रतिभा दिखाने का अवसर मिलना चाहिए। मुझे याद है जब मैं कांग्रेस दल की कार्यकारिणी की सदस्या थी तो कुछ सदस्यों ने कामथ अथवा राममनोहर लोहिया जैसे विपक्ष के नेताओं के व्यवहार के प्रति पंडितजी से विरोध प्रकट किया था परन्तु उन्होंने यह कहा कि भारी बहुमत वाले कांग्रेस दल के द्वारा इन छोटे-मोटे मामलों में उनके विरुद्ध कोई कार्यवाही करने के मैं विरुद्ध हूं। वैसे तो पंडित जी का व्यवहार सभी के प्रति नम्रतापूर्ण होता था, किन्तु विपक्ष के प्रति उनका व्यवहार अपेक्षाकृत अधिक नम्रतापूर्ण होता था। यद्यपि बहुधा वह अधीर हो जाया करते थे और गुस्सा हो जाते थे परन्तु वे इस बात के प्रति सदैव सतर्क रहते थे कि उन पर स्वेच्छाचारी होने की प्रवृत्ति हावी न हो। अपने स्वेच्छाचारितापूर्ण रुख के प्रति सावधानी बरतने के कारण ही उन्होंने बहुधा दल में बहुमत के दृष्टिकोण को स्वीकार किया।

कई लोगों को इस बात पर आश्चर्य होता है कि हम नेहरूजी के निजी दृष्टिकोण के अनुसार विदेशी नीति का अनुसरण कर रहे हैं जिसके कारण वह गुटनिरपेक्ष नीति का आधार निश्चित करने और नयी विश्व व्यवस्था की स्थापना की आवश्यकता पर बल देने में सफल हुए—हालांकि वह ऐसे युग में पैदा हुए थे जब देश उपनिवेशवादी शासन से मुक्त नहीं हुआ था और हम सब में राष्ट्रीयता की गहरी भावना भरी हुई थी। वास्तव में वह एक अन्तर्राष्ट्रीयतावादी थे और एक विश्व-राष्ट्र में विश्वास करते थे तथा इस दिशा में उनका योगदान उल्लेखनीय रहा। परन्तु अपनी स्वेच्छाचारी प्रवृत्ति के प्रति निरंतर सजग रहने के कारण वह अपने देश के मामले में ऐसी नीतियां लागू करने से बचते रहे जिनमें वह और उनके दल के अन्य दूरदर्शी सदस्य विश्वास करते थे। ऐसा कई बार हुआ। कुछ उत्तेजित सदस्य उन्हें यह विश्वास दिलाने में समर्थ थे कि उन्होंने अपने समाजवादी दृष्टिकोण में अपने दल के कुछ सहयोगियों को भी पीछे छोड़ दिया है तथा विशेष रूप से दल की बैठकों में कुछ ऐसे भी अवसर आए जबकि वे अपने दृष्टिकोण को तथा अपने अनेक सहयोगियों के दृष्टिकोण को यथार्थ रूप से कार्यान्वित करने से पीछे हट गए थे जबकि दल के अधिकांश सदस्य उनके इस कदम का समर्थन करना चाहते थे। इसी कारण समाजवाद को लाने की गति थोड़ी धीमी हो गई।

उदाहरणार्थ, जब मौलिक अधिकारों से संबंधित अध्याय में अनुच्छेद 31 शामिल किया गया, तो पंडितजी ने इसे शामिल करने के बारे दल की बैठक में कड़ी आपत्ति की थी। यह बताया गया कि इसका तात्पर्य यह है कि सम्पत्ति के अधिकारों को न केवल मौलिक अधिकारों के रूप में शामिल किया गया है, बल्कि इन पर अन्यथा भी बल दिया गया है। इसका अर्थ यह है कि राज्य द्वारा राष्ट्रीय प्रयोजन के लिए अधिग्रहीत की गई सम्पत्ति का बाजार-मूल्य के अनुसार मुआवजा देना होगा तथा राष्ट्रीय प्रयोजन के लिए अधिगृहीत सम्पत्ति के लिए देय मुआवजा-राशि के संबंध में निर्णय करने की संसद की शक्ति उससे ले ली गई है। इस संबंध में न्यायालय ही अन्तिम प्राधिकारी होगा। इससे स्वाभाविक रूप से यह पता चलेगा कि उन राज्यों में, जहां अभी तक जमींदारी प्रथा समाप्त नहीं की गई है, जमींदारी-उन्मूलन के पश्चात कितनी मुआवजा-राशि का भुगतान किया जाए। केवल रात भर में ही पंडितजी ने अपने निर्णय में आंशिक रूप से परिवर्तन कर दिया क्योंकि कुछ विधिवेत्ताओं ने उन्हें गलत सलाह दी थी कि ऐसी स्थिति उत्पन्न नहीं होगी जब इस खंड के अंतर्गत राष्ट्रीय प्रयोजनों के लिए अधिगृहीत सम्पत्ति के लिए बाजार-मूल्य का भुगतान करना पड़ेगा तथा इस कारण भी कि उन्होंने देखा कि उनके अनेक पुराने सहयोगी इस उपाय के विरुद्ध थे। उन्होंने अपना विचार बदल दिया। किन्तु, फिर भी पंडित गोविन्द वल्लभ पंत ने, जो उत्तरप्रदेश के तत्कालीन मुख्यमंत्री तथा संविधान सभा के सदस्य थे, इसमें एक खंड जोड़ दिया जिसके अनुसार उत्तरप्रदेश और बिहार जमींदारी उन्मूलन अधिनियम इस खंड से प्रभावित नहीं हुआ। हममें से अनेक के मन में रोष था और वस्तुतः जैसा कि पंडितजी के साथ तथा उन शासन के दिनों में सामान्यतः यह होता था, हम लोगों को इस खंड को शामिल किये जाने के विरुद्ध न केवल दल के भीतर बल्कि संविधान सभा में भी प्रस्ताव प्रस्तुत करने की अनुमति दी गई थी, किन्तु, चूंकि पंडितजी ने हम लोगों का साथ छोड़ दिया था, इसलिए हम पराजित हो गये। यह सच है कि पंडितजी के जीवन-काल के दौरान इस खंड के कारण कोई बाधा उत्पन्न नहीं हुई, किन्तु उनके निधन के पश्चात सज्जन सिंह का मामला सामने आया और उससे साबित हो गया कि हमारी आशंकाएं सही थीं। किसी न किसी प्रकार वह खंड इन्दिरा गांधी के शासन काल के दौरान पूरी तरह समाप्त कर दिया गया। अतः यह एक विगत की घटना बन चुका है। कुछ ऐसे अन्य मामले थे जो आर्थिक मामलों से संबंधित असाधारण मामले थे जिन पर पंडितजी को कार्यवाही करने से रोक दिया गया था। उदाहरणार्थ, बैंकों के राष्ट्रीयकरण के संबंध में उनकी हिचकिचाहट के कारण उन्हें कार्यवाही करने से रोका गया जिसके लिए बाद में इन्दिरा गांधी को अपने शासन के दौरान कार्यवाही करनी पड़ी। आज भी, पंडितजी जैसा चाहते थे, भारत में वैसा "सहकारी विकास" नहीं हुआ है क्योंकि उन्हें हमेशा इस बात का भय रहता था कि यदि वे अपने दृष्टिकोण पर अड़े रहे तो लोग उन्हें तानाशाह कहने लेंगे। यद्यपि उन दिनों कांग्रेस दल के अधिकांश सदस्य इन मामलों पर उनका समर्थन करने के लिए तैयार रहते थे, फिर

भी इसका विरोध करने वाले उत्तेजित सदस्यों के कारण वे प्रायः महसूस किया करते थे कि उन्हें अपने पक्ष में वास्तविक बहुमत नहीं मिल सकता है।

जब हम बीते दिनों की याद करते हैं तो हम इस बात से सहमत होते हैं कि पिछले पच्चीस वर्षों के दौरान जबकि पंडितजी भारत के सर्वेसर्वा थे, तब सभी क्षेत्रों में महत्वपूर्ण प्रगति हुई। यदि इस गति को बीच के वर्षों में उसी प्रकार बनाये रखा गया होता तो हम भारत में द्रुतगति से विकास कर सकते थे।

विभाजन के पश्चात्, देश की उपलब्धियों को नकारा नहीं जा सकता। हमें प्रायः अति कठिन समस्याओं से जूझना पड़ा था। शरणार्थियों की भीषण समस्या थी जो भारत के विभाजन के पश्चात पूर्वी क्षेत्र में प्रायः एकतरफा थी जिसे उसी समय सुलझाया जाना था। जब हम भग्न देश के निर्माण की समस्याओं में उलझे पड़े थे, जिसे लम्बे विदेशी शासनकाल के दौरान जानबूझ कर विकास से वंचित रखा गया था। पहले भी अनेक बार ऐसा कहे जाने के बावजूद, हमें यह याद रखना चाहिए कि जिस देश को पहले आलपीन और सुइयों जैसी छोटी वस्तुओं का आयात करना पड़ता था, वह इस समय अन्य शक्तिशाली देशों के समान नवीनतम प्रौद्योगिकीय विकास की प्राप्ति के मार्ग पर भली-भांति अग्रसर हैं। मुझे आश्चर्य है कि वर्तमान पीढ़ी में से कितने व्यक्तियों को इस बात की जानकारी होगी कि अविभाजित बंगाल में ढाका में बड़ी संख्या में बुनकरों के अंगूठे इस कारण काट दिये गये थे कि इंग्लैंड के लंकाशायर से आयातित बड़े पैमाने पर कारखाने में उत्पादित कपड़ों की तुलना में ढाके की मलमल न केवल गुणवत्ता में उच्च कोटि की होती थी बल्कि लागत के हिसाब से भी इंग्लैंड के कारखाने में उत्पादित कपड़ों से सस्ती होती थी। हमारे विदेशी शासकों द्वारा जानबूझकर किए गए इन कुकृत्यों तथा क्रूर कर्मों के बारे में आज की युवा पीढ़ी में से अनेक को याद भी नहीं होगा किन्तु ऐसा हुआ था और वह देश जो अति प्राचीन काल से उन्नत किस्म के सामान का निर्यात किया करता था, एक नितांत निराश्रित देश हो गया। ब्रिटिश शासकों द्वारा भूमि की खरीद-बिक्री एक अन्य स्रोत था जिसके माध्यम से विदेशी शासकों द्वारा अपने कारिन्दों की सहायता से इस देश को निर्धनता के गर्त में धकेला गया। आज भी हम इस स्थिति से पूरी तरह उबर नहीं पाए हैं। अब भी देश के अनेक क्षेत्रों में हमारी जनता निर्धनता और निरक्षरता की शिकार है।

अब हम पंचायतीराज के प्रति पंडितजी के दृष्टिकोण पर, जब संविधान सभा में इस पर विचार-विमर्श किया गया था, दृष्टिपात करें। उन दिनों हम सबने यह अनुभव किया था कि पंचायत स्तर के चुनाव प्रत्यक्ष किये जाने चाहिए, जिससे कि संविधान में उल्लिखित शब्द "हम भारत के लोग, भारत को एक प्रभुतासम्पन्न लोकतंत्रात्मक गणराज्य बनाने इत्यादि के लिए ..... बाद में संविधान (बयालीसवां संशोधन

अधिनियम, 1976 द्वारा संशोधित "प्रभुता-सम्पन्न, समाजवादी, धर्मनिरपेक्ष लोकतंत्रात्मक गणराज्य," शब्द चरितार्थ हो सके। हमारा विचार था कि यह गांधीजी की आकांक्षा पूरी करेगा। तथापि, डा. अम्बेडकर ने पंचायतों की कड़ी निंदा की, क्योंकि अधिकांश पंचायतें, जो ब्रिटिश शासन काल में चल रही थीं उनसे पददलितों, अनुसूचित जातियों-महिलाओं तथा उक्त लोगों को न्याय मिलने की आशा नहीं थी। यह कहना सही था कि पंचायतें अधिकतर ऐसे सूदखोरों और रूढ़िवादी व्यक्तियों के कब्जे में थीं, जो औरतों और समाज में अभागे कहे जाने वाले लोगों के लिए अहितकर मनु द्वारा निर्धारित कानूनों और प्रथाओं का हद दर्जे तक सहारा लेकर उनका शोषण कर रहे थे। तब हमने महसूस किया कि एक आम औसत नागरिक को सत्ता सौंपने के लिए पंचायतों में भारी परिवर्तन करना होगा। हालांकि पंचायती राज लाने और साधारण नागरिक को प्रत्यक्ष मत देने का निर्णय एक दिलपसंद बात थी, फिर भी हमें याद रखना होगा कि ये पंचायतें केवल जनता के हाथों में ही सौंपी जाएं, न कि उसका प्रत्यक्ष शोषण करने वाले व्यक्तियों के हाथों में। तभी इसका वास्तविक अभिप्राय सामने आ पाएगा। इस मामले में पंडितजी का दृष्टिकोण बिल्कुल सही था। इसलिए पंचायत राज का उल्लेख जैसाकि संविधान में हुआ है, इतना सीमित और सुरक्षित है। पंडितजी के बारे में उनके कुछ निंदकों द्वारा कही गई यह बात बिल्कुल मिथ्या है कि वह गांधी जी के दृष्टिकोण की उपेक्षा करना चाहते थे। हममें से अनेक लोगों की भांति उन्होंने उस समय यह विचार किया कि धीरे-धीरे से हम निचले स्तर पर जनता का शोषण करने वाले व्यक्तियों का प्रभुत्व समाप्त करने में गांधीजी के पंचायती राज का स्वप्न साकार करने में समर्थ हो पाएंगे। 40 वर्षों में हम यह नहीं कर पाए हैं। पश्चिम बंगाल और पड़ोसी राज्यों में मेरा स्वयं का यह अनुभव रहा है कि जब भी हमने निचले स्तर पर काम करने वाले कार्यकर्त्ताओं अर्थात् पंचायत स्तर के कार्यकर्ताओं को प्रशिक्षित करने का प्रयास किया तो ऐसी प्रशिक्षण-कक्षाओं में भी भाग लेने के लिए प्रायः जनता का शोषण करने वाले ग्रामीण क्षेत्र के अमीर लोग ही आगे आए और इस प्रकार उन्होंने अपनी पकड़ और मजबूत कर ली। इस समय भी हमें इस प्रवृत्ति को रोकना होगा। अतः असली महत्वपूर्ण मुद्दा यह नहीं है कि यह कार्य वास्तव में किसके क्षेत्राधिकार में है—केन्द्र के है अथवा राज्य के। ऐसा जान पड़ता है कि वर्तमान विचारधारा के अनुसार पंचायती राज के विरोधी और समर्थक लोगों के बीच यही विवाद का विषय है। मेरी पक्की राय है कि हम सभी को, प्रभावी पंचायती राज का ऐसे तंत्र के रूप में समर्थन करना चाहिए, जिसके द्वारा भारत की जनता के निचले स्तर का वर्ग अपने ही स्तर पर अपने बारे में स्वयं निर्णय ले सके। तथापि, यह केवल तभी किया जा सकता है जब हम मार्ग की बाधाएं दूर करने में समर्थ हों और ग्रामीण धनाढ्य शोषकों से छुटकारा पा लें, जो प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप से सत्ता से ग्रहण किए रहते हैं। यही जवाहरलाल नेहरू की इच्छा थी।

इस नेहरू-शताब्दी वर्ष में, इतना तो हम अवश्य ही कर सकते हैं कि हम आगे बढ़ कर देश में ऐसा महत्वपूर्ण परिवर्तन लाएं, जिसके द्वारा भारत की जनता प्रत्यक्ष चुनावों के माध्यम से अपने मतों का वस्तुतः प्रभावी तरीके से इस्तेमाल कर सके। इसके लिए ग्राम स्तर पर प्रायः सभी शोषकों की छंटनी करनी होगी और उन लक्ष्यों के प्रति लोगों के दृष्टिकोण और प्रयास को संवारना होगा, जिन्हें जवाहरलाल नेहरू और अनेक नेताओं ने देश की आजादी के बाद प्राप्त करने की बात सोची थी। हमारे विधानमंडलों और संसद में हाल में घटित हुए सर्वथा अनुचित आचरण की बजाय, हमें उन लोकतांत्रिक मानदंडों और प्रयासों की पुनःस्थापना करनी होगी, जो हमारे नेताओं ने हमारे समक्ष रखे थे और जो आजादी से पहले लोगों की प्रेरणा के स्रोत थे। उस समय केन्द्रीय विधान सभा के तत्कालीन अध्यक्ष श्री विट्ठलभाई पटेल और उसके बाद श्री जी.वी. मावलंकर संसदीय प्रक्रिया के स्तर को इतनी ऊंचाई तक ले गए कि भारत का लोकतांत्रिक ढांचा सर्वाधिक होनहार माना जाने लगा। हमें आशा है कि हमारे लिए उन मूल्यों को बनाए रखना संभव हो सकेगा ताकि उन व्यक्तियों के स्वप्न को साकार किया जा सके, जिन्होंने स्वतंत्रता के लिए संघर्ष किया था।

26

अरुणा आसफ अली

जवाहरलाल नेहरू—विदेशी मित्रों की निगाह में*

गांधी जी की तरह जवाहरलाल ने भी भारतीय स्वतंत्रता के अनेक विदेशी समर्थक जुटाए। महात्मा गांधी की अपील मूलतः नैतिक थी तथा उन्होंने विभिन्न पृष्ठभूमि वाले लोगों को आकृष्ट किया, जिनमें सी.एफ. एन्ड्रयूज, सोसायटी ऑफ फ्रेंड्स के होरेस एलेक्जेंडर (जो क्वेकर्स के नाम से लोकप्रिय थे) और अगाथा हरिसन तथा म्यूरियल लेस्टर जिनके पास 1931 में गोल मेज सम्मेलन के दौरान गांधी जी लन्दन में कामगारों के ईस्ट एंड में ठहरे थे, शामिल हैं।

दूसरी ओर जवाहरलाल की अपील उदारवादियों और उन साम्राज्यवाद विरोधी बुद्धिजीवियों से थी, जिनमें से अनेकों का झुकाव समाजवाद की ओर था। इनमें एक अद्‌भुत व्यक्तित्व था फेनर ब्रोकवे का, जो समाजवाद के समर्थक थे तथा उन्होंने ब्रिटेन की कम्यूनिस्ट पार्टी की कट्टरता और लेबर पार्टी के नरम दलीय नेताओं के ढुलमुल और समझौतेवादी रवैये के विकल्प के रूप में इंडेपेंडेंट लेबर पार्टी का गठन किया था। उन्होंने 3 सितम्बर, 1933 को जवाहरलाल को लिखा, "मुझे अभी-अभी पता चला है कि आप जेल से छोड़ दिए गए हैं। 'मैं स्वतंत्रता' के लिए आपका स्वागत करने के वास्ते आपको तुरन्त लिखना चाहता हूं। एक मामले में आप निश्चित रूप से मेरी मदद कर सकते हैं। यूरोप, विशेष कर जर्मनी, की घटनाओं ने यह दिखा दिया है कि सामाजिक लोकतांत्रिक नीति और कम्यूनिस्ट पार्टी की नीतियां असफल रही हैं। हम उन सभी देशों का सावधानी से समीक्षा करने का प्रयत्न कर रहे हैं जहां नरम लेबर नीतियां और कम्युनिस्ट नीति असफल रही हैं।

"मैं समझता हूं भारत में ऐसा हो रहा है—वहां एक ओर तो कम्यूनिस्टों की ट्रेड यूनियन नीति और उनकी कांग्रेस विरोधी गतिविधियां हैं तथा दूसरी ओर नरम दलीय श्रमिक राजनीतिज्ञों की कमजोरियां और समझौतावादी नीतियां हैं।

* लेखक की पुस्तक "प्राइवेट फेस ऑफ ए पब्लिक पर्सन ए स्टडी ऑफ जवाहरलाल नेहरू" (नई दिल्ली, रेडियेन्ट पब्लिशर्स, 1989) पृष्ठ 67-79 से उद्धृत।

"क्या आप मुझे इसका तथ्य परक विवरण दे सकते हैं ···· हम सभी देशों का विवरण देते हुए एक वृहद् पुस्तक का प्रकाशन कर रहे हैं।"

फेनर ब्रोकवे अप्रैल, 1936 में लखनऊ कांग्रेस में दिए गए जवाहरलाल जी के उस अध्यक्षीय भाषण से बड़े प्रभावित हुए जिसमें जवाहरलाल ने समाजवाद का संदेश दिया था। ब्रोकवे ने उन्हें लिखा अपनी "सोशलिस्ट बुकशाप" पर बिक्री के लिए हमें आपके भाषण की 250 प्रतियां प्राप्त हुई हैं। इंडिपेंडेंट लेबर पार्टी के साप्ताहिक पत्र "न्यू लीडर" में ब्रिटेन के समाचार पत्रों में जवाहरलाल की आत्मकथा की प्रशंसा में छपी समीक्षा का जिक्र करते हुए ब्रोकवे ने इस बात पर आश्चर्य व्यक्त किया कि जबकि शांति के वातावरण में इस भारतीय नेता की बड़ी सराहना की जाती है, भारत में कारगर विद्रोह का नेतृत्व करने पर उदारवादी उसके बारे में क्या विचार व्यक्त करते हैं? आने वाले समय में सत्ता सम्भालने वाली लेबर सरकार उसके बारे में क्या कहेगी, यदि वह विद्रोह उनके शासन के दौरान होता है तो कम्यूनिस्ट क्या कहेंगे, यदि जवाहरलाल भारत के संघर्ष पूर्ण विद्रोह को लीग[1], रूस और ब्रिटेन जिसके अस्थायी सदस्य हैं, में ले जाते हैं? इंग्लैंड में जवाहरलाल से मिलने के बाद उन्होंने लिखा (30 जून, 1938) "आपसे फिर मिलकर बहुत अच्छा लगा। जब मैं आपके साथ होता हूं तो मुझे ऐसा लगता है कि हमारे और आपके बीच अच्छा तालमेल और मित्रता है तथा मैं आशा करता हूं आपको भी ऐसा ही लगता होगा।".

पश्चिम के पुरुषों अथवा महिलाओं को गांधी जी की अपेक्षा जवाहरलाल के विचार अधिक आसानी से समझ में आते थे क्योंकि जवाहरलाल जो कहते थे वह उनके लिए नया नहीं था। चार्ल्स एन्ड्रयूज ने जवाहरलाल को (6 नवम्बर, 1935) लिखा 'जहां तक मैं समझता हूं' मैंने पूना में आपसे कहा था कि आप ही एक मात्र ऐसे असाधारण व्यक्ति हैं जो यह जानता है कि पश्चिम के लोग क्या समझ सकते हैं और उसका आसानी से पालन कर सकते हैं। बापू के विचारों को बार-बार स्पष्ट करना पड़ता है तथा उनके विचारों को पहली बार में ही रोमा रोलां, जैसे मनीषी ही समझ सकते हैं और दूसरों को समझा सकते हैं। उनके ऐसा करने पर मेरे लिए उनके विचारों को समझना सरल हो गया। परन्तु बापू को समझना हमेशा कठिन ही होता है। गुरुदेव (टैगोर) को भी समझना बड़ा कठिन होता है जब वे कविता को छोड़ अपने विचार गद्य में प्रकट करते हैं। डा. सीता रामैय्या ने जयन्ती वर्ष के लिए जो "कांग्रेस का इतिहास" पुस्तक लिखी गई है उसे अंग्रेजी पाठकों को समझना बड़ा कठिन है। उन्होंने भारतीय शब्दों का खुलकर प्रयोग किया है तथा अनावश्यक विस्तार दिया है।[2]

---

1. लीग ऑफ नेशन्स का गठन पहले विश्वयुद्ध के बाद 1920 में किया गया था और दूसरे विश्वयुद्ध के बाद इसका स्थान संयुक्त राष्ट्र संघ ने लिया।

2. जवाहरलाल नेहरू 'ए बन्च ऑफ ओल्ड लेटर्स' (बम्बई, एशिया पब्लिशिंग हाउस, 1960), पृ. 124

विदेशों में और भारत में जवाहरलाल के प्रशंसकों और मित्रों में से महिलाओं ने बीसवीं सदी के पूर्वार्ध में विश्व के अनेक भागों में महिलाओं में उल्लेखनीय जागरूकता पैदा की।

जवाहरलाल के एक पत्र के धन्यवाद स्वरूप एक अज्ञात, समाचार पत्र पाठक द्वारा लिखे गए पत्र, जो "मैन्चेस्टर गार्जेयन टाइम्स" में छपा था, से जवाहरलाल के विचारों के व्यापक प्रभाव का पता चलता है। उस पत्र में लेखक ने भारत में ब्रिटेन की सरकार की साम्राज्यवादी नीति अपनाने तथा जर्मनी और इटली को प्रसन्न करने की नीति अपनाने की आलोचना की थी। 19 सितम्बर, 1938 को स्काटलेंड से जवाहरलाल को लिखे अपने पत्र में क्रिस्टाइन एच. स्टरजियोन ने कहा, "उस पत्र में उस बात को इतने गरिमा पूर्ण और स्पष्ट रूप में प्रकट किया गया है, जैसाकि इन कष्टकारक दिनों में हम बहुत से लोग महसूस कर रहे थे और मैं आशा करता हूं ऐसे अनेक पत्र जैसा कि मैं भी लिख रहा हूं — आपको मिलेंगे, जो ऐसे लोगों द्वारा भेजे जायेंगे जो हमारी वर्तमान सरकार द्वारा दिखाई गई नैतिकता से दुखी हुए हैं और उनका भ्रम दूर हुआ है।

हम महत्वहीन लोग है परन्तु इस देश के अधिकतर व्यक्ति सरल और शांति प्रेमी है तथा सज्जन हैं पर हमारा ऐसा कोई संगठन नहीं है जिसके द्वारा हम अपनी आवाज अन्य लोगों को सुना सकें। हो सकता है कि कभी हम एक जुट होकर अपनी बात महसूस करा सकें ···· मैं आपको पुनः धन्यवाद देता हूं और ईश्वर से प्रार्थना करता हूं कि स्वतंत्र भारत और लोकतांत्रिक विश्व के लिए आपके प्रयत्न दिन दूनी रात चौगुनी प्रगति करें।[3]

1936 में इंग्लैंड में जब जवाहरलाल की आत्म कथा प्रकाशित हुई थी तब उनके मित्र संसद सदस्य एलन विल्किन्सन ने उन्हें लिखा (22 मार्च, 1936) कि उनके प्रकाशक को यह डर था कि कहीं भारत में इस पुस्तक पर प्रतिबंध न लग जाये। शायद वे (सरकार) यह सोचें कि आपके द्वारा गांधीजी की आलोचना से कांग्रेस में मतभेद पैदा करनें में मदद मिले। मेरे देश की सरकार के मन में क्या है इसका कुछ पता नहीं चलता है। ऐसा लगता है आपके देश में आनेवाले बुद्धिमान लोगों पर भी कुछ न कुछ प्रभाव पड़ता है।

यदि वे भारत में इस पर प्रतिबंध लगाते हैं, तो इंग्लैंड और अमरीका में इसका अत्यधिक विज्ञापन होगा। हम हाउस ऑफ कामन्स में बड़ी हचचल पैदा करेंगे और जनता का ध्यान इस पर केन्द्रित करेंगे। वास्तव में इंग्लैंड में ऐसी पुस्तक की हमें कहीं अधिक आवश्यकता है। यहां तक कि निष्ठावान वामपंथियों का भी भारत के बारे में यह अथाह अज्ञान है।

कमला की मुझे अत्यधिक याद आती है तथा आपकी पुस्तक में उसके बारे में पढ़कर भारत में अपने निवास के दौरान पीड़ा और दुख के बीच भी प्रदर्शित उसकी कृपाएं फिर

---

3 वही, पृष्ठ 290-1

से ताजा हो गई हैं। मैं समझता हूं कि ऐसी आशा करना निरर्थक है कि वे लोग जिन्होंने ऐसे कष्ट और पीड़ा के समय आखिरी वर्ष आपको उससे अलग रखा, अपने आप पर शर्म महसूस करेंगे। यदि आपको ऐसा लगे कि किसी संबंध में मैं या मेरे मित्र आपकी कुछ मदद कर सकते हैं, तो आपको उसके लिए केवल लिखना पर्याप्त होगा।[4]

अगस्त 1939 में जवाहरलाल की चीन यात्रा से राष्ट्रवादी भारतीयों के प्रति जनरल चांग-काई शेक तथा उनकी पूर्व पत्नी मेलिंग सुंग की सहानुभूति अर्जित करने में मदद मिली। मदाम चांग काई-शेक ने अंग्रेजी की शिक्षा पाई थी और वे धारा प्रवाह अंग्रेजी बोल सकती थीं। इस प्रकार चांग-काई शेक दम्पती के साथ मित्रता और आपसी तालमेल के घनिष्ठ संबंध बने।

चीन से लौटते समय मदाम चांग-काई शेक ने जवाहरलाल को जैसाकि उन्होंने अपनी पुत्री को बताया "कुछ सुन्दर चीनी गाउन, रेशम की कुछ कलात्मक वस्तुएं तथा अच्छी किस्म का कपड़ा दिया था।" आत्मकथा पढ़ने के बाद (10 सितम्बर, 1940) मदाम चांग-काई शेक ने उन्हें लिखा, मैं पिछले तीन सप्ताह से इन्फ्लूएन्जा से बीमार हूं। आपकी आत्मकथा पढ़ते रहने के कारण मैं इतने लम्बे समय तक खाट पर पड़ी रह सकी ....., अब मैं यह अनुभव करती हूं कि मैं आपको समझती हूं क्योंकि मैंने अपने देश की स्वतंत्रता के संघर्ष को बढ़ावा देने की आपकी उत्सुकता को देखा है।

आपकी पुस्तक एक महान कृति है। यह उस मानवीय आत्मा की तीर्थयात्रा का विवरण है जिसने प्रतिदिन के संघर्ष से ऊपर उठकर भावनाओं में न बहकर विद्वानों की ओर भावुकता की दुनिया की यात्रा की है और यही कारण है कि इसे एक महान रचना कहा जाना चाहिए। 1941 में जब जवाहरलाल गोरखपुर जेल में थे, जैसा कि उन्होंने आर.के. नेहरू की पत्नी राजन को 16 नवम्बर को लिखे अपने पत्र में उल्लेख किया है, मदाम चांग-काई शेक से उन्हें उनके अपने हाथ का बना स्वादिष्ट मारमालेड का डिब्बा मिला। अपने पत्र में मदाम ने लिखा कि यह खट्टा-मीठा मारमालेड हमारे जीवन का प्रतीक है, क्योंकि कठिनाइयों और कांटों के दुखों के बिना क्या जीवन नीरस नहीं हो जायेगा? यह एक सत्य है, जैसा कि उन्होंने चीन के लोगों द्वारा झेले गए दुखों से सीखा है।

जनरल चांग-काई शेक ने अपनी पत्नी के प्रोत्साहन पर सत्ता के हस्तान्तरण के लिए सीधे राष्ट्रपति रूजवेल्ट के द्वारा ब्रिटेन पर जोर डालने का सार्थक पर असफल प्रयत्न किया, ताकि शक्तियों के केन्द्र के विरुद्ध युद्ध में वास्तव में स्वतंत्र भारत का पूरा योगदान

4. वही, पृष्ठ 170-1

प्राप्त किया जा सके। अपने पति के साथ भारत की यात्रा के बाद लौटने पर मदाम चांग-काई-शेक के 13 मार्च, 1942 के पत्र (ए बन्च आफ ओल्ड लैटर्स, पृ. 46-8) के एक पैरा में बाद की घटनाओं का हवाला देते हुए उन्होंने लिखा "जनरलिसिमो भारत की स्थिति के बारे में रुजवेल्ट को तार भेजते रहे हैं। उनसे जो अंतिम समाचार हमें मिला है वह इस प्रकार है "रूजवेल्ट ने अपने तार में कहा है कि शांति सम्मेलन में भारत के जो प्रतिनिधि आएं वे कांग्रेस द्वारा चुने जाएं और भारत राष्ट्र के सच्चे प्रतिनिधि हों। वे समझते हैं कि भारत की समस्या का हैल उसे मुसलमान और हिन्दू दो भागों में बांट कर किया जा सकता है। जनरलिसिमो और मैंने अपने भाई टी वी [5] को तार भेजा कि दूसरी बात सर्वथा गलत है तथा इस पर कतई कोई विचार नहीं किया जाना चाहिए। भारत का भी चीन के समान बंटवारा नहीं किया जा सकता। भारत के लोगों के बीच विद्यमान धार्मिक मतभेदों का अर्थ यह नहीं है कि यदि अवसर दिया जाये तो किसी तीसरे पक्ष द्वारा उनके इन भिन्न विचारों के बीच राजनीतिक समझौता नहीं हो सकता।

मेरे आवारा मित्र को —

अलविदा
एम एस सी

मदाम चांग 1942 की ग्रीष्म ऋतु में अपने पति के साथ भारत आईं। उनके और जवाहरलाल के बीच की निकटता से अनभिज्ञ हममें से उन कुछ लोगों को, जिन्हें मदाम के लिए भेंट की वस्तुएं लाने को कहा गया था, बड़ा अजीब सा लगा था, जब जवाहरलाल ने कुछ वस्तुओं को नापसंद कर दिया था तथा बनारसी ब्रोकेड, दक्षिण भारतीय सिल्क और हस्तकला वस्तुओं के ढेर में से उन्होंने कुछ अन्य वस्तुओं को चुना था।

यद्यपि भारत की स्वतंत्रता से पहले जवाहरलाल कभी भी संयुक्त राज्य अमरीका नहीं गए थे (वे अमरीका पहली बार अक्तूबर 1949 में गए थे) परन्तु उनके अनेक अमरीकी मित्र थे, जिनसे उनकी मुलाकात भारत अथवा इंग्लैंड में हुई थी तथा अनेक प्रशंसक थे जो उन्हें केवल उनकी पुस्तकों और समाचार पत्रों में उनके द्वारा अथवा उनके बारे में लिखे गए लेखों से जानते थे।

उन अमरीकी लोगों में जिनसे जवाहरलाल लन्दन मिले थे और उनके अच्छे मित्र बन गए थे, प्रसिद्ध नीग्रो गायक पाल रोबेसन थे, जिन्होंने दमित लोगों के समाजवाद और सोवियत संघ के हित के लिए संघर्ष किया। उनकी पत्नी एसलान्डा रोबसेन ने इंडिया लीग की पैसे से सहायता की तथा 1936 और 1938 में लंदन में उन सभाओं में गाया जिनमें जवाहर लाल ने भाषण दिया।

---

5. टी. वी. सुंग, वाशिंगटन में चीन का राजदूत।

बाद की यात्रा के समय मध्याह्न भोजन की सभा के बाद श्रीमती रोबेसन ने जवाहरलाल को लिखा मैं और पाल आपके प्रशंसक हैं और ऐसे व्यक्ति के साथ कुछ घंटे बात करके बड़े आनन्दित हुए जिसके हित हमारे हितों के समान ही हैं और जो हमारी समस्याओं को अधिक अच्छी तरह समझता हो।

जैसे कि मैंने वादा किया था मैं नेशनल निग्रो कांग्रेस की कार्यवाही का सारांश भेज रही हूं। मैं अपनी एक तुच्छ सी पुस्तक भी भेज रही हूं जो मैंने आठ वर्ष पहले लिखी थी। मैंने इसे अपनी निज की कहानी के रूप में लिखा है क्योंकि मैं यह समझती थी, अन्यथा लोग इसमें कोई रुचि नहीं दिखायेंगे। मुझे इसका बहुत बड़ा पुरस्कार मिला है, क्योंकि उन्होंने उसे खरीदा है तथा अब भी खरीद रहे हैं और पढ़ रहे हैं तथा उन्हें अनायास ही कुछ तत्व पता चल रहे हैं।

श्रीमती रोबेसन के बाद के एक पत्र, जिसमें उन्होंने अमरीकी पुस्तकें भेजने का प्रस्ताव किया था, के उत्तर में जवाहरलाल ने देहरादून जेल से 23 जनवरी, 1941 को अपनी बहन कृष्णा को लिखा (वे सीमित संख्या में ही पत्र लिख सकते थे) :

> "ऐसी रोबेसन को लिखो कि उन का पत्र पाकर मुझे प्रसन्नता हुई है। वह मुझे भेजने के लिए अमरीकी पुस्तकों के नाम जानना चाहती है। ऐसा करना आसान नहीं है क्योंकि यहां मेरे पास अमरीकी पुस्तकों की सूची नहीं है। जैसा कि वे स्वयं को राजनीतिक महिला कहती हैं, वे स्वयं ही उन पुस्तकों को चुन लें जो मुझे रुचिकर हो सकती हैं। उनका चुनाव ही मुझे रुचिकर लगेगा।"

1949 में जब जवाहरलाल अमरीका गए थे तो उन्हें इस पर आश्चर्य हुआ कि पाल रोबेसन ने उनसे मिलने से मना कर दिया है। हिंसा की गतिविधियों में शामिल होने के कारण बंगाल में कुछ कम्यूनिस्टों के गिरफ्तार किए जाने से रोबेसन ऐसा समझने लगे थे कि नेहरू सरकार देश भर में कम्यूनिस्टों को दबा रही है। पर यह गलत फहमी पाल रोबेसन का अमरीका पारपत्र फिर से बहाल करने के लिए 1958 में एक खुला पत्र लिखने से जवाहरलाल को नहीं रोक सकी। अपनी पुस्तक पंडित जी[7] में मेरी सेटन के लिखा है, "रोबेसन का पारपत्र वापस करने के लिए छः वर्ष तक अमरीकी गृह मंत्रालय को प्रेरित करने के प्रयत्न में असफल होने से लगता है जवाहरलाल नेहरू के खुले पत्र ने गृह मंत्रालय को यह विश्वास दिला दिया कि पारपत्र रोकने से अमरीकी अधिकारियों को ही हानि होगी रोबेसन को नहीं।" मई, 1960 में इस महान् गायक और महान राजनीतिज्ञ का पुनर्मिलन हुआ।

---

6. जवाहरलाल नेहरू "वही", पृ. 284
7. मेरी सेटन, पंडित जी : ए पोर्ट्रेट आफ जवाहरलाल नेहरू (लन्दन)

जवाहरलाल को उनकी अमरीकी पत्रकार मित्र फ्रान्सिस गुन्थर का एक बड़ा ही प्यारा पत्र मिला। अपने पति जॉन[8] के साथ 1938 में भारत आने पर वापस जाने से पहले फ्रान्सिस ने 13 फरवरी, 1938 को अनेक लोगों से हुई अपनी बातचीत का हवाला देते हुए और कुछ सुझाव देते हुए कलकत्ता से एक लम्बा पत्र लिखा एक (ब्रिटिश) जनरल ने हमें बताया "हमने भारत को खो दिया है। हम किसी तरह घिसट कर राज्य कर रहे हैं। भारत हम अमृतसर में खो चुके हैं ····· जापान ज्यों ज्यों दक्षिण में, आगे बढ़ता है आप अपनी मांगों पर जोर दे सकते हैं ····· जब जापान सिंगापुर पहुंचे आप और कड़ा रुख अपना सकते हैं बशर्ते कि आप कड़ा रुख अपना सकें।"

जवाहरलाल और गांधी जी के बीच मजबूत मतैक्य की छवि बनाने की आवश्यकता के बारे में फ्रान्सिस ने लिखा "जन साधारण के लिए इसकी विशेष आवश्यकता है। आप दोनों को पूरी तरह एक होकर जनता के सामने आना चाहिये। आपके और गांधी जी के मतभेद से ब्रिटेन को सबसे अधिक बढ़ावा मिलता है। ···· गांधी को कांग्रेस में एक तरह से सम्राट का निजी प्रतिनिधि माना जाता है—यहां तक कि उन्हें वेस्टमिन्सटर में दफनाया जाए तो भी आश्चर्य नहीं होगा। इस प्रकार वे उन्हें निरापद तथा निर्बल मान सकते हैं। (यद्यपि उन्हें सदैव यह भय रहता है कि वह उन पर उस समय कोई चाल चल सकता है जब उन्हें इसकी कोई आशा नहीं हो।) दूसरी ओर आप को इतना खतरानाक माना जाता है कि यदि ब्रिटिश साम्राज्य का अन्त हुआ तो उसका श्रेय आपको ही दिया जाएगा। जहां कहीं भी आप गए आप की रुचि, विचारों, योजनाओं आदि को डर की दृष्टि से देखा गया। दोपहर के भोजन (पेशावर के दौरे के तुरंत बाद) के लिए जब हम बैठे तो वाइसराय[9] ने सबसे पहली बात मुझसे यह कही "इस युवक के साथ आपकी कोहाट यात्रा के बारे में हमें पूरी जानकारी है। उन्होंने आप के बारे में अनेक कुरेदने वाले प्रश्न किए तो मुझे अन्त में कहना पड़ा कि "आप उनसे स्वयं मिल कर बात क्यों नहीं करते?" उन्होंने गोपनीय रूप में बताया कि क्रिसमस पर कलकत्ता में उन्होंने आपसे मिलने का प्रयत्न किया था, परन्तु उसमें सफलता नहीं मिली ···· वाइसराय ने कहा कि आप बड़े मेधावी और न जाने क्या क्या हैं, परन्तु गांधी एक महान व्यक्ति हैं। मैंने कहा कि गांधी भारतीयों को 10 वीं सदी से 19वीं सदी में लाए हैं, यह एक मुश्किल कार्य है, परन्तु आप उन्हें 19वीं सदी से 20वीं सदी में ले जाने का प्रयत्न कर रहे हैं और यह उस से भी अधिक मुश्किल है और जिसके लिए कहीं लम्बे समय तक प्रयत्न करना होगा। वह यह जानना चाहते थे कि आप कब तक यह प्रयत्न जारी रखेंगे तथा लोग कहां तक आप का साथ देंगे। उनकी यह राय थी कि नेहरू के पास बुद्धि है परन्तु गांधी के पास लोगों का बल

---

8. फ्रान्सिस और जॉन गुन्थर (उनका विवाह 1927 में हुआ तथा 1944 में उन्होंने तलाक ले लिया) अपनी पुस्तक "इनसाइड एशिया" लिखने की तैयारी के लिए भारत आए थे। फ्रांसिस जनवरी, 1958 में दक्षिण पश्चिम सीमांत प्रदेश की यात्रा के समय जवाहरलाल नेहरू के साथ गई थीं।
9. लार्ड लिन्लिथगो, 1936 से 1943 तक भारत के वाइसराय।

है, यदि उन्हें अलग अलग किया जा सके तो हम सुरक्षित हो सकते हैं। क्योंकि उनमें से अधिकतर ऐसा सोचते हैं यह अनिवार्य है कि आप दोनों एकजुट हो कर कार्य करें, भले ही वह कैसा भी काम क्यों न हो। यह इसलिए भी आवश्यक है कि गांधी के निधन के बाद आप ही लोगों का प्यार पाने वाले हैं। यदि उनका निधन आप से पहले होता है तो कांग्रेस, युवा आन्दोलन तथा हम सभी को उस मार्ग पर चलना चाहिये जिस पर वे चलते थे और लोग उन्हें प्यार करते थे।" गांधी कहा करते थे कि वे 125 वर्ष तक जीवित रहेंगे। मुझे याद है कि एक बार टहलते हुए जब वे आश्रम में आने वालों से बातचीत कर रहे थे, मैंने पूछा था कि इतने वर्ष ही क्यों इससे अधिक क्यों नहीं। इन्होंने कहा था कि उनके मिशन को पूरा करने के लिए इतना ही समय चाहिये।

अमरीका से फ्रान्सिस गुन्थर ने अपने साढ़े बारह वर्षीय पुत्र जानी के बारे में लिखा (17 जून, 1942) : अपने बच्चे सबको प्यारे लगते हैं, क्या ऐसा नहीं है? तथा वे उन की अपनी निगरानी में बड़े होते हैं .... मुझे वह दिन भी नहीं भूला है जब वह अपने स्कूल से नक्षत्र विज्ञान का पहला पाठ पढ़ कर आया और कहा "मुट्टी, क्या मैं आप को ब्रहमाण्ड के बारे में बताऊं? मैंने गहरी सांस ली और कुछ सोचा तथा धीमे से कहा "हां बेटे, बताओ।"

1 अगस्त, 1942 को मैं इन्दिरा को कोई वैवाहिक भेट भेजना चाहती थी। इसलिए मैंने इसके लिए विदेश मंत्रालय का सहयोग लिया। कृपया मुझे बताएं कि भेंट कब पहुंची तथा क्या इन्दिरा और उसके पति को वह पसन्द आई। दामाद का पाना कितना आनन्ददायक है — क्या आप को इसमें पितृत्व का बोध नहीं होता? मैं अपनी बहू के आने का इन्तजार नहीं कर सकती। जोनी जो इस साल 13 का हो जाएगा अब चिल्लाता है और 'मुट्टी मुझे देखो' कहने के बजाए 'है एमिली या है पामेला मुझे देखो' कहता है। इससे मुझे बेचैनी होती है। मातृत्व की ईर्ष्या के साथ-साथ बड़ी राहत संतोष भी मिलता है। सब कुछ ठीक चल रहा है।

जवाहरलाल के पत्रों को फ्रांसिस बहुत महत्व देती हैं। उन्होंने (19 सितम्बर, 1943) लिखाः अब सूरज तपने लगा है। आज सवेरे से पहले जब अंधेरा ही था, मैंने अपने पलंग की रोशनी जलाई और ड्रायर में रखे आपके पत्रों को निकाला, जो आपके अपने लेख में हैं। मैंने आपके पत्रों की टाइप प्रतियां बना ली हैं और उन्हें रोजाना पढ़ने के लिए अपने पास रखती हूं तथा मूल पत्र एक बड़े सफेद लिफाफे में रखे हैं तथा उन्हें निराशा के समय जैसा कि आज है, पढ़ती हूं। मुझे आपके पत्र कण्ठस्थ हो गए हैं परन्तु मेरे मस्तिष्क को इनकी बार बार आवश्यकता होती है। मैं आपको यह नहीं बता सकती कि आपके पत्र मेरे मन पर क्या प्रभाव डालते हैं। उनसे मुझे सूर्य जैसी उष्णता मिलती है। आपके पत्र मेरे मन की बुराइयों और थकावट को समाप्त करते हैं और मुझे मजबूती प्रदान करते हैं। उन्हें अपने हाथों से छूने से मुझे आपके हाथों की गर्माहट और ताकत मिलती है।

विश्व युद्ध के समाप्त होने पर जवाहरलाल भी अपनी सबसे आखिरी जेल यात्रा से बाहर आए। फ्रांसिस लिखती है (4 जुलाई, 1945) "आपको पुनः लिखने में कितना अच्छा लग रहा है। इससे विशेष राहत मिली है। युद्धों से उन वस्तुओं जैसे भोजन, कपड़ा और मकान के महत्व का पता चलता है तथा साथ ही जवाहर को पत्र लिखने अथवा उसके पत्र पाने का। मैंने आपको न्यू हेवन से चांद[10] हस्ताक्षर करके टाइप किए नोट लिखे और अपनी स्वयं की सत्ता बनाने के बजाय आप के और नजदीक आने का प्रयत्न किया—मैं आपके उत्तर से यह बता सकती हूं कि आपने मुझे क्या समझा—क्या आपने भी मुझे समझा।[11]

"कहां से शुरू करूं? समय को किस तरह मापा जाये। मैं युद्ध पसन्द नहीं करती क्योंकि उसमें समय मर जाता है और साथ ही लोग और शहर—मैं आपको इसलिए लिखना चाहती हूं क्योंकि उससे समय फिर से जीवित हो जाता है ....."

4 मार्च, 1946 को फ्रासिंस ने सोफोकल के एन्टीगोन के एक रूपान्तर के बारे में लिखा जो उन्होंने न्यूयार्क की एक नाट्यशाला में देखा था "मैं सदैव यह चाहती हूँ कि महान क्षणों में आप मेरे साथ रहें।" उन्होंने जवाहर को सूचित किया कि जब भारतीय नौसेना ने हमला किया तो उसे बड़े अक्षरों का शीर्षक देकर पूरे पृष्ठ पर छापा गया। यह हिंसा तब तक होती रही जब तक गांधी ने बम्बई आ कर हिंसा के विरुद्ध चेतावनी दी। यह आश्चर्य की बात है कि इस विद्रोह के फलस्वरूप भारत के पक्ष में सम्पादकीय लिखे गए यहां तक कि टाइम्स में भी ऐसा ही हुआ ....

चन्द्रमा को रेडार की कहानी ने क्या आपको प्रोत्साहित किया? जैसा कि आप जानते हैं मैंने इसके बारे में सवेरे सवेरे पलंग पर लेटे हुए रेडियो पर सुना और अब मैं आप को जगा कर उसे सुनाना चाहती हूं। और मैंने ऐसा किया। मैंने पूरी तरह लेट कर फुसफुसा कर कहा, "जवाहर जागो, हमने अभी-अभी राडार से चन्द्रमा को संदेश भेजा है और 2.4 सैकिड में वापिस संदेश मिल जाता है और शीघ्र हम वहां जा भी सकेंगे। चलो, चल कर चंद्रमा को देखें। क्या चलें? प्रिय तुमने इसका स्वीकृति दी और नाश्ते के बाद चल पड़े।

तकनीकी और वैज्ञानिक खोज तथा अनुसंधान इतने अधिक और तेजी से हो रहे हैं कि कोई भी हक्का बक्का रह जाता है ... लेकिन फिर भी सीमा रेखा विवाद और साम्राज्य

---

10. चन्द्रलेखा पण्डित जवाहरलाल की भतीजी।

11. जवाहरलाल समझते थे। उन्होंने अपने उत्तर (5 सितम्बर 1945) में लिखा :
"तुम्हारी लिखावट को देखकर मुझे महसूस हुआ कि तुम मेरे पास हो। मुझे तुम्हारे अन्य नोट भी मिले और यह जाना है वे किसके लिखे हैं तथा मैंने उनका तदनुरूप उत्तर दिया। तुम्हें मुझे उस का श्रेय देना चाहिये। टाइप किए कार्डों अथवा पत्रों में निश्चय ही तुम्हारी शैली का अभाव था। तुमने बेहतर लिखा है।"

संचालन तथा अन्य बातें पहले के समान ही चल रही हैं अथवा लग रही हैं। यदि हम उनमें कुछ फेर बदल चाहते हैं, तो वैसा करना हम पर निर्भर है।

अमरीका के कुछ ऐसे लोगों ने भी जवाहर के प्रति गहरा लगाव प्रदर्शित किया, जो उनसे कभी नहीं मिले थे। जवाहर के लेखों आदि द्वारा उन्होंने जवाहर की मूर्ति अपने मन में बनाई। ऐसी ही एक महिला न्यूयार्क की जीन फ्रोस्ट थी। उन्होंने जवाहरलाल की कृति टुवर्ड्स फ्रीडम पढ़ कर कहा, "मैं अपने आप पर शर्मिन्दा हूं कि मैंने इतना लम्बा समय निराशा के कीचड़ में फंसकर नष्ट कर दिया ..... मैंने स्वयं को मानव जीवन से अलग किया और मुझे आश्चर्य हुआ कि कौन सी चीज मुझे निराश कर रही थी। उन्होंने अपने पत्र (15 अप्रैल, 1941) में आगे लिखाः- "आपने मुझे सोचने के लिए बहुत कुछ दिया है ..... मैं विश्व को रहने योग्य बनाने के लिए अपना योगदान करना चाहती हूं।" धन्यवाद। मैं तुच्छ प्राणी बहुत दूर प्रकाश की किरण देख कर अन्धकार में अरण्यरोदन कर रही हूं, परन्तु हवा अथवा वर्षा अथवा मानव के पाखंण्ड से अप्रभावित हूं। शायद मेरा यह कथन अधिक अलंकृत हो और अधिक स्पष्ट न लगे परन्तु जो मैं कह रही हूं उसे मैं अन्तर्मन से महसूस करती हूं।

इसी पुस्तक को पढ़ने वाली एक दूसरी पाठक कैलिफोर्निया में वालेजो की इरमा मायर्स आर्थर हैं। वह पुस्तक को पढ़ कर इतनी अधिक प्रभावित हुई कि उसने जनवरी से नवम्बर, 1944 के दौरान जवाहरलाल को बड़े ही विचारप्रधान और हृदयगाही पत्र लिखे। वह जवाहरलाल को, जैसा कि उसने लिखा है, पुस्तक में वर्णित एक पुरुष रूप में ही जानती है। उस समय जवाहरलाल अहमदनगर किले की जेल में थे। इरमा आर्थर के पत्र दिल्ली में गृह मंत्रालय के ब्रिटिश अधिकारियों ने रोक लिए। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भी लगता है ये पत्र जवाहरलाल ने नहीं पढ़े, अन्यथा वे उनका बहुत ही भावभीना उत्तर देते। उसके पत्रों के कुछ उदाहरण निम्न प्रकार हैंः-

"मैं एक अमरीकी (ब्रिटिश मूल की) गृहिणी और मां हूं, और सभी बच्चों के भविष्य के कल्याण में गहरी रुचि रखती हूं। यदि हमारे बच्चे भी हमारी ही तरह अपना अगला जीवन चलाते हैं तो हमने इतने लम्बे समय तक स्वतंत्रता के लिए जो संघर्ष किया है, वह निष्फल हो जाएगा .....

आपकी पुस्तक टुवर्ड फ्रीडम को बार-बार पढ़ा है और मुझे आश्चर्य हुआ है कि क्या इस पृथ्वी पर कोई ऐसा व्यक्ति है जो जीवन को उसी दृष्टि से देखता है जिससे मैं देखती हूं? और यदि ऐसा है तो हमारे बीच यह दूरी क्यों है?

अमरीका में भी समाजवादी हैं और उनकी एक पार्टी भी है परन्तु उन्हें अपने इस विश्वास पर गौरव नहीं है। क्योंकि आपके मन में अपने विचारों के सही, उत्तम और वैज्ञानिक होने का घमण्ड नहीं है, वह मुझे प्रभावित करता है.....

जब कभी भी आप मेरे पत्रों का उत्तर देंगे, मैं आपको यह विश्वास दिलाती हूं कि निजी पत्राचार को मैं निजी ही मानती हूं — भले ही वह प्रतिष्ठित व्यक्तियों से हुआ पत्राचार हो। हमेशा शानोशौकत में रहने से नीरसता आ ही जाती है। मैं अपना एक सामान्य सा फोटो भेज रही हूं, जो मेरी बेटी ने गोल्डन गेट पार्क में खींचा था। ऐसा यह सोचकर कर रही हूं कि अपने छठे पत्र के बाद मुझे आपको अपनी पहचान दे देनी चाहिये। मेरी टोपी पर जो पंख दिख रहा है, वह पृष्ठभूमि में एक पेड़ की छाया है। इससे मुझे खुली हवा मिलती है और मैं अनुभव करती हूं ····

"हमारी भी अपनी पवित्र गाय है। उसे उन्होंने स्वतंत्र उद्यम का बड़ा सुंदर नाम दिया है। पर यदि फिर भी हमारे करोड़ों बच्चों का जीवन बौद्धिक, भावनात्मक और शारीरिक कुपोषण से नष्ट किया जाता है, उनकी बौद्धिक क्षमता को न छेड़ा जाए। पूर्व के देश विश्व को सामाजिक ज्ञान देने के लिए उसी प्रकार आगे क्यों नहीं आते हैं जिस प्रकार पश्चिमी देशों ने भौतिक ज्ञान दिया है।

समाजशास्त्र और भौतिकशास्त्र के समन्वय का अध्ययन करने के लिए मैं रूस की यात्रा करना चाहती हूं। ····· रूस भी ऐसा ही देश लगता है जो युद्ध के अन्त से नहीं घबराता। वह स्वयं अपने लोगों को रोजगार दे सकेगा। मैं स्वयं भी व्यक्तिवाद और साझे मालिकाना हक में विश्वास करती हूं, जो अपने प्रत्यक्ष रूप के समान ही आश्चर्यजनक है।

मुझे प्रथाओं और शिष्टाचार का पालन करना चाहिये। एक विवाहित महिला होते हुए मैं एक आकर्षक पुरुष को पत्र लिख रही हूं और मुझे यह आरोप लगाया जा सकता है कि मैं आपको लुभाने का प्रयत्न कर रही हूं। मैं आपको यह बता दूं कि मैं आपको अपने पति की सहमति से ही लिख रही हूं। शायद जो कुछ मैं लिखती रही हूं वह हमारे वैवाहिक संबंधों का प्रतिरूप ही है। वह भौतिकशास्त्री हैं जब कि मैं समाजशास्त्री, पर दोनों एक दूसरे के बीच में हस्तक्षेप नहीं करते हैं। वह बाह्य शक्ति से संबंधित नियमों को जानना चाहते हैं, जब कि मैं मानव विधियों की खोज में रहती हूं। हम दोनों ने बहुत पहले एक दूसरे की गतिविधियों के बारे में जानना छोड़ दिया है। हमने एक दूसरे की भिन्न रुचियों को समझना सीख लिया है। ·····

मैंने आपके जेल से छूटने की खबर पाने की आशा में एशिया मेंगजीन मंगाना शुरू किया है। आपके जेल से बाहर आने पर समूचा संसार और अधिक सुरक्षित हो जायेगा ····

मेरे बाग में आज एक बड़ा सुन्दर सफेद फूल खिला। क्या ही अच्छा होता कि इसें मैं आपको भेज पाती। कोमल फूल मुझे सदैव आनन्दित करते हैं। वे हमारी प्रगति के प्रतीक हैं ·····

आप आयु में मुझसे 6 साल बड़े हैं तो क्या मुझे यह बता सकते हैं कि क्या कहीं सत्य है, और यदि है तो वह कहां है?

इरमा आर्थर ने 14 नवम्बर, 1944 को जवाहरलाल को लिखे अपने अन्तिम पत्र में इस दिन के बार-बार आने की कामना करते हुए लिखा आप की स्पष्ट देखने और साहस के साथ यह बताने कि मैंने यह देखा, इन दोनों विशेषताओं को कितना आत्मसात किया है, काश मैं यह बता सकती । इन विशेषताओं के लिए आपने वर्षों जेल में रहकर जो कीमत चुकाई है उस की मैं प्रशंसा करती हूं। परन्तु मुझे आश्चर्य है हम तब भी एक दूसरे के लिए नहीं हैं, अपने बनाए प्रतिबंधों में बंधे हैं। एक दूसरे से प्रतियोगिता करने में लगे हैं और कहते हैं कि मैं तुमसे बेहतर हूं और इस प्रकार हम एक दूसरे के प्रति संदेह की भावना में फंस जाते हैं ..... अपने अन्तर्मन से मैं आप को जन्म दिन पर हार्दिक बधाई देती हूं।''

इरमा आर्थर, जैसा कि उन्होंने अपने एक पत्र में लिखा है, ने हाई स्कूल बाद की शिक्षा स्वयं ही प्राप्त की। जवाहरलाल के प्रति ऐसी ही भावभीनी श्रद्धा मेगडालन, आक्सफोर्ड के स्नातकोत्तर व्यक्ति गेस्ट लीवों ने प्रकट की है। उन्होंने जवाहरलवाल को (29 सितम्बर, 1940) आत्मकथा का हवाला देते हुए लिखा ''मैं उम्र में आपसे बड़ा हूं और अपने इस लम्बे जीवन में अनेक भाषाओं की अच्छी पुस्तकें पढ़ी हैं। किसी भी पुस्तक ने मेरे मन में लेखक के प्रति आदरभाव पैदा नहीं किया। यदि आप मुझे क्षमा करें तो मैं शेक्सपियर के शब्दों में कहना चाहता हूं :

''उस का जीवन उदात्त है, और उसके व्यक्तित्व में ऐसे गुण हैं कि प्रकृति विश्व से यह कहती है: यही वास्तव में मनुष्य कहलाने योग्य है।''[12]

विश्व के विभिन्न भागों तथा भिन्न पृष्ठभूमि और संस्कृति से संबंधित लोगों से प्राप्त ये पत्र जवाहरलाल नेहरू के सार्वभौमिक गुणों को दर्शाते हैं।

27

जी. पार्थसारथी

लोकतंत्र, समाजवाद, राष्ट्रीय एकता एवं शांति

मुझे जवाहरलाल नेहरू के साथ अनेक वर्षों तक कार्य करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है। उनके विचारों तथा कार्यों का मुझ पर गहरा प्रभाव पड़ा, जिसके कारण राष्ट्रीय एवं अंतर्राष्ट्रीय समस्याओं के प्रति मेरा दृष्टिकोण ही बदल गया। उनके साथ हुई मेरी प्रत्येक मुलाकात अपने आप में अविस्मरणीय है। उनमें प्रत्येक समस्या को ऊंचे स्तर पर विचारने एवं उसे उसके ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में प्रस्तुत करने की अद्‌भुत क्षमता विद्यमान थी। वह अपने युवा अधिकारियों के तर्कों का स्वागत करते थे तथा यह चाहते थे कि वे अपने विचार स्वतंत्रतापूर्वक प्रकट करें। प्रत्येक व्यक्ति उनके साथ विचार-विमर्श करने के पश्चात यह अनुभव करता था कि उसके ज्ञान में कुछ न कुछ वृद्धि अवश्य हुई है। उन्होंने जो मान, स्नेह तथा प्रोत्साहन मुझे प्रदान किया, वह मुझे सदा याद रहेगा।

जवाहरलाल नेहरू को हमसे बिछुड़े 25 वर्ष से अधिक हो गए हैं, किन्तु राष्ट्रीय आंदोलन के वीर सेनानी, आधुनिक भारत के निर्माता एवं विश्व-राजनीतिज्ञ के रूप में उनकी छवि समय के प्रवाह में धूमिल नहीं हो पाई है। वह अपने युग के न केवल एक असाधारण व्यक्ति थे, बल्कि उनकी अपनी कृतियों में जो राजनीतिक दूरदर्शिता विद्यमान है, उसकी मौलिकता एवं उपयोगिता अभी तक अक्षुण्ण बनी हुई है। हम में से जो व्यक्ति नेहरू जी को व्यक्तिगत रूप से जानते हैं और जिन्होंने उनके जीवन-दर्शन का अंशमात्र भी आत्मसात कर लिया है, वे अपनी अन्तरात्मा से ऐसा महसूस करते हैं कि आज के जटिल समाज में व्यक्तिगत और सामाजिक समस्याओं के समाधान के लिए उन्हें वही दृष्टिकोण अनिवार्यतः अपनाना होगा जो जवाहर लाल जी के विचारों और व्यवहार में अभिव्यक्त हुआ है। वह भविष्य में भी हमारा ध्रुवतारे की भांति पथप्रदर्शन करते रहेंगे।

वस्तुतः उनके विचार समाज की बुराइयों को दूर करने के लिए उनके द्वारा सुझाए गए उपाय आज भी उतने ही सार्थक हैं। उन्होंने सदैव अतीत के अनुभव और भविष्य की चुनौतियों के संदर्भ में वर्तमान को देखने की आवश्यकता पर जोर दिया जिसके कारण उनका दृष्टिकोण एक ऐसे परिवेश के लिए भी सार्थक बन गया, जबकि प्रौद्योगिकी के

चहुंमुखी विकास ने बुद्धिजीवी वर्ग को भी अपने चारों ओर व्याप्त प्राकृतिक वातावरण के प्रति जागरूक बना दिया। पर्यावरण के प्रति चेतना हममें से कुछ व्यक्तियों में अब आकर पैदा हुई है। हममें से कुछ व्यक्तियों में तो अब महत्वपूर्ण बात यह है कि हम उनके संदेश का गम्भीरतापूर्वक विश्लेषण करें और उसे अधिक जोरदार ढंग से कार्यरूप में परिणत करें। यही एकमात्र रास्ता है जिसके जरिए हम उन उत्कृष्ट संस्थाओं का, जो नेहरू जी को बचपन से ही प्रिय थीं और जिन्हें उन्होंने अपने जीवनकाल में पुष्ट किया, इस प्रकार से पुनर्निर्माण, संस्कार और संवर्धन किया जा सकता है कि उनसे हमारे समय की मांग पूरी हो जाए। प्रत्येक पीढ़ी को मानवजाति के इतिहास, संस्कृति तथा संचित ज्ञान की खोज करनी होती है ताकि वह इसमें से अपने लिए उपयोगी कुछ निकाल सके। ऐसी जिज्ञासापूर्ण प्रत्येक पुनर्खोज अपने आप कोई नया आविष्कार भी होता है। जेफर्सन ने, जिनकी नेहरू प्रशंसा किया करते थे, एक महत्वपूर्ण लेखांश में कहा था कि जिस प्रकार एक राष्ट्र दूसरे राष्ट्र से बिल्कुल भिन्न होता है उसी प्रकार एक पीढ़ी दूसरी पीढ़ी से बिल्कुल भिन्न होती है। इसीलिए नई पीढ़ी को अपने युग की समस्याओं का उपयुक्त समाधान खोजने के लिए कठिन प्रक्रिया से गुजरना पड़ता है। आज भारत में गांधी और नेहरू केवल नाममात्र, शब्द-मात्र अथवा बौद्धिक एवं नैतिक मूल्य संबंधी दुविधाओं से बचकर निकलने का मार्ग मात्र नहीं है। यह तो इन महान व्यक्तियों की महानता है कि पिछली कठिनाइयों के समाधानों से उत्पन्न हुई नई समस्याओं के समाधान पाने के प्रयास में हम इन्हीं दो व्यक्तियों की ओर मुड़कर देखना उचित मानते हैं क्योंकि इन्होंने हमारी जीवन-शैली एवं विचारधारा को एक निश्चित स्वरूप प्रदान करने में महत्वपूर्ण भूमिका अदा की है।

अतः यही उपयुक्त होगा कि हम उनके जन्म-शताब्दी के वर्ष उनके उन विचारों तथा कार्यों का फिर से अनुसरण करने का प्रयत्न करें जो उन्हें अति प्रिय थे, जो उनके मन पर सदा छाए रहे और जिनके बारे में वह अपनी सारी उम्र, राष्ट्रीय आंदोलन के दौरान एवं सत्ता में आने के बाद भी सदा बोलते रहे। यह जवाहरलाल नेहरू का एक विशेष गुण था कि उन्होंने संक्रमणकालीन अवधि में जबकि पुरानी व्यवस्था का स्थान नई व्यवस्था ले रही थी, सामाजिक एवं राजनीतिक समस्याओं का समाधान खोजने की अपनी उत्सुकता पर "सत्ता की तनिक भी" छाया नहीं पड़ने दी। हम जिन विषयों पर विचार करेंगे वे हैं — राष्ट्रीय एकता, धर्मनिरपेक्षता, समाजवाद और शांति। इन विचारों को वह न केवल भारत, बल्कि पूरे विश्व में, इस धरा पर विद्यमान मानवीय सभ्यता के सम्पन्न एवं अकिंचन दोनों प्रकार के वर्गों के भावी समाज के निर्माण के संदर्भ में प्रमुखता देते थे। शांति एवं नई विश्व-व्यवस्था के लिए विश्वव्यापी संघर्ष के महत्व को भली-भांति समझने के कारण नेहरू न केवल भारत और विश्व के बीच में एक सेतु थे, बल्कि वह भारत के भीतर राष्ट्रीयता और समाजवाद के बीच भी एक सेतु थे।

यहां एक मुख्य बात को याद रखना महत्वपूर्ण है। नेहरू का विश्वास था कि यदि इन सभी आदर्शों को लोकतांत्रिक तरीके से प्राप्त नहीं किया जाता, तो ये बेमाने हो जाते हैं। लोकतंत्र के बिना राष्ट्रीय पुनर्निर्माण के सभी कार्य अधूरे रह जायेंगे। सभी मनुष्यों एवं सभी वस्तुओं के प्रति एक मानवीय दृष्टिकोण, हमारे गांवों और शहरों में जीवन को सही रूप प्रदान करने के लिए एक शुद्ध वैज्ञानिक प्रवृत्ति, उदासीनता अथवा बनावटी प्रेम-व्यवहार से सावधानीपूर्वक बचते हुए धैर्यपूर्ण रवैये और अति विशिष्ट व्यक्तिगत तरीके से सभी प्रकार की मानवीय अनुभूतियों के प्रति ग्रहणशीलता की आवश्यकता को सदा महत्वपूर्ण मानते थे। नेहरू के असाधारण व्यक्तित्व के ये एवं अन्य अनेक पहलुओं पर हम घंटों चिंतन कर सकते हैं। ये बातें इतनी महत्वपूर्ण हैं कि इनकी उपेक्षा करना इस देश और इस युग के जीवन मूल्यों को नष्ट करना है।

सर्वप्रथम, मैं राष्ट्रीय एकता को लेता हूं। नेहरू ने अपना सम्पूर्ण जीवन भारत के वास्तविक स्वरूप को समझने में लगाया। "डिस्कवरी ऑफ इंडिया" न केवल एक साहित्यिक उत्कृष्ट कृति है, बल्कि यह तो एक व्यक्ति द्वारा स्वयं अपनी की गई खोज का वर्णन है, ज्ञान-वर्धन का प्रमाण है तथा परस्पर-विरोधी परिस्थितियों से भयंकर रूप से ग्रस्त विशाल भारतीय समाज में समन्वय खोजने का प्रयास है। विभिन्न भाषाओं तथा विभिन्न भौगोलिक प्रदेशों के कारण यहां विभिन्न स्थानीय हितों का उठ खड़ा होना स्वाभाविक ही है। जनता को सत्ता के हस्तांतरण से अधिकांश लोगों की दशा में तो तत्काल सुधार होता है, किन्तु इससे राष्ट्रीय हितों की उपेक्षा होती है, विभिन्न प्रदेशों में आपस में प्रतिस्पर्धा पैदा हो जाती है। सभी प्रकार के राजनीतिक संगठन इस समस्या से ग्रस्त रहते हैं। यह एक ऐसी बात है जिसे हमें सहन करना होगा। लोकतंत्र में इस प्रकार की विघटनकारी प्रवृत्तियों के लिए काफी गुंजाइश रहती है। नेहरू इस समस्या के प्रति किसी भी अन्य व्यक्ति की तुलना में अधिक जागरूक थे तथा उन्होंने अपने जीवन का काफी समय देश में जनता और राजनीतिक दलों दोनों को ही यह समझाने में बिताया कि अराजकता और सहमति के बिना नीतियों का कार्यान्वयन ऐसे दो खतरे हैं जिनसे बचने की नितान्त आवश्यकता है।

हमारे जैसे विशाल एवं विविधतापूर्ण समाज को निस्संदेह एक मजबूत केन्द्रीय सरकार की आवश्यकता थी लेकिन लोकतंत्र तब तक सुनिश्चित नहीं किया जा सकता जब तक कि बहुस्तरीय राजनीतिक व्यवस्था की निचली से निचली तथा छोटी से छोटी शाखा को भी अपने मामले में स्वायत्ततापूर्वक निर्णय लेने का अधिकार न दे दिया जाये। भारतीय परिस्थितियों में यह विरोधाभास सतत रहा है। एक लेखांश में नेहरू ने कहा है: "केन्द्रीयकरण तथा विकेन्द्रीकरण दोनों की व्यवस्था एक साथ कैसे हो, यह इस युग की समस्या है। भारत में पिछली एक-दो पीढ़ियों पर गांधीजी की अन्य बातों के साथ-साथ उनके विकेन्द्रीकरण सम्बन्धी विचारों का जबरदस्त प्रभाव पड़ा है। एक ओर हम

भारतवासी उनके चरखे के बारे में तथा इसी प्रकार की अन्य बातें गर्व से करते हैं, तो दूसरी ओर अर्थशास्त्री एवं विदेशी लोग इस विचार की हंसी उड़ाते हैं, क्योंकि उन्होंने गांधीजी के वास्तविक अभिप्राय को ठीक से नहीं समझा है। मेरे विचार से गांधीजी आधुनिक युग की अनिवार्य सुख-सुविधाओं के विरुद्ध न थे। वह यह नहीं चाहते थे कि हमारे देश में बिजली, विद्युत शक्ति, रेलवे, विमान आदि की सुविधाएं उपलब्ध न हों। हां, सत्ता के अत्यधिक केन्द्रीयकरण को देखते हुए, वह राजनीतिक, आर्थिक अथवा धन-सत्ता का विकेन्द्रीकरण अवश्य चाहते थे। वास्तव में वह किसी भी प्रकार के केन्द्रीयकरण को पंसद नहीं करते थे। चूंकि वह विकेन्द्रीकरण चाहते थे, इसीलिए लोगों को विकेन्द्रीकरण की महत्ता समझाने के लिए उन्होंने इस पर इतना अधिक बल दिया कि तर्क की कसौटी पर वह उचित नहीं लगता।"

महात्मा गांधी के दर्शन को यथावत् ठीक से समझने तथा उसकी उपयुक्त व्याख्या करने की नेहरू की योग्यता का यह एक अच्छा उदाहरण है। एक विशाल देश की राष्ट्रीय एकता के मार्ग में आने वाली कठिनाइयों के प्रति स्वयं नेहरू कितने जागरूक थे, उपरोक्त उद्धरण से यह भी स्पष्ट होता है। एक अन्य अवसर पर उन्होंने कहा था, "सहस्त्रों वर्षों के इतिहास ने हमारे देश के जनमानस को इस तरह से प्रभावित किया है और इसे यह रूप दिया है—अर्थात् यहां चिरस्थायी एकता के साथ-साथ अनुपम विविधता है, इस देश में अनेक धर्मों के अनुयायी रहते हैं, हमारे लोगों के बीच अनेक महान भाषाएं फल-फूल रही हैं। परन्तु इस विविधता के होते हुए भी एकता की गहरी जड़ों ने हमें एक सूत्र में बांध रखा है। हम सभी को यह समझना चाहिए कि भारत और इसके निवासियों का भविष्य केवल सहिष्णुता और सहयोग पर ही निर्भर करता है जो अतीत से हमारी संस्कृति के आधार रहे हैं।"

आज, शिक्षा के प्रसार, विभिन्न प्रकार की नई प्रौद्योगिकी की उपलब्धता और सदियों से उदासीन और अभागीदार रहे समाज के सभी वर्गों की नये अवसर पाने की होड़ के फलस्वरूप नई मांगों और प्रादेशिक निष्ठा का जन्म हुआ। यह घटना 20 वीं शताब्दी में बड़े पैमाने पर हुए विचारों के पारस्परिक आदान-प्रदान और विकास की चाह का प्रत्यक्ष परिणाम है। बड़े से बड़ा देश और छोटे से छोटा राज्य, कोई भी इन समस्याओं से पूर्णतः मुक्त नहीं है। अतः इन समस्याओं का सामना करने का अनुभव विश्व भर के लोगों का लगभग एक जैसा रहा है । इस समस्या के प्रति ठीक दृष्टिकोण केवल वही है जो नेहरू ने इसके प्रति अपनाया था। समस्या के प्रति संवेदनशीलता या जागरुकता अर्थात् 'देश के सभी लोगों में भावनात्मक एकता लाने का निष्ठापूर्ण प्रयास ही एकमात्र विकल्प है।" नेहरू ने कहा था कि "मैं चाहता हूं कि हमारे शासकीय और अशासकीय दोनों ही प्रकार के दैनिक कार्यकलापों में इन्हें मूर्त रूप दिया जाए ताकि हम अपने सपनों के भारत का निर्माण कर सकें।"

हमारे समाज में दो ज्वलंत समस्याएं ऐसी हैं जो नेहरू युग में भी थीं और वे हैं क्षेत्रीयता के प्रति अंधनिष्ठा से उत्पन्न हुई चुनौतियां और धार्मिक अथवा साम्प्रदायिक द्वेष से उत्पन्न खतरें। अपने सम्पूर्ण राजनैतिक जीवनकाल के दौरान नेहरू धर्मनिरपेक्षता के प्रबल समर्थक रहे। उनकी मान्यता थी कि यही भारत की एकता का सुदृढ़ आधार हैं। एक बार उन्होंने कहा था, "हमने अपने संविधान में भारत को धर्मनिरपेक्ष राज्य घोषित किया है। इसका अर्थ यह नहीं कि यहां धर्म के लिए कोई स्थान नहीं है। इसका अभिप्राय है सभी धर्मों का समान रूप से आदर करना और सभी धर्मों के अनुयायियों को समान अवसर प्रदान करना।" भारतीय राजनीति के इस बदलते परिवेश में, क्षेत्रीयता के प्रति निष्ठा संभवतः एक बड़ी समस्या का रूप धारण कर चुकी है। इस संबंध में एक बार टिप्पणी करते हुए नेहरू ने ठीक ही कहा था, "मेरे विचार से और संभवतः आपके विचार से भी उत्तर और दक्षिण तथा पूर्व और पश्चिम भारत में कोई भेद नहीं है। भारत एक है। मैं और आप सब इसके उत्तराधिकारी हैं। भारत हम सबका है।"

स्वतंत्रता संग्राम के साथ लम्बे समय तक सम्बद्ध रहने के दौरान उनके समक्ष एक अखंड और भावनात्मक दृष्टि से अविभाज्य भारत की छवि उभरी। विभाजन की दुखद घटना देश के लिए गहरा आघात था परन्तु तब इस कम से कम कड़वे घूंट को पीने के अलावा कोई दूसरा चारा न था और प्रधानमंत्रित्व काल में वह हमेशा एकता की आवश्यकता पर बल देते रहे, क्योंकि उनकी राय में अन्य मार्गों से शनैःशनैः विघटन और अंततः पतन निश्चित था। अपने लम्बे इतिहास के दौरान भारत ने विभाजन के अभिशाप को कई बार झेला है और नेहरू महसूस करते थे कि यह हमारी पीढ़ी का कर्तव्य है कि हम इसकी पुनरावृत्ति न होने दें। यह जरूरी था कि सौहार्दपूर्ण वातावरण तैयार किया जाए, विभाजनकारी विचारों को समूल नष्ट किया जाए और एक पूर्णतः संगठित राष्ट्र का निर्माण किया जाए, जो विश्व-मंचों में प्रभावी ढंग से भाग लेने के लिए इच्छुक हो और साथ ही योग्यता भी रखता हो। उन्होंने यही बात इन शब्दों में कही थीः "हम, भारतवासी एक ओर तो संस्कृति, समान उद्देश्यों, मैत्री एवं प्रेम की मजबूत डोर से बंधे हुए हैं, तो दूसरी ओर दुर्भाग्य से भारत में विघटनकारी और अलगाववादी प्रवृत्तियों की जड़ें भी दबी पड़ी हैं जो नये मुद्दों के रूप में अनुकूल वातावरण पाकर फूट पड़ती हैं। हम देख चुके हैं कि अपने अनेक विशिष्ट गुणों एवं योग्यताओं के बावजूद हम बार-बार अलग-अलग कौमों में बंटे हुए हैं और इस एकता के अभाव के कारण ही भारत के लोग ऐसी विभिन्न जातियों और सम्प्रदायों में विभाजित हो गए हैं कि अब उनके लिये मिलजुल कर एक-साथ रहना मुश्किल हो रहा है। अतः मैं भारत की एकता कायम रखने और साम्प्रदायिकता, प्रांतीयता, अलगाववादी और जातिवादी प्रवृत्तियों के विरुद्ध संघर्ष छोड़ने की आवश्यकता पर हमेशा बल देता हूं।"

मार्च 1964 में अपने जीवन के अवसानकाल में नेहरू का झुकाव पुनः धर्मनिरपेक्षता की ओर हुआ। किन्तु इस प्रकार उनके दृष्टिकोण में आशा की झलक अधिक थीः "आदि

काल से ही भारत की जनता परस्पर सौहार्द से रहकर गौरव का अनुभव करती आयी है। यही भारत की संस्कृति का मूल आधार है। ..... अतः हमें इस बहुमूल्य विरासत की रक्षा करनी है और हमें कोई ऐसा काम नहीं करना है जिससे यह नष्ट हो जाए ..... हमें सदैव यह बात याद रखनी चाहिए कि प्रत्येक भारतीय चाहे वह किसी धर्म का अनुयायी हो, हमारा भाई है और उसे भाई वास्तव में माना भी जाना चाहिए।"

एक अखण्ड राष्ट्र और पूर्णरूपेण धर्मनिरपेक्ष भारत की कल्पना एक यथार्थ समाजवादी कार्यक्रम के बिना साकार नहीं हो सकती है। नेहरू की राय थी कि लोकतंत्र, समाजवाद और शांति को एक दूसरे से अलग नहीं किया जा सकता बल्कि ये तीनों एक दूसरे की अपेक्षा करते हैं और एक दूसरे को मजबूत करते हैं। सच्चे समाजवाद का अर्थ है सुदृढ़ लोकतंत्र, न कि लोकतांत्रिक मूल्यों का अभाव। सुदृढ़ लोकतांत्रिक और समाजवादी व्यवस्था वाला भारत ही संकटग्रस्त विश्व में शांति की खोज में सार्थक भूमिका निभाने में सक्षम हो सकेगा। इसमें हैरानी की कोई बात नहीं है। स्वतंत्रता प्राप्त होने से बहुत पहले नेहरू ने यह महसूस कर लिया था कि भारत का स्वतंत्रता संग्राम अपने आप में लोकतंत्र के लिए संघर्ष भी है। सिविल लिबर्टीज यूनियन के प्रति उनकी दिलचस्पी उनकी इस भावना की प्रतीक है। चौथे दशक के दौरान नेहरू के लोकतंत्र के प्रति अडिग विश्वास ने ही उन्हें फासीवाद और तानाशाही का विरोधी बना दिया था। उन्होंने इस बात पर जोर दिया था कि हमारे नए संविधान में लोकतांत्रिक व्यवस्था को उचित स्थान दिया जाना चाहिए। यह न तो संयोग मात्र था और न रमणीय कल्पना मात्र थी कि वयस्क मताधिकार पद्धति को, जिसे पश्चिमी देशों में भी हाल ही में अपनाया गया है, भारत में पहले प्रयास में ही अपना लिया गया था। नेहरू व्यक्ति के मूल अधिकारों, स्वतंत्र न्यायपालिका और समाचार-पत्रों की पूर्ण स्वतंत्रता पर हमेशा बल दिया करते थे।

नेहरू यह भी समझते थे कि स्थानीय संस्थाओं में लोकतंत्र की स्थापना के लिये केन्द्रीय सरकार का सहयोगपूर्ण रवैया होना जरूरी है। सामुदायिक विकास कार्यक्रम, राष्ट्रीय विस्तार सेवा और पंचायत राज्य की धारणा के मूल में यही दर्शन निहित था। अतः स्थानीय संस्थाओं के स्तर पर सुदृढ़ लोकतंत्र की स्थापना के लिए इन महत्वाकांक्षी कार्यक्रमों को कारगर तरीके से लागू करने का प्रयास किया गया तथा केन्द्र और राज्यों में संसदीय प्रणाली उतने ही मजबूत ढंग से कायम की गई। नेहरू संसदीय संस्थाओं और उन्हें सुदृढ़ बनाने वाली स्थापित परम्पराओं का बहुत आदर करते थे।

नेहरू यह मानते थे कि वास्तविक राजनीतिक अधिकारों का आधार आर्थिक विकास ही है। समाज और अर्थव्यवस्था के पुराने ढांचे को बदलने और ऐसे नये समाज के निर्माण की आवश्यकता है जिसमें लोगों में राजनीतिक और आर्थिक सत्ता का बंटवारा समुचित हो। उनका विश्वास था कि भारत जैसे देश के लिये समाजवाद अपनाने के अलावा कोई अन्य विकल्प नहीं है। इस देश के लोग इतने निर्धन हैं कि वे अपने शासकों

के लिए पूंजीवाद जन्य वैभव जुटाने में असमर्थ हैं। स्वाधीनता से एक दशक से भी पहले नेहरू ने अपने राजनीतिक दर्शन को समाजवाद की संज्ञा देते हुए कहा था कि "वैज्ञानिक दृष्टि पर आधारित समाजवाद हमें किसी सिद्धांत विशेष अथवा दूसरे देश द्वारा अपनायी गई व्यवस्था, जो पूर्ण रूप से भिन्न परिस्थितियों का परिणाम हो, के अंधानुकरण की सीख नहीं देता है। अतीत के विश्लेषण और मानवीय संबंधों की अभिव्यक्ति पर आधारित दर्शन और अपने वैज्ञानिक दृष्टिकोण के साथ एक समाजवादी व्यक्ति अपने देश की समस्याओं का समाधान अपने ही देश की परिवर्तित पृष्ठभूमि और उसके आर्थिक विकास के स्तर और विश्व के परिप्रेक्ष्य में खोजने का प्रयास करता है। यह बहुत ही दुष्कर कार्य है। परन्तु अन्य कोई आसान उपाय भी तो नहीं है।"

नेहरू निरन्तर यह प्रयास किया करते थे कि अधिकांश मामलों में राष्ट्र स्तर पर मतैक्य बन जाए। उन्होंने लोगों को एक नये समाज के निर्माण के लिए और लोकतांत्रिक तथा समाजवादी मूल्यों को अपनाने हेतु प्रगतिशील बनने की शिक्षा दी। वह समाज के विकास में व्यक्ति को अत्यंत महत्वपूर्ण स्थान देने और उसे विकास का पूरा अवसर देने को बहुत अधिक महत्व देते थे। "पर शर्त यह है कि व्यक्ति किसी वर्ग-विशेष का न होकर जनसाधारण में से हो।" गांधीजी को स्मरण करते हुए उन्होंने कहा था, "जीवन का दर्शन होड़ अथवा अर्जन मात्र न होकर सहयोग होना चाहिए, प्रत्येक व्यक्ति के कल्याण में सबका कल्याण निहित है।"

गांधीजी की भांति, नेहरू एक मानवोचित और न्यायसंगत सामाजिक व्यवस्था में विश्वास रखते थे। इसके पीछे मुख्य उद्देश्य यह था कि जन सामान्य के जीवन-स्तर में सुधार लाया जाए। वर्ष 1947 से काफी पहले ही, जवाहरलाल नेहरू ने किसी भी वाद के प्रति बेकार की कट्टरता दिखाए बिना व्यावहारिक रूप से प्रारूप—खाका तैयार करने हेतु कांग्रेस की राष्ट्रीय योजना समिति का गठन किया था। समाजवाद उनके लिए हठधर्मिता नहीं थी। बल्कि इसे वह सिद्धांतों का एक ऐसा ढांचा मानते थे, जिसे भारतीय परिप्रेक्ष्य के अनुकूल ढालकर अपनाने की जरूरत थी। उन्होंने प्रारम्भ में ही यह अनुभव कर लिया था कि उत्पादन को सर्वोपरि प्राथमिकता दी जानी चाहिए; उचित वितरण के लिए अपने पास पर्याप्त वितरण-सामग्री तो होनी ही चाहिए। सुमसामयिक उपायों के जरिए उत्पादन बढ़ाने और आधुनिक प्रौद्योगिकी का उपयोग करने की आवश्यकता को देखते हुए ही उन्हें आधुनिक विज्ञान तथा प्रौद्योगिकी पर इतना अधिक बल देने के लिए विवश होना पड़ा। ऐसा करते हुए, उन्होंने समृद्ध देशों का अन्धानुकरण नहीं किया। विकासशील देशों के लिए कृषि को विशेष महत्व दिया जाना अधिक आवश्यक था। आज हमें उनकी प्राथमिकताओं संबंधी स्पष्ट सूझबूझ का लाभ मिल रहा है। भारी उद्योग ने भारत को प्रौद्योगिकीय आधार प्रदान किया है। मशीनों की मदद से खेती करके कृषि को भी आधुनिक बनाए जाने की आवश्यकता थी, जिसके लिए भारी औद्योगिक आधार तैयार करना बहुत जरूरी था। कृषि के द्रुत विकास को सुनिश्चित करने का यही एक तरीका है।

नेहरू के अनुसार, प्रजातंत्र और समाजवाद के साथ-साथ आगे बढ़ना था। उपयुक्त सुनियोजित व्यवस्था में दोनों विरोधी न होकर एक दूसरे के लिए प्रेरक बने हैं। उन्हें यह बात अच्छी तरह पता थी कि समाजवाद को लाने के लिए, इसके सरल उपाय करने की अपेक्षा उनके तरीके में अत्यधिक समय लगेगा। लेकिन दूसरी ओर इसके परिणाम अधिक टिकाऊ हो सकते हैं। उनके मन में प्रजातंत्र के प्रति यह भावनात्मक लगाव गांधी जी के साध्य से साधना के अधिक आनंददायी होने संबंधी दृष्टिकोण से प्रखरित हुआ। उन्होंने कहा कि हमें समझना होगा "कि हमारी पृष्ठभूमि, विशेष रूप से गांधीवादी पृष्ठभूमि अनेक प्रकार से अद्‌भुत है।" उन्होंने यह भी कहा, "भारत के सहज विघटनकारी गुण के कारण, इस देश में जोर-जबरदस्ती करना विशेष रूप से खतरनाक है।" जहां तक मैं समझता हूं बुनियादी बात यह है कि गलत रास्ते से सही मंजिल तक नहीं पहुंचा जा सकता और वह दिन दूर नहीं है जब यह बात न केवल आदर्श बल्कि व्यावहारिक सिद्ध होगी। यही कारण है कि नेहरू ने आम सहमति से समाजवाद लाने की आवश्यकता पर जोर दिया था।

नेहरू का समाजवाद और प्रजातंत्र में विश्वास, उनकी शांतिपूर्ण अंतर्राष्ट्रीय वातावरण की आवश्यकता के प्रति जागरूकता से अभिन्न रूप से जुड़ा हुआ था। किसी भी देश के लिए, कम से कम भारत जैसे निर्धन देश के लिए, जोकि अनेक समस्याओं से जूझ रहा है, तब तक कोई प्रगति करना संभव नहीं है जब तक कि उसे उपयुक्त शांति और शांतिपूर्ण सह-अस्तित्व का ऐसा वातावरण उपलब्ध न हो, जिसमें अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग जीवन की बुनियादी सच्चाई हो। युद्ध और संघर्ष के वातावरण से राष्ट्रीय विकास रुक जाएगा। नेहरू समझते थे कि भारत विश्व स्थिति से अछूता नहीं रह सकता। भारत ने, फिर भी शांति के लिए कार्य करते हुए स्वतंत्र रुख अपनाया और अपनी आत्मनिर्भरता की स्थिति की रक्षा करने में समर्थ रहा। यही गुटनिरपेक्षता का सार है।

जवाहरलाल नेहरू ने, ऐसे समय में जब कोई परिवर्तन और आमूल-चूल हेर-फेर करना बहुत ही कठिन था, विदेश नीति के क्षेत्र और विदेशों के साथ भारत के स्वतंत्र संबंध स्थापित करने में रचनात्मक भूमिका निभाई। उन्होंने देश की विदेश नीति के सिद्धांत तय किए और उसका अक्षरशः पालन किया। उन्होंने भारत की आजादी की लड़ाई को, चारों ओर गुलामी की जंजीरों में जकड़े सभी लोगों को आजाद कराने के संघर्ष के रूप में लिया। वह जानते थे कि भारत जैसे नए आजाद हुए देश को परमाणु युग की चुनौतियों का सामना करना पड़ेगा और ताकतवर विरोधी राष्ट्रों के बीच तनाव कम करने के लिए साहसिक भूमिका निभानी होगी। उन्होंने सहयोग के क्षेत्र में वृद्धि करने तथा वैमनस्य और संघर्ष के कारणों को समाप्त करने के लिए यथासंभव प्रयास किए। उनकी उपलब्धियां यहीं समाप्त नहीं होतीं। वह बदलाव, शांतिपूर्ण तरीके से बदलाव, लेकिन तेज बदलाव की जरूरत के प्रति हर समय सचेत रहे। उनके अनुसार ऐसा न होने पर शांति भंग होती तथा संघर्ष और युद्ध से शांति के बेहतर परिणाम तहस-नहस हो जाते। वह चाहते थे कि देश में 'खुशहाल समाज' तथा पूरे विश्व में अन्तर्राष्ट्रीय शांति और सहयोग स्थापित किए जाने के उद्देश्यों की साथ-साथ पूर्ति हो।

जवाहरलाल नेहरू ने धर्मनिरपेक्षता, प्रजातंत्र और समाजवादी कार्यक्रम के उपायों के जरिए राष्ट्रीय एकता का लक्ष्य प्राप्त करने हेतु जो उत्साह दिखाया, संभवतः उसकी थोड़ी सी जानकारी मैं आपको देने में सफल हुआ हूं। उन्हें भारत, भारत की विरासत तथा विश्व तथा विश्व के मामलों में प्रमुख भूमिका निभाने के इसके सामर्थ्य और इसके उत्तरदायित्व पर अत्यधिक गर्व था। उन्होंने भारत के अतीत और इसके भविष्य को एक मंजे हुए इतिहासकार की आंखों से देखा। उनमें उत्साह तो पर्याप्त था परन्तु भ्रम बिल्कुल नहीं था, जो प्रायः अज्ञान का परिणाम होता है। उन्होंने एक बार क्रांति को अपने निर्लिप्त और तटस्थ मन से इस प्रकार आंका था, "यह बड़ी विचित्र बात है कि कभी-कभी जो व्यक्ति स्वयं को बहुत बड़ा क्रांतिकारी समझता है वह बदलती हुई परिस्थितियों पर विजय प्राप्त करने के प्रयास में कुछ असावधानी बरतने के कारण प्रायः दकियानूसी भी हो जाता है। मैं 160 अथवा 170 वर्ष पूर्व हुई फ्रांस की क्रांति की बात करता हूं। फ्रांस में बड़े जोरदार धमाके के साथ क्रांति हुई, जिसने यूरोप को भयभीत कर दिया और इससे असंख्य विचारधाराएं फूट निकलीं, जिसका यूरोप पर लगभग अगले सौ वर्षों तक प्रभाव रहा। मेरे विचार में फ्रांस की क्रांति जिस समय हुई, तभी वह कालातीत हो गई थी, क्योंकि इसके पीछे कोई बड़ी क्रांति पंख फैला रही थी और वह थी औद्योगिक क्रांति। फ्रांस की क्रांति के नेता उस औद्योगिक क्रांति के प्रति पूर्णतः अनभिज्ञ थे, जोकि उस समय शुरू हो चुकी थी।"

तीक्ष्ण टीका-टिप्पणी करने की यह क्षमता, अपने निकटवर्ती पर्यावरण के संबंध में पूर्णतः तटस्थ होकर विश्लेषण करने की योग्यता आदि नेहरू के कुछ ऐसे गुण हैं, जो उनके समकालीन युवाओं ने इस चुम्बकीय व्यक्तित्व के सानिध्य में कई वर्षों तक रहकर आत्मसात किए। उन्होंने फ्रांस की क्रांति और 1917 की रूस की क्रांति तथा पांचवें और छठे दशक के दौरान उपनिवेश समाप्त करने के एक भारी सैलाब मानव-जाति के सुरक्षा संबंधी प्रयास और उसके अनुपालन के रूप में देखा था। इन सभी घटनाओं को विश्वव्यापी परिवर्तन, क्षेत्रीय अवरोध तथा वैयक्तिक अपवर्तन की परस्पर विरोधी प्रक्रिया में जन-नायकों के लिए स्वयं को आसन्न पूर्वाग्रह से तटस्थ रखना और न केवल अपने ही देश के लिए, बल्कि समूची मानव जाति के लिए एक स्वस्थ दर्शन की परख करना आवश्यक हो गया था। शायद यही एक कारण था कि पंडितजी परमाणु शस्त्रों से होने वाले विध्वंस, जिसे मानव जाति के सम्पूर्ण विनाश की संज्ञा दी जा सकती है, की आशंका से इतने अधिक व्याकुल और चिन्तित थे। उन्होंने जो खतरे महसूस किए थे, उनमें से अनेक खतरे आज भी विद्यमान हैं और जिनका सामना करने के अलावा, वस्तुतः अब कोई चारा शेष नहीं रह गया है। इन खतरों का सामना उनकी विशिष्ट दलीलों अनासक्ति तथा प्रबल मानव सहानुभूति का रास्ता अपनाकर किया जा सकता है। अन्तिम विश्लेषण के रूप में उनकी नीति का ब्यौरा इतना महत्वपूर्ण नहीं है, जितना कि उनका यथार्थ अनूठा मानवतावादी दृष्टिकोण, जो आने वाले अनेक वर्षों तक हमें प्रेरणा देता रहेगा।

28

विमल प्रसाद

जवाहरलाल नेहरू और भारतीय विदेश नीति की नींव

जवाहर लाल नेहरू ने लोगों को इस बारे में सोचने के लिए प्रोत्साहित नहीं किया कि भारत के प्रधान मंत्री और विदेश मंत्री के रूप में प्रारम्भिक चरण (1947-64) के दौरान भारत की विदेश नीति उनके द्वारा यथाप्रतिपादित और क्रियान्वित उनकी अपनी कृति है। भारतीय संसद (लोक सभा) में 1958 में विदेशी मामलों पर चर्चा का उत्तर देते हुए उन्होंने कहा था :

> "हमारी नीति को "नेहरू" नीति कहना बिल्कुल गलत है। यह इसलिए गलत है क्योंकि मैंने केवल इतना किया है कि उस नीति को अभिव्यक्ति दी है। मैंने इसका सृजन नहीं किया है। यह नीति भारतीय परिस्थितियों, भूतकालिक हिसाब, भारत के सम्पूर्ण मानसिक दृष्टिकोण, हमारी स्वतंत्रता की लड़ाई के दौरान भारतीय मन के अनुकूलन और विश्व की आज की परिस्थितियों में समाविष्ट है। यह केवल संयोग की बात है कि उन कुछ वर्षों के दौरान विदेश मंत्री के रूप में मैंने उस नीति का प्रतिनिधित्व किया है : मुझे पूर्ण विश्वास है कि भारत के विदेशी मामलों का प्रभारी जो भी होता और भारत में चाहे जो भी दल सत्ता में होता, वह भी लगभग इसी नीति का अनुपालन करता।"

उपर्युक्त अभिव्यक्ति में पर्याप्त सार है। इस बात में कोई सन्देह नहीं है, कि भारत की विदेश नीति की नींव डालने का श्रेय अधिकांशतः नेहरू को जाता है। बढ़ती हुई गुटबन्दी और तनाव वाली इस दुनिया में एक नवोदित स्वतंत्र राष्ट्र की आवश्यकताओं के संदर्भ में भारत की विदेश नीति से संबंधित मामलों के बारे में भारत की प्राचीन परम्पराओं और आधुनिक विचारधारा की व्यवस्था उन्होंने ही की। उनके द्वारा प्रतिपादित विदेश नीति के मुख्य सिद्धांत इसी व्याख्या पर आधारित थे, इससे इतिहास की शक्तियों के बारे में नेहरू जी के ज्ञान और एक राजनीतिज्ञ के रूप में उनकी तीक्ष्ण बुद्धि का पर्याप्त रूप से पता चलता है कि पर्याप्त परिवर्तनों के बावजूद उनके निधन के 25 वर्ष बाद भी वे सिद्धान्त आज भी भारत की विदेश नीति का मार्गदर्शन करते हैं।

प्रधान मंत्री के रूप में नेहरू की विदेश नीति को स्वरूप देने वाला एकमात्र सर्वाधिक महत्वपूर्ण कारक स्वतंत्रता आंदोलन के दौरान विश्व संबंधी मामलों पर भारतीय दृष्टिकोण का विकास था। उस दृष्टिकोण का सर्वाधिक महत्वपूर्ण तत्व भारत को महाशक्तियों की प्रतिस्पर्धा और झगड़ों से अलग रखने का निर्णय करना और विश्व संबंधी मामलों में एक स्वतंत्र मार्ग अपनाना था जो स्वतंत्रता और शक्ति के समर्थन पर आधारित था। इस प्रकार के विचारों को भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस ने निरन्तर प्रमुखता से विकसित किया जिसने 1885 में अपने जन्म से ही विदेशी मामलों में रुचि दर्शाई। प्रारम्भ में इस अभिरुचि का क्षेत्र सीमित होना स्वाभाविक था जिसने कांग्रेस के सामान्य राजनीतिक दृष्टिकोण की व्यापकता के साथ व्यापक आयाम प्राप्त किये। 1927 से प्रारम्भ होकर जब जवाहरलाल नेहरू ने ब्रुसेल्स में दलित राष्ट्रों की कांग्रेस में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई और फलस्वरूप अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर भारत के अधिवक्ता के रूप में उभरे, अन्तर्राष्ट्रीय महत्व की ऐसी कोई घटना नहीं थी जिस पर कांग्रेस ने ध्यान नहीं दिया और ऐसी कोई समस्या नहीं थी जिसके लिए इसने उसका हल प्रस्तुत नहीं किया। और इन घटनाओं तथा समस्याओं पर कांग्रेस के प्रायः सभी संकल्पों के प्रारूपों को नेहरू द्वारा ही तैयार किया गया था, जिन्होंने विश्व के मामलों में अपनी रुचि में कभी भी ढील नहीं आने दी। इसलिए यह स्वाभाविक था कि जब वे भारत के प्रधानमंत्री बने तो उन्हें उन्हीं विचारों से प्रेरित होना था जो स्वतंत्रता आन्दोलन के दौरान विकसित हुए थे।

वास्तव में नेहरू की विदेश नीति ऐतिहासिक पृष्ठभूमि पर विचार किए बिना ठीक ढंग से नहीं समझी जा सकती। तथापि इस बात पर जोर दिया जाना चाहिए कि नेहरू ने अतीत से प्रेरणा और पोषक गुण ग्रहण करते समय उसकी दासता स्वीकार नहीं की और उन्हें जहां भी आवश्यक हुआ नया रास्ता अपनाने में कोई कठिनाई नहीं हुई। वास्तव में एक कुशल शिल्पी के रूप में उन्होंने राष्ट्रीय आन्दोलन द्वारा निर्मित परम्पराओं को नये राष्ट्र की आवश्यकताओं और शान्ति तथा सहयोग पर आधारित नए विश्व की दृष्टि से अपनाया और इस प्रकार एक ऐसी विदेश नीति तैयार की जिसने न केवल उनके देश की आवश्यकताओं और हितों की सेवा की बल्कि वह प्रायः उन सभी देशों को मोटे तौर पर स्वीकार्य थी जिन्हें द्वितीय विश्वयुद्ध के पश्चात स्वतंत्रता मिली थी। इससे नेहरू काल के दौरान भारत की विदेशनीति को अद्‌भुत शक्ति मिली।

नेहरू द्वारा निर्धारित भारत की विदेश नीति के मुख्य आधार क्या थे ? सर्वप्रथम उनका दृढ़ विश्वास था कि भारत को विश्व के मामलों में अपना मार्ग स्वयं चुनना चाहिए और वह किसी भी देश के हाथ की कठपुतली न बने चाहे वह देश कितना ही बड़ा या शक्तिशाली क्यों न हो, नेहरू ने इस विचार को स्वतंत्रता प्राप्ति से पूर्व और बाद में बार-बार दोहराया। इसके लिए एक स्मरणीय अवसर मार्च-अप्रैल, 1947 में नई दिल्ली में आयोजित एशियाई संबंध सम्मेलन (एशियन रिलेशन कांफ्रेंस) द्वारा प्रदान किया गया

था। नेहरू ने प्रायः वहां पर एकत्र हुए सभी प्रतिनिधियों के अन्तरमन की भावनाओं को उस समय अभिव्यक्त किया था जब उद्घाटन भाषण के दौरान उन्होंने निम्न घोषणा की :

> "हम एशिया के लोग बहुत समय तक पश्चिमी न्यायालयों और चान्सलरियों में अर्जीदार रहे। अब वह कहानी पुरानी हो गई है। हम अपने पांवों पर खड़े होने और उनमें से हर एक से सहयोग रखने का प्रस्ताव रखते हैं जो हमारे साथ सहयोग करने के लिए तत्पर है। हम दूसरों के हाथों के खिलौने नहीं बनना चाहते।"

इस प्रकार की विचारधारा के फलस्वरूप गुट निरपेक्ष नीति का विकास होना स्वाभाविक था। इसका आशय था कि सबसे पहले किन्हीं अन्तर्राष्ट्रीय मामलों में स्वतंत्रता की घोषणा करना और किसी महाशक्ति के कंधों का सहारा लिए बगैर अपने रास्ते का अनुकरण करने के लिए दृढ़ इच्छा करना। यही कारण था कि गुट निरपेक्षता एक राष्ट्र के बाद दूसरे राष्ट्र को आकर्षक लगने लगी जब वे भारत की स्वतंत्रता प्राप्ति द्वारा गैर-उपनिवेशवाद की प्रक्रिया को गतिशील होने से स्वतंत्र रूप में सामने आये।

गुटनिरपेक्षता का दूसरा मुख्य आधार नेहरू की इस धारण में निहित है कि विश्व को दो युद्धोन्मुख शिविरों में विभाजित करना भयंकर विश्वयुद्ध छिड़ना सुनिश्चित करना था। इस बात को 7 सितम्बर, 1946 को अन्तरिम सरकार के वाइस प्रेसीडेन्ट के रूप में अपने प्रसारण में उन्होंने स्पष्ट रूप से कहा था, "जहां तक सम्भव हो हम एक दूसरे के विरुद्ध बने खेमों से जुड़ी राजनीतिक शक्ति के, जिससे अतीत में युद्ध हुए हैं और जो पुनः पहले से भी भयंकर विनाश कर सकते हैं, अलग रहने का प्रस्ताव करते हैं।"

21 जनवरी, 1947 को संविधान सभा में उद्देश्यों संबंधी संकल्प पर चर्चा का उत्तर देते हुए उन्होंने कहा था :

> "हम शान्ति चाहते हैं। जहां तक सम्भव हो हम किसी राष्ट्र से लड़ना नहीं चाहते हैं। अन्य राष्ट्रों के साथ एक मात्र सम्भव साझेदारी विश्व के एक ढांचे अर्थात एक विश्व ..... आप किसी भी नाम से इसे पुकारें के निर्माण के सम्बन्ध में हो सकती है। अब यदि हम उस ढांचे और उसे प्राप्त करने में अन्य देशों के साथ अपने सहयोग के बारे में सोचें तो यह प्रश्न कहां उठता है कि हम राष्ट्रों के इस खेमे से जुड़े हैं अथवा उस खेमे से? वास्तव में, जितने अधिक खेमों और ब्लाकों की रचना होगी यह महान ढांचा उतना ही अधिक कमजोर होगा।

इस प्रकार गुटनिरपेक्षता की नीति, जैसी नेहरू ने प्रतिपादित की, भारत के लम्बे स्वतंत्रता संघर्ष से विरासत के रूप में मिली और भारत के मिलिट्री में कमजोर होने अथवा

राजनीति के क्षेत्र में नया होने के कारण उसे स्वतंत्रता मिलने पर जल्दीबाजी में तैयार नहीं किया गया। निश्चय ही यह नए राष्ट्र की गहनतम इच्छाओं और आकांक्षाओं की द्योतक थी और यह आशा की गई थी कि इससे स्वतंत्र राष्ट्र बनने की कामना पूरी होगी। इसके अतिरिक्त जहां नेहरू ने शीत युद्ध से अलग रहना चाहा, उनके लिए गुटनिरपेक्षता का तात्पर्य उनके आसपास की दुनिया में होने वाली घटनाओं के प्रति किसी किस्म की उदासीनता नहीं थी। इसके विपरीत, वे विश्व की समस्याओं को सुलझाने में भारत को अपनी उचित भूमिका निभाते हुए देखने के इच्छुक थे। उन्होंने गुटनिरपेक्षता पर इतना जोर मुख्यतः इसलिए दिया कि किसी गुट में शामिल होने का तात्पर्य प्रभावशाली ढंग से कार्य करने की भारत की शक्ति में कटौती करना होगा जिसके लिए विश्व मंच में उसे सम्मान प्राप्त है। इस प्रकार गुटनिरपेक्षता उदासीनता या अकर्मण्यता के लिए एक बहाना नहीं थी बल्कि बात बिल्कुल इसके विपरीत थी।

नेहरू के अनुसार गुटनिरपेक्षता की मुख्य विशेषता विश्व शान्ति के लिए प्रयास करना था। उन्होंने गांधी जी के निर्देशन में काम किया जो कि इस बात पर बल देते हुए कभी नहीं थकते थे कि स्वतंत्र भारत का राष्ट्रों के बीच शान्ति और बन्धुत्व स्थापित करने का मिशन होगा। नेहरू उनके प्रिय अनुयायी थे तथा राजनीतिक उत्तराधिकारी भी थे और उन्होंने प्रत्येक बड़े अन्तर्राष्ट्रीय संकट को कार्य करने हेतु चुनौति के रूप में समझा।:

उन्होंने 1961 में गुटनिरपेक्ष देशों के पहले सम्मेलन के लिए बेलग्रेड में एकत्रित प्रतिनिधियों को अपने विचार स्पष्ट किए :—

> "गुटनिरपेक्ष का एक नकारात्मक अर्थ है, किन्तु यदि आप इसे सकारात्मक अर्थ दें तो इसका अर्थ उन राष्ट्रों से है जो युद्ध प्रयोजन के लिए मिलिट्री ब्लाक, मिलिट्री सहयोजन आदि के लिए एकत्रित होने पर आपत्ति करते हैं। इसलिए हम इससे दूर रहते हैं और हम अपनी शक्ति का व्यय शान्ति के पक्ष में करना चाहते हैं। इसलिए वास्तव में जब युद्ध की सम्भावना वाला कोई संकट हो तो निर्गुट होने का तथ्य ही हमें सक्रिय बनायेगा, हमारे चिन्तन को गतिशील बनायेगा और हमें यह महसूस करायेगा कि हमेशा से ज्यादा अब हमारे ऊपर यह निर्भर करता है कि हम ऐसा क्या करें जो ऐसे संकट को हमारे पास आने से रोके।"

राष्ट्रों के बीच शान्ति के लिए कार्य करने की तीव्र इच्छा के साथ-साथ एशियायी और अफ्रीकी देशों, जो भारत के स्वतंत्र होने के समय विदेशी शासनाधीन थे, को स्वतंत्र कराने के लिए कार्य करने की इच्छा भी जाग्रत हुई। स्वतंत्रता आन्दोलन के समय से यह एक विरासत के रूप में सामने आयी जिससे चीन तथा अन्य एशियाई और अफ्रीकी देशों के बीच दृढ़ बन्धुता हो गयी। स्वयं स्वतंत्रता संघर्ष में संलग्न इण्डियन नेशनल कांग्रेस ने अन्य एशियाई तथा अफ्रीकी देशों की ओर बढ़ता हुआ खिंचाव महसूस किया जिनमें

से अधिकतर किसी न किसी रूप में यूरोपीय शासन के अधीन थे। स्वभावतः इससे उनके बीच निकट संबंध की इच्छा पैदा हुई थी। समय के साथ-साथ यह भावना पैदा हुई कि भारतीय संघर्ष स्वतंत्रता के लिए विश्वव्यापी संघर्ष का अंग था और यह कि भारतीय लोगों का यह कर्तव्य था कि वे बृहत्तर संघर्ष के लिए भी अपना योगदान दें। निश्चय ही एशियाई और अफ्रीकी देशों के साथ बन्धुता ने उन देशों, विशेषतया एशिया में, स्वतंत्रता तथा एकता के लिए कार्य करने के लिए एक मिशनरी उत्साह को जन्म दिया और इससे स्पर्धा के रूप में सभी राष्ट्रों के शान्ति और सद्भाव के लिए कार्य इसी उत्साह से होने लगा। भारत की विदेश नीति की यह नींव अन्तरिम सरकार के वाइस प्रेजिडेंट के रूप में 7 सितम्बर, 1946 को किए गए उनके प्रसारण के निम्नलिखित उद्धरण में बिल्कुल स्पष्ट है :—

> "हम एशिया के हैं और एशिया के लोग अन्य लोगों की तुलना में हमारे अधिक करीब हैं। भारत की स्थिति ऐसी है कि वह पश्चिमी, दक्षिणी और दक्षिणपूर्वी एशिया की धुरी के समान है। विगत में उसकी संस्कृति इन सभी देशों में फैली और वे कई ढंग से उसके पास आये। उन संबंधों का नवीकरण किया जा रहा है और भविष्य में एक ओर भारत और दक्षिण-पूर्वी एशिया और दूसरी ओर अफगानिस्तान, ईरान और अरब देशों में निकट संबंध होंगे। स्वतंत्र देशों के उस निकट संबंध को बढ़ाने के लिए हमें कार्य करना चाहिये।

सोवियत संघ के लिए मित्रता की गहन अनुभूति का विकास अंशतः एशियाई स्वतंत्रता तथा एकता के कार्य में जुटे रहने से हुआ। पश्चिम यूरोप की साम्राज्यवादी शक्तियों के साथ-साथ इस विषय पर लेनिन के प्रसिद्ध कथन कि पूंजीवाद साम्राज्यवाद का जन्मदाता है, के उदाहरण द्वारा विकसित धारणा से तत्काल ही सोवियत संघ के लिए आकर्षण पैदा हुआ जो कि पूंजीवाद से मुक्त था और उसके साम्राज्यवाद से मुक्त बने रहने की सम्भावना थी। पश्चिमी शक्तियों द्वारा सोवियत शासन का लगातार विरोध उसे साम्राज्यवाद विरोधी शक्ति के रूप में और भी सामने लाया। इसके अतिरिक्त सोवियत संघ एक शक्तिशाली पड़ोसी था जिसके साथ यदि अच्छे संबंध बनाए जाएं तो वह भारत के लिए कई प्रकार से सहायक सिद्ध हो सकता था। इसके अलावा जो समाजवादी प्रणाली यह बनाने का प्रयास कर रहा था, उसका अपना एक आकर्षण था और यह महसूस किया गया कि इस क्षेत्र में सोवियत संघ ने जो अनुभव प्राप्त किया है वह भारत के लिए भी लाभदायक हो सकता है। यह भावना अप्रैल, 1936 में कांग्रेस के वार्षिक अधिवेशन में नेहरू के अध्यक्षीय भाषण में स्पष्ट रूप से सामने आई। यह बात कहते हुए कि समाजवाद नयी सभ्यता का प्रतिनिधित्व कर रहा है, उन्होंने टिप्पणी की :—

> "इसी नयी सभ्यता की कुछ झलक हम सोवियत संघ में देख सकते हैं। वहां बहुत सी घटनाएं घटीं जिनसे मुझे दुख हुआ और मैं उनसे असहमत हूं लेकिन

मैं इस महान और आकर्षक नयी व्यवस्था और नयी सभ्यता के उदय को निराशाजनक युग का सबसे आशाजनक लक्षण मानता हूं। यदि भविष्य आशाजनक है तो यह सोवियत संघ और उसने जो किया है उसके कारण है। और मुझे विश्वास है कि यदि विश्व में कोई विपत्ति उत्पन्न नहीं हुई तो यह नयी सभ्यता अन्य राष्ट्रों में भी फैलेगी तथा पूंजीवाद के कारण होने वाले युद्ध और संघर्ष समाप्त हो जायेंगे।"

संयुक्त राज्य अमेरिका द्वारा अपने मित्र राष्ट्रों के महत्वपूर्ण हितों की कीमत पर एशियाई और अफ्रीकी राष्ट्रवाद के समर्थन के बारे में संदेह होने के कारण सोवियत संघ के साथ मित्रता की भावना और मजबूत हुई। नेहरू को 1942 में "भारत छोड़ो" आन्दोलन के समय इसका पूर्वाभास था जब उन्होंने राष्ट्रपति फ्रैंकलिन डी. रूजवेल्ट, जिनके आदर्शवाद की भारत में प्रशंसा की जाती थी, से बार-बार अनुरोध किया था तो ब्रिटिश सरकार पर प्रभावी दबाव डलवाना तो दूर रहा वह नैतिक समर्थन प्राप्त करने में असफल रहे यद्यपि इन अनुरोधों का उद्देश्य यह समर्थन प्राप्त करना था। भारत के संबंध में संयुक्त राज्य अमेरिका की सतत चुप्पी की तुलना में अप्रैल, 1945 में संयुक्त राष्ट्र संघ के सान फ्रांसिस्को सम्मेलन में सोवियत संघ द्वारा स्वतंत्रता के लिए खुले समर्थन से भारत की नजरों में संयुक्त राज्य अमेरिका की स्थिति में कोई सुधार नहीं हुआ।

लेकिन फिर भी नेहरू के मन में संयुक्त राज्य अमेरिका के प्रति कभी भी विद्वेष की भावना उत्पन्न नहीं हुई। वास्तव में उनकी विदेश नीति में किसी भी राष्ट्र के प्रति विद्वेष की भावना नहीं थी। इस प्रकार से उन्होंने सच्चे अर्थों में भारतीय क्रांति का प्रतिनिधित्व किया, जिसने किसी भी राष्ट्र के प्रति विद्वेष की भावना नहीं रखी। स्वतंत्रता के लिये संघर्ष का आयोजन करते हुए कांग्रेस के नेताओं ने अपने अभियान में किसी भी अन्य राष्ट्र के प्रति विद्वेष (वैर भाव) को आधार नहीं बनाया! इसके विपरीत, विश्व बन्धुत्व के सिद्धांत के प्रति उनकी गहन आस्था थी। गांधी जी के बारे में भी यह बात खरी उतरती है जिन्होंने भारत की स्वतंत्रता को ही अपना अन्तिम लक्ष्य नहीं समझा अपितु विश्व के विभिन्न भागों में मतभेद किये बिना सम्पूर्ण मानव जाति की सेवा के लिये एक अवसर के रूप में इसे स्वीकार किया। ब्रिटिश शासन के विरुद्ध लम्बे स्वतंत्रता संग्राम के बावजूद उनके प्रति भारतीयों के मन में किसी प्रकार का विद्वेष न होना उनके लिये एक और महान् सफलता थी। जहां तक आदर्श मानव एकता का संबंध था गांधी को नेहरू के रूप में एक सच्चा अनुयायी मिला। प्रारम्भ में नेहरू ने गांधी की भाषा का प्रयोग नहीं किया जबकि वह उन्हीं के आदर्शों का अनुकरण कर रहे थे परन्तु बाद में यह अन्तर बहुत कम हो गया यद्यपि पूरी तरह समाप्त नहीं हुआ था। गाँधी ने नेहरू को अपना राजनीतिक उत्तराधिकारी बनाते हुए सन् 1942 में भविष्यवाणी की थी कि उनके पश्चात् नेहरू उनकी भाषा का अनुकरण करेंगे। वास्तव में नेहरू ने, 1945 के पश्चात् के उनके भाषणों को पढ़ने से स्पष्टतः मालूम पड़ता है, गांधी के रहते हुए उनकी भाषा बोलना प्रारम्भ कर दिया था।

जो कुछ ऊपर कहा गया है उससे यह निष्कर्ष नहीं निकाल लेना चाहिये कि भारत की विदेश नीति बनाते समय नेहरू ने न सिर्फ विश्व में शांति और स्वतंत्रता को मद्देनज़र रखा। इसके विपरीत, उन्होंने भारत के अपने राष्ट्रीय हितों पर उचित ध्यान दिया और किसी भी अन्य कार्य करने से पूर्व इसके लिये कार्य किया। 4 दिसम्बर, 1947 को भारतीय संविधान सभा (विधायी) के समक्ष दिये गये भाषण में उन्होंने कहा :

> चाहे जो नीति हम बनायें देश के वैदेशिक मामलों से निपटते समय यह ध्यान रखना चाहिये कि देश के लिये संबसे अधिक लाभप्रद क्या है। हम अंतर्राष्ट्रीय सद्भावना की बात करते हैं और उसे निभाते हैं। हम शांति और स्वतंत्रता की बात करते हैं और उस पर अनुसरण भी करते हैं। परन्तु अंततः कोई भी सरकार अपने देश, जिसका शासन वह चलाती है, के हित के लिये कार्य करती है और कोई भी सरकार ऐसा कार्य नहीं करेगी जो निकट भविष्य अथवा आगे चलकर देश का अहित करे।
>
> अतः चाहे देश साम्राज्यवादी अथवा समाजवादी या साम्यवादी क्यों न हो, उसका विदेश मंत्री सबसे पहले देश के हित पर विचार करता है।

इसका अर्थ यह नहीं है कि नेहरू स्वहित की संकीर्ण धारणा पर आधारित विदेश नीति का बखान कर रहे थे। वह इस बात पर जोर देने की कोशिश कर रहे थे कि शांति की खोज पर आधारित विदेश नीति प्रत्येक देश के हित में होनी चाहिए तथा वह राष्ट्रीय हितों की अवहेलना करने वाली भी नहीं होनी चाहिए। उन्होंने आगे स्पष्ट किया :

> लेकिन, वास्तव में कुछ अन्तर भी हैं। कुछ लोग अन्य परिणामों की परवाह किये बिना अपने देश के हितों के बारे में सोचते हैं अथवा दूर की नहीं सोचते। कुछ लोग सोचते हैं कि दीर्घकालिक नीति में अन्य देश के हित उनके लिये उतने ही महत्वपूर्ण हैं जितने कि उनके अपने देश के। शांति बनाये रखना ज्यादा महत्वपूर्ण है, क्योंकि यदि युद्ध होता है तो हर एक व्यक्ति प्रभावित होता है अतः दूरदर्शिता को ध्यान में रखते हुए स्वहित में अन्य राष्ट्रों के साथ सहयोग, सद्भावना की नीति अपेक्षित होगी और वास्तव में वह अपेक्षित होती है.....अतः हमें विश्व शांति और विश्व सहयोग के परिप्रेक्ष्य में भारत के हितों को देखना चाहिये ताकि विश्व शांति को बनाये रखा जा सके।

नेहरू की विदेश नीति के कार्यकरण की विस्तृत जांच करना यहां ठीक नहीं है। तथापि, इतना तो निश्चित ही कहा जा सकता है कि मोटे तौर पर "नेहरू ने अपनी घोषणा को साकार किया और विश्व सहयोग और विश्व शांति के संदर्भ में भारत के हितों को निश्चिय ही ध्यान में रखा।" यद्यपि वे सैनिक दृष्टि से कमजोर और आर्थिक दृष्टि से पिछड़े देश का नेतृत्व कर रहे थे, तथापि अपनी दृढ़ तथा कल्पनात्मक कूटनीति

से उन्होंने इंडोनेशिया, कोरिया, हिन्द चीन, स्वेज और कांगो जैसे स्थानों की स्वतंत्रता तथा शांति के लिए महत्वपूर्ण योगदान दिया और साथ ही राष्ट्रों की सर्वोच्च परिषदों में भारत के लिए ऊंचा स्थान हासिल करवाया जिसके लिए उन्होंने इसकी आवाज़ को प्रतिष्ठा तथा गौरव प्रदान किया जोकि कूटनीति के इतिहास में बेजोड़ है। इन सभी बातों से नेहरू की आवाज़ तीसरी दुनिया के लिये एक प्रामाणिक आवाज बन गयी और जैसे ही विश्व एक अंतर्राष्ट्रीय संकट के बाद दूसरे अंतर्राष्ट्रीय संकट से गुजरा राष्ट्र परिषद में उनका सम्मान उत्तरोत्तर बढ़ता गया और उस संकट की घड़ी में काफी उपयोगी सिद्ध हुई।

कम्यूनिस्ट नेतृत्व में एक सशक्त तथा संयुक्त चीन के उभरने से तीसरे विश्व में भारत की उत्कृष्ट स्थिति को चुनौती मिली, तथापि कई वर्षों तक, चीन सोवियत संघ के साथ सहबद्ध रहा जोकि उस समय इन दो बड़े कम्यूनिस्ट देशों के बीच अविघटनीय बंधन लग रहा था जबकि अधिकांश नवस्वतंत्र एशियाई तथा अफ्रीकी देश गुटनिरपेक्ष ही रहे। इसलिए सशक्त तथा संयुक्त चीन के उभरने से विश्व मंच पर अग्रणी गुटनिरपेक्ष देश के रूप में भारत की स्थिति पर बुरा प्रभाव नहीं पड़ा। इसके विपरीत, उसके उभरने से ही भारत को बड़े विनाशों की ओर बार-बार बढ़ने वाले संकट ग्रस्त विश्व को लाभ पहुंचाने में गुटनिरपेक्ष की कूटनीति की सामर्थ्य दिखाने का और अधिक अवसर मिला। इससे भारत चीन से संबंध भी सुधार सका तथा सोवियत संघ से अपने संबंध सुदृढ़ बना सका। इस प्रक्रिया में इसे संयुक्त राज्य की अप्रसन्नता भी बर्दाश्त करनी पड़ी जोकि भारत के साथ सैनिक समानता स्थापित करने में समर्थ बनाने के लिए पाकिस्तान के साथ संयुक्त राज्य के सैनिक समझौते में स्पष्ट हुई और इस प्रकार दक्षिण एशिया में शक्ति संतुलन कायम किया। यह दक्षिण तथा दक्षिण पूर्वी एशिया में भारतीय कूटनीति के लिए एक गंभीर रुकावट सिद्ध हुई, किन्तु वह इसकी सुरक्षा के लिए गंभीर खतरा पैदा नहीं कर सकी, जिसका मुख्य कारण सोवियत संघ के साथ बढ़ते हुए संबंध हैं तथा पाकिस्तान की ओर से आने वाले किसी भी खतरे से निपटने के लिए एक निश्चित सैनिक स्तर बनाये रखने की इसकी अपनी सभ्यता है।

चीन के साथ इसके सम्बन्ध छठे दशक के अंत में खराब होने के फलस्वरूप भारत को एक गम्भीर चुनौती का सामाना करना पड़ा जिसके लिये वह पर्याप्त रूप से तैयार नहीं था। भारत को चीन के हाथों सन् 1962 में जिस हानि का सामना करना पड़ा, उससे नेहरू की अंतर्राष्ट्रीय प्रतिष्ठा को बड़ा धक्का लगा। ऐसा प्रतीत हुआ कि उनकी विदेश नीति न केवल विदेशों में बल्कि भारतीय लोगों में भी अपना विश्वास खो बैठी है। वास्तव में जो गलत सिद्ध हुआ था वह उनकी विदेश नीति नहीं थी अपितु यह अनुमान गलत था कि चीन के साथ भारत की सीमा के सम्बन्ध में बढ़ते हुए मतभेद और दोनों देशों की चौकियों के अत्यधिक निकट होने के बावजूद चीन, भारत पर कोई बड़ा हमला नहीं करेगा। यह भी स्पष्ट हो गया कि रक्षा तैयारी पर पहले से अधिक ध्यान देने की

आवश्यकता है। फिर भी, नेहरू को इस बात से काफी सांत्वना मिली कि संकट के समय न केवल ब्रिटेन और संयुक्त राज्य अमेरीका ने भारत के प्रति सहानुभूतिपूर्ण रवैया अपनाया, बहुमूल्य रक्षा सामग्री भेजी तथा भविष्य में भी रक्षा सामग्री भेजने का वचन दिया अपितु सोवियत संघ ने भी साम्यवाद के बंधन के बावजूद जो उसे अभी भी चीन के साथ जोड़े हुए है वैसा ही रवैया अपनाया तथा भारत के साथ की गयी अपनी सभी रक्षा एवं आर्थिक वचनबद्धता को निभाया।

जहां तक चीन का ही सवाल है, इसके प्रति मित्रता की जो नीति नेहरू ने अपनायी वह ही उस समय एक वैध नीति थी और अब भी वह वैसी ही है। 1962 में चीनी आक्रमण से भारत की विदेश नीति में सामान्य तौर पर कोई आधारभूत परिवर्तन नहीं आया। वास्तव में जहां तक उस नीति का संबंध है कुछ आरंभिक नुकसानों के बावजूद भारत उस आक्रमण और उसके परिणामों का सामना विगत से कोई आधारभूत संबन्ध विच्छेद किये बिना कर सका। वर्षों की शत्रुता और अविश्वास के बाद भारत और चीन अब फिर से सामान्य, तथा दोनों के बीच अच्छे पड़ोसी संबंध बनाने के प्रयास कर रहे हैं। नेहरू युग में बनायी गयी भारतीय विदेश नीति की नींव की सुदृढ़ता का यह एक सर्वोत्तम उदाहरण है।

29

वी०पी० दत्त

जवाहरलाल नेहरू और भारत में सामाजिक परिवर्तन

भारत में सामाजिक परिवर्तन के प्रति जवाहरलाल नेहरू का दृष्टिकोण मिला-जुला था। उन्हें अन्धविश्वास तथा कर्मकाण्ड, राजाओं तथा ईश्वरीय अधिकारों को जन्म देने वाली व्यवस्था अथवा शोषण करने वाले एवं अर्थलोलुप उद्योगपतियों को उत्पन्न करने वाली व्यवस्था पसन्द नहीं थी। फिर भी उन्होंने महसूस किया कि एक प्रजातांत्रिक समाज में जिसमें संघर्ष की बजाय सामंजस्य ज्यादा महत्वपूर्ण है केवल धैर्य और शिक्षा तथा धीर-धीरे किये जाने वाले उपाय ही सफल हो सकते हैं।

वे बुद्धिवाद, उदारवाद, वैज्ञानिक प्रशिक्षण और औद्योगिक सभ्यता के वातावरण में पले थे और प्रथाओं, परम्परा तथा निष्क्रियता के बोझ से दबे समाज में क्रान्तिकारी परिवर्तन लाना चाहते थे।

वे मुख्यरूप से धार्मिक मानसिकता वाले सहयोगियों तथा अनुयायियों के बीच कार्य करते हुए रूढ़ियों को तोड़ने वाले व्यक्ति थे। वह जातीय, साम्प्रदायिक, वर्गगत तथा क्षेत्रीय पूर्वाग्रहों से परे थे। जवाहरलाल न तो गतिहीन थे और न ही अनिवार्यतः किसी बात पर अड़े रहने वाले व्यक्ति थे। समय के साथ-साथ उनमें प्रौढ़ता आती गई। वे आगे बढ़ते गये और उनमें परिवर्तन आता गया। उन्होंने पिछली आधी शताब्दी में दुनिया को तेजी से बदलते देखा था। दुनिया में चारों ओर हो रही घटनाओं के प्रति कभी उनके विचारों में परिपक्वता झलकती थी तो कभी मोहभंग दिखाई देता था। बाद में प्रशासन के दबाव ने उनकी सोच तथा कार्य करने की शैली को प्रभावित किया। परन्तु वे सामाजिक परिवर्तन, सामाजिक-आर्थिक बदलाव, विज्ञान और बुद्धिवाद के प्रति पूरी तरह वचनबद्ध थे, यद्यपि प्रयुक्त किये जाने वाले तरीकों और सम्भावित गति के बारे में उनके विचारों में कभी-कभी आमूल और कभी-कभी अपेक्षाकृत कम परिवर्तन आया परन्तु उस सीमा तक नहीं कि उन्हें अपनी मौलिक सोच ही त्यागनी पड़े।

सबसे पहले हमें यह मान लेना चाहिए कि सतही पाश्चात्यीकरण जो उन्हें पसन्द नहीं था, में नहीं अपितु समाज और उसकी समस्याओं के प्रति उनका दृष्टिकोण आधुनिक

था। इस दृष्टिकोण के कारण भारत में राष्ट्रवादी आन्दोलन के उनके अधिकतर साथियों से उनका अलग स्थान बन गया था। गाँधी जी से भी उनके मतभेद निश्चित रूप से इसलिए थे कि गाँधी जी प्राचीन परम्पराओं पर चलने वाले तथा आधुनिक उद्योग और वैज्ञानिक प्रगति को शंका तथा संदेह से देखने वाले व्यक्ति थे जबकि इसके विपरीत नेहरू जी का आधुनिक, वैज्ञानिक रुझान था।

जादू अथवा धर्म के लिये जवाहरलाल के पास कोई जगह नहीं थी। उन्हें व्यक्तिगत मुक्ति में विश्वास नहीं था और न ही उन्होंने पाप को परम्परागत अर्थ में स्वीकार किया। वे गाँधी जी के इस पूर्व विचार से असहमत थे कि भारत की मुक्ति इस बात में निहित है कि पिछले पचास वर्षों के दौरान उसने जो कुछ सीखा है उसको भूल जाये तथा रेलवे, टेलीग्राफ, अस्पताल, वकील, डाक्टर तथा ऐसे और सब लोगों का कोई स्थान नहीं रहेगा तथा प्रत्येक व्यक्ति साधारण किसान का जीवन बिताये जो वास्तविक सन्तोष प्रदान करता है। जवाहरलाल ने इसका विरोध किया था क्योंकि उन्हें इस दर्शन का निहितार्थ—गरीबी, कष्ट तथा साधु-जीवन से प्यार तथा उसका गुणगान—नापसंद था। गाँधी जी आवश्यकताओं को बढ़ाने और जीवन के उच्च स्तर के विरोधी थे और इसके बजाय वह आवश्यकताओं को सोच समझकर और स्वेच्छा से सीमित करने के पक्षधर थे जिससे वास्तविक सुख और संतोष प्राप्त होता है और मनुष्य की सेवा करने की क्षमता में वृद्धि होती है।

जवाहरलाल निर्धनता और पीड़ा की इस प्रशंसा को नापसन्द करते थे। वह निर्धनता और पीड़ा का उन्मूलन करना चाहते थे। न ही जवाहरलाल जी सामाजिक आदर्श के रूप में तपस्वी जीवन की प्रशंसा करते थे, हालांकि मैं इस बात पर बल देना चाहता हूँ कि जवाहरलाल जी सरलता, समानता, आत्म-नियंत्रण के प्रशंसक थे, परन्तु वह संसार से वैराग्य के विरोधी थे। जवाहरलाल सरल कृषक जीवन के आदर्शीकरण के भी सख्त विरोधी थे। वास्तव में उन्हें इस बात से बहुत डर लगता था और वह यह चाहते थे कि किसान लोग इस आदर्शीकरण के पंजों से मुक्त हो जायें और ग्रामीण इलाकों में शहरी सांस्कृतिक सुविधाओं के विस्तार का प्रयास हो।

जवाहरलाल इस बात से अवगत थे कि गांधी जी बहुत सी आधुनिक चीजों पर आपत्ति किया करते थे क्योंकि इन चीजों से आधुनिक समाज में हिंसा का प्रसार होता है और साधनों के प्रश्न पर भी चिन्तित रहते थे, और बाद में जवाहरलाल स्वयं ही साधनों और हिंसा की समस्या से लगातार चिन्तित रहे थे परन्तु उनका विश्वास था कि बुराई आधुनिक उद्योग और विज्ञान में नहीं बल्कि उस व्यवस्था में है जो पाश्चात्य देशों में प्रचलित है। व्यवस्था को परिवर्तित किया जाना आवश्यक है न कि आधुनिक विचारों एवं आधुनिक दृष्टिकोण को त्यागना।

जवाहरलाल इस बात में विश्वास नहीं करते थे कि व्यक्तियों का केवल नैतिक और आत्मिक सुधार करके ही बाहरी वातावरण में परिवर्तन लाया जा सकता है।

जैसा कि उन्होंने कहा है : "इन आसक्तियों की लत की वास्तविकता के बारे में अलग-अलग धारणाएं हो सकती हैं परन्तु क्या इसमें कोई सन्देह हो सकता है कि व्यक्तिगत दृष्टि से ही नहीं अपितु सामाजिक दृष्टि से भी ये व्यक्तिगत भावनाएं लिप्सा, स्वार्थ, संग्रह करने की प्रवृत्ति, व्यक्तिगत लाभ के लिए भीषण संघर्ष, वर्ग-संघर्ष, एक समूह द्वारा दूसरे समूह का अमानवीय दमन तथा राष्ट्रों के बीच घोर-युद्ध से कम हानिकारक है?.... परन्तु क्या वे आज के संग्रह करने की प्रवृत्ति वाले उस समाज में अन्तर्निहित नहीं हैं जिसका यह कानून है कि बलशाली कमजोर को दबाता है... मुनाफा कमाने का उद्देश्य ही अनिवार्यतः झगड़े की जड़ है। यह सम्पूर्ण पद्धति मानव की हिंसक प्रवृत्तियों की रक्षा करती है तथा उन्हें हर प्रकार का अवसर प्रदान करती है; यह मानव की कुछ उत्कृष्ट प्रवृत्तियों को तो प्रोत्साहित करती ही है, परन्तु इससे भी कहीं अधिक यह घटिया प्रवृत्तियों को प्रोत्साहित करती है। सफलता का अर्थ है दूसरों को मार गिराना तथा अपने पराजित दासों को ओर दबाना।"(1)

जवाहर लाल जी के आधुनिक तथा वैज्ञानिक दृष्टिकोण तथा इतिहास के उनके अध्ययन ने उन्हें इस बात का पूरा बोध करा दिया था कि निरंकुश सत्ता, परमसुख और शान्त वातावरण में रहने वाले आत्मनिर्भर गांवों की स्थिति को पुनः प्राप्त नहीं किया जा सकता। ऐसे गांव स्थापित करना यदि संभव भी हो, तो यह विश्व उन्हें अकेला नहीं जीने देगा।

इसीलिए, आधुनिक समाज, हिंसा, आक्रामक प्रवृत्ति, शोषण, निर्धनता, संघर्ष तथा यहां तक कि युद्ध की समस्याओं का हल इस पद्धति में, समाज के ढांचे में तथा संस्थागत स्वरूप में मूल परिवर्तन करके ढूंढ़ना अनिवार्य था। इसके परिणामस्वरूप जवाहरलाल जी की विचारधारा में यह परिवर्तन आया कि "केवल एक सम्भव हल यह है कि समाजवादी व्यवस्था की स्थापना सर्वप्रथम राष्ट्र की सीमाओं के भीतर तथा अन्ततः सम्पूर्ण विश्व में स्थापित की जाये जिसमें आम लोगों की भलाई के लिए उत्पादन तथा सम्पत्ति का वितरण नियंत्रित हो।"[2] उन्हें लोगों को अलग-थलग करके राष्ट्रीय, अन्तर्राष्ट्रीय आर्थिक तथा सामाजिक समस्याओं का हल करना निरर्थक लगा। "मैं यह कहूंगा कि मेरी लड़ाई व्यक्तियों से नहीं बल्कि पद्धति से है। निश्चित रूप से बहुत हद तक कोई पद्धति शक्तियों तथा समूहोंसे मिलकर बनती है अतः व्यक्तियों तथा समूहों को बदलना पड़ेगा अथवा उनका विरोध करना पड़ेगा परन्तु यदि पद्धति का कोई मूल्य ही नहीं रह गया है तो इस पद्धति को समाप्त करना ही पड़ेगा तथा जो वर्ग तथा समूह इससे चिपके हुए हैं उन्हें भी बदलना पड़ेगा। परिवर्तन की इस प्रक्रिया में यथासम्भव कम से कम कष्ट होना

1. जवाहरलाल नेहरू: **टुवर्ड्स फ्रीडम**, जान डे को, न्यूयॉक, 1941, पृष्ठ 314-26
2. वही।

चाहिए परन्तु उसमें कुछ कष्ट होना तथा अस्तव्यस्तता होना अनिवार्य है.... ।[3]

भारत के स्वतन्त्रता संघर्ष में नेहरू जी ने जो बहुआयामी योगदान दिया उस पर कोई आपति नहीं करेगा। स्वतन्त्रता के सन्देश को उन्होंने लोगों तक पहुंचाया तथा गांधी जी के साथ मिलकर उन्होंने उन्हें सचेत, जाग्रत और एकत्रित किया तथा लाखों की संख्या में उन्हें सक्रिय बनाया। तथापि इनके योगदान का एक महत्वपूर्ण पहलू यह है कि उन्होंने राष्ट्रवादी आन्दोलन में आर्थिक विचारधाराओं का समावेश करने के लिए संघर्ष किया। नेहरू जी ने राष्ट्रीय आन्दोलन में जन-समुदाय को लाने की नितान्त आवश्यकता अनुभव की थी। आर्थिक विचारधारा के बिना, राष्ट्रीय आन्दोलन अधूरा, संकीर्ण तथा सीमित होगा। यह लोगों को पूर्ण रूप से जाग्रत करने तथा उन्हें संघर्ष में शामिल करने में भी सफल नहीं होगा। राष्ट्रीय आन्दोलन को सार्थक दिशा देकर जवाहरलाल जी को आशा थी कि वे भारतीय समाज के संघर्ष को और आगे बढ़ायेंगे जिससे भारत की समस्याओं को हल करने के उद्देय और व्यापक बनेंगे।

स्वतंत्रता के लिए संघर्ष ही पहला और आवश्यक कदम था। परन्तु इसके पश्चात् अन्य कदम भी उठाए गए। जवाहर लाल जी ने नहुत ही स्पष्ट शब्दों में प्रश्न पूछा "किस की स्वतन्त्रता के लिए हम विशेष रूप से प्रयास कर रहे हैं, राष्ट्रवाद में बहुत से दोष हैं तथा इसमें कई परस्पर विरोधी तत्व शामिल हैं? भारत राजकुमारों का सामन्तवादी, बड़े जमींदारों, छोटे जमींदारों, पेशेवर वर्ग, कृषकों, उद्योगपतियों, बैंकरों, निम्न मध्मय वर्ग, श्रमिकों का देश है। इसमें विदेशी पूंजी तथा घरेलू पूंजी, विदेशी सेवाओं तथा घरेलू सेवाओं के हित निहित हैं। इसका राष्ट्रवादी उत्तर है घरेलू सेवाओं को विदेशी सेवाओं की अपेक्षा अधिक वरीयता देना। परन्तु यह आन्दोलन इससे आगे नहीं गया। यह वर्ग विभाजन अथवा सामाजिक यथास्थिति में हस्तक्षेप न करने का प्रयास करता है। ऐसा समझा जाता है कि देश स्वतन्त्र होने पर ये विभिन्न हित किसी न किसी तरह स्वयं स्थान बना लेंगे। अनिवार्यतः मध्यम वर्ग आन्दोलन होने के नाते राष्ट्रवाद सामान्यतः उसी वर्ग के हितों के लिए कार्य करता है। यह स्पष्ट है कि देश में विभिन्न हितों के बीच गम्भीर विरोध है और प्रत्येक कानून, प्रत्येक नीति, जो एक हित के लिए अच्छे हैं, दूसरे हित के लिए बुरे हो सकते हैं।"[4]

जवाहरलाल नेहरू ने इस मत को स्वीकार नहीं किया कि किसी हित को क्षति पहुंचाये बिना राष्ट्र के सभी हितों में तालमेल बिठाया जा सकता है, और प्रत्येक कदम पर कुछ हितों का अन्य हितों के लिए बलिदान करना पड़ता है। राष्ट्रवाद से लोग केवल यह समझ सके कि राष्ट्रीय हितों, देशवासियों के हितों और विदेशियों के हितों के बीच परस्पर संघर्ष है, परन्तु उससे लोग यह महसूस नहीं कर सके कि देश के भीतर आर्थिक हितों के बीच भी उसी प्रकार का परस्पर और आधारभूत संघर्ष है। वास्तव में राष्ट्रवाद ने इन

3. वही।

4. जवाहरलाल नेहरू: इंडिया एंड दि वर्ल्ड (लन्दन जार्ज ऐलन एंड अनविन, 1936) पृष्ठ 39-63

संघर्षों की अनदेखी करने का प्रयास किया। परन्तु जवाहरलाल ने ऐसे संघर्ष और अव्यवस्था जो न केवल विद्यमान थी बल्कि समाज की जड़ों को खोखला कर रही थी, की अनदेखी करने को शुतुरमुर्गी नीति और वास्तविकता से आंख मूंदना बताया।

जवाहरलाल सरकार के स्वरूप को लक्ष्य प्राप्ति का एक साधन मानते थे। यहां तक कि स्वतंत्रता भी एक साधन थी और लक्ष्य था मानव कल्याण, मानवीय विकास, गरीबी उन्मूलन, रोग और कष्टों का निवारण तथा प्रत्येक व्यक्ति को शारीरिक और मानसिक दृष्टि से "अच्छा जीवन" व्यतीत करने का अवसर प्रदान करना।

पूंजीवाद ने उत्पादन की समस्या तो हल कर ली थी, परन्तु वह वितरण की सम्बद्ध समस्या से निपटने में असमर्थ था। पूंजीवाद इस समस्या का समाधान नहीं कर सका; उसने तो विश्व को केवल अस्थिर और असंतुलित ही बनाया। पूंजीवादी प्रणाली की मूलभूत असमानताओं को समाप्त करने की दृष्टि से सम्पत्ति और क्रय शक्ति के समान वितरण की व्यवस्था करने के लिए पूंजीवाद के स्थान पर कोई और अधिक वैज्ञानिक प्रणाली लाए जाने की आवश्यकता है।

इसलिए, जवाहरलाल ने स्वतंत्रता आन्दोलन के बीच भी देशवासियों को यह स्मरण कराया, "राजनीतिक स्वतंत्रता के लिए राष्ट्रवादी संघर्ष धीरे-धीरे आर्थिक स्वतंत्रता के लिए एक सामाजिक संघर्ष भी बनता जा रहा है। स्वतंत्रता प्राप्ति और समाजवादी राज्य की स्थापना मुख्य लक्ष्य बन गए जिनसे इस समस्या के दो पहलुओं पर थोड़ा अथवा अधिक दबाव पड़ता रहा।.... अतः भारत का तात्कालिक लक्ष्य उसकी जनता का शोषण समाप्त करने की भावना ही माना जा सकता है। राजनीतिक दृष्टि से इसका अर्थ स्वतंत्रता प्राप्ति और ब्रिटेन से अर्थात साम्राज्यवादी आधिपत्य से संबंध विच्छेद करना है; आर्थिक और सामाजिक दृष्टि से इसका तात्पर्य विशेष वर्ग के सभी विशेषाधिकारों और निहित स्वार्थों को समाप्त करना है।"[5]

जवाहरलाल ने संघर्ष की इस अवधि के दौरान यह महसूस किया कि भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के लिए शायद ऐसा करना सम्भव नहीं हो क्योंकि उसका गठन तो उनके सम्पूर्ण कार्यक्रम को स्वीकार करने के लिए किया गया था, परन्तु उनका निरन्तर प्रयास कांग्रेस को उस दिशा की ओर मोड़ते रहने और धीरे-धीरे उससे उनके दर्शन को स्वीकार करवाने के लिए था। वह यह जानते थे कि कांग्रेस विभिन्न समूहों और वर्गों का एक संयुक्त मोर्चा होने और उनके अग्रणी सहयोगी भिन्न-भिन्न मतों वाले होने के कारण वह कांग्रेस को पूर्ण रूप से बाध्य नहीं कर सकते, परन्तु फिर भी वह कांग्रेस को धीरे-धीरे अपनी विचारधारा की ओर मोड़ते रहे, यद्यपि अनेक लोगों ने उनके विचारों को औपचारिक रूप से तो स्वीकार कर लिया था परन्तु वस्तुतः नहीं। उन्होंने श्रमिकों, किसानों और विशेषकर बुद्धिजीवियों को राष्ट्रीय आन्दोलन में शामिल करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई और इस प्रकार इसका आधार व्यापक बनाया। उन्होंने कहा था कि राष्ट्रीय आन्दोलन की ताकत

5. वही।

का पता इस बात से चलेगा कि उसे श्रमिकों और किसानों का कितना समर्थन प्राप्त है। यह समर्थन उनके हित का समर्थन करके ही प्राप्त किया जा सकता है।

उन्होंने इस मत को अस्वीकार कर दिया था कि केवल कांग्रेस ही इन विभिन्न वर्गों और समूहों के बीच संतुलन रख सकती है, क्योंकि पलड़ा तो पहले ही एक ओर, अर्थात सम्पन्न वर्ग की ओर काफी झुक गया था। वे उद्योग में पैतृकवाद को, जिसे वे दानवृत्ति की संज्ञा देते थे, नापसंद करते थे। उन्होंने न्यासिता के सिद्धांत को भी उसी प्रकार व्यर्थ बताया क्योंकि न्यासिता किसी व्यक्ति की नहीं हो सकती, परन्तु राष्ट्र की हो सकती है। नेहरू ने कहा था कि मुक्ति के लिए किसी भी अच्छे आन्दोलन को जन आन्दोलन होना चाहिए तथा उन्होंने जनता को जाग्रत करने और उसे राष्ट्रीय आन्दोलन में शामिल करने के लिए अथक प्रयास किए थे।

यह स्वयंसिद्ध है कि जवाहरलाल समाजवाद में विश्वास करते थे। तीसर दशक के प्रारम्भ से ही जवाहरलाल का दृष्टिकोण समाजवाद और समाज की समाजवादी व्यवस्था के पक्ष में रूपांतरित हो गया था।

समाजवाद में उनका विश्वास जीवन भर बना रहा, यद्यपि उन्होंने अपने कुछ विचारों विशेषकर साधन और गति के प्रश्न सम्बंधी विचारों में परिवर्तन किया था। 1929 में ऐतिहासिक लाहौर कांग्रेस में अपने अध्यक्षीय भाषण में जवाहरलाल ने स्वीकारोक्ति की थी, "मैं यह स्पष्ट रूप से स्वीकार करता हूँ कि मैं एक समाजवादी और गणतंत्रवादी हूँ; तथा राजाओं और राजकुमारों में या ऐसी किसी व्यवस्था में विश्वास नहीं रखता हूँ जो आधुनिक औद्योगिक राजा बनाने वाली हो। जिनके पास प्राचीन युग के राजा-महाराजाओं से भी अधिक शक्ति हो और जिनके तौर-तरीके प्राचीन सामंतों की तरह लूटमार करने वाले हो। तथापि, मैं यह मानता हूँ कि राष्ट्रीय कांग्रेस जैसी किसी संस्था द्वारा और देश की वर्तमान परिस्थितियों में पूर्णरूप से समाजवादी कार्यक्रम अंगीकार करना संभव नहीं है, परन्तु हमें यह महसूस करना चाहिए कि समाजवाद की विचारधारा पूरे विश्व में समाज के सम्पूर्ण ढांचे में फैल गई है और लगभग विवाद का प्रश्न केवल यह है कि पूरी तरह प्राप्त करने के लिये क्या गति और तरीके अपनाये जायें। यदि भारत अपनी गरीबी और असमानता समाप्त करना चाहता है तो उसे भी उस रास्ते पर चलना होगा, यद्यपि वह अपने तरीके बना सकता है और अपने लोगों की बौद्धिकता के अनुसार अपना सकता है।"[6]

जवाहरलाल के लिए समाजवाद का अर्थ सभी व्यक्तियों के लिए सभी कुछ से नहीं था। यह कोई अस्पष्ट या धुंधली चीज नहीं थी। समाजवाद का अर्थ था वैज्ञानिक

6. लाहौर कांग्रेस में अध्यक्षीय भाषण, 29 दिसम्बर, 1929 ए.एम. जैदी: कांग्रेस अध्यक्षीय भाषण, खंड चार 1925-39, इंडियन इंस्टिट्यूट आफ एप्लाइड पोलिटिकल रिसर्च, नई दिल्ली, 1988: भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के 44वें अधिवेशन में अध्यक्षीय भाषण।

समाजवाद तथा उत्पादन और वितरण के साधनों पर समाज का नियंत्रण होना। उन्होंने समाजवाद के उन सभी सिद्धान्तों को हास्यास्पद बताया जो वस्तुतः चंद ही लोगों का प्रभुत्व बनाये रखते हों।

जवाहरलाल ने 1929 में कहा था कि वर्तमान व्यवस्था में उद्योग का कार्य करोड़पति लोग पैदा करना है: "इसलिए हमारी अर्थव्यवस्था मानवीय दृष्टिकोण पर आधारित होनी चाहिये और धन के लिए आदमी का बलिदान नहीं किया जाना चाहिए। यदि किसी उद्योग को उसके कामगारों को भूखों मारे बिना नहीं चलाया जा सकता है, तो वह उद्योग बंद हो जाना चाहिए। यदि देश में कामगारों को पर्याप्त खाना नहीं मिलता तो उन बिचौलियों को समाप्त करना होगा जो उन्हें उनके पूरे हिस्से से वंचित करते हैं। खेत या कारखाने का प्रत्येक कामगार कम से कम एक चीज का तो हकदार है ही, वह चीज है न्यूनतम मजदूरी जिससे वह अपना सामान्य जीवन-निर्वाह कर सके और उतने मानवीय श्रम-घंटे जो उसकी शक्ति और उत्साह को न तोड़ दें।"

विश्व या भारत की समस्याओं के समाधान की एकमात्र कुंजी समाजवाद को अपनाना है। वह समाजवाद के झंडे तले "अव्यवस्थित मानवतावाद" की कवायद का विरोध करते थे। अंतिम लक्ष्य वर्गहीन समाज स्थापित करने का होना चाहिए जिसमें समान आर्थिक न्याय और सभी के लिए अवसर हों तथा वह सुनियोजित आधार पर व्यवस्थित एक ऐसा समाज हो जिसका उद्देश्य लोगों का भौतिक और सांस्कृतिक स्तर ऊंचा करना, आध्यात्मिक मूल्य, सहयोग, निःस्वार्थ की भावना, सेवा की भावना, सही कार्य करने की इच्छा, परस्पर सद्भावना और प्रेम उत्पन्न करना और अन्ततः एक विश्वव्यापी व्यवस्था स्थापित करना हो।[7]

समाजवाद में यह दृढ़ विश्वास नहीं बदला। नेहरू अपने इस विश्वास से नहीं डिगे कि केवल समाजवाद से ही निर्धनता समाप्त की जा सकती है और न्यायपूर्ण समाजवाद में पदार्पण किया जा सकता है। 1957 में अखिल भारतीय कांग्रेस समिति के अधिवेशन में बोलते हुए जवाहरलाल ने कहा था कि "सम्पूर्ण पूंजीवादी ढांचा एक प्रकार के अर्थ-लोलुप समाज पर आधारित है। शायद कुछ सीमा तक अर्थ-लोलुपता की प्रवृत्ति हम में भी अंतर्निहित है। एक समाजवादी समाज को उपार्जनशीलता की इस प्रवृत्ति से छुटकारा पाने का प्रयास करना चाहिए और उसके स्थान पर सहयोग की प्रवृत्ति अपनानी चाहिए।"[8]

जवाहरलाल ने टिबौर मेंडे से कहा था कि वे समाजवाद में अधिकाधिक विश्वास करते हैं, "यहां तक कि साम्यवाद के कुछ पहलुओं में व्यवहार में नहीं, अपितु उनके सिद्धांतों में और कभी भविष्य में साम्यवादी समाज की स्थापना में भी अधिकाधिक

7. जवाहर लाल नेहरू, एन आटोबायोग्राफी (आक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, नई दिल्ली, 1982) पृष्ठ 551-2

8. ए.एम. जैदी पूर्वोक्त, खंड-पांच, भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के 62वें अधिवेशन के सम्मुख अध्यक्षीय भाषण, इंदौर, 4 जनवरी, 1957

विश्वास करता हूँ। धीरे-धीरे जवाहरलाल का विश्वास शांतिपूर्ण तरीकों पर आ टिका और बाद के वर्षों में उन्होंने साम्यवादी समाजों द्वारा अपनाये गये तरीके से उत्पन्न होने वाले उत्पीड़न और कष्ट का समर्थन नहीं किया बल्कि समाजवाद के लक्ष्य की ओर तेजी और दृढ़ता से आगे बढ़ने की ठानी।"[9]

नेहरू आधुनिक विचारों और संस्थाओं में विश्वास करते थे। फिर भी वह न तो पश्चिम के मूल्यों के अंधाधुंध समर्थक थे और न ही उन्होंने भारत की ऐतिहासिक और सांस्कृतिक विरासत से मुंह मोड़ा। उनका दृष्टिकोण किसी अत्याधुनिकतावादी का नहीं था। उनके मन में अतीत के प्रति कोई अनादर का भाव तो था ही नहीं बल्कि वह तो भारत की समृद्ध सांस्कृतिक धरोहर से बड़े चमत्कृत होते थे।

हम सभी जानते हैं कि चौथे और पांचवें दशक के दौरान नेहरू ने न केवल विश्व के बल्कि भारत के इतिहास का भी उत्सुकता से अध्ययन किया और भारत की प्राचीनता की गहराई में भी गये। इससे वह भारत की अतीत कीर्ति और उपलब्धियों के बारे में प्रबुद्ध हुए तथा उन्हें उन पर गर्व हुआ। उनका दृष्टिकोण यही था कि अपने आप को अतीत से विलग किए बिना ही परिवर्तन होना चाहिये।

वे प्रगति चाहते थे, परन्तु वह यह भी चाहते थे कि यह प्रगति भारतीय ताने-बाने में हो। जैसाकि उन्होंने स्वयं कहा, "राष्ट्रीय प्रगति न तो अतीत को दोहराने में है और न ही उसे नकारने में। नई पद्धतियां तो अवश्य अपनाई जानी चाहिए, परन्तु वे पुरानी पद्धतियों से जुड़ी हों। भारत का इतिहास इस प्रकार हुए परिवर्तनों का एक आश्चर्यजनक रिकार्ड है जो बताता है कि पुरानी विचारधाराओं को अपनाया जाता रहा और पुरानी पद्धतियों के स्थान पर नई पद्धतियां भी आती गईं। इसी के कारण, कोई सांस्कृतिक अंतराल नहीं आया है तथा मोहनजोदड़ो के समय के प्राचीन दिनों से लेकर आज के हमारे युग तक बारम्बार हुए परिवर्तनों में निरंतरता बनी रही है... अतः स्वरूप तो वही बने रहे परन्तु अंदर की विषयवस्तु बदलती रही।"[10]

चूंकि जवाहरलाल ने भारतीय इतिहास का गहन अध्ययन किया था इसलिए उनके मन में अतीत काल की पद्धतियां और भारतीय इतिहास के विकास के प्रति इतना सम्मान पैदा हो गया था कि वह यहां तक विश्वास करने लगे थे कि भारत में आधुनिक वैज्ञानिक विचारों और धर्म के बीच किसी संघर्ष की आवश्यकता नहीं है। "भारत में विचारों की अभिज्ञात स्वतंत्रता चाहे व्यवहार में यह कितनी भी सीमित हो, के कारण नए विचारों को स्वीकार करना बंद नहीं हुआ था... भारतीय संस्कृति के मूल आदर्श व्यापक आधार वाले हैं और उन्हें लगभग किसी भी परिस्थिति के अनुकूल बनाया जा सकता है। विज्ञान और धर्म के बीच कटु संघर्ष, जिसने उन्नीसवीं शताब्दी में यूरोप को हिला दिया था, भारत में

9. टिबोर मेंडे: कनवरसेशन्स विद मि. नेहरू, (लंदन स्कियोर एंड वारबर्ग, 1956), पृष्ठ 31-32

10. जवाहरलाल नेहरू: डिस्कवरी आफ इंडिया, (एशिया पब्लिशिंग हाऊस, बम्बई, 1969) पृष्ठ 517-23

नहीं हो सकता और न ही विज्ञान को अपनाने के आधार पर हुए परिवर्तनों से उन आदर्शों से कोई टकराव हो सकता है। निस्संदेह ऐसे परिवर्तनों से हलचल तो फैलेगी क्योंकि उनसे भारत के लोगों का मन आन्दोलित हो रहा है, परन्तु उन्हें रोकने या उन्हें अस्वीकार करने की बजाय देश उन्हें अपनी सैद्धान्तिक विचारधारा से युक्तिसंगत बनाएगा और उन्हें अपनी बौद्धिकता के अनुरूप ढाल लेगा। ऐसा संभावित है कि इस प्रक्रिया में पुरातन दृष्टिकोण में अनेक महत्वपूर्ण परिवर्तन किए जाएं, परन्तु वे परिवर्तन बाहर से नहीं थोपे जाएंगे बल्कि वे लोगों की सांस्कृतिक पृष्ठभूमि से ही स्वाभाविक रूप से पनपते हुए प्रतीत होंगे।''[10क]

जवाहर लाल ने महसूस किया कि मूलभूत आदर्शों के इर्दगिर्द बन गई एक आडम्बरी व्यवस्था जिसने आज भारत का दम घोट दिया है, के साथ संघर्ष तो होगा ही। उस आडम्बरी व्यवस्था को अनिवार्य रूप से समाप्त होना होगा क्योंकि वह स्वयं में ही निकृष्ट है और युग की धारा के विपरीत है। जिन्होंने इसे कायम रखना चाहा, उन्होंने भारतीय संस्कृति के इन मूलभूत आदर्शों के साथ अनर्थ किया क्योंकि उन्होंने अच्छे और बुरे को मिला दिया और इस प्रकार अच्छे के लिए खतरा पैदा कर दिया। यह सच है कि दोनों को अलग करना या उनके बीच कोई पक्की सीमा रेखा खींचना कोई आसान काम नहीं था। परन्तु ऐसी कोई सैद्धांतिक और तार्किक रेखा खींचना भी आवश्यक नहीं था। बदलते जीवन का तर्क और घटित होती घटनाएं धीरे-धीरे हमारे लिए वह रेखा खींच देंगी।[11]

इसमें कोई संदेह नहीं है कि जवाहरलाल पश्चिम के विचारों की केवल नकल नहीं करना चाहते थे। इसके विपरीत उन्होंने एक नये संश्लेषण की सिफारिश की। उनका विश्वास था कि भूतकाल में ज्ञान के प्रति भारत का दृष्टिकोण संश्लिष्ट था किन्तु वह भारत तक ही सीमित था। यह सीमा यूं ही बनी रही और यह दृष्टिकोण धीरे-धीरे अधिक विश्लेषणात्मक होता चला गया। अब उन्होंने संश्लेषणात्मक पहलू पर अधिक बल देने और सम्पूर्ण विश्व को अध्ययन का क्षेत्र बनाने के लिए कहा। ''संभवतः विगत समय का अधिक संश्लेषण तथा भूतकाल के ज्ञान के प्रति अल्प विनम्रता, जो मानव जाति का संचित अनुभव है, से हमें एक नया परिप्रेक्ष्य तथा अधिक समरसता प्राप्त करने में मदद मिलेगी। इसकी विशेषकर उन लोगों को आवश्यकता है जो केवल वर्तमान में व्यग्र जीवन जीते हैं और अपने भूतकाल को लगभग भूल गये हैं। परन्तु भारत जैसे देशों के लिए एक भिन्न बल आवश्यक है क्योंकि हम भूतकाल के साथ बहुत अधिक बंधे हुए हैं और वर्तमान की उपेक्षा कर रहे हैं। जवाहरलाल ने ''डिस्कवरी आफ इण्डिया'' में कहा है, ''हमें इस संकुचित धार्मिक दृष्टिकोण, अलौकिक तथा आध्यात्मिक चिंतन

10क. वही।

11 वही।

के मोह को, धार्मिक, अनुष्ठानिक तथा रहस्यवादी भावप्रवणता को, जो हमारे द्वारा स्वयं को तथा विश्व को समझने में रूकावट पैदा करती है, छोड़ना होगा।"[12]

नेहरू भूतकाल तथा वर्तमान का संश्लेषण चाहते थे जिसका संवर्धन होता रहेगा और साथ-साथ शताब्दियों से चला आ रहा अन्धकार तथा अज्ञान समाप्त होगा। नेहरू इस आधुनिकता और प्राचीनता का संगम थे। फिर भी जवाहर लाल का विज्ञान और वैज्ञानिक तरीकों में दृढ़ विश्वास था और वे आधुनिक विज्ञान तथा प्रौद्योगिकी के फायदों को भारत में लाने के लिए बहुत उत्सुक थे। उन्हें जीवन भर में कभी इसमें जरा भी संदेह नहीं हुआ कि आधुनिक विज्ञान को अपनाकर तथा वैज्ञानिक दृष्टिकोण का प्रसार करके ही भारत अपने पिछड़ेपन तथा गरीबी को दूर कर सकता है। इसके लिए आधुनिक बड़े पैमाने के उद्योगों का होना भी जरूरी है।

वे बड़े पैमाने के उद्योगों से उत्पन्न समस्याओं से अनभिज्ञ नहीं थे लेकिन उनका कहना था कि इसमें संवृत्ति का कोई दोष नहीं है बल्कि यह दोष प्रणाली का है। हिंसा और एकाधिकार तथा कुछ लोगों के हाथों में धन का जमाव वर्तमान आर्थिक ढांचे का परिणाम है। बड़े पैमाने के उद्योगों ने अन्याय तथा हिंसा को नहीं बढ़ाया बल्कि कुछ प्राइवेट पूंजीपतियों तथा साहूकारों द्वारा बड़े पैमाने के उद्योगों के दुरुपयोग से इनको बढ़ावा मिला। वे मानते थे कि बड़ी मशीनों से मनुष्य की शक्ति निर्माण तथा विनाश, अच्छाई तथा बुराई दोनों के लिए बहुत अधिक बढ़ जाती है। किन्तु पूंजीवाद के आर्थिक ढांचे में परिवर्तन करके बड़ी मशीनों से उत्पन्न बुराइयों तथा हिंसा को समाप्त करना सम्भव है। उन्होंने 1939 में कहा था, "अनिवार्यतः समाज में निजी स्वामित्व तथा अर्जनशीलता से प्रतिस्पर्धात्मक हिंसा को प्रोत्साहन मिलता है। समाजवादी समाज के अन्तर्गत इस बुराई को समाप्त हो जाना चाहिए और इसके साथ-साथ हमारे लिये बड़ी मशीनों द्वारा लाई गई अच्छाइयां ही बचनी चाहिएं।"[13]

यह सर्वविदित है कि उनका गांधीजी से इसी क्षेत्र में मतभेद था। जवाहरलाल का विश्वास था कि आधुनिक उद्योग, विज्ञान तथा प्रौद्योगिकी को समाज के अर्थपूर्ण परिवर्तन तथा चिरस्थाई परिवर्तन के लिए उसके आर्थिक ढांचे में पूर्णतः समाविष्ट किया जाना चाहिए। इसका सत्य और असत्य या अहिंसा और हिंसा के प्रश्न से कोई संबंध नहीं है। वास्तविक प्रश्न यह है कि हम किस तरह का समाज स्थापित करना चाहते हैं। जैसाकि उन्होंने कहा, "मैं नहीं समझता कि किसी गांव में सत्य और अहिंसा का होना अनिवार्य है।" बुद्धिजीवी जवाहरलाल महसूस करते थे कि गांव के लोग बौद्धिक तथा सांस्कृतिक दृष्टि से पिछड़े हुए हैं और पिछड़े हुए माहौल में कोई प्रगति नहीं की जा सकती। इसके अतिरिक्त यदि भोजन, कपड़ा, मकान, शिक्षा, सफाई आदि जो सभी को उपलब्ध होने

---

12. वही।

13. कृष्णा कृपलानी को पत्र, 29 सितम्बर, 1939, जवाहरलाल नेहरू, ए बंच आफ ओल्ड लैटर्स में (एशिया पब्लिशिंग हाऊस, 1960), पृष्ठ 382

चाहिए, की व्यवस्था करना ही मात्र उद्देश्य है, तो इनकी प्राप्ति परिवहन के आधुनिक साधनों, आधुनिक विकास तथा आधुनिक उद्योगों के माध्यम से ही की जा सकती है।

जवाहरलाल उद्योगों के विकेन्द्रीकरण के पक्ष में थे परन्तु भारी उद्योगों से नहीं बचा जा सकता था। "मैं नहीं समझता कि भारत तब तक वास्तव में स्वतन्त्र हो सकता है जब तक वह तकनीकी रूप से एक उन्नत देश नहीं बन जाता है। इस समय मैं केवल सेनाओं की दृष्टि से नहीं बल्कि वैज्ञानिक उन्नति की दृष्टि से सोच रहा हूं। विश्व की वर्तमान स्थिति में हम अन्य क्षेत्रों में वैज्ञानिक अनुसंधान की सुदृढ़ पृष्ठभूमि के बिना सांस्कृतिक दृष्टि से उन्नति नहीं कर सकते।" यह बात जवाहरलाल ने 1945 में गांधीजी को लिखे एक पत्र में कही थी। इसके अतिरिक्त उन्होंने कहा था कि काफी वर्ष पहले उन्होंने हिन्द स्वराज को पढ़ा था जिसकी एक धुंधली सी तस्वीर उनके मस्तिष्क में है किन्तु हालांकि उन्होंने इसे 20 या इससे भी अधिक वर्ष पहले पढ़ा था यह उन्हें पूर्णतः अवास्तविक लगा था।[14]

जवाहरलाल इसे आवश्यक समझते थे कि भारत को अपनी धार्मिकता में कमी करके विज्ञान की तरफ अधिक ध्यान देना चाहिए और उसे अपने रूढ़िवादी विचारों में तथा सामाजिक व्यवहार में, जिन्होंने उसे जकड़ रखा है, परिवर्तन लाना चाहिए क्योंकि इसी कारण से उसकी उन्नति रुक गयी है। जवाहरलाल के विचार में हिन्दुओं में जाति ही इस अलगाववाद का कारण रही है। जाति प्रथा के कारण कुछ वर्गों का न केवल दमन ही हुआ परन्तु सैद्धान्तिक तथा शैक्षिक ज्ञान और शिल्पकारी में अलगाव पैदा हुआ तथा दर्शन वास्तविक जीवन तथा उसकी समस्याओं से पृथक हो गया। समय की मांग है कि समानता आये और समानता के लिए एक ऐसी आर्थिक प्रणाली आवश्यक है जो इसके अनुरूप हो और इसे प्रोत्साहित करे।[15]

नेहरू को इसमें तनिक भी संदेह नहीं था कि विज्ञान तथा आधुनिक प्रौद्योगिकी से स्वयं ही पर्याप्त परिवर्तन आयेगा और यह एक उत्प्रेरक के रूप में कार्य करेंगे। यह कहा जा सकता है कि जवाहरलाल नयी आर्थिक प्रणाली तथा आधुनिक प्रौद्योगिकी के माध्यम से सामाजिक तथा आर्थिक परिवर्तन लाने का प्रयास कर रहे थे। सामाजिक समस्याओं में भी वे दोष देखते थे जिनकी जड़ भारतीय रूढ़िवाद है। कुछ समुदायों, जैसे कि हरिजनों, को दबाये जाने की समस्या अन्ततः आर्थिक शोषण की समस्या है। इसकी जड़ें आर्थिक प्रणाली में ही हैं। यदि प्रणाली में परिवर्तन कर दिया जाये तो इन असमानताओं और सामाजिक कुरीतियों से छुटकारा पाया जा सकता है। हरिजन अवश्य ही भूमिहीन श्रमिक हैं इसलिए यदि भूमि की व्यवस्था में परिवर्तन कर दिया जाये तो छुआछूत की समस्या काफी हद तक दूर की जा सकती है, ऐसा जवाहरलाल का विचार था। आप

---

14. नौर्मन डौरोथी (सम्पादित) नेहरू—दी फर्स्ट सिक्सटी ईयर्स (खंड II) (एशिया पब्लिशिंग हाऊस, बम्बई, 1965 (पृष्ठ 179-80)
15. डिस्कवरी आफ इण्डिया, पृष्ठ 517-23

आधुनिक उद्योग शुरू कर दीजिए और फिर देखिए कि जहाँ-जहाँ आधुनिक उद्योग जायेंगे वहां-वहां छुआछूत समाप्त होती चली जायेगी। आप किसी कारखाने में या किसी रेलगाड़ी में बैठे हुए छूआछूत का आचरण नहीं कर सकते।

नेहरू को भारत के वर्तमान समाज के अत्यन्त रूढ़िवादी स्वरूप के बारे में कोई भ्रम नहीं था। उन्होंने कहा था, "सभी देश सामान्यतः रूढ़िवादी है लेकिन मेरे विचार में हमारा देश सामान्य से भी अधिक रूढ़िवादी है। मैं लोगों के विचारों में काफी विकृति देखता हूं। और तो और वैज्ञानिकों के विचारों में भी ऐसा ही पाता हूं जबकि वे विज्ञान की प्रशंसा करते हैं और प्रयोगशालाओं में उसे व्यवहार में लाते हैं किन्तु विज्ञान के तरीकों, किसी समस्या के प्रति वैज्ञानिक दृष्टिकोण तथा जीवन में और जो भी कुछ वे करते हैं उसमें विज्ञान की भावना को वे नकारते हैं। वे पूर्णतः अवैज्ञानिक हो जाते हैं। यदि हम विज्ञान को उचित ढंग से लें तो यह अच्छा प्रतीत होता है और इसमें कोई संदेह नहीं है कि इससे हमेशा भला ही होगा। इससे हम किसी कार्य को करने के नये तरीके सीखते हैं। सम्भवतः इससे हमारे औद्योगिक जीवन में सुधार आता है किन्तु विज्ञान को एक मूल कार्य यह करना चाहिए कि वह हमें सीधा सोचना और सीधा कार्य करना सिखाए और हम किसी चीज को त्यागने या अपनाने से न डरें बशर्ते कि ऐसा करने के लिए समुचित कारण विद्यमान हों। मैं चाहता हूं कि मेरे देशवासी इस बात को समझें तथा इसे प्रोत्साहित करें क्योंकि वैचारिक क्षेत्र में हमारा देश असाधारण रूप से स्वतन्त्र रहा है और इसने सत्य को गहराई से देखने में जरा भी हिचकिचाहट नहीं की है चाहे उसमें कुछ भी हो। इसके बावजूद ऐसे स्वतंत्र विचार होने पर भी हमारा देश सामाजिक प्रथाओं में इतना उलझ गया कि इसके विकास में बाधाएं आईं और ये बाधाएं आज भी सैकड़ों रूपों में विद्यमान हैं। हमारी रूढ़ियां केवल छोटी-छोटी चीजों को देखने के ढंग हैं जो हमारे जीवन को नियंत्रित करते हैं जबकि उनका कोई महत्वपूर्ण अर्थ नहीं होता। इसके बावजूद ये रूढ़ियां हमारे रास्ते में आती रहती हैं..... यदि हम सही मायनों में विज्ञान की तरफ देखें और यदि हम मौलिक भावना से इन अनुसन्धान संस्थाओं और प्रयोगशालाओं के बारे में सोचें तो इनमें चीजों को सुधारने और किसी चीज को किस तरह से करना है, इस बात का पता लगाने के केवल छोटे-मोटे तरीके ही नहीं हैं बल्कि इनमें इससे भी कुछ अधिक विद्यमान है। यह ठीक है कि हमें भी यही करना पड़ेगा। परन्तु इन संस्थानों को हमारे मस्तिष्क पर, न केवल उन युवाओं एवं युवतियों के मस्तिष्क पर जो इनमें काम करेंगे बल्कि अन्य लोगों के मस्तिष्क पर भी, और खासतौर से उभरती हुई पीढ़ी के मस्तिष्क पर, धीरे-धीरे असर डालना चाहिए ताकि राष्ट्र विज्ञान की भावना को आत्मसात कर सके और नई सच्चाइयों को स्वीकार करने के लिए तैयार रह सके, चाहे इसके लिये कुछ पुरानी बातों को तिलांजलि ही क्यों न देनी पड़े।"[16]

---

16. फ्यूल रिसर्च इन्स्टीट्यूट डिगवाडी में भाषण, 22 अप्रैल, 1950, जवाहर लाल नेहरू के भाषण 1949-53, पृ० 370-3 (प्रकाशन प्रभाग, सूचना और प्रसारण मंत्रालय, 1985, पृ० 363-366)

जवाहरलाल जी विज्ञान की प्रगति से तथा विज्ञान की प्रगति की तीव्रता से रोमांचित होते थे। वह इस भावना से, जिस से वैज्ञानिक कार्य को प्रेरित किया गया था, और भी अधिक प्रभावित थे, और वह चाहते भी यही थे कि भारतीय भी इसे आत्मसात कर लें। उनके अनुसार जांच पड़ताल की भावना, पूछताछ की भावना, शंका की भावना, विज्ञान का स्वरूप ही महान खोजों एवं वैज्ञानिक प्रगति के वास्तविक कारण और स्रोत रहे हैं। इसमें कोई संदेह नहीं कि आज सभी देशों तथा लोगों के लिये विज्ञान का प्रयोग अनिवार्य एवं अपरिहार्य है परन्तु जवाहरलालजी ने इस बात पर जोर दिया कि इसके प्रयोग से ज्यादा जरूरी कोई और भी बात है।

वैज्ञानिक दृष्टिकोण, विज्ञान का जोखिमभरा किन्तु अत्यधिक गंभीर स्वरूप सच्चाई और नई जानकारियों की खोज, जांच और परीक्षण किये बिना किसी भी चीज को मान लेने का विरोध, नये साक्ष्य मिलने पर पूर्व निष्कर्षों में परिवर्तन करना, पूर्व निर्धारित विचारों पर विश्वास के बजाय परीक्षण किये तथ्यों पर विश्वास, मस्तिष्क का कड़ा अनुशासन ये सभी बातें न केवल विज्ञान के प्रयोग के लिये जरूरी है, बल्कि स्वयं जीवन और इसकी अनेकों समस्याओं को हल करने के लिये भी अनिवार्य हैं..... वैज्ञानिक दृष्टिकोण और इसकी प्रकृति जीवन का सोचने विचारने का, काम करने का एक तरीका है और अपने साथियों के साथ अपने आप को जोड़ने का एक ढंग है या यूं कहें कि इसे ऐसा होना चाहिये..... वैज्ञानिक दृष्टिकोण हमें यह बताता है कि हमें किस रास्ते पर चलना है। यह एक स्वतंत्र व्यक्ति का विचार है। हम एक वैज्ञानिक युग में जी रहे हैं। इसलिए हमें बताया गया है कि कहीं के भी लोगों में और यहां तक कि उनके नेताओं तक में भी इस विचार की विद्यमानता का सबूत नहीं मिलता है।"[17]

जवाहरलालजी ने कहा था कि राजनीति ने उन्हें अर्थव्यवस्था के बारे में सोचने के लिये प्रेरित किया और अर्थव्यवस्था ने उन्हें स्वयं विज्ञान की ओर प्रेरित किया। "यह विज्ञान ही है जो भूख और गरीबी की, अस्वच्छता एवं अशिक्षा की, अन्धविश्वास तथा व्यर्थ की रूढ़ियों एवं परम्पराओं की, बरबाद होते हुए विशाल संसाधनों की, भूखे मरते हुए निवासियों के धनी देश की समस्याओं को हल कर सकता है। जवाहर लालजी ने देश के विकास एवं प्रगति के बारे में अपनी धारणाओं को इस प्रकार व्यक्त किया था।[18]

इसके बावजूद नेहरूजी, जो एक विचारक थे, अकेले विज्ञान से ही संतुष्ट नहीं थे। वह आत्मिक शून्यता से जो धर्म से अलग है—परिचित थे जो प्रायः नितान्त भौतिकवादी अस्तित्व के परिणामस्वरूप आती है। उन्होंने यह भी महसूस किया था कि प्रौद्योगिकी पर अत्यधिक जोर देने से औद्योगिक एवं तकनीकी रूप से विकसित देशों में मानवता का प्रायः असन्तुलित विकास हुआ है। इससे कभी-कभी मानव के हाथों में अत्यधिक शक्ति आ जाती है और इस शक्ति का सही दिशा में प्रयोग करने की उतनी नैतिक

17. डिस्कवरी आफ इंडिया पृष्ठ 520-6
18. जवाहरलाल नेहरू — दि यूनिटी आफ इंडिया, पृष्ठ 176

क्षमता नहीं आ पाती। हालांकि नेहरूजी विज्ञान और वैज्ञानिक दृष्टिकोण में बहुत विश्वास रखते थे, फिर भी उन्होंने कहा था कि विज्ञान की ज्यादा प्रगति ने लोगों को अवैज्ञानिक बना दिया है: "विज्ञान इतना व्यापक और सर्वव्यापी हो चुका है कि वैज्ञानिक लोग चीजों को उनके सम्पूर्ण रूप में समझने में असमर्थ हो गये हैं और उनका दायरा प्रत्येक विषय में छोटे से छोटा होता चला गया है।" "मानवता को विज्ञान के विकास और इसके प्रयोग पर गर्व होना चाहिये, परन्तु मस्तिष्क का सन्तुलन कभी नहीं बिगड़ना चाहिये," जवाहरलालजी ने ऐसी चेतावनी दी थी। "अन्ततः मस्तिष्क को ही सर्वोपरि होना चाहिये। जवाहरलाल जी की प्रमुख चिन्ता यही मानसिक और आत्मिक शून्यता थी जिसे, उनके विश्वासानुसार, केवल तभी भरा जा सकता है जबकि विज्ञान का प्रयोग और वैज्ञानिक विकास एवं प्रौद्योगिकी का पूरा-पूरा इस्तेमाल करते समय, हम जीवन के उच्चतर मूल्यों को ध्यान में रखें और किसी किस्म की नैतिक गिरावट एवं ह्रास न आने दें।"

यह स्वाभाविक बात थी कि नेहरू जी अपने सारे जीवन भर हिंसा और साधन एवं साध्य के प्रश्न पर चिन्तित रहे थे। वह निश्चित रूप से सामाजिक परिवर्तन के पक्षधर थे, परन्तु अपनाये जाने वाले साधनों की समस्याओं के बारे में और सामाजिक परिवर्तन लाने में हिंसा के स्थान के बारे में उन्हें उम्र भर संघर्ष करना पड़ा था।

अपने राजनीतिक जीवन और कार्यों के पहले चरण में, नेहरू जी हिंसा के प्रयोग और अपनाये जाने वाले साधनों की समस्याओं के बारे में ज्यादा परेशान नहीं थे। हो सकता है कि नेहरू जी को जीवन का अनुभव कम रहा था। हो सकता है वह पहले पहल एक शुद्ध आन्दोलनकारी व्यक्ति रहे थे। हो सकता है कि विश्व की निन्दनीय घटनाओं ने, जो उन्होंने तीन दशकों तक देखी थीं, कुछ पुनर्मूल्यांकन करना अनिवार्य बना दिया हो। हो सकता है कि प्रशासन के बोझ ने और संबंधित समस्याओं ने उनके दृष्टिकोण को प्रभावित कर दिया हो। यह भी हो सकता है कि कुछ मामलों में उनके पिछले विचारों तथा बाद के विचारों में अन्तर इन सभी कारणों से आया हो और सम्भवतः यही बात सच्चाई के ज्यादा नजदीक हो सकती है।

अपनी राजनीतिक गतिविधियों के पहले चरण में, जवाहरलालजी उस अन्याय और शोषण तथा पूंजीवादी व्यवस्थां की असमानताओं के बहुत ही विरुद्ध थे जो उन्होंने देखी थीं। वह तीव्र तथा आमूलचूल परिवर्तन की आवश्यकता के प्रति बहुत ही उत्सुक थे। इस चरण के दौरान, उनका दृढ़ विश्वास था, जैसा कि उन्होंने अपनी आत्मकथा में लिखा भी है, कि हिंसा का सहारा दरअसल शोषणकर्त्ता वर्ग ने ही ज्यादा लिया है। इतिहास से हमें एक ही बात का पता चलता है कि आर्थिक हित ही वर्गों और श्रेणियों के राजनीतिक विचारों को निर्धारित करते हैं। न तो किन्हीं कारणों से और न ही नैतिक आधार पर उन हितों की उपेक्षा कर सकते हैं। व्यक्ति बहुत ही कम मामलों में परिवर्तित होते हैं परन्तु शासक और विशेषाधिकार प्राप्त वर्ग को सत्ता छोड़ने और उन्हें अपने अनुचित विशेषाधिकारों को त्यागने के लिये कहने का हर प्रयास विगत में हमेशा ही असफल

हुआ है और यह भविष्य में भी सफल नहीं हो सकता। समुचित तर्कों द्वारा संघर्ष मिटाने के लिये किसी वर्ग को परिवर्तित करने की बात सोचना भी अपने आप को भ्रम में डालना है, यह ठीक वैसा ही भ्रम है जैसा कि यह कल्पना करना कि सत्ताधारी साम्राज्यवादी शक्ति किसी देश पर से अपना शासन आसानी से छोड़ देगी; जब तक कि उस पर जबरदस्ती की हद तक प्रभावी दबाव का इस्तेमाल न किया जाये।

अपने सोच के इस चरण में नेहरू जी ने परिवर्तन लाने के लिये कुछ मात्रा में जबरदस्ती को आवश्यक माना था। उन्होंने स्वीकार किया था कि सिद्धान्त रूप में, अहिंसक तरीके द्वारा कोई महान राजनीतिक परिवर्तन लाना सम्भव तो है परन्तु इसके साथ ही इस तरीके द्वारा एक आमूलचूल सामाजिक परिवर्तन करना भी उतना ही सम्भव होना चाहिये। यदि किसी विदेशी शासक के विरुद्ध एक अहिंसक तरीका इस्तेमाल किया जा सकता है तो स्पष्टतया देश के भीतर ही स्वदेशी स्वार्थी हितों के विरुद्ध इस तरीके का इस्तेमाल करना और भी आसान होना चाहिये। उनका विश्वास था कि भारत ने अहिंसक तरीका अपनाया है क्योंकि इसने लोगों से वायदा किया था कि वह उन्हें सर्वोत्तम वांछनीय एवं प्रभावी तरीके से स्वतंत्रता के लक्ष्य की प्राप्ति करा देगा। परन्तु यह उद्देश्य अहिंसा से अलग था। अहिंसा अपने आप में ही कोई लक्ष्य नहीं हो सकती। निश्चय ही कोई भी यह नहीं कह सकता कि स्वतंत्रता या आजादी केवल तभी ली जाये जबकि यह अहिंसक तरीकों से ही प्राप्त हो। वह उस तरीके से चिढ़ते थे जिसमें अहिंसा को एक कठोर सिद्धान्त के रूप में परिवर्तित किया जा रहा था, "जिसमें यह बुद्धिजीवियों की समझ से तो दूर हो जाये और इसका स्थान आस्था एवं धर्म का कबूतरखाना हो जाये।"

इस चरण में भी नेहरू जी ने हिंसा को अच्छा नहीं बताया या इसे सिद्धान्त के आधार के रूप में नहीं माना। उनकी दृष्टि में, हिंसा निस्संदेह बुरी चीज है और यह ऐसी बुराइयों को जन्म देती है जो कभी समाप्त ही नहीं होतीं। उनके अनुसार हिंसा से ज्यादा बुरी बात है "नफरत, क्रूरता, बदले और दण्ड देने की भावना जो प्रायः हिंसा के साथ ही साथ पनपती रहती है।"[19]

किन्तु इसके साथ ही नेहरू जी यह महसूस करते थे कि किसी न किसी रूप में बल प्रयोग करना आवश्यक है क्योंकि जिन लोगों को शक्ति तथा विशेषाधिकार प्राप्त हैं वे उन्हें तब तक नहीं छोड़ेंगे जब तक उन्हें ऐसा करने के लिए विवश नहीं किया जाता या जब तक ऐसी स्थितियां उत्पन्न नहीं हो जातीं जिनमें उन विशेषाधिकारों को रखने से हानि हो और उन्हें छोड़ देना ही बेहतर हो। "इस समय समाज में व्याप्त संघर्ष, राष्ट्रीय तथा वर्गगत संघर्ष, को तब तक नहीं समाप्त किया जा सकता जब तक बल प्रयोग न किया जाये .... न ही यह हमारे लिए सही है कि हम इस प्रकार के मूल संघर्ष पर परदा डाल दें और यह समझने लगें कि ऐसे संघर्ष हैं ही नहीं। इससे न केवल सत्य छिपाया जाता है बल्कि वास्तविक तथ्य के बारे में लोगों को गुमराह करके तथा सत्ताधारी वर्ग को ऐसा

19. एन आटोबायोग्राफी, पूर्वोक्त, पृ० 588-93

नैतिक आधार उपलब्ध कराकर जैसा कि वे अपने खास विशेषाधिकारों को न्यायसंगत ठहराने के लिए सदैव चाहते हैं, वर्तमान व्यवस्था को प्रत्यक्ष रूप से सहारा मिलता है।"

जवाहरलाल जी मानते थे कि वर्तमान व्यवस्था को बदलने के लिए किसी प्रणाली पर विचार करते समय उसकी कीमत, नैतिक तथा आध्यात्मिक दृष्टि से अवश्य परखनी चाहिए। यह अवश्य देखना चाहिए कि इससे अन्ततः मानवीय सुख तथा मानवीय प्रगति के विकास में भौतिक तथा आध्यात्मिक दृष्टि से कितना विकास होता है। किन्तु यह बात भी ध्यान में रखनी चाहिए कि वर्तमान व्यवस्था को न बदलने तथा इसे यथावत ही चलाते रहने की कीमत इसमें निहित कुण्ठा, विकृति, भुखमरी और दुख तथा आध्यात्मिक पतन के होते हुए और भी अधिक चुकानी पड़ेगी। विशेषाधिकार प्राप्त वर्ग इस बात से नहीं हिचकिचाएंगे कि वे अपनी स्थिति को बनाये रखने के लिए हिंसा का उपयोग करें। इसमें हितों का टकराव होना अनिवार्य है और प्रत्येक व्यक्ति को अपना पक्ष चुनना होगा।[20]

किन्तु जैसे-जैसे उनकी सोच विकसित होती गई और उनका अनुभव बढ़ता गया वैसे-वैसे नेहरू जी को हिंसा से अधिकाधिक नफरत होती गई। कुछ समय पश्चात वे गांधीजी के और समीप आये, औद्योगिकीकरण तथा समाजवाद के सम्बन्ध में नहीं बल्कि हिंसा तथा साधनों और उनके परिणामों के संबंध में। वस्तुतः शांति और नेहरू जी लगभग पर्यायवाची हो गए। नेहरू जी शांतिपूर्ण तथा मैत्रीपूर्ण दृष्टिकोण — सुसंस्कृत दृष्टिकोण, जैसा कि वे इसे कहते थे — को समाज की समस्याओं को हल करने के लिए उचित मानने लगे थे। उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए साधन भी शांतिपूर्ण तथा अच्छे होने चाहिए।

नेहरू जी पहले भी हिंसा के पक्षधर नहीं थे। वे व्यक्तिगत हिंसा को कभी उचित नहीं मानते थे। वे मानते थे कि संगठित हिंसा से इतिहास में काफी परिवर्तन हुए हैं किन्तु उनका विचार था कि हिंसा से बहुत अधिक कटुता तथा अनावश्यक क्रोध तथा भय उपजता है। आगे के वर्षों में हिंसा के प्रति उनकी घृणा और अधिक बढ़ गई। वे मानते थे कि शांतिपूर्ण रवैया अपनाया जाना चाहिए। साथ ही नेहरू जी लोकतंत्र के प्रति समर्पित थे तथा उसमें अटूट विश्वास रखते थे। वे कम्यूनिस्ट देशों में हिंसा की अधिकता तथा व्यक्तिगत स्वतंत्रता से लोगों को वंचित रखना पसन्द नहीं करते थे। यद्यपि वे उन्हें यह सलाह नहीं देना चाहते थे कि वे क्या करें तथापि वे स्वयं यह स्पष्ट रूप में मानते थे कि केवल लोकतांत्रिक पद्धतियां ही अपनाई जानी चाहिए और भारत में लोकतांत्रिक कार्यप्रणाली स्थापित तथा मजबूत की जानी चाहिए।

वे स्वतंत्र भारत के लिए विकास का एक नया मार्ग बनाने तथा शांतिपूर्ण ढंग से सामाजिक-आर्थिक परिवर्तन लाने के लिए दृढ़ संकल्प थे। वे जानते थे कि इसमें अधिक समय लगेगा किन्तु वे इसे इस दृष्टि से न्यायसंगत मानते थे कि मानवीय दृष्टि से इसकी

---

20. वही

कम कीमत चुकानी पड़ेगी तथा व्यक्तिगत लोकतांत्रिक स्वतंत्रता भी सुरक्षित रहेगी। मैं समझता हूं कि नेहरू जी के मार्ग दर्शन तथा नेतृत्व में भारत का महान योगदान यह रहा है कि शांतिपूर्ण ढंग से परिवर्तन लाने के लिए इस प्रयोग के करने का प्रयास किया गया। यह सफल होगा कि नहीं अभी कुछ नहीं कहा जा सकता परन्तु यह प्रयास इतिहास में अद्वितीय है। यदि यह सफल हो जाता है तो सम्पूर्ण विश्व के सामने यह एक नया मार्ग होगा।

नेहरू जी भारत में योजना के जनक तथा संस्थापक हैं। संसदीय लोकतांत्रिक प्रणाली में नियोजित विकास को अपनाना इतिहास में एक महत्वपूर्ण घटना है। इस नये दृष्टिकोण के अनुकूल लोकतांत्रिक नियोजन के लिए नयी नीतियां तथा नये प्रतिमान विकसित किये जाने थे। भारत की विदेश नीति भी आंतरिक विकास के इस नये ढंग के कारण एक पृथक ढंग के विकसित हुई।

नेहरू जी ने इस पृथक दृष्टिकोण की जटिलताओं के बारे में 1956 में प्रकाशित कनवरसेशन्स में टाइबर मेंडे को स्पष्ट किया था। उन्होंने कहा था कि वे कम्यूनिस्ट रूस की सैद्धान्तिक पृष्ठभूमि को स्वीकार नहीं करते।

परन्तु आर्थिक एवं अन्य क्षेत्र में संयुक्त राष्ट्र अमरीका की पृष्ठभूमि भी भारत के दृष्टिकोण तथा उसकी नई सोच से मेल नहीं खाती। जवाहरलाल जी इस बात से सहमत थे कि राजनीतिक रूप से भारत एक संसदीय लोकतंत्र है जो पाश्चात्य विचारधारा के ज्यादा नज़दीक है क्योंकि भारत नागरिक स्वतंत्रता, अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता, आदि में विश्वास करता है, परन्तु "हम तेजी से तरक्की करना चाहते हैं और हमारे देश में जो असमानता फैली हुई है उसे दूर करना चाहते हैं और हमारी राय में असमानताएं पूंजीवादी दृष्टिकोण अपनाने से बढ़ सकती हैं... इसलिये हम ऐसा रास्ता अपना रहे हैं जिसे समाजवादी कह सकते हैं... हम उसी के अनुसार योजना बनाने का प्रयास करते हैं और यह हमारी पूर्व विचारधारा के अनुकूल भी है। यह विचारधारा ऐसी है जो पश्चिमी ताकतों तथा सोवियत रूस के बीच उत्पन्न संघर्षों से बहुत पहले बनाई गई थी। अपने राष्ट्रीय संघर्ष के माध्यम से हम इस दिशा में पहले से ही सोच रहे हैं। यह विचारधारा अहिंसक और शांतिपूर्ण दृष्टिकोण से सदैव सम्बद्ध रही है।"

नेहरू जी ने कहा था कि उन्होंने वर्ग-संघर्ष से इन्कार नहीं किया बल्कि उनका विश्वास था कि वर्ग-संघर्ष बढ़ाकर और उसके लिये लड़कर वर्ग-संघर्ष को हल करने की आवश्यकता नहीं है। उसे जनता के लोकतांत्रिक ढंग के दबावों से और मैत्रपूर्ण दृष्टिकोण अपनाकर हल किया जा सकता है। यह साम्यवादी दृष्टिकोण से तो भिन्न है ही परन्तु यह अमरीकी दृष्टिकोण से भी अलग है। जैसा कि जवाहरलाल जी कहते हैं, "मोटे रूप में हम कह सकते हैं कि जिस तरह से हम अपनी समस्याओं को देखते हैं... वह व्यापक रूप से निजी उद्यमो के विकास के साथ मेल नहीं खाता। हाँ इसमें संदेह नहीं है कि यह बहुत कम मेल खाता है।" कृषि में छोटे और लघु उद्योगों में निजी उद्यमों का एक

व्यापक क्षेत्र है परन्तु आधारभूत उद्योग निजी एकाधिकारियों के हाथों में नहीं सौंपे जा सकते क्योंकि ऐसा करने से समानता लाने में और सामान्य बहुमुखी प्रगति में बाधा पड़ेगी। राजनीतिक अथवा आर्थिक शक्ति का केन्द्रीकरण नहीं होना चाहिये। नेहरू जी ने सोचा था कि भारी उद्योगों में सरकार का स्वामित्व और निजी उद्योगों के व्यापक क्षेत्रों के लिये एक सहकारी पद्धति अनिवार्य है।

अपने विचारों को व्यक्त करते हुए जवाहरलाल जी ने टाइबर मेंडे से कहा था कि समाज की साम्यवादी विचारधारा को साम्यवादी पार्टी के साथ नहीं मिलाया जाना चाहिये। "ये दोनों चीजे अलग-अलग हैं। उन्हें समाजवादी आदर्श में कतई कोई आपत्ति नहीं थी। उन्हें समाज के साम्यवादी आदर्श से कोई सैद्धान्तिक मतभेद नहीं था, परन्तु इसे तानाशाही से नहीं मिलाया जाना चाहिये। मुझे तानाशाही बिल्कुल पसन्द नहीं है। मैं अधिकारितावादी शासन को पसन्द नहीं करता" और न ही उन्हें साम्यवादी दल द्वारा अपनाई गई शैली ही पसन्द थी। जवाहरलाल जी ने कहा था और उनका यह मतलब भी था कि वह भारत में साम्यवाद कभी पसन्द नहीं करेंगे। "परन्तु मैं कौन होता हूं यह कहने वाला कि किसी खास परिस्थिति में दूसरा देश क्या करता है? मुझे ऐसा करने का कोई अधिकार नहीं है और किसी भी तरह से मैं उनके मामले में हस्तक्षेप नहीं कर सकता।"[21]

नेहरू जी ने एक लोकतांत्रिक ढांचे के भीतर ही लोकतंत्र और समाजवाद तथा योजना-निर्माण के लिये योगदान दिया परन्तु उन्होंने समाजवादी समाज की स्थापना के उद्देश्य में तथा भारत को आर्थिक लोकतंत्र की दिशा की ओर ले जाने के उद्देश्य में अपने विश्वास को कभी नहीं त्यागा। उन्होंने चेतावनी दी थी कि राजनीतिक लोकतंत्र तब तक अपने आपको कभी अच्छा साबित नहीं कर सकेगा जब तक कि अन्ततः इसका लाभ न मिलने लगे, अन्यथा इसे आर्थिक या सामाजिक व्यवस्था का ऐसा कोई और रूप लेना पड़ेगा जिसे हम पसन्द करते हों या नहीं। उन्होंने लोगों को याद दिलाया कि राजनीतिक लोकतंत्र की कोरी बातों का वह महत्व अब नहीं रहा है जो 19वीं शताब्दी में था। राजनीतिक लोकतंत्र तभी सार्थक होगा जब उसकी परिणति धीरे-धीरे या आप यदि चाहें तो शीघ्रता से, आर्थिक लोकतंत्र में होगी। यदि देश में आर्थिक असमानता है तो विश्व में राजनीतिक लोकतंत्र और वयस्क मताधिकार के होने से वास्तविक लोकतंत्र स्थापित नहीं हो सकता। इसलिये आपका लक्ष्य वर्ग और वर्ग के बीच सभी प्रकार के मतभेदों को दूर करना, और अधिक समानता लाना, और अधिक एकात्मक समाज की स्थापना करना तथा दूसरे शब्दों में आर्थिक लोकतंत्र की स्थापना के लिये गहन प्रयास करना होना चाहिये। हमें अन्ततः वर्गहीन समाज की स्थापना करने की दिशा में सोचना है।[22]

---

21. टाइबर मेंडे, पूर्वोक्त, पृष्ठ 7-8

22. लो.स. वाद विवाद, दिसम्बर, 1952, पृष्ठ 2371-72।

30

प्रो. डी.डी. मल्होत्रा

जवाहरलाल नेहरू: विज्ञान और प्रौद्योगिकी तथा लोक प्रशासन पर उनका दृष्टिकोण

महात्मा गांधी और पंडित जवाहरलाल नेहरू को भारत कि विचारधारा और कार्य प्रणाली का निर्माण करने में पचास से भी अधिक वर्ष लग गए। उन्होंने देश के भीतर और बाहर बहुत से लोगों के दिल और दिमाग को मोह लिया था। उनके द्वारा बनाई गई विकास की सामाजिक और आर्थिक नीतियों में यद्यपि काफी भिन्नता थी फिर भी उन्होंने एक साथ मिलकर कार्य किया क्योंकि अपने देश की आजादी के लिए उनका दृष्टिकोण समान था। अन्य किसी भी व्यक्ति की अपेक्षा पंडित नेहरू के दृष्टिकोण ने ही स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद देश के भाग्य का निर्माण किया था। पंडित नेहरू ने 'भारत की खोज' में अपने दृष्टिकोण के मूल तत्व को व्यक्त किया है। उन्होंने यह कहा है:—

> "मैं भारत पश्चिम से आया.....। मैं इसके दृष्टिकोण और छवि में परिवर्तन करने और उसे आधुनिकता का रूप प्रदान करने का उत्सुक था।"

इससे न केवल उनकी कल्पना शक्ति अपितु दृढ़ निश्चय की भावना और प्रेरक शक्ति का पता चलता है जो स्वयं को और दूसरों को एक स्वप्न को साकार रूप प्रदान करने हेतु कार्य करने के लिए प्रेरित करती है।

देश के स्वतंत्र होने से काफी पहले उन्होंने कहा था कि राजनीतिक स्वतंत्रता ही पर्याप्त नहीं है। एक समाजवादी समाज का सृजन किया जाना चाहिए और भारत के भविष्य के लिए इसे आधुनिक, वैज्ञानिक और औद्योगीकृत बनने के अलावा अन्य कोई विकल्प नहीं है। आधुनिकीकरण से उनका तात्पर्य देश का शासन चलाने के लिए विज्ञान और प्रौद्योगिकी के विकास, समाज में वैज्ञानिक दृष्टिकोण के विकास, औद्योगिकीकरण और लोकतांत्रिक राजनीतिक संस्थाओं के विकास से था। उन्होंने यह देखा कि इससे निश्चय ही गरीबी, भुखमरी, अज्ञानता और अन्धविश्वास दूर हो सकता है।

विज्ञान और प्रौद्योगिकी पर नेहरू का दृष्टिकोण

पंडित नेहरू को बचपन में जो मनोहारी अनुभव हुए थे उनसे ही उनमें विज्ञान और प्रौद्योगिकी का दृष्टिकोण पनपा था। ग्यारह वर्ष की आयु में उन्होंने एक छोटी सी प्रयोगशाला स्थापित की थी जहाँ वे प्रारम्भिक भौतिकी और रसायन में प्रयोग करने में काफी समय बिताते थे। बाद में वह कैम्ब्रिज चले गए जो उस समय प्रकृति विज्ञानों के शिक्षण में काफी आगे था। उन्होंने प्रकृति विज्ञान का अध्ययन करने के लिए ट्रिनिटी कालेज को चुना। वह प्रायः कैवेन्डिश प्रयोगशाला में जाते थे जहाँ प्रमुख ब्रिटिश वैज्ञानिक कार्य करते थे। यद्यपि बाद में उन्होंने कानून की पढ़ाई करने के लिए विज्ञान का अध्ययन करना बन्द कर दिया और इन्नर टैम्पल में प्रवेश ले लिया, तथापि विज्ञान उनको सतत प्रेरणा देता रहा। "डार्विन एण्ड दि ट्रम्फ ऑफ साइन्स" (3 फरवरी 1933) "साइन्स गोज एहेड" (13 जुलाई 1933) और "गुड एण्ड बैड अप्लीकेशन आफ साइन्स" (14 जुलाई 1933) शीर्षकों से 1933 में अपनी पुत्री को लिखे गए पत्रों और एल्डोस हक्सले को लिखे गए उनके पत्र (1 सितम्बर 1933) से व्यक्ति के विकास में विज्ञान के महत्व और सामाजिक तथा आर्थिक विकास में इसकी भूमिका से संबंधित उनके प्रारम्भिक दृष्टिकोण का पता चलता है। उन्होंने 12 जुलाई 1934 को अपनी पुत्री को एक पत्र में यह लिखा था कि "जब तक कोई पुरुष या महिला विज्ञान और अर्थशास्त्र तथा प्रौद्योगिकी के बारे में थोड़ी बहुत जानकारी नहीं रखता है तब तक वह अपने आपको आज शिक्षित नहीं कह सकता।" उनका दृढ़ विश्वास था कि "जब तक हम विज्ञान की शिक्षा से लाभ नहीं उठाते तब तक हम राष्ट्रीय अथवा व्यक्तिगत दृष्टि से प्रगति नहीं कर सकते.....।" उन्होंने कहा कि केवल विज्ञान से ही भुखमरी और गरीबी, गंदगी और निरक्षरता, अन्धविश्वास और पुराने रीतिरिवाजों और परम्पराओं, अपार संसाधनों के बेकार होने, एक अमीर देश जिसमें ऐसे लोग रहते हैं जो भुखमरी के शिकार हैं, की ये समस्यायें हल हो सकती हैं।"[1]

व्यापक अर्थ में पंडित नेहरू के लिए विज्ञान समस्याओं को समझने का तथा असलियत जानने का एक निश्चित तरीका था। यह एक अनुभवसिद्ध तरीका है जिसके द्वारा हम ऐसी किसी बात को अस्वीकार करने के लिए तैयार रहते हैं जिसे हम प्रमाणित नहीं कर सकते। उन्होंने इस बारे में विस्तार से यह भी बताया कि "विज्ञान तो जीवन की सभी समस्याओं को हल करने का एक साधन है। आप जीवन के अन्य पहलुओं को इससे मुक्त रखकर अपने उद्योगों में इसका प्रयोग नहीं कर सकते।" जहां प्रत्येक नई

---

1. 3 जनवरी 1938 को कलकत्ता में हुए इन्डियन साइंस कांग्रेस के रजत जयन्ती अधिवेशन के अवसर पर भेजा गया संदेश। देखिए बलदेव सिंह (सं.) "जवाहरलाल नेहरू ऑन साइन्स एण्ड सोसायटी; ए कलेक्शन ऑफ हिज राइटिंग एण्ड स्पीचिज" नयी दिल्ली, नेहरू मेमोरियल म्यूजियम एण्ड लाइब्रेरी 1988

खोज के साथ विज्ञान में परिवर्तन होता रहता है और इसलिए कोई भी खोज अंतिम नहीं होती है वहां उनका यह कहना था कि "वैज्ञानिक पद्धति में परिवर्तन नहीं होता और इसलिए हमें अनुसंधान में, सामाजिक जीवन में राजनीतिक तथा आर्थिक जीवन में अपने विचार तथा कार्यों में इसका पालन करना चाहिए।" उनका यह स्वप्न था कि भारतीय समाज में एक ऐसी वैज्ञानिक अभिरुचि पैदा की जाए जिसका उद्देश्य सच्चाई तथा नई जानकारी के लिए खोज करना तथा किसी भी चीज को परीक्षण और जांच के बिना स्वीकार न करना, नए सबूत को देखते हुए पुराने निष्कर्षों को बदलने की क्षमता, पूर्व सिद्धांतों के बजाय अनुभवसिद्ध तथ्यों पर भरोसा तथा बुद्धि पर कठोर अनुशासन था। जीवन तथा इसकी बहुत सी समस्याओं के समाधान के लिए विज्ञान का प्रयोग करने हेतु ये सब बातें आवश्यक हैं।"

उन्होंने राजनीति में वैज्ञानिक तरीके लागू करने की पर्याप्त सम्भावना देखते हुए कहाः

> हमारी राजनीति जादू अथवा विज्ञान जैसी होनी चाहिए। जादू में, निस्संदेह किसी तर्क की जरूरत नहीं है, विज्ञान में सिद्धान्त हैं जो कम से कम विचार तथा तर्क की स्पष्टता पर पूरी तरह आधारित हैं और इसमें ऐसे अस्पष्ट आदर्शवाद अथवा धार्मिक अथवा भावनात्मक प्रक्रियाओं के लिए कोई स्थान नहीं है जिससे दिमाग में भ्रम पैदा हो और उसमें भटकाव आये। (ज.ला.ने. खण्ड 6, पृ. 3)।

उनका यह विश्वास था कि "समाजवाद विज्ञान तथा तर्क पर आधारित है" और उनका कहना था कि इसका वैज्ञानिक दृष्टिकोण "मुझे इतिहास की गुत्थियों तथा इतिहास को समझने में सहायता करता है।"

पंडित नेहरू ने 1937 में अध्यक्ष पद सम्भालने के पश्चात भारत में वैज्ञानिकों और वैज्ञानिक संगठनों से निकट सम्पर्क बढ़ाना शुरू किया। जनवरी, 1938 में कलकत्ता में इण्डियन साइंस कांग्रेस के रजत जयंती के अवसर पर भेजे गए विज्ञान तथा योजना नामक अपने संदेश में उन्होंने यह कहा कि "विज्ञान वर्तमान की अपेक्षा भविष्य के और उन लोगों के कहीं अधिक निकट है जो विज्ञान को समझते हैं और मानवता के उत्थान के लिए विज्ञान की सहायता लेना चाहते हैं।" वह "एक सरकारी अनुसंधान संगठन" बनाने के लिए कटिबद्ध थे और उन्होंने घोषणा की कि "हमें भारत का निर्माण वैज्ञानिक आधार पर करना है, क्योंकि कोई भी देश जो विभिन्न मामलों में, जिसमें प्रशासन भी शामिल है, परम्परावादी है, वह तेजी से बदलते हुए इस विश्व में प्रगति नहीं कर सकता।"

अक्तूबर, 1938 में वह राष्ट्रीय आयोजना समिति (नेशनल प्लानिंग कमेटी) के चेयरमैन बने। तब तक कलकत्ता में भारतीय वैज्ञानिकों का एक दल डा. मेघनाद साहा के नेतृत्व में राष्ट्रीय विकास के लिए विज्ञान तथा प्रौद्योगिकी का प्रयोग करने की योजनाएं

. बना रहा था। उन्होंने पाया कि पंडित नेहरू का बुनियादी तथा भारी उद्योगों का बड़े पैमाने पर विकास करने में दृढ़ विश्वास था और वह विज्ञान तथा प्रौद्योगिकी को बढ़ावा देने तथा इसका उपयोग करने के लिए तैयार थे। पंडित नेहरू ने राष्ट्रीय आयोजना समिति के कार्य में प्रो. पी.सी. महालानोबिस तथा कुछेक अन्य वैज्ञानिकों को शामिल किया। राष्ट्रीय आयोजना समिति की अध्यक्षता के अपने दो वर्षों के दौरान उन्होंने देश के कुछ प्रतिष्ठित वैज्ञानिकों और केन्द्र तथा राज्य सरकारों के तकनीकी अधिकारियों के साथ सम्पर्क तथा परस्पर विचार-विमर्श करके भारत में वैज्ञानिक अनुसंधान के विकास और देश के विकास में इनका प्रयोग करने का आधार तैयार किया।

बाद में उन्होंने विज्ञान की विनाशकारी शक्ति को उस समय देखा जब 6 अगस्त, 1945 को हिरोशिमा में पहली बार परमाणु बम गिराया गया। उनकी यह प्रतिक्रिया थी: "परमाणु बम में जो परमाणु ऊर्जा है यदि उसका प्रयोग निर्माणकारी शक्ति के रूप में किया जाए तो इससे समस्त विश्व का बहुत विकास होगा।" उन्होंने कल्पना की कि "आने वाले कुछ वर्षों में विश्व में परिवर्तन आएगा और मुझे आशा है कि परमाणु ऊर्जा का प्रयोग मानव जाति के उत्थान के लिए निर्माणकारी शक्ति के रूप में होगा।" 25 अगस्त, 1945 को दिल्ली में हुए एक प्रेस सम्मेलन में पूछे गए एक इस प्रश्न के उत्तर में कि क्या भारत की भावी सरकार देश में परमाणु बम बनाएगी, जवाहरलाल नेहरू ने कहा:—

> "जब तक विश्व है, तब तक प्रत्येक देश को अपनी रक्षा करने के लिए आधुनिक वैज्ञानिक तरीकों की खोज करनी होगी और उनका प्रयोग करना होगा। मुझे इसमें तनिक संदेह नहीं है कि भारत वैज्ञानिक अनुसंधान करता रहेगा और मुझे आशा है कि भारतीय वैज्ञानिक परमाणु ऊर्जा का प्रयोग रचनात्मक कार्यों के लिए करेंगे। लेकिन यदि भारत को चुनौती दी गई, तो वह अपनी पूरी ताकत से अपनी रक्षा करने का प्रयास अवश्य करेगा। मुझे आशा है कि अन्य देशों के साथ मिलकर भारत परमाणु बम का प्रयोग रोकने का प्रयास करेगा।"

द्वितीय विश्वयुद्ध के पश्चात राष्ट्रीय आयोजना समिति का कार्य सम्भालने पर उन्होंने आयोजना और विज्ञान तथा प्रौद्योगिकी के प्रयोग के बीच और अधिक संबंध स्थापित करने को बढ़ावा दिया। उन्हें भारत में वैज्ञानिक अनुसंधान की समस्याओं की पूरी जानकारी थी। रायल इंस्टीट्यूट आफ सांइस, बम्बई को 21 नवम्बर, 1945 को दिए गए अपने संदेश में उन्होंने कहा कि "मुझे विश्वास है कि भारत के सम्मुख आज जो सभी बड़ी समस्याएँ हैं, उनमें सबसे महत्वपूर्ण समस्या वैज्ञानिक अनुसंधान, विशुद्ध तथा व्यावहारिक दोनों के विकास की है..." और उन्होंने वैज्ञानिक अनुसंधान में लगी संस्थाओं को अपना समर्थन देने का वचन दिया। उन्होंने पाया कि भारी उद्योगों के विकास से

गरीबी दूर की जा सकती है और जीवन-स्तर ऊंचा उठाया जा सकता है और उनका विचार था कि वैज्ञानिक अनुसंधान से तेजी से प्रगति होगी। वह चाहते थे कि "भारतीय वैज्ञानिक विश्व में सबसे आगे रहें।"

4 जनवरी, 1947 को नई दिल्ली में राष्ट्रीय भौतिक प्रयोगशाला की नींव रखते समय उन्होंने कहा था:

> मुझे आशा है कि राष्ट्रीय भौतिक प्रयोगशाला, जो शीघ्र ही यहां कार्य करना प्रारम्भ करेगी, के बाद अनेक अनुसंधान संस्थान और प्रयोगशालाएं स्थापित की जायेंगी और उत्साही युवक-युवतियों के दल इनसे जुड़ेंगे तथा देश और दुनिया की सेवा करने के लिये आगे आयेंगे। पिछले कुछ महीनों के दौरान मैं भारत के विभिन्न भागों में स्थापित की जा रही विभिन्न प्रकार की प्रयोगशालाओं की इन योजनाओं के बारे में देखता और पढ़ता रहा हूं और मैंने कुछ हद तक अन्य विशाल योजनाओं—नदी घाटी योजनाओं, परियोजनाओं, बांधों आदि की छानबीन की है। उनमें से कुछेक, टेनेसी घाटी योजना की तुलना में अधिक संभावनाओं वाली हैं और इन महान योजनाओं से मैंने जो उभरती हुई तस्वीर देखी है उससे मैं अधिक उत्साहित हूं। वर्तमान संकट में मुझे जो अत्यधिक महत्वपूर्ण और आवश्यक प्रतीत होता है, वह है भारत के विकास के लिये इन महान परियोजनाओं की नींव रखना।

अपनी इस कल्पना को साकार करने के लिये उन्होंने देश के वैज्ञानिक जनशक्ति संसाधनों में वृद्धि करने और इनके उपयोग के बेहतर तरीकों के संबंध में परामर्श देने हेतु अप्रैल, 1947 में वैज्ञानिक जनशक्ति समिति गठित की। समिति की सिफारिश पर वैज्ञानिक प्रतिभाओं का एक रोस्टर तैयार किया गया। अगस्त, 1947 में नवगठित मंत्रिमण्डल में वैज्ञानिक अनुसंधान का एक विभाग बनाया गया और प्रधानमंत्री के रूप में पंडित नेहरू ने वैज्ञानिक अनुसंधान को अपने अधीन रखा। उसके तुरन्त बाद 23 अगस्त, 1947 को भारत में वैज्ञानिक अनुसंधान के भावी ढांचे पर चर्चा करने के लिये एक उच्चस्तरीय बैठक आयोजित की जिसमें कई मंत्रियों, सचिवों और वैज्ञानिक तथा औद्योगिक अनुसंधान परिषद के निदेशक ने भाग लिया। उन्होंने बैठक में स्पष्ट रूप से कहा कि "वैज्ञानिक अनुसंधान में मेरी रुचि है और मैं इससे घनिष्ठ रूप से जुड़ा रहना चाहता हूं और इसके संवर्द्धन में सहयोग करना चाहता हूं।"

अपने इस जुड़ाव के कारण, देश के प्रधानमंत्री के रूप में अगले सत्रह वर्षों के दौरान पंडित नेहरू को अपनी कल्पना को साकार करने के अवसर मिले और उनके द्वारा उठाए गए प्रत्येक कदम ने भारत में विज्ञान और प्रौद्योगिकी के नए क्षेत्र खोले। 6 अप्रैल, 1948 को भारतीय संविधान सभा (विधायी) में परमाणु ऊर्जा विधेयक पेश करते हुए उन्होंने सभा से यह विचार करने का अनुरोध किया कि :

> यदि विश्व में एक राष्ट्र के रूप में हमें अपना अस्तित्व कायम रखना है तो हमें युद्धेत्तर प्रयोजनों के लिये इस परमाणु ऊर्जा का अवश्य विकास करना चाहिये। मैं समझताहूं कि हमें शांतिपूर्ण प्रयोजनों के लिये... मानव जीवन के विकास और खुशी के लिये, युद्ध और घृणा के लिये नहीं, इसका प्रयोग करने के उद्देश्य से इसका विकास करना चाहिये।

परमाणु ऊर्जा विधेयक पारित होने के बाद, परमाणु ऊर्जा और इसमें प्रयुक्त होने वाली सामग्री का विकास करने और नियंत्रण रखने के लिये डा० होमी जे. भाभा की अध्यक्षता में परमाणु ऊर्जा आयोग गठित किया गया। 20 जनवरी, 1957 को परमाणु ऊर्जा प्रतिष्ठान, ट्राम्बे, बम्बई के उद्घाटन के अवसर पर अपने भाषण में उन्होंने प्रतिष्ठान में कार्य कर रहे युवा वैज्ञानिकों को उनके अच्छे कार्य के लिए बधाई दी और कहा, "भविष्य, हमारे द्वारा बनाए गए सीमेंट और इस्पात के भवनों के कारण नहीं, अपितु यह कार्य कर रहे मनुष्यों के कारण सुनिश्चित होता है।"

स्वाधीनता प्राप्ति से पूर्व ग्यारह प्रयोगशालाओं की श्रृंखला तैयार करने की योजना बनाई गई थी। उनके नेतृत्व में इनकी स्थापना करने और विस्तार करने के कार्य की प्रगति में एकदम तेजी आई। विश्व में हो रहे विकास के साथ चलने और "हमारे जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में वैज्ञानिक दृष्टिकोण के विकास के लिये" भी अनुसंधान प्रयोगशालाओं का अलग और व्यावहारिक लाभ उन्होंने देखा। 3 जनवरी, 1950 को राष्ट्रीय रसायन प्रयोगशाला, पुणे के उद्घाटन के अवसर पर अपने भाषण में उन्होंने यह कहा कि "इन प्रयोगशालाओं से, विज्ञान और जनकल्याण के लिए विज्ञान का प्रयोग करने में देश के लिए कार्य करने के लिये बड़ी संख्या में युवक युवतियों को अवसर प्रदान करने में सहायता मिलेगी।"

वह इस तथ्य को जानते थे कि केवल विशेषज्ञतापूर्ण अनुसंधान संस्थान और प्रयोगशालाएं विज्ञान और वैज्ञानिक अनुसंधान का प्रसार करने और इसे लागू करने में पर्याप्त नहीं हैं। वैज्ञानिक शिक्षा के प्रसार में विश्वविद्यालयों की भूमिका महत्वपूर्ण समझी गई लेकिन वह सोचते थे कि उन पर विशेषज्ञतापूर्ण अनुसंधान के कार्य का भार नहीं लादना चाहिये। नई दिल्ली में 26 नवम्बर, 1954 को शांतिपूर्ण प्रयोजनों के लिये परमाणु ऊर्जा के विकास संबंधी वैज्ञानिक सम्मेलन में अपने उद्घाटन भाषण में उन्होंने कहा:

> लेकिन मैं कहना चाहूंगा कि यदि हमारे विश्वविद्यालय आगे बढ़ने के लिये एक विषय में अधिक विशेषज्ञता प्राप्त करने का कार्य शुरू करते हैं तो संभवतः वे असंतुलित हो जायेंगे। इसलिये, यह बात अधिक महत्वपूर्ण है कि विश्वविद्यालयों को राष्ट्रीय प्रयोगशाला द्वारा किये जाने वाला कार्य स्वयं करने के बजाए पूरे वैज्ञानिक क्षेत्र में सामान्य शिक्षा देने का कार्य करना चाहिये।

विश्वविद्यालयों में अनुसंधान कार्य को शिक्षण से अलग करने का मंतव्य था उद्योग और समाज की व्यावहारिक आवश्यकताओं से निपटने के लिये अनुसंधान संस्थाओं को और अधिक अनुकूल बनाना। वैज्ञानिक अनुसंधान संस्थाओं पर व्यावहारिक बल देने से देश अन्य स्थानों पर हो रहे प्रौद्योगिक विकास का देशीकरण करने के अलावा समुचित प्रौद्योगिकी का विकास कर सकेगा।

13 मार्च, 1958 को उन्होंने लोक सभा में भारत सरकार का 4 मार्च, 1958 का विज्ञान नीति संबंधी संकल्प संख्या 131/सीएफ/57 पढ़ा। संकल्प में इस बात पर बल दिया गया कि :

> किसी देश की सम्पदा और समृद्धि औद्योगिकीकरण के माध्यम से जनशक्ति और सामग्री संसाधनों के कारगर उपयोग पर निर्भर करती है। औद्योगिकीकरण के लिये जनशक्ति के प्रयोग के लिये उनको विज्ञान की शिक्षा और तकनीकी कलाओं में प्रशिक्षण देना आवश्यक है। उद्योग से वयक्ति की उन्नति के द्वार खुलते हैं।

आधुनिक विश्व में भारत की जनशक्ति का विशाल संसाधन तभी एक परिसम्पत्ति बन सकता है जब यह प्रशिक्षित तथा शिक्षित हो।

वैज्ञानिक नीति के लक्ष्य निम्नलिखित हैं:—

(एक) विज्ञान तथा वैज्ञानिक अनुसंधान का, इसके सभी शुद्ध, प्रायोगिक तथा शैक्षिक पहलुओं सहित, सभी उपयुक्त तरीकों से विकास करना, उसे उन्नत बनाना तथा उसे बढ़ावा देना;

(दो) देश में उच्च कोटि के पर्याप्त अनुसंधान वैज्ञानिक पैदा करना तथा देश की ताकत के एक महत्वपूर्ण अंग के रूप में उनके कार्य को मान्यता प्रदान करना;

(तीन) देश की विज्ञान तथा शिक्षा, कृषि तथा उद्योग तथा रक्षा संबंधी जरूरतों को पूरा करने के लिये उपयुक्त पैमाने पर वैज्ञानिक तथा तकनीकी कार्मिकों के प्रशिक्षण-कार्यक्रमों को यथासंभव गति से शुरू करना तथा उनको प्रोत्साहित करना;

(चार) यह सुनिश्चित करना कि महिलाओं और पुरुषों की रचनात्मक प्रतिभा को प्रोत्साहित किया जायेगा तथा वैज्ञानिक कार्यकलापों में इस प्रतिभा का उपयोग करने का पूरा-पूरा अवसर मिलेगा ;

(पांच) ज्ञान के अर्जन तथा प्रसार और नये ज्ञान की खोज की व्यक्तिगत पहल को शैक्षिक स्वतन्त्रता के वातावरण में प्रोत्साहित करना; तथा

(छः) सामान्यतः देश के लोगों के लिये वैज्ञानिक ज्ञान के अर्जन तथा उपयोग से प्राप्त

होने वाले सभी लाभ सुनिश्चित करना।

इस संकल्प से उनके विज्ञान तथा प्रौद्योगिकी संबंधी दृष्टिकोण की व्यापकता तथा गहनता का पता चलता है। उन्होंने देश की प्रतिभा तथा सम्पदा के विशाल भण्डार को विकसित करके तथा उसका उपयोग करके एक औद्योगिक देश के रूप में तथा वैज्ञानिक अनुसंधान के क्षेत्र में एक अग्रणी देश के रूप में भारत की कल्पना की। उन्होंने वैज्ञानिक अनुसंधान संस्थानों तथा प्रयोगशालाओं और तकनीकी शिक्षा के प्रसार को प्राथमिकता दी। विज्ञान तथा प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में हुई अधुनातन प्रगति का प्रयोग करने वाले भारी तथा मूलभूत उद्योगों की स्थापना करके जो औद्योगिकीकरण हुआ है उससे वैज्ञानिक अनुसंधान के उपयोग तथा तकनीकी जनशक्ति के नियोजन के विस्तृत अवसर मिले हैं। उनके नेतृत्व में उच्च तकनीकी शिक्षा का तेजी से प्रसार हुआ तथा देश में इंजीनियरी कालेजों, प्रौद्योगिकी संस्थानों, मेडिकल कालेजों, कृषि विज्ञान विश्वविद्यालयों, आदि का प्रसार हुआ। उन्होंने भारत के वैज्ञानिक तथा औद्योगिक समाज के लिये मजबूत नींव तथा मूलभूत ढांचे का निर्माण किया।

वह वैज्ञानिक तथा प्रौद्योगिक प्रगति पर सामाजिक नियंत्रण रखने की जरूरत के प्रति सजग थे। उनका यह कहना था कि जब तक इस प्रगति पर "किन्हीं नैतिक मानदंडों तथा मूल्यों द्वारा नियंत्रण नहीं रखा जायेगा, इसके विनाश का कारण बनने की संभावना है" तथा "प्रौद्योगिकी और इसकी अन्य शाखाओं — भौतिक विज्ञान की विशिष्ट शाखाओं — पर अत्यधिक बल दिये जाने के कारण औद्योगिक तथा तकनीकी रूप से उन्नत देशों में लोगों का कुछ असंतुलित विकास हुआ है। इसने इसका प्रयोग सही ढंग से करने की नैतिक क्षमता दिये बिना लोगों के हाथ में बहुत महत्वपूर्ण शक्ति दे दी।"

वह भारत में विज्ञान तथा उद्योग में निकट सम्बन्ध चाहते थे। इसके साथ-साथ उन्होंने वैज्ञानिकों में स्वयं को प्रयोगों तक सीमित रखने की प्रवृत्ति नोट की। उन्होंने कहा कि "मुझे उनमें अद्भुत प्रयोग करने की प्रवृत्ति देखने को मिली है परन्तु उसके बाद प्रयोग केवल प्रयोग ही बन कर रह जाता है। अगली अवस्था शायद कभी नहीं आती है।" वैज्ञानिक अनुसंधान के व्यावहारिक उपयोग के बारे में उन्होंने जोर देकर कहा कि "विचार के साथ कार्य का भी मेल होना चाहिये।"

वह इस आलोचना के प्रति सजग थे कि उच्च योग्यता प्राप्त जनशक्ति प्रदान करने वाली उच्च शिक्षा के वैज्ञानिक तथा प्रौद्योगिकी संस्थानों के विस्मयकारी प्रसार के बावजूद जनशिक्षा तथा विज्ञान के प्रति रुचि जाग्रत नहीं हुई है। उन्होंने कहा कि सारी प्रगति के बावजूद, "मैं यह नहीं मानता कि यह कहना सच है कि भारत में आम चिन्तन वैज्ञानिक दृष्टिकोण से नियंत्रित है। न ही ऐसा सरकार के आदेश द्वारा किया जा सकता है। यह देश में घटित होने वाले औद्योगिक तथा प्रौद्योगिक परिवर्तनों और शैक्षिक प्रक्रिया द्वारा आता है।" यदि आज भारत, अमरीका तथा रूस के बाद वैज्ञानिक तथा तकनीकी जनशक्ति के मामले में तीसरे स्थान पर है तथा एक औद्योगिक देश के रूप में उभर रहा

है, तो ऐसा एक ऐसे नेता के चिन्तन के कारण है जिसने इसके लिये शनैः-शनैः एक मूलभूत ढांचे का निर्माण किया। किसी भी विकसित अथवा विकासशील देश के किसी भी नेता ने, चाहे वह सत्ता में हो अथवा सत्ता से बाहर हो, इस दूरदर्शिता तथा उत्साह से विज्ञान तथा वैज्ञानिक अनुसंधान और औद्योगीकरण को बढ़ावा नहीं दिया जितना भारत में पंडित नेहरू ने दिया।

विज्ञान तथा प्रौद्योगिकी दृष्टिकोण के विकास की भावी संभावनाएं

पंडित नेहरू के विज्ञान तथा प्रौद्योगिकी संबंधी दृष्टिकोण ने उनकी विकास की अवधारणा तथा नीति को प्रभावित किया। वह समाजवादी थे क्योंकि वह महसूस करते थे कि "समाजवाद विश्व की समस्याओं से निपटने का एक वैज्ञानिक ढंग है।" वह आयोजना के पक्ष में थें क्योंकि "वह सोचते थे कि आयोजना एक वैज्ञानिक पद्धति है, यह विज्ञान को व्यवहार में लाना है।" वह रूस द्वारा आयोजना तथा बड़े पैमाने पर औद्योगीकरण तथा विकास से और विज्ञान तथा प्रौद्योगिकी के प्रयोग द्वारा की गई आर्थिक प्रगति से बहुत प्रभावित थे। उन्होंने यह कल्पना की कि भारत में भी औद्योगीकरण, आयोजना तथा समाजवाद से वैज्ञानिक अनुसंधान की प्रगति होगी तथा गरीबी, अज्ञान तथा अंधविश्वास की समस्याओं से निपटने में इसका प्रयोग किया जा सकेगा। वह लोकतंत्रवादी थे क्योंकि कोई भी वैज्ञानिक प्रवृत्ति का व्यक्ति बौद्धिक तर्क तथा अनुभवसिद्ध अवधारणा द्वारा संचालित होता है तथा इसके लिये अपनी बात कहने की वैयक्तिक स्वतंत्रता होना आवश्यक है।

उन्होंने प्रजातंत्र के माध्यम से एक समाजवादी समाज बनाने के लिए एक बिल्कुल ही नया प्रयोग आरम्भ किया क्योंकि उन्होंने देखा कि सिर्फ राजनीतिक प्रजातंत्र से ही सामाजिक और आर्थिक प्रजातंत्र लाया जा सकता है और यही समाजवाद का मुख्य उद्देश्य है। विज्ञान और वैज्ञानिक अवधारणा के इसी दृष्टिकोण से ही देश के सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक विकास के लिए उनके विचारों में प्रणालीबद्ध अवधारणा की झलक मिलती है।

पंडित नेहरू ने 1931 के कराची कांग्रेस अधिवेशन में मूल अधिकारों और आर्थिक नीति संबंधी प्रस्ताव तैयार किया। इस प्रकार स्वीकार कर लिए जाने के बाद यह प्रस्ताव प्रमुख उद्योगों के राष्ट्रीयकरण, खनिज संसाधनों, रेल और नौवहन आदि पर सरकार के स्वामित्व का समर्थन कर और लोगों को निर्वाह मजदूरी और अन्य सुविधाएं प्रदान कर, समाजवादी लक्ष्य प्राप्त करने की ओर पहला कदम था। पंडित नेहरू का दृढ़ विश्वास था कि औद्योगीकरण और समाजवाद से देश की आर्थिक पिछड़ेपन की समस्या पर प्रभावकारी रूप से काबू पाया जा सकता है और इससे समाज की कायापलट हो सकती है। अपनी इस विचारधारा में उनका गांधी जी और अन्य व्यक्तियों के साथ मतभेद था।

गांधी जी चाहते थे कि पंडित नेहरू इस बात को स्वीकार करें कि:

> ...यदि भारत को और भारत के माध्यम से विश्व को भी सच्ची स्वतंत्रता प्राप्त करनी हो... तो लोगों को गांवों में रहना होगा न कि शहरों में, झोपड़ियों में रहना होगा न कि भवनों में। तब उनके पास हिंसा और झूठ के अलावा कोई उपाय नहीं रहेगा... सत्य और अहिंसा के बिना मानवता का सिर्फ विनाश ही हो सकता है। हम सत्य और अहिंसा को सिर्फ ग्रामीण जीवन की सादगी में ही महसूस कर सकते हैं...

जो कुछ भी मैंने कहा है उसका सार यह है कि मनुष्य को सिर्फ अपनी वास्तविक आवश्यकताओं पर ही संतोष करना चाहिए और आत्मनिर्भर होना चहिए। यदि उसे अपने पर ऐसा नियंत्रण नहीं है तो वह अपने आपको बचा नहीं सकता।

फिर भी समस्याओं तथा उनके समाधान पर नेहरू के विचार भिन्न थे। उनके अनुसार:

> "सामान्यतः गांव बौद्धिक और सांस्कृतिक रूप से पिछड़ा हुआ होता है और पिछड़े वातावरण में कोई प्रगति नहीं की जा सकती है। संकीर्ण विचार के लोग झूठे और हिंसक होते है। हमें भोजन, वस्त्र, आवास, शिक्षा, सफाई, आदि के संबंध में कतिपय उद्देश्य निर्धारित करने होंगे जो देश में प्रत्येक व्यक्ति की न्यूनतम आवश्यकता के अनुसार होने चाहिए। हमें इन उद्देश्यों को दृष्टि में रखते हुए, यह अवश्य पता लगाना चाहिए कि इन्हें किस प्रकार शीघ्रतापूर्वक प्राप्त किया जा सकता है। मैं लाखों लोगों के लिए महल की बात नहीं कर रहा। परन्तु इसके पीछे कोई कारण नजर नहीं आता कि लाखों लोगों के पास आरामदायक आधुनिक घर क्यों न हो,. जहां वे अपना सुसंस्कृत जीवन बिता सकें।"

नेहरू का विश्वास था कि इन आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए भारी उद्योगों का विकास और विज्ञान तथा प्रौद्योगिकी का प्रयोग अनिवार्य है तथा उन्होंने पूछा, "विशुद्ध ग्रामीण समाज में यह सब कैसे खप सकता है।" अल्डस हक्सले को लिखे अपने 1 सितम्बर, 1933 के पत्र में पंडित नेहरू ने लिखा कि गांधी जी मुख्यतया एक "धार्मिक प्रकृति के व्यक्ति हैं और श्री गांधी का व्यक्तिगत दर्शन और वे व्यक्ति जो उन्हें कमोबेश धार्मिक या नैतिक नेता मानते हैं, कमोबेश शायद इसे स्वीकार भी करते हैं। बेशक गांधी जी यह महसूस करते थे कि उनके कट्टर व्यक्तिगत विचारों का अनुसरण थोड़े से ही व्यक्ति कर सकते हैं परन्तु उन्हें उम्मीद है कि ये थोड़े से लोग एक ऐसा उदाहरण पेश करेंगे जिससे और अधिक व्यक्तियों का जीवन प्रभावित होगा।" स्काटिश चर्च कालेज कलकत्ता के छात्रों द्वारा 3 जनवरी, 1939 को आयोजित सांस्कृतिक सम्मेलन में उनके द्वारा दिये गए भाषण से इस अवधारणा का और आलोचनात्मक विश्लेषण मिलता है। उन्होंने कहा:

> सामान्यतः विगत दिनों में धार्मिक दृष्टिकोण व्यक्तिगत विकास का पैमाना माना जाता था। इससे व्यक्ति को और अधिक उन्नत बनाने की कोशिश की जाती थी

और फिर यह आशा की जाती थी कि व्यक्ति की उन्नति का समाज पर प्रभाव पड़ेगा।

इसके बावजूद आधुनिक पद्धति वातावरण में सुधार पर जोर देती है ताकि विशेष वातावरण में रहने वाला व्यक्ति पूर्णतया इसके अनुरूप जीवनयापन कर सके। ये दोनों प्रणालियां समकालीन नहीं हैं। शायद वातावरण विशेष में सुधार पर जोर देना आज इसलिए अधिक महत्वपूर्ण है क्योंकि यदि वातावरण खराब होगा तो आप प्रगति नहीं कर सकते हैं। हमें सामाजिक संस्कृति के परिप्रेक्ष्य और इसके परिणामस्वरूप बनने वाले वातावरण के परिप्रेक्ष्य में सोचना होगा। उदाहरण के लिए जब आपके चारों ओर का सामाजिक वातावरण स्वार्थ पर आधारित हो और जीवन पर खराब प्रभाव डाले तो आपका स्वार्थहीनता और अच्छे गुण ग्रहण करने का प्रयास किस काम का ?

भारत के उन दो महान नेताओं के, जिनके दृष्टिकोण एक दूसरे से बिल्कुल भिन्न थे परन्तु जिन्होंने मिलकर देश का भाग्य संवारा, ये विचार भारत के विकास के संबंध में वैकल्पिक दृष्टिकोणों और विचारों को स्पष्ट करने के लिए दिए गए हैं। गांधी जी ने प्रणाली के विकास के लिए मानव पर ध्यान केन्द्रित किया जबकि पंडित नेहरू ने मानव के विकास के लिए प्रणाली पर ध्यान केन्द्रित किया। गांधी जी विज्ञान, प्रौद्योगिकी अथवा औद्योगीकरण के खिलाफ नहीं थे परन्तु उनका विचार इन्हें जीवनशैली की सीमा के अंदर रखने और इसका पोषण करना था। नेहरू का विचार जनता के बेहतर जीवन और गरीबी, अज्ञान और अंधविश्वास के पंजों से उसे छुटकारा दिलवाने के लिए विज्ञान और प्रौद्योगिकी का बृहत उपयोग और औद्योगीकरण करना था। उनकी कल्पना एक ऐसा महौल बनाने की थी जो लोगों को अधिकतम प्रतिभा और कार्यक्षमता का विकास करने के लिए प्रेरित करे।

लोक प्रशासन पर दृष्टिकोण

क्या पंडित नेहरू ने विज्ञान और प्रौद्योगिकी पर अपने दृष्टिकोण और इस पर आधारित विकास की संभावना को ध्यान में रखते हुए भारत में लोक प्रशासन में कोई परिवर्तन करने की कल्पना की थी ? स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद सरकार की संसदीय प्रणाली अपना कर लोकतांत्रिक राजनीतिक प्रणाली के प्रति उनकी वचनबद्धता ने प्रशासन प्रणाली में इस परिवर्तन को किस तरह प्रभावित किया ? वैज्ञानिक और तकनीकी संगठनों तथा जनशक्ति के व्यापक प्रसार और सरकारी स्वामित्व वाले औद्योगिक उद्यमों के अस्तित्व में आने पर उनकी क्या प्रतिक्रिया थी ? सरकार ने कानून और व्यवस्था बनाए रखने और राजस्व एकत्र करने के सीमित कार्यों के साथ न केवल संरक्षक और नियंत्रक की भूमिका ले ली है अपितु वह परिवर्तन की उत्प्रेरक, शिक्षक, विकास लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए अपेक्षित वस्तुओं और सेवाओं की उत्पादक और वितरक भी बन गई है। क्या इस परिवर्तन के कारण लोक प्रशासन की पुनःसंरचना करने की आवश्यकता है ? पंडित

नेहरू का भारत में लोक प्रशासन की अवधारणा, भूमिका, सरचना और इसके कार्यचालन के प्रति क्या दृष्टिकोण था ?

प्रायः यह तर्क दिया जाता है कि स्वतंत्रता के तुरन्त बाद विभिन्न प्रकार की तथा जटिल समस्याओं—राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय—जिन से पंडित नेहरू को प्राथमिकता के आधार पर निपटना था, के कारण वह लोक प्रशासन पर अधिक ध्यान न दे सके। फिर भी उन्होंने न केवल भारतीय लोक प्रशासन संस्थान की स्थापना में गहरी रुचि ली, अपितु वह प्रति वर्ष इस संस्थान की आम सभा में अध्यक्ष की हैसियत से भाषण देने जाते थे। उनके भाषणों से मूलतः यह पता चलता है कि उन्हें भारत में लोक प्रशासन की समस्याओं और उनसे निपटने के लिए आवश्यक उपायों की जानकारी थी।

भारत में लोक प्रशासन पर उनके दृष्टिकोण का पता दो तरह से चलता है। एक तो यह है कि जो प्रशासनिक प्रणाली स्वतन्त्रता से पहले और उसके बाद थी उसमें उन्होंने क्या किया। दूसरे, भविष्य में प्रणाली में क्या परिवर्तन किया जाए इस विषय में उनके दृष्टिकोण को जानना है। इस संदर्भ में यह देखा जा सकता है कि पंडित नेहरू ने देश के शासन के उन पहलुओं पर अत्यधिक ध्यान दिया, जो प्रशासनिक प्रणाली की प्रभावकारिता को निर्णायक रूप से निर्धारित करते हैं। यदि लक्ष्यों को स्पष्ट रूप से निर्धारित किया जाए, यदि नीतियों को अच्छी तरह से तैयार किया जाए, यदि राजनीतिक संस्थायें अच्छा नेतृत्व उपलब्ध कराएं और उनके प्रभावी कार्यकरण की आवश्यकताओं के अनुरूप उनके मन में सामाजिक और राजनीतिक व्यवहार की बातें बैठा सकें, तो प्रशासनिक प्रणाली मांगों के अनुरूप कार्य करने को बाध्य होगी। यदि यह ऐसा नहीं कर पाती है, तो यह इन बातों के होने अथवा इन बातों के दोषपूर्ण होने या प्रशासनिक प्रणाली की क्षमता संबंधी संरचनात्मक सीमाओं के कारण हो सकता है। उन्होंने सामाजिक और आर्थिक लक्ष्य निर्धारित किए, ताकि सुसंगत नीतियाँ तैयार की जा सकें। उन्होंने उनके निर्माण के लिए आयोजना का मार्ग अपनाया और उनके क्रियान्वयन के लिए वैकल्पिक ढांचे को आजमाया। उन्होंने भारत में लोक प्रशासन के क्षेत्र को बढ़ाया। इस प्रकार, भारत में पंडित नेहरू के लोक प्रशासन संबंधी दृष्टिकोण को सूक्ष्म और व्यापक दोनों दृष्टियों से समझना आवश्यक है।

क. प्रणाली की भावी संभावना

प्रणाली की भावी संभावना में परम्परागत प्रशासनिक तंत्र को देश की सम्पूर्ण शासन प्रणाली की उप प्रणाली माना जा सकता है। नए काम करने के लिए तैयार की गई वैकल्पिक उप प्रणालियों को उस क्षेत्र का एक अंग माना जा सकता है जो परम्परागत प्रशासनिक प्रणाली की सीमाओं से परे है। यदि प्रशासनिक प्रणाली का प्रभावी कार्यचालन इससे सम्बद्ध अन्य संस्थाओं के कार्यकरण पर निर्भर रहता है तो ऐसी अन्य संस्थाओं का विकास महत्वपूर्ण हो जाता है; और केवल गहरी दूरदृष्टि और व्यापक

दृष्टिकोण वाला व्यक्ति ही उनका विकास करने और उन्हें मजबूत बनाने का कार्य कर सकता है। लोक प्रशासन के इस व्यापक संदर्भ में पंडित नेहरू संस्था निर्माण के क्षेत्र में एक पथ प्रदर्शक सिद्ध हुए।

संसदीय शासन प्रणाली में संसद और इसकी समितियों सहित इसके विभिन्न स्कंधों के प्रभावशाली कार्यचालन का प्रशासनिक प्रणाली के कार्यकरण से बहुत निकट का संबंध है। इस बात के बहुत अच्छे प्रमाण मिलते हैं जिनसे यह पता चलता है कि पंडित नेहरू ने सत्रह वर्षों तक एक सांसद के रूप में और एक प्रधानमंत्री के रूप में इसको कैसे विकसित किया और कैसे मजबूत बनाया। उनका आचरण अनुकरणीय था और उन्होंने एक संसदीय नेता के रूप में जो उदाहरण कायम किए वे संसद को संस्था का रूप देने के लिए वांछनीय व्यवहार का एक आदर्श उस समय बन गया जबकि अधिकांश चुने हुए सदस्य देश के शासन के नए ढांचे की अपेक्षाओं से परिचित नहीं थे।

उन्होंने प्रशासनिक प्रणाली की सीमा से बाहर वैज्ञानिक और अनुसंधान संगठनों की स्थापना की। इसी प्रकार औद्योगिक उत्पादन के क्षेत्र में सरकारी क्षेत्र के उद्यम बनाए गए और उनका तेजी से विस्तार किया गया। बहुप्रयोजनीय विकास परियोजनाएं आरम्भ करने के लिए नए किस्म के संगठन तैयार किए गए। यहां तक कि क्षेत्र प्रशासन में विकास के लिए वैकल्पिक ढांचा अस्तित्व में आया। विकास कार्य के लिए अपेक्षित विशेषज्ञता का पूरा पूरा उपयोग करने के उद्देश्य से क्षेत्र विकास प्राधिकरण, नगर विकास प्राधिकरण और विशेष प्रयोजनीय निकायों की स्थापना की गई। इन संगठनों को स्वायत्तता प्रदान करने के लिए उनका उद्देश्य यह था कि इन संगठनों को नौकरशाही कार्यकरण के घातक प्रभाव, जो परम्परागत प्रशासनिक प्रणाली में स्पष्ट रूप से पाया जाता है, से बचाया जाये और उन्हें उन विभिन्न दशाओं के, जिनमें वे कार्य करते हैं, अनुकूल बनाने हेतु और सरकार तथा समाज की अपेक्षाओं को पूरा करने के लिए छूट प्रदान की जाये। इससे सरकारी तंत्र और समाज की शक्तियों का भी बंटवारा हो गया। 14 दिसम्बर, 1959 को लोकसभा में भारतीय मानक संस्थान विधेयक पेश करते हुए उन्होंने संस्थान को स्वायत्तता दिए जाने की आवश्यकता का पूरी तरह समर्थन किया और कहा :—

> "हम धीरे-धीरे इस निष्कर्ष पर पहुंचे हैं कि हमारे क्रियाकलापों का इतना अधिक केन्द्रीकरण कोई अच्छी बात नहीं है। नेमी तरीकों से आपको सृजनात्मक प्रेरणा नहीं मिलेगी। इसीलिए जहां कहीं विज्ञान का काफी विकास हुआ है..... वे वैज्ञानिक उपकरणों को व्यापक रूप से अपनाते हैं।
>
> इन संस्थाओं को स्वीकृति के लिए उन लोगों के पास नहीं जाना पड़ता जिन्हें आम तौर पर विज्ञान या उस क्षेत्र विशेष की कतई जानकारी नहीं होती है। आमतौर पर सरकारी तंत्र में क्या होता है, इस पर विचार किया जाता है, समुचित रूप से विचार किया जाता है, परन्तु विशेष रूप से वैज्ञानिक या तत्संबंधी दृष्टिकोण से नहीं।"

उन्होंने आगे कहा कि जैसे-जैसे सरकारी स्वामित्व के उद्यम आगे बढ़ते हैं, यदि उन्हें निरन्तर सरकार पर निर्भर रहना पड़े, तो उनके लिए काम करना कठिन हो जाता है। इसलिए उनके काम में छूट देना और हस्तक्षेप न करना आवश्यक हो जाता है। उन्होंने स्वायत्तता और जन उत्तरदायित्व की आवश्यकताओं के बीच कोई टकराव नहीं पाया। यह उपयुक्त तरीके और प्रक्रियाएं विकसित करने तथा सरकारी कर्मचारियों के उपयुक्त रवैये का मामला था।

योजना आयोग के प्रति उनके नजरिये में नीति निर्माण के लिए एक नए सांस्थानिक ढांचे को देखा जा सकता है। परम्परागत रूप से सचिवालय ने ही नीति निर्माण की भूमिका निभाई थी। इस प्रयोजनार्थ इसकी कर्मचारी पद्धति, पूर्वापेक्षा के रूप में आवश्यक क्षेत्र अनुभव सहित सामान्य प्रशासक की अवधारणा पर आधारित थी। योजना आयोग की संरचना आयोजना की प्रक्रिया और सरकार की नीतियों के ढांचे के रूप में पंचवर्षीय योजनाओं के कारण नीति संबंधी मामलों के परिचालन और क्रियान्वयन में सचिवालय की भूमिका कम हो गई। नीतियों की संकल्पना और नियतन संबंधी पहलुओं का नियंत्रण, बड़ी संख्या में सरकारी, गैर-सरकारी अधिकारियों और कृतक बलों तथा अध्ययन दलों में सम्मिलित विशेषज्ञों तथा योजना आयोग में कार्यरत विशेषज्ञों के निकट और सक्रिय सहयोग से योजना आयोग में तैयार की गई पंचवर्षीय योजनाओं द्वारा किया जाता था।

सूक्ष्म दृष्टि से देखा जाए तो ऐसा लगता है कि प्रशासनिक प्रणाली जो हमें ब्रिटिश विरासत में मिली थी, के प्रति पंडित नेहरू का दृष्टिकोण विकास संबंधी प्रशासकों के लिए व्यावहारिक बातों पर प्रकाश डालता है। उन्होंने मध्यम श्रेणी अर्थात् सूक्ष्म और व्यापक दृष्टि के बीच विकास, निचले स्तर पर लोकतंत्र को मजबूत करने के साधन के रूप में और विकास प्रयासों में जन सहयोग के लिए एक आवश्यकता के रूप में पंचायती राज और सामुदायिक विकास की कल्पना की। प्रशासनिक प्रणाली के सामने आने वाले कुछ बहुत पेचीदे मामलों पर उनके विचार नैदानिक होने की अपेक्षा सहानुभूति-परक अधिक हैं। परिणामस्वरूप यह कहना कठिन है कि क्या उनमें यह दृष्टिकोण परिलक्षित होता है; परन्तु फिर भी वे बहुत महत्वपूर्ण और सार्थक हैं क्योंकि इनसे स्वतंत्रता के समय देश में अंग्रेजों द्वारा छोड़ी गई प्रशासनिक प्रणाली को जारी रखने की उनकी रुचि का पता चलता है।

ख. प्रशासनिक प्रणाली की भावी संभावना

भारत के स्वतंत्रता संग्राम ने उस समय जोर पकड़ा जब कुछेक स्थानों को छोड़कर कानून का शासन भलीभांति स्थापित हो गया था। कानूनों के संहिताकरण, उन्हें लागू करने के लिए प्रशासनिक तंत्र और न्याय निर्णय के लिए न्यायिक तंत्र ने देश के शासन को न्यूनाधिक रूप से भावशून्य बना दिया था। कानून द्वारा शासन में प्रशासनिक

प्रणाली, जिसमें वेबेरियन नौकरशाही की विशेषताएं हैं, को विकसित करने से बचा नहीं जा सकता। वस्तुतः 1858-1919 के बीच की अवधि को "नौकरशाही राज्य" या "नौकरशाही तानाशाही" कहा जाता है। प्रो. बी.बी. मिश्र का यह विचार है कि "भारत में कानून पर आधारित निरंकुशवाद आधुनिक विज्ञान और साहित्य की उन्नति में सहायक बना।"

भारत में कानून के शासन ने ही देश की एकता के लिए अधिक स्थायी और मजबूत आधार प्रदान किया। इसने वैयक्तिक शासन और सामाजिक परम्पराओं, जिसने इसे वैध बना दिया था, की दासता से मुक्त करने पर काफी प्रभाव डाला। इससे लोकतंत्र और धर्मनिरपेक्षता की भावना को प्रोत्साहन मिला। इसलिए यह आश्चर्यजनक नहीं है कि स्वतंत्रता आन्दोलन के बहुत से नेताओं ने कानून के शासन पर अपना प्रभाव डाला था। उनमें पंडित जवाहरलाल नेहरू भी थे।

यह ज्ञात नहीं है कि क्या पंडित नेहरू ने देश के शासन के लिए किसी अन्य प्रशासन प्रणाली के बारे में सोचा था। परन्तु स्वतंत्रता से पूर्व उन्होंने भारतीय प्रशासन में आई. सी. एस. को प्रधानता देने पर अपनी अप्रसन्नता व्यक्त की थी। उन्होंने स्पष्ट रूप से कहा था: मुझे लगता है कि नई व्यवस्था लाने के लिए वास्तविक कार्य आरम्भ करने से पूर्व आई.सी.एस. और इसी तरह की सेवाओं को पूरी तरह समाप्त करना हमारे लिए आवश्यक होगा। क्या देश के प्रशासनिक ढांचे में और सिविल सेवा कर्मचारी पद्धति में कोई परिवर्तन होगा या क्या इसका अर्थ यह है कि सेवाओं में परिवर्तन करके उन्हें भारतीय बनाया जाएगा ? इन विषयों पर उस समय भी विचार नहीं किया गया था जब स्वतंत्रता आन्दोलन के उद्देश्यों को व्यापक बनाने के लिए विकास के सामाजिक-आर्थिक सिद्धान्त को स्पष्ट किया जा रहा था। यह बिल्कुल साफ होता जा रहा था कि स्वतंत्रता के बाद भारत एक लोकतांत्रिक राजनीतिक प्रणाली में समाजवादी उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए योजनाबद्ध विकास का मार्ग अपनाएगा। फिर भी सरकारी तंत्र के रूप में विकल्प ढूंढ़ने के लिए प्रशासनिक प्रणाली की उपयुक्तता पर कभी कभार ही प्रश्न उठाए गए थे। नेताओं की प्रतिक्रियाएं देश में प्रशासनिक प्रणाली के वास्तविक पहलुओं की बजाए उसके स्वरूप तक ही सीमित थीं।

अन्तरिम सरकार (1945-47) में प्रथम प्रधान मंत्री के रूप में अनुभव हासिल करते हुए पंडित नेहरू ने कहा :

> सिविल सेवाओं का दृष्टिकोण पुराना है, वे पुरानी तथा अप्रचलित थीं और वे समय के साथ-साथ नहीं चल सकती थीं। यह देखना है कि हम इन परिस्थितियों में कैसे काम कर सकते हैं। पिछले तीन या चार महीनों के अनुभव से हमें पता चला है कि अधिकारियों के व्यवहार तथा रवैये में कोई परिवर्तन नहीं हुआ है।

स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात उपनिवेशवादी काल की प्रशासनिक पद्धति को न केवल बनाए रखा गया बल्कि उसे संवैधानिक सुरक्षा भी प्रदान की गई। भारतीय संविधान शायद अनूठा संविधान है जिसमें अखिल भारतीय तथा केन्द्रीय सेवाओं को उसी प्रकार, जैसी कि वे उपनिवेशवादी प्रशासनिक पद्धति की रीढ़ के रूप में थीं, संस्थागत रूप प्रदान करने के बारे में एक पूरा अध्याय है। प्रायः यह सवाल किया जाता है कि पंडित नेहरू ने, जो 27 मई, 1964, अपने निधन होने तक, देश के प्रधानमंत्री रहे, इस प्रशासनिक पद्धति को क्यों नहीं बदला? इस संबंध में बहुत से स्पष्टीकरण दिये गये हैं। राष्ट्रीय नेता तथा सरकार देश के विभाजन के कारण उत्पन्न गंभीर समस्याओं तथा कश्मीर में बाहरी खतरे की समस्या में उलझे रहे। पहली प्राथमिकता संघ को मजबूत बनाने तथा कानून और व्यवस्था बनाये रखने की थी। इन समस्याओं से निपटने के लिए राजनीतिक तथा प्रशासनिक दोनों तरह से स्थिरता जरूरी थी और भारत के सुदृढ़ ढांचे ने इन चुनौतियों का दृढ़ता से मुकाबला किया। राष्ट्रीय नेताओं, जिनका शिक्षण ब्रिटिश परम्पराओं के अनुसार हुआ था और जिन्होंने मंत्रिमण्डलीय प्रणाली की सरकार वाले वेस्टमिन्सटर नमूने के संसदीय लोकतंत्र को अपनाया था, कानून पर आधारित सुस्थापित प्रशासनिक प्रणाली में आमूल-चूल परिवर्तन करके संस्थागत तंत्र में अनिश्चितता तथा अस्थिरता पैदा नहीं कर सकते थे, भले ही इस प्रणाली की अपने दृष्टिकोण तथा कृत्यों के संबंध में अपनी एक सीमा थी। परन्तु, इसका अर्थ यह नहीं है कि पंडित नेहरू इस प्रणाली के कार्यचालन से प्रसन्न तथा संतुष्ट थे। इन सब बातों ने पंडित नेहरू को उत्तराधिकार में मिली प्रशासनिक प्रणाली चुनने के लिए प्रभावित किया। वस्तुतः ऐसा लगता है कि कई बार उन्होंने इस प्रणाली में किसी प्रकार का परिवर्तन करने का विरोध किया। फिर भी उन्होंने इसके कार्य करने के ढंग पर अपना असंतोष जाहिर किया।

प्रशासनिक पद्धति की समस्याएं जिनके बारे में पंडित नेहरू प्रायः अपने विचार व्यक्त करते रहते थे वे मूल रूप से वे समस्याएं हैं जो (क) परम्परागत प्रशासनिक तंत्र का विस्तार तथा उसे अनुकूल बनाने, (ख) "साधारण" बनाम "विशेषज्ञ" विवाद, (ग) सिविल सेवा की तटस्थता की संकल्पना तथा विकास प्रक्रिया में सिविल सेवक की भूमिका, और (घ) केन्द्रीकरण बनाम विकेन्द्रीकरण, जिसमें पंचायती राज तथा सामुदायिक विकास तथा जनता के साथ अधिकारियों का संबंध शामिल है, से उत्पन्न समस्याएं हैं।

राज्य की भूमिका में विस्तार होने से प्रशासनिक तंत्र में भी विस्तार अपरिहार्य था। समाजवादी नीतियों से नौकरशाही का और अधिक तेजी से विस्तार हुआ। पंडित नेहरू को इसका पता था। उनका कहना था, "समाजवाद के विस्तार से नौकरशाही का भी विस्तार होगा।" नौकरशाही के विस्तार की आलोचना के बारे में उनका यह उत्तर था कि "यह अजीब बात है कि जो लोग नौकरशाही के खिलाफ बोलते हैं। ये वही लोग हैं जो इसे और अधिक चाहते हैं। समाजवाद संबंधी कार्य के विस्तार में ये सब बातें शामिल हैं।" इसके साथ ही वे नौकरशाही के विस्तार से बहुत दुखी थे। 26 अक्टूबर, 1953 को नई

दिल्ली में केन्द्रीय सिंचाई तथा विद्युत बोर्ड की चौबीसवीं वार्षिक बैठक के अपने उद्घाटन भाषण में, उन्होंने कहा:

> "मैं देश में एक प्रकार का अजीब सा गलत-विकास देख रहा हूं....जिस तरह से सरकारी संगठन तथा विभाग तथा उनके द्वारा लगाए गए कर्मचारी बढ़ते जा रहे हैं, इससे अपव्यय के सिवाए कुछ भी प्राप्त नहीं होगा। इसके बाद उनके बीच समन्वय की समस्या आती है। इनका इतना विस्तार हुआ है कि ये सभी एक स्वतंत्र एकक हैं। इनके लिए एक तालमेल एजेंसी बनाई जाती है और पहले की तरह इसका आकार भी बढ़ता जाता है। इसके बाद फिर वही समस्या खड़ी हो जाती है कि इस तालमेल करने वाली एजेंसियों के कार्यों में कैसे समन्वय स्थापित किया जाये। यह सब एकदम चकरा देने वाला तथा भ्रान्तिपूर्ण सा लगता है। मुझे यह सब देखकर हैरानी होती है और मेरे विचार से, इसे रोका जाना चाहिये.....हमारे संगठनों में गलत विस्तार हमारे देश के लिए खतरनाक है।

स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात प्रशासनिक तंत्र में कुछ हद तक विस्तार होना अनिवार्य था। लेकिन प्रायः यह प्रश्न पूछा गया : विकास के उन साधनों के कारण प्रशासनिक तंत्र का कितना विस्तार हुआ जिसके बारे में लोकतांत्रिक शासन में कोई विचार नहीं किया गया ? उदाहरणार्थ, यदि राजनीतिक दलों तथा अन्य गैर-सरकारी संगठनों को शिक्षा (सामाजिक तथा राजनीतिक) देने, व्यवहार में परिवर्तन लाने तथा चहुंमुखी विकास के कार्यक्रमों और हितों को स्पष्ट करने तथा बनाने हेतु लोगों को प्रोत्साहित करने तथा संगठित करने के कार्यों के लिए अधिक प्रभावकारी ढंग से उपयोग में लाया जाए, तो इससे प्रशासनिक तंत्र को सामाजिक तथा राजनीतिक कार्यों और विवादों में बहुत कम भूमिका निभानी पड़ेगी। दूसरी ओर, इन संगठनों की कारगरता के बिना, लोकतांत्रिक व्यवस्था में राजनीतिज्ञ में, प्रशासनिक व्यवस्था में जितना कार्य किया जा सकता है, उससे अधिक का वायदा करने की प्रवृत्ति पैदा होगी और इस प्रकार प्रशासनिक व्यवस्था की प्रतिष्ठा को आघात पहुंचेगा और इसकी विश्वसनीयता के बारे में जनता में आशंकाएं फैलेंगी। मजबूत राजनीतिक दलों की व्यवस्था न होने से, प्रशासनिक तंत्र को, अपनी राजनीतिक विचारधारा तथा राजनीतिक सत्ता स्वीकार कराने की परिस्थितियां पैदा करने के लिये इस्तेमाल करने की प्रवृत्ति पैदा होगी। इसके फलस्वरूप, नौकरशाही के आकार, कृत्यों तथा शक्तियों में कई गुना वृद्धि होगी। समाजवाद एक राजनीतिक विचारधारा है और लोकतंत्र में इसे उस विचारधारा को प्रतिपादित करने के लिये तथा अपने पक्ष में एक खास तरह का व्यवहार पैदा कराने के लिए समाज में अपने समर्थन में एक खास पद्धति की जरूरत होती है। क्या इसे शासन की सत्ता द्वारा अपने प्रशासनिक ढांचे के माध्यम से प्राप्त किया जा सकता है? 7 अप्रैल, 1956 को भारतीय लोक प्रशासन संस्थान की आम

सभा की दूसरी वार्षिक बैठक में पंडित नेहरू ने कहा :

> हमारा लक्ष्य समाजवाद अथवा समाजवादी प्रणाली का है। अब आप जो तंत्र बनाते हैं वह उस कार्य के लिए होता है जिसे आप कराना चाहते हैं। यदि हम समाजवाद चाहते हैं तो हमारा प्रशासनिक तंत्र धीरे-धीरे समाजवाद की दिशा में योगदान करेगा। यदि वह तंत्र इसके अतिरिक्त किसी और दिशा में काम करता है तो यह हमारे लक्ष्यों के लिए उपयुक्त नहीं है और इन दोनों में लगातार टकराव होता रहता है।

यहां वह किसी व्यक्ति विशेष का नहीं अपितु भर्ती, पदोन्नति, आदि की प्रणाली का उल्लेख कर रहे थे। लेकिन 6 अप्रैल, 1957 को संस्थान की आम सभा की तीसरी वार्षिक बैठक में उन्होंने इस बात पर बल दिया कि :

> यह बात अधिक महत्वपूर्ण हो जाती है कि प्रशासक सदैव लोगों की समस्याओं को निपटाने में लगा रहता है और लोग यह महसूस करते हैं कि यह व्यक्ति उनमें से ही एक है, कि वह उनकी इच्छाओं को ही परिलक्षित कर रहा है और सदैव करता रहेगा।

उन्होंने निर्वाचित प्रतिनिधियों और राजनीतिज्ञों तथा अधिकारियों की परस्पर व्याप्ति भूमिका की उस समय परिकल्पना की जब उन्होंने इस बात पर बल दिया कि कार्य के समाजवादी तरीकों को बढ़ावा देने के मामले में प्रशासक के कार्य में..... लोगों के साथ निकट संबंध और संपर्क और लोगों को अपने पक्ष में करना शामिल होगा। वस्तुतः इसमें एक राजनीतिज्ञ का दृष्टिकोण शामिल है लेकिन उसका यह दृष्टिकोण उस समय नहीं होना चाहिए जब वह मत प्राप्त करने का प्रयास करता है, अपितु राजनीतिज्ञ का आम दृष्टिकोण उस समय होना चाहिए जब वह लोगों को, उनकी सहायता से कुछ करने के लिए अपने पक्ष में करना चाहता है।

यह बिल्कुल स्पष्ट है कि विकास की प्रक्रिया में प्रशासक की भूमिका को बहुत ही व्यापक संदर्भ में समझा जा रहा है और प्रायः इसमें, भले ही सोचा न गया हो, राजनीतिज्ञ की भूमिका के साथ प्रतिस्पर्द्धा होती है। इस राजनीतिक भूमिका के कारण सिविल सेवा में तटस्थता की संकल्पना की फिर से जांच करनी पड़ी। 5 अप्रैल, 1958 को संस्थान की आम सभा की चौथी वार्षिक बैठक को संबोधित करते हुए अपने अध्यक्षीय भाषण में उन्होंने कहा कि सिविल सेवा में तटस्थता एक कल्पना है जिस पर मुझे प्रायः आश्चर्य होता है।" ब्रिटिश शासन के दौरान उन्होंने कहा कि :

> तटस्थता की संकल्पना का अर्थ है सरकार द्वारा निर्धारित ढांचे के अंतर्गत कार्य करना—इससे बाहर हट कर कार्य करना तटस्थता न होने के समान है। वस्तुतः इस प्रकार तटस्थता का अर्थ है अत्यधिक पक्षपात, तटस्थता बिल्कुल

> नहीं। यदि कोई व्यक्ति सुस्थापित परिपाटी के विरुद्ध अपनी आवाज उठाये तो उसे अराजकतावादी माना जाता है। यह तो समझ में आता है कि उसे एक निर्धारित ढांचे में कार्य करना है लेकिन इसे तटस्थता क्यों कहा जाए ?

उन्होंने कहा कि "जिस व्यक्ति को पूरी तरह तटस्थ रहना होता है, वह मुख्य लिपिक के अलावा और कोई नहीं होता है।" उन्होंने तर्क दिया कि "भारत में लोक सेवक की समूची संकल्पना अतीत में अपेक्षाकृत एक स्थिर संकल्पना रही है।" "अपना कार्य जहां तक संभव हो सके कुशलता से और समुचित ढंग से करना, निष्पक्षतापूर्वक करना ब्रिटिश काल में लोक सेवक की संकल्पना थी।" और "एक अलग दुनिया में बैठे और निष्पक्ष न्याय करने वाले लोक सेवक की अवधारणा को किसी लोकतांत्रिक समाज में कोई स्थान नहीं है और किसी गतिशील लोकतांत्रिक समाज में तो बिल्कुल नहीं.....।"

वह प्रशासनिक प्रणाली में बहुआयामी भूमिका के लिये अधिकारियों के, जिनमें से कुछ का समाज के अन्य संगठनों के अधिकारियों के साथ टकराव हुआ या प्रतिस्पर्द्धा हुई, दृष्टिकोण और व्यवहार में परिवर्तन लाने पर विचार कर रहे थे। उन्होंने ढांचे में कोई परिवर्तन नहीं किया, यद्यपि वह इससे खुश नहीं थे।

23 अक्तूबर, 1958 को एडमिनिस्ट्रेटिव स्टाफ कालेज आफ इण्डिया, हैदराबाद में अपने भाषण में उन्होंने प्रशासन में श्रेणी पद्धति पर अप्रसन्नता व्यक्त की। उन्होंने कहा :

> प्रथम श्रेणी अधिकारी, द्वितीय श्रेणी, तृतीय श्रेणी और चतुर्थ श्रेणी अधिकारी का यह वर्गीकरण मुझे पसन्द नहीं। किसी योग्य और सक्षम व्यक्ति की अपेक्षाकृत अधिक जिम्मेदार पद पर कार्य करने की बात तो समझ में आती है लेकिन उसे यह नहीं सोचना चाहिए कि वह किसी ऊंची श्रेणी का है।

वह इसके नियमों के कारण बनी कड़ी प्रशासनिक प्रणाली पर प्रायः अपनी अप्रसन्नता व्यक्त करते थे। उन्होंने इन नियमों को पुराना, जटिल, विलम्ब के लिए जिम्मेदार और इस प्रकार भ्रष्टाचार का स्रोत बताया। उन्होंने इस बात पर आश्चर्य किया कि "भारत सरकार इन नियमों के साथ इतने लम्बे समय से कैसे कायम रही।" इन नियमों के कारण इसे समाप्त हो जाना चाहिए था। फिर भी जिस समाज में वस्तुनिष्ठा और निष्पक्षता सामाजिक आचरण के मूल्य नहीं बन पाते उसमें औपचारिक संगठनों, अर्थात् नौकरशाही द्वारा नियमों द्वारा उन मूल्यों को लाने की कोशिश की जाती है, और इसलिए इन नियमों की प्रधानता बढ़ जाती है। पंडित नेहरू जैसे वैज्ञानिक दृष्टिकोण वाले व्यक्ति ने इन नियमों को अनुपयुक्त पाया था। जब तक समाज में वैज्ञानिक दृष्टिकोण पैदा नहीं होता तब तक दूसरों की वस्तुनिष्ठा और निष्पक्षता में विश्वास का आधार इस बात पर निर्भर करेगा कि नियमों की कठोरता को कम किया जाए।

सरकारी सेवा में वैज्ञानिक और तकनीकी कार्मिकों की भारी वृद्धि से वह उच्च स्तर पर साधारण कार्मिक और निचले स्तर पर विशेषज्ञ की संकल्पना के आधार पर प्रशासनिक प्रणाली में परिवर्तन करने के लिए बाध्य हुए। वैज्ञानिकों और तकनीकी विशेषज्ञों के प्रति उनके मन में काफी आदर था। उन्होंने कहा कि :

> वैज्ञानिक का दृष्टिकोण सामान्यतः परिवर्तनशील होता है, किसी तकनीकी व्यक्ति का दृष्टिकोण भी सामान्यतः परिवर्तनशील होता है, प्रशासक का दृष्टिकोण सामान्यतः यथावत ही रहता है।
>
> उनके लिए इस दायरे से बाहर निकलना बड़ा ही कठिन है और इसलिए अक्सर प्रशासक, प्रौद्योगिकी परिवर्तन और सामाजिक परिवर्तन, जैसे परिवर्तनों में पीछे रह जाता है।
>
> उन्होंने वैज्ञानिक तथा औद्योगिक अनुसंधान हेतु केन्द्रीय प्रयोगशाला हैदराबाद में 2 जनवरी, 1954 को दिये अपने भाषण में कहा कि :
>
> वैज्ञानिक और अभियंता, प्रशासकों से ज्यादा महत्वपूर्ण हैं। बेशक, प्रशासकों का अपना एक स्थान है परंतु वह वैज्ञानिक और अभियंता के बाद है।

जब उन्हें यह ध्यान दिलाया गया कि अभियंताओं को भारत सरकार के सचिवों के रूप में नियुक्त नहीं किया जा रहा है, तो उन्होंने स्वीकार किया कि "हमारी सेवाएं क्रम व्यवस्था या वर्ग व्यवस्था में ढली हुई हैं, जो कि ब्रिटिश राज की देन है।" क्योंकि "वर्गीकरण की पुरानी प्रणाली प्रशासन का आधार थी।" उन्होंने कहा कि "वर्तमान ढांचे और परिस्थितियों में यह प्रणाली पूर्णतया अनुपयुक्त है। फिर भी, वे किसी भी तरह का परिवर्तन लाने के पक्ष में नहीं थे क्योंकि वह महसूस करते थे कि प्रशासन की अच्छी जानकारी रखने वाले लोग भारत में अधिक संख्या में उपलब्ध हैं जबकि अच्छे अभियंता पर्याप्त संख्या में नहीं हैं। फिर भी, उनका यह विचार था कि :

> ऐसा हो सकता है कि हमें प्रथम श्रेणी के अभियंताओं की ज्यादा आवश्यकता है बनिस्बत सचिवों के। सचिव पर्याप्त संख्या में उपलब्ध हैं परन्तु अभियंता कम हैं। यह बात भी हो सकती है कि यद्यपि अभियंता अपने क्षेत्र में काम कर रहे हैं, फिर भी, आधिकारिक स्तर पर सचिव उससे वरिष्ठ हैं। यह सिर्फ एक क्रम है क्योंकि अभियंताओं की सारे विश्व में साख होती है जबकि सचिवों को दिल्ली के बाहर कोई नहीं जानता है। मैं यह कहना चाह रहा हूँ कि किसी व्यक्ति की योग्यता को सिर्फ उसके वेतन अथवा पद से मापने का तरीका गलत है।

उनका तर्क सिर्फ तकनीकी जनशक्ति की कमी तक ही सीमित नहीं था। उन्होंने पाया कि अत्यधिक विशेषज्ञता से दृष्टिकोण ज्यादा व्यापक नहीं होता। एडमिनिस्ट्रेटिव स्टाफ

कालेज में 23 अक्तूबर, 1958 को दिये गए अपने भाषण में उन्होंने कहा :

> "विशेषज्ञता के क्षेत्र में हमारे यहां अत्यधिक सक्षम व्यक्ति हैं। परन्तु उन सक्षम व्यक्तियों में अन्य क्षेत्रों के बारे में जानने की या तो बिलकुल या पर्याप्त प्रवृत्ति नहीं होती है। अत्यधिक विशेषज्ञता से और अधिक व्यापक दृष्टिकोण न होने से न सिर्फ व्यक्ति ही सीमित रह जाता है बल्कि उनका काम भी सीमित हो जाता है।"

20 जनवरी 1959 को भारत के राष्ट्रीय विज्ञान संस्थान, नई दिल्ली की वार्षिक बैठक को संबोधित करते हुए उन्होंने प्रो० पी. सी. महालनोबिस की टिप्पणी का उल्लेख किया कि "वैज्ञानिक सबसे ऊपर होने चाहिए न कि सबसे नीचे"। पंडित नेहरू ने कहा कि "वास्तव में वैज्ञानिकों ने अपनी प्रतिभा को सैन्य उपकरणों की ओर लगाया है और इससे मानवता को कोई लाभ नहीं मिला है।"

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि पंडित नेहरू प्रशासनिक व्यवस्था में कोई परिवर्तन नहीं चाहते थे। फिर भी उन्होंने अधिकारियों के दृष्टिकोण में परिवर्तन पर काफी बल दिया और उन पर इस बात के लिए जोर डाला कि वे सक्रिय जनसहयोग प्राप्त करने का दृष्टिकोण और तरीका अपनाएं। प्रशासकों को न सिर्फ जनता के प्रति बल्कि अपने विचारों में भी विनम्र होना चाहिए। उन्होंने इस बात पर बल दिया कि किसी भी व्यक्ति की नौकरी की वास्तविक सफलता इस बात पर निर्भर करती है कि वह कहां तक जन सहयोग प्राप्त कर सकता है।

केन्द्रीकरण और विकेन्द्रीकरण के मामले में उन्होंने दोनों की आवश्यकता महसूस की जबकि इनमें अंतर्विरोध है। केन्द्रीय सिंचाई और विद्युत बोर्ड, नई दिल्ली की तेईसवीं वार्षिक बैठक को 17 नवम्बर, 1952 को संबोधित करते हुए उन्होंने कहा कि :

> इस आधुनिक विश्व में केन्द्रीकरण आवश्यक है, यह अनिवार्य है, चाहे यह सरकार हो अथवा कोई और। यह आपको बेहतर परिणाम दे सकता है, यह बेहतर कार्यक्षमता दे सकता है तथा और बहुत कुछ बेहतर कर सकता है, यद्यपि केन्द्रीकरण की प्रक्रिया में एक ऐसी अवस्था आती है, जब कार्यक्षमता नहीं बढ़ती है, यह कम हो जाती है....निस्संदेह अधिक केन्द्रीकरण से व्यक्तिगत स्वतंत्रता कम हो जाती है यद्यपि कुछ बेहतर परिणाम हासिल किये जा सकते हैं।

इसलिए उन्होंने केन्द्रीकरण की आवश्यकता और स्वतंत्रता के बीच एक संतुलन प्राप्त करने की परिकल्पना की। यह संतुलन उन्होंने आदर्शात्मक तरीके से नहीं बल्कि व्यावहारिक और विश्लेषणात्मक तरीके से प्राप्त करने की परिकल्पना की। उन्होंने प्रजातंत्र के एक स्वस्थ आधार के लिए पंचायती राज में विकेन्द्रीकरण आवश्यक समझा। उन्होंने कहा कि यदि वह आधार कमजोर होता है तो हम लोकतांत्रिक दृष्टि से शत प्रतिशत स्थिर नहीं हैं...." उन्होंने 6 अप्रैल, 1957 को हुई संस्थान की आम सभा की तृतीय वार्षिक

बैठक में दिये गए अपने अध्यक्षीय भाषण में कहा कि:

> मैं समझता हूँ कि यह सच है कि पंचायतों का हमारा अनुभव बड़ा दुखदायी रहा है। परन्तु वास्तविक प्रजातंत्र सबसे उपरी स्तर पर नहीं बल्कि सबसे निचले स्तर पर ही हो सकता है।

उन्होंने प्रशासनिक व्यवस्था के लिए पंचायती राज के परिणाम की कल्पना की। उन्होंने कहा कि "यह प्रशासनिक तंत्र और जनता के बीच संबंधों में हर तरह का परिवर्तन लाएगा।" उन्होंने आगे कहा कि :

> अन्ततोगत्वा प्रजातंत्र को सही दिशा निर्देश देना लोक प्रशासन का एक प्रमुख कार्य होना चाहिए।

इस उद्देश्य के लिए उन्होंने इस बात पर बल दिया कि यह सब प्रशासन के कार्य करने के ढंग पर निर्भर करता है जिसमें प्रशासक के आचरण का काफी महत्व है। प्रशासक को यह छाप छोड़नी चाहिए कि :

> वह जनता की इच्छा के अनुसार कार्य कर रहा है, हमेशा जनता की शिकायतों के बारे में सोच रहा है, उनको दूर करने का प्रयास कर रहा है, उनके साथ परामर्श कर रहा है, आदि आदि।

उन्होंने इस बात पर भी बल दिया कि पंचायतों का..... शासकीयकरण नहीं किया जाना चाहिए। बल्कि सरकारी कर्मचारियों को प्रभावशाली परामर्शदाता-सहायक परामर्शदाता-के दान रूप में होना चाहिए-परन्तु नियंत्रक के रूप में नहीं और पंचायतों के सदस्यों को बड़ी संख्या में गलती नहीं करने देना चाहिए। हमें इस बात को स्वीकार कर लेना चाहिए कि असहाय और शक्तिहीनता की स्थिति से, जो शिखर पर बैठे और पंचायतों के कार्य को चलाने वाले व्यक्ति से मिलती है, गलती करना अच्छा है। वे उसके द्वारा उन्नति नहीं करेंगे।

अतएव, यह स्पष्ट है कि पंडित नेहरू ने इस बात पर अधिक बल दिया था कि प्रशासनिक प्रणाली के कर्मचारियों के व्यवहार और रवैये में परिवर्तन लाया जाए। उनका यह रवैया कार्य पद्धतियों और प्रक्रियाओं, नियमों के प्रति हो सकता है अथवा सेवाओं के वर्गीकरण अथवा कर्मचारी पद्धति के प्रति हो सकता है अथवा प्रजातंत्र के नागरिक के प्रति हो सकता है अथवा विशिष्ट वैज्ञानिक और तकनीकी संगठनों या सरकारी उपक्रमों के मामलों पर विचार करने के प्रति हो सकता है। वे चाहते थे कि ढांचे में कोई परिवर्तन किए बिना अधिकारियों के व्यवहार में पूर्ण परिवर्तन आ जाए और कदाचित् उन्होंने यह परिकल्पना भी की कि भारत के विकास के इतिहास में वह स्थिति अभी नहीं आई है जब देश में प्रशासनिक प्रणाली के प्रति मूल संकल्पना और उसके ढांचे को बदला जाए। तथापि, उन्होंने लोक प्रशासन के कार्यक्षेत्र को प्रणालीगत स्तर पर विस्तृत बनाया। उन्होंने नए प्रकार के संगठन बनाए तथा वैज्ञानिक कार्यों तथा विकास संबंधी कार्यों के लिए संस्थाएं बनाईं।

परिशिष्ट

इलाहाबाद
10 जुलाई, 1940

प्रिय राव,

हमारी श्रीनगर में हुई वार्ता के बारे में आपको याद ही होगा। आपने मुझे बताया था कि अब आपके पास कुछ थोड़ा सा समय है और आप हमारी योजना समिति के कार्य में मेरी सहायता कर सकते हैं। मैं आपकी इस पेशकश का अब लाभ उठाना चाहता हूं।

आपको राष्ट्रीय योजना समिति द्वारा जारी की गई दोनों छोटी-छोटी पुस्तकें — लाल पुस्तक 1 और पुस्तक 2 अवश्य मिल गई होंगी। इन पुस्तकों में राष्ट्रीय योजना समिति द्वारा अभी तक पारित किये गये संकल्प और अन्य संबंधित सामग्री दी गई है। एक तीसरी छोटी पुस्तक — लाल पुस्तक 3 भी शीघ्र ही जारी की जा रही है जिसमें हमारे द्वारा हाल ही में किये गये संकल्प हैं। अभी तक हमने एक तरह से लगभग 20 उप-समितियों की अन्तरिम या अंतिम रिपोर्टों पर विचार किया है और उन पर संकल्प पारित किये हैं। सात या आठ उप-समितियों पर विचार किया जाना अभी शेष है। इनमें से दो या तीन उप-समितियां महत्वपूर्ण नहीं हैं या किसी भी रूप में उनका व्यापक मुद्दों पर कोई विशेष प्रभाव नहीं पड़ेगा। हमारे द्वारा अभी तक पारित किये गये संकल्प उस तरीके का सुस्पष्ट संकेत देते हैं जिस तरह से हम कार्य कर रहें हैं और तस्वीर के उस पहलू को दिखाते हैं जो हमारे मस्तिष्क में हैं। यह तस्वीर केवल रूपरेखा भर है और इसके कुछ हिस्से अवश्य ही धुंधले हैं। नीति के कुछ महत्वपूर्ण मामलों के संबंध में, हम जानबूझकर कुछ हद तक अस्पष्ट या अप्रतिबद्ध हैं।

सामान्यतया हमें शेष बची हुई उप-समितियों की रिपोर्टों पर विचार पूरा कर लेना चाहिए और इसके पश्चात् हमें अपने प्रारूप प्रतिवेदन पर विचार करना चाहिए। यह प्रारूप सभी उप-समितियों की रिपोर्टों तथा हमारे द्वारा पारित किये गये ऐसे स्वतंत्र संकल्पों पर अनिवार्यतः आधारित होगा। हमारे लिए यह वांछनीय समझा गया था कि ऐसे कुछ सामान्य सिद्धांत निर्धारित किये जायें जिन पर हमारा प्रारूप आधारित हो।

अगस्त के अंतिम सप्ताह में हमारे अगले सत्र के आयोजित किये जाने का प्रस्ताव है। सामान्यतः इसके पश्चात हमें उप-समितियों की रिपोर्टों पर विचार करना होगा। निस्संदेह कुछ हद तक हम ऐसा ही करेंगे। परन्तु मैं इस बात के लिये उत्सुक हूँ कि प्रारूप लेखन में विलम्ब नहीं होना चाहिए और अगले सत्र में ये सामान्य सिद्धांत निर्धारित कर लिये जाने चाहिए। इसके बावजूद यदि कुछ उप-समितियों की रिपोर्टें रह भी जाती हैं तो भी प्रारूप लेखन प्रारम्भ किया जा सकता है क्योंकि इसमें काफी समय लग जाने की

सम्भावना है। परन्तु इसकी शुरुआत भी तब तक नहीं की जा सकती जब तक कि ये सामान्य सिद्धांत तय नहीं कर लिये जाते। जैसाकि मैं पहले बता चुका हूं इनमें से कुछ तो तय कर लिये गये हैं। परन्तु अन्य अभी बाकी हैं। इसलिये, मैं राष्ट्रीय योजना समिति से यह कहना चाहता हूं कि वह अपनी अगली बैठक में इन सामान्य सिद्धान्तों पर विचार करे और इसके बाद इस प्रारूप को तैयार करने के लिये एक छोटी सी उप-समिति नियुक्त करे जिसमें सम्भवतः तीन व्यक्ति हों — महासचिव, अध्यक्ष तथा एक और सदस्य।

मैं चाहता हूं कि आप इन तीन लाल पुस्तकों में दिये गये संकल्पों को देख लें और उन्हें ध्यान में रखते हुए, यह बताएं कि हम और क्या सामान्य निर्णय लें जिससे हम इस प्रारूप पर आगे कार्यवाही कर सकें अर्थात् मैं आपसे यह जानना चाहता हूँ कि हम अपनी अगली बैठक में नीति और सिद्धांत के विषय में ऐसे और कौन-कौन से प्रश्नों के बारे में निर्णय करें। इन प्रश्नों को लिखते समय कृपया यह भी बताएं कि आपकी राय में इन प्रश्नों पर क्या निर्णय लिया जा सकता है।

मैं आपसे यह भी चाहता हूं कि आप भारत में राष्ट्रीय आयोजना की जिस सामान्य तस्वीर की सिफारिश करें उस के विषय में एक संक्षिप्त टिप्पणी भी लिख दें।

इसमें कोई संदेह नहीं कि आप उन परिस्थितियों से भली भांति परिचित हैं जिनके तहत हम कार्य कर रहे हैं। हमारे निकाय का स्वरूप मिश्रित है जिसमें विभिन्न प्रकार की राय व्यक्त की जाती हैं और वे कभी-कभी एक दूसरे की विरोधी भी होती हैं। इन परिस्थितियों में कभी-कभी किसी निष्कर्ष पर पहुंचना आसान नहीं होता। कुल मिलाकर मेरा ख्याल है कि हमें उल्लेखनीय सफलता मिली है और हमने बहुत अच्छा काम किया है। जो कार्य हमने किये उनमें अनेकों विरोधाभास भी हैं, कई कार्य दो-दो बार कर दिये गये हैं परन्तु फिर भी सामान्य प्रारूप काफी हद तक स्पष्ट है और सही दिशा में है। ये निर्णय पूरी तरह से ऐसे निर्णय नहीं हैं जैसे मैं उन्हें देखना चाहता हूं न ही वे किसी अन्य के दृष्टिकोण का पूरी तरह से प्रतिनिधित्व करते हैं। मैं जिस बात के लिए उत्सुक हूं वह यह है कि हम उप-समितियों के माध्यम से संपूर्ण जानकारी एकत्र करें और विभिन्न उप-समितियों के विषय में बहुत सी जानकारी से परिपूर्ण रिपोर्टें एकत्रित करनी चाहिए। इसके पश्चात् हमें अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत करनी चाहिए जिसमें इन जानकारियों का समन्वय करके एक सुस्पष्ट तस्वीर तैयार करनी चाहिए। मुझे इस बात से कतई परेशानी नहीं होगी यदि इसमें विसम्मति टिप्पणी आदि भी हों। हम कम से कम कुछ तो ऐसा कर सकेंगे जिससे जनता को तथा संबंधित प्राधिकारियों को इन समस्याओं पर असरदार ढंग से विचार करने में सहायता मिलेगी। हम भावी योजनाओं की नींव रख सकेंगे और जब भी कभी इसके लिये समय आयेगा तो हमारा अगला कदम आसान और सीधा सादा हो जायेगा। इसलिए मुझे आशा है कि आप ऐसे सामान्य सिद्धांतों तथा विशिष्ट मामलों की सूची तैयार कर देंगे जो हमारे द्वारा अगले चरण में तय किये जायेंगे और सम्पूर्ण योजनाबद्ध अर्थव्यवस्था पर एक टिप्पणी भी लिख देंगे कि यह किस तरह की होनी चाहिए। मैं चाहता हूं कि यह अगले माह के मध्य तक मुझे मिल जाये।

मालूम नहीं कुटीर उद्योग उप-समिति किस तरह से काम कर रही है। मुझे आशा है कि इस प्रश्न पर न केवल सिद्धांतों के बल्कि व्यावहारिकता के आधार पर भी विचार किया जाये और इस विषय में भारत में कुटीर उद्योग के पक्ष में व्याप्त ठोस जन-भावनाओं को भी ध्यान में रखा जाये। मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि अधिकांश दलीलें दार्शनिक दृष्टिकोण के सिद्धांत के बेहतरीन मुद्दों पर केन्द्रित हैं। व्यावहारिक रूप में मतभेदों में कमी आई है। मुझे इस बात में कोई हर्ज नहीं दिखाई देता यदि मतभेदों के इन मुद्दों पर एक अलग टिप्पणी में विचार किया जाये फिर भी इस बात के लिये हर संभव प्रयास किया जाये कि अधिकांश मामलों के संबंध में आमसहमति हो।

भवदीय
ह./-
जवाहरलाल नेहरू

नेहरू फोटो एलबम

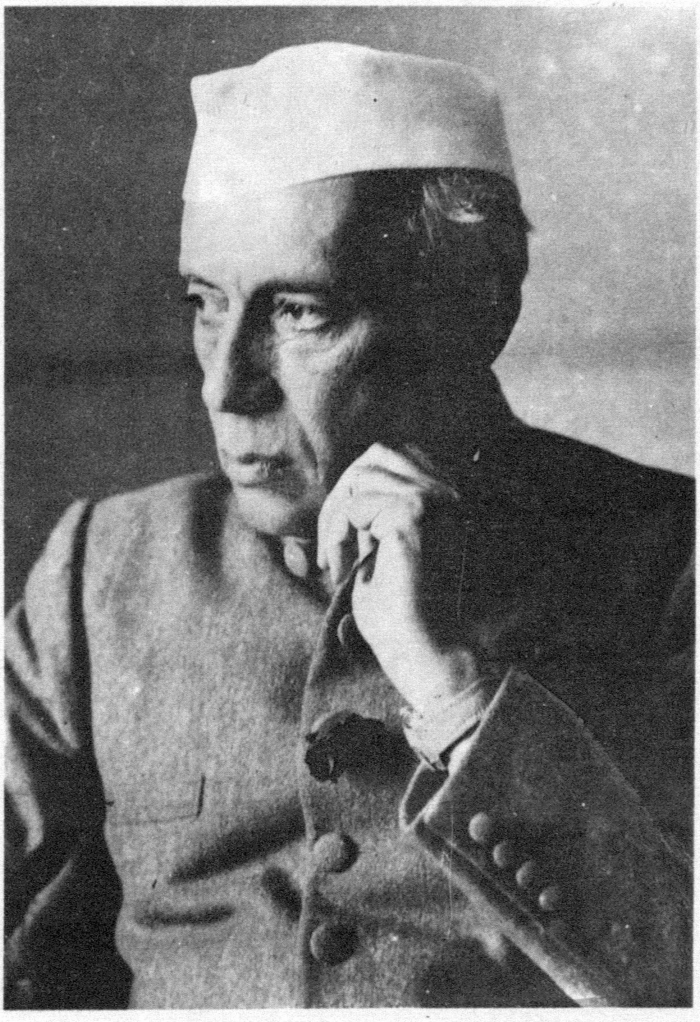

नेहरूजी का चित्र।

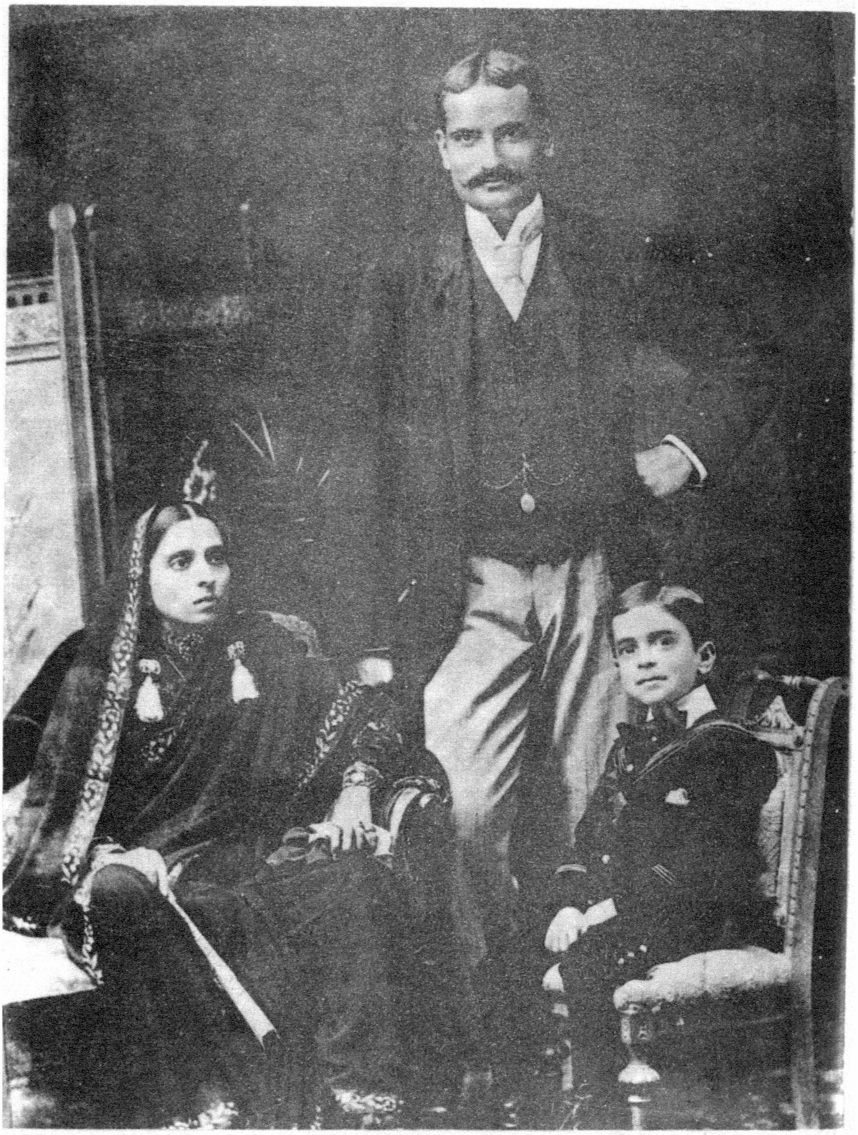

माता स्वरूप रानी और पिता मोतीलाल नेहरू के साथ युवक नेहरू।

1910 में आनर्स परीक्षा पास करने पर कैम्ब्रिज में स्नातकों का चोगा पहने हुए नेहरूजी।

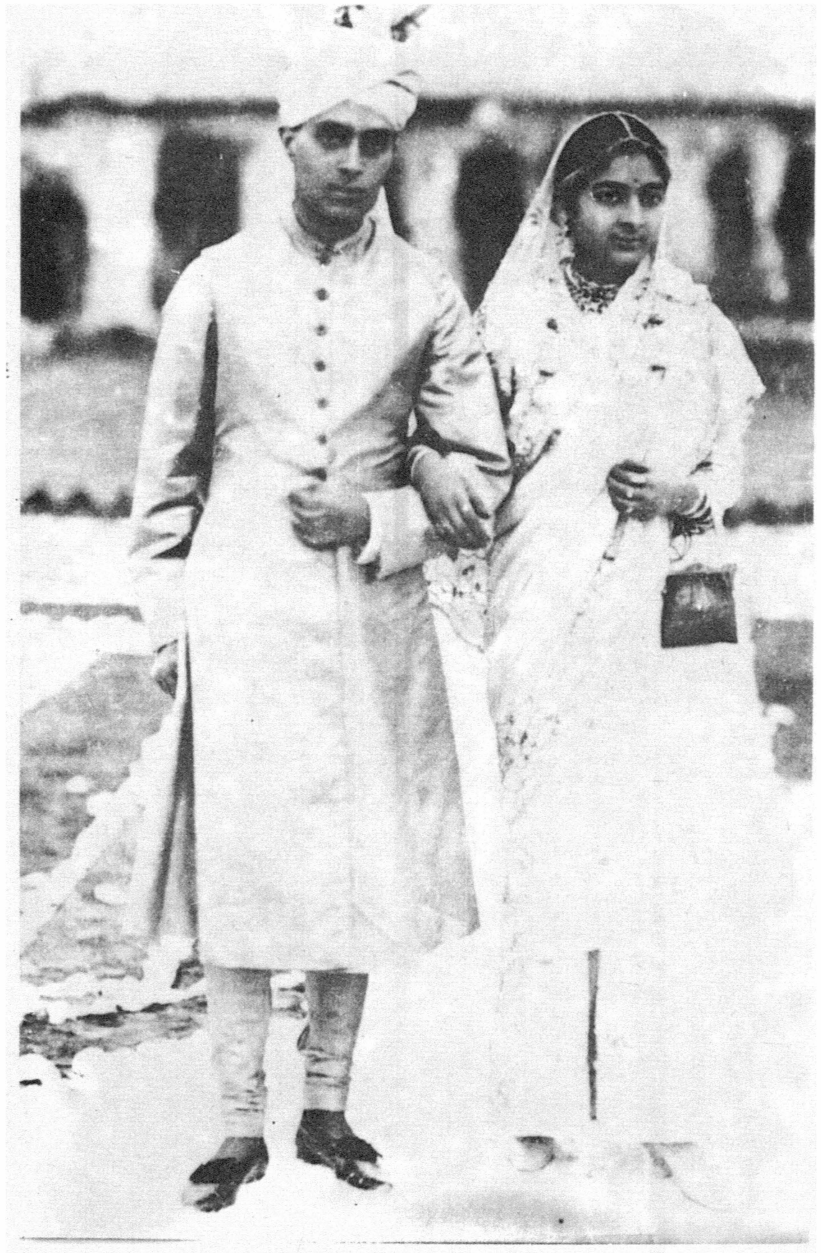

विवाह के पश्चात् कमला के साथ, 1916।

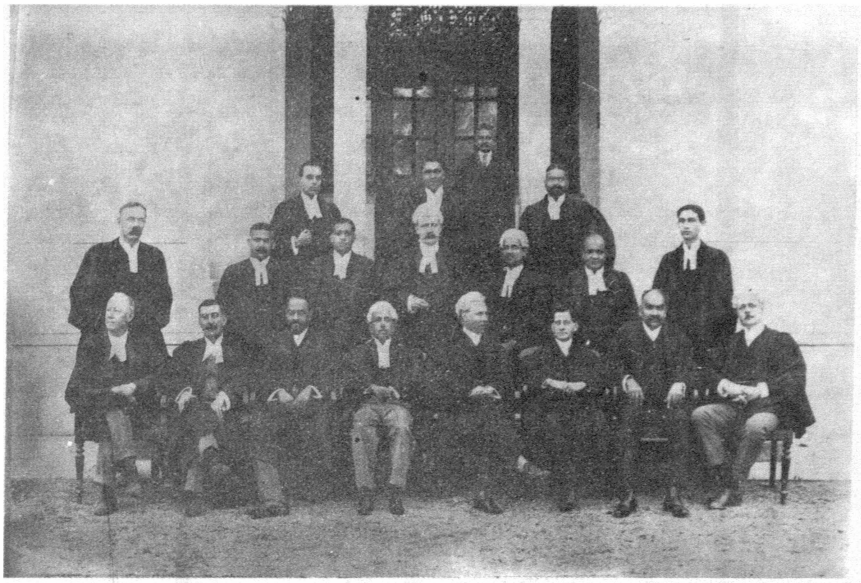

इलाहाबाद अधिवक्ता संघ के साथ, 1914।

आनन्द भवन में परिवार के साथ, 1925
बायें से दायें खड़े हुए : जवाहरलाल नेहरू, विजय लक्ष्मी पंडित, कृष्णा नेहरू, इन्दिरा नेहरू, रणजीत पंडित,
बायें से दायें बैठे हुए: स्वरूप रानी, मोतीलाल नेहरू और कमला नेहरू।

कमला नेहरू और इन्दिराजी के साथ अपनी श्रीलंका यात्रा के दौरान, 1931।

1942 में वर्धा में हुए अखिल भारतीय कांग्रेस समिति के अधिवेशन में। साथ हैं: आचार्य कृपलानी, अब्दुल गफ्फार खान, महात्मा गांधी, सरोजिनी नायडू और मौलाना अबुल कलाम आज़ाद।

भारत छोड़ो बैठक में महात्मा गांधी और आचार्य कृपलानी के साथ, 1942।

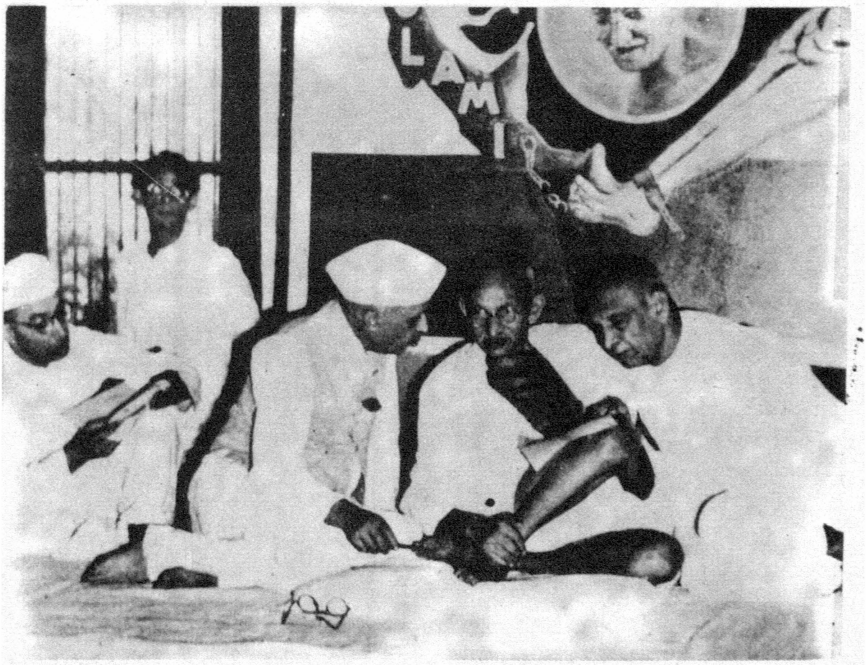

अखिल भारतीय कांग्रेस समिति, बम्बई, 1946।

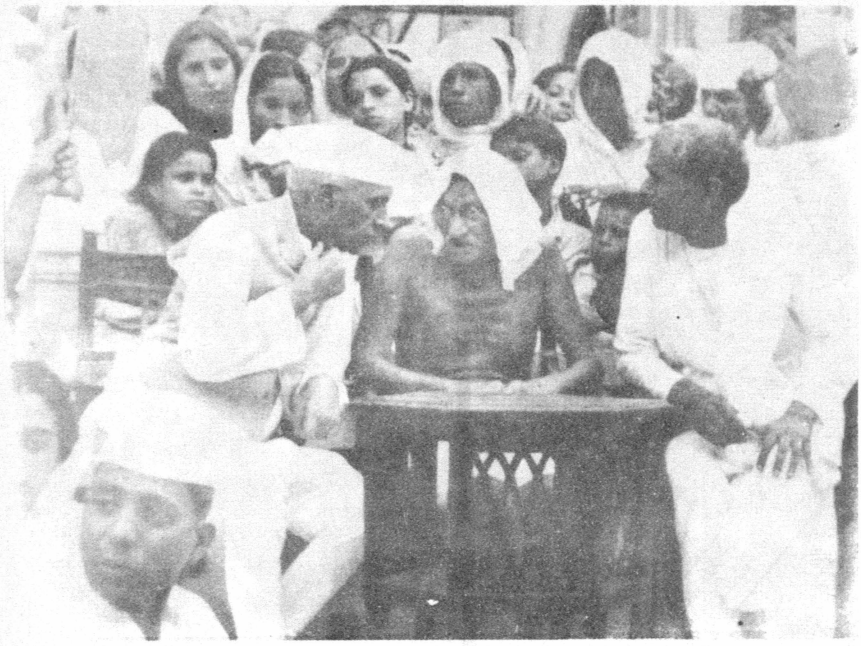

1947 में दंगा पीड़ितों को गांधीजी के साथ सान्त्वना देते हुए।

2 जून, 1947 को वायसराय लार्ड माउंटबेटन के साथ कांग्रेस और मुस्लिम लीग के नेताओं की बैठक में, जिसमें सत्ता के हस्तान्तरण और विभाजन पर सहमति हुई थी। साथ में हैं: बायें से दायें; बलदेव सिंह, आचार्य कृपलानी, जिन्ना, लियाकत अली खान और अब्दुर्रब निश्तर।

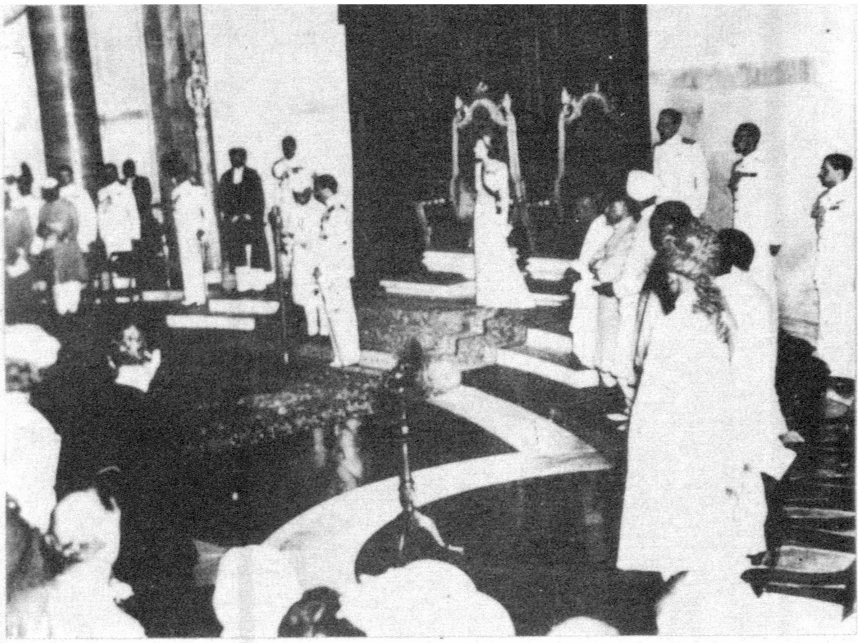

15 अगस्त, 1947 को स्वतंत्र भारत के प्रथम प्रधानमंत्री के रूप में लार्ड माऊंटबेटन द्वारा शपथ दिलाये जाते हुए।

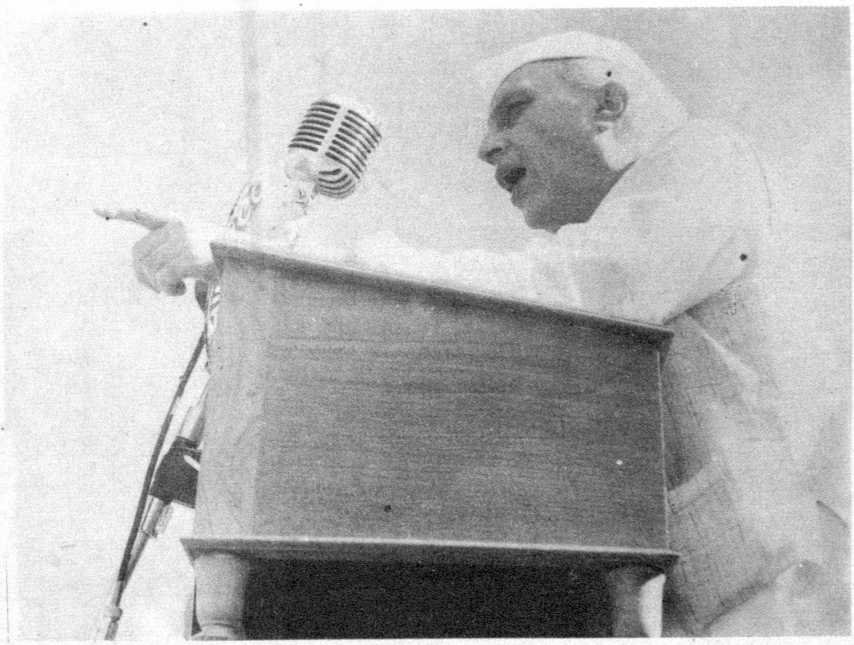

15 अगस्त, 1947 को लाल किले से जनता को सम्बोधित करते हुए।

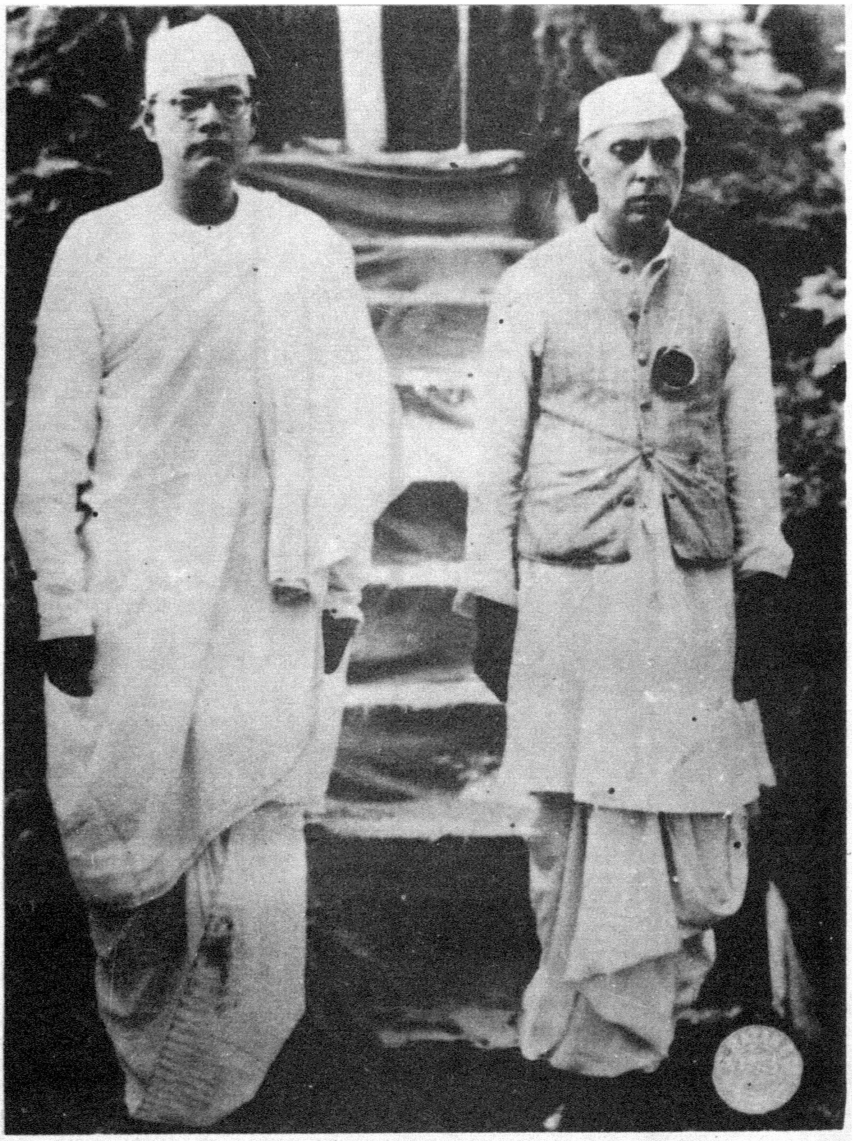

सुभाष चन्द्र बोस के साथ।

मोहम्मद अली जिन्ना के साथ।

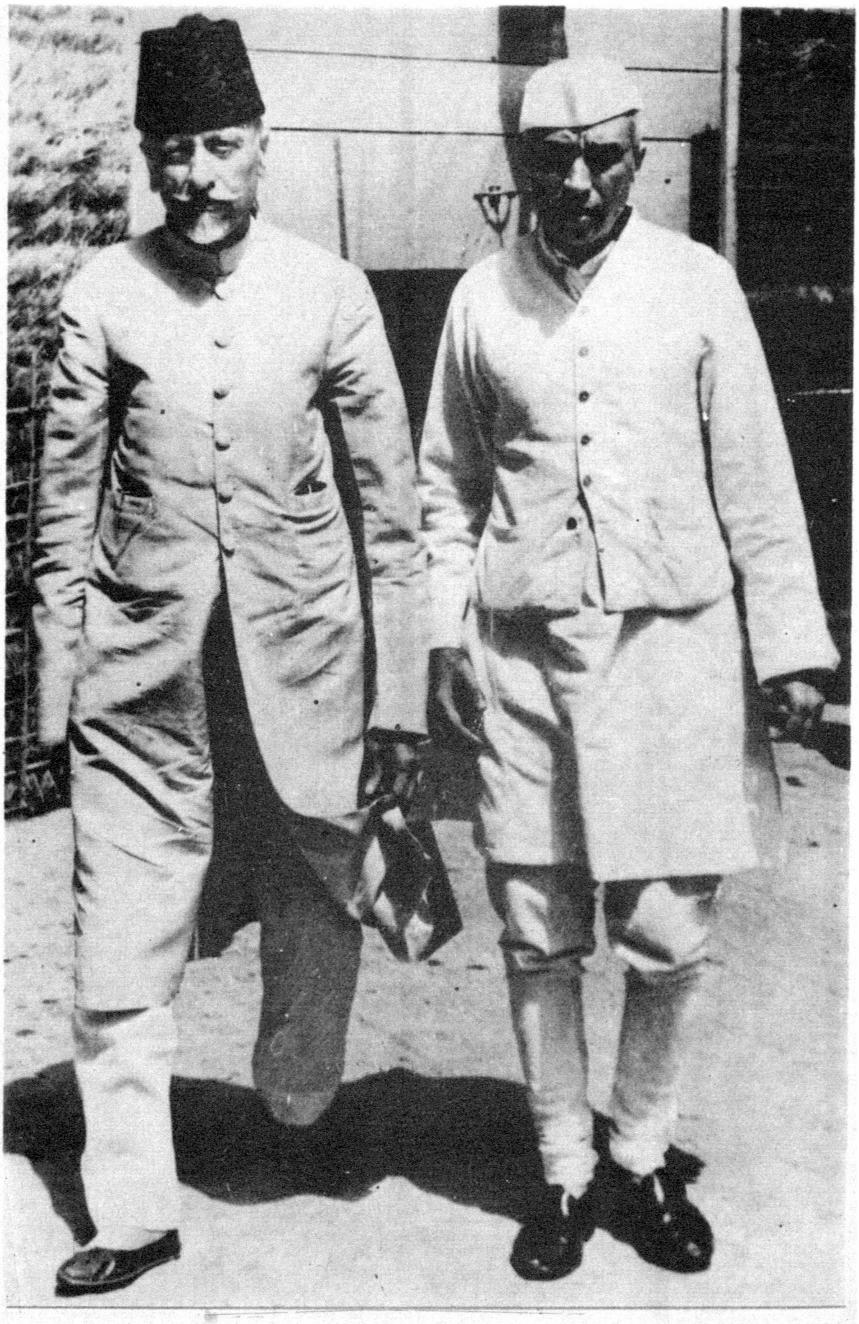

मौलना अबुल कलाम आजाद के साथ।

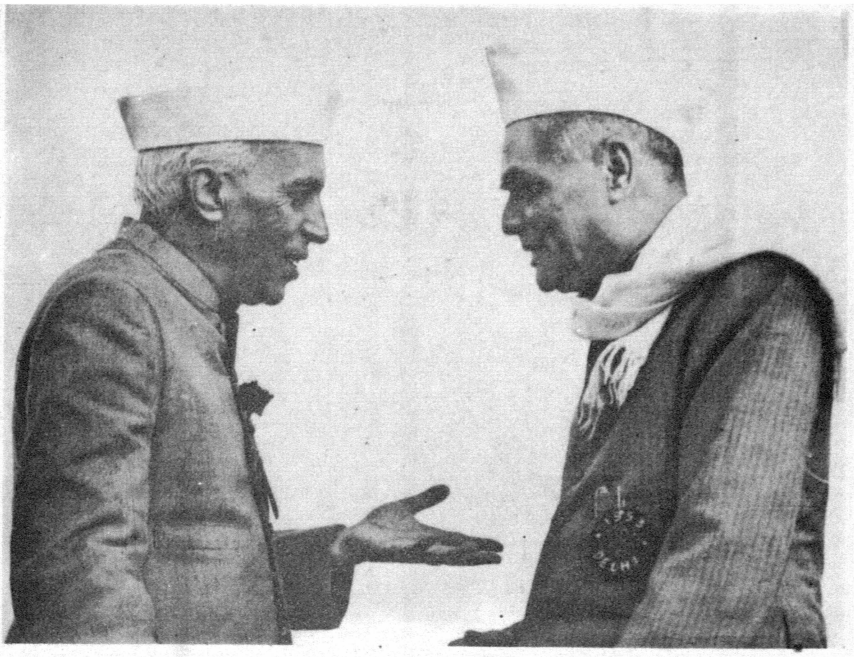

श्री जी.वी. मावलंकर के साथ।

वी.के. कृष्ण मेनन और जी.बी. पंत के साथ।

गोविन्द वल्लभ पंत के साथ।

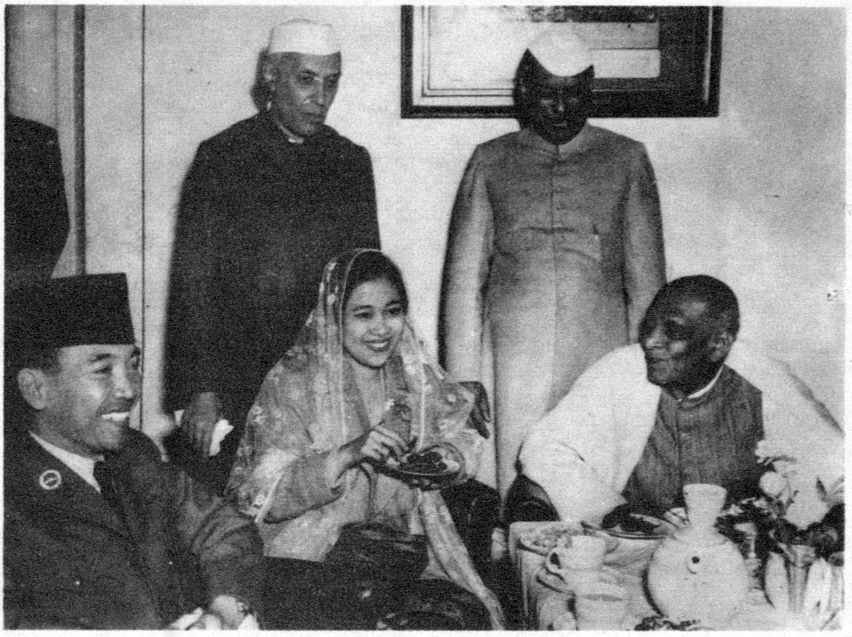

इन्डोनेशिया के राष्ट्रपति सुकर्ण तथा उनकी पत्नी के साथ। साथ में सत्य नारायण सिन्हा और सरदार वल्लभभाई पटेल भी हैं, 25.1.1950।

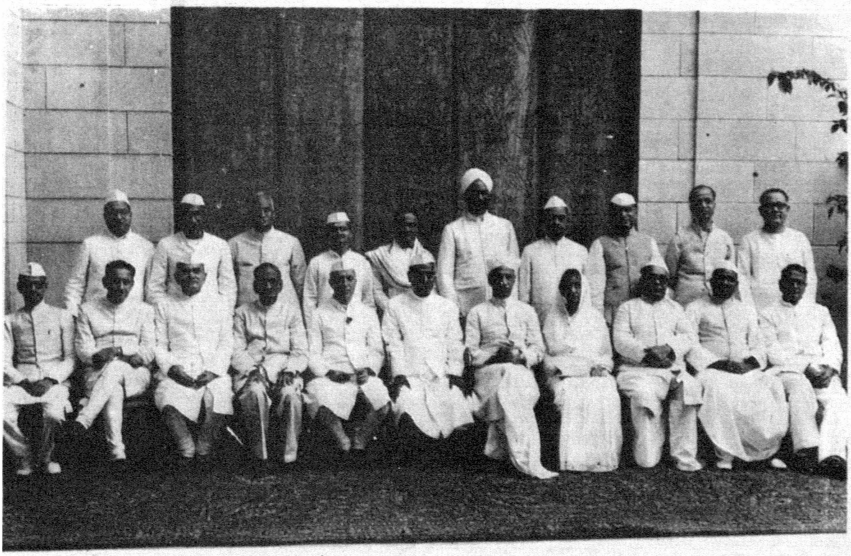

नेहरू और उनका मंत्रिमंडल, 1952।

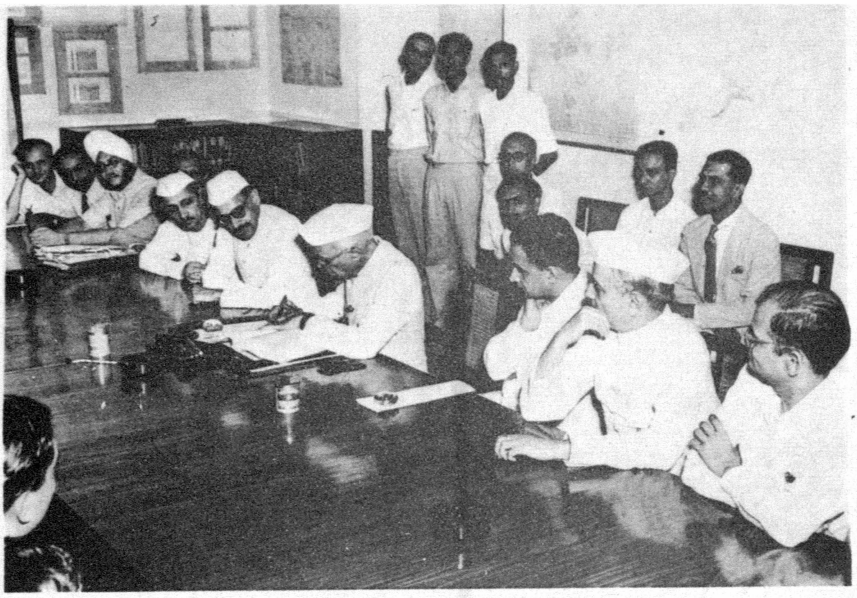

योजना आयोग की रिपोर्ट पर हस्ताक्षर करते हुए।

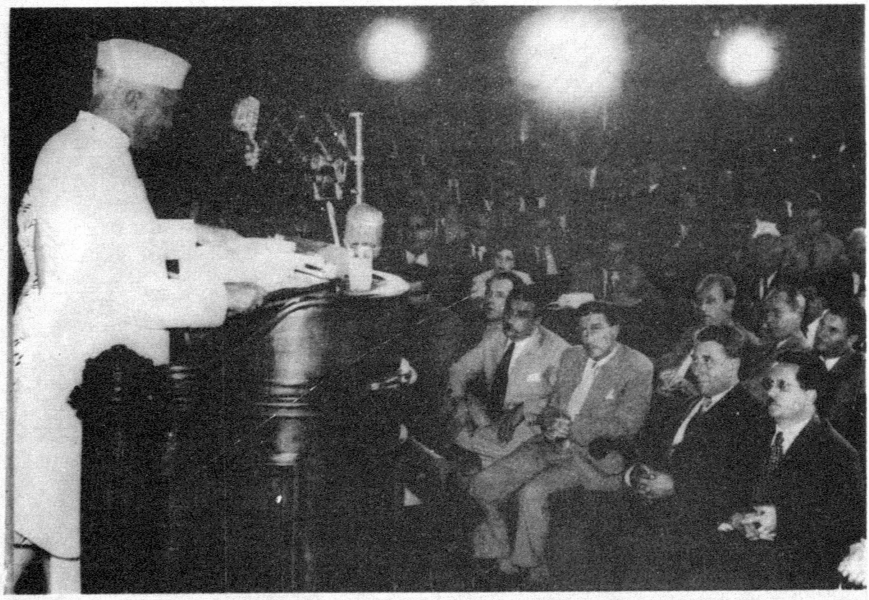

युगोस्लाविया की संसद को सम्बोधित करते हुए। इसे सम्बोधित करने वाली प्रथम विदेशी हस्ती। 22 जुलाई, 1955।

28.11.56 को संसद भवन में दलाई लामा के साथ।

10.4.62 को अन्तिम बार प्रधानमंत्री पद की शपथ लेते हुए।

भारतीय युद्धपोतों का नौसैनिक अभ्यास देखते हुए पुत्री इंदिरा और नातियों संजय तथा राजीव के साथ।

5.9.62 को राष्ट्रपति राधाकृष्णन से उनके जन्मदिन पर भेंट करते हुए श्रीमती इंदिरा गांधी के साथ।

26.1.63 को विजय चौक पर गणतंत्र दिवस पर नेताओं के मार्च पास्ट का नेतृत्व करते हुए नेहरू जी।

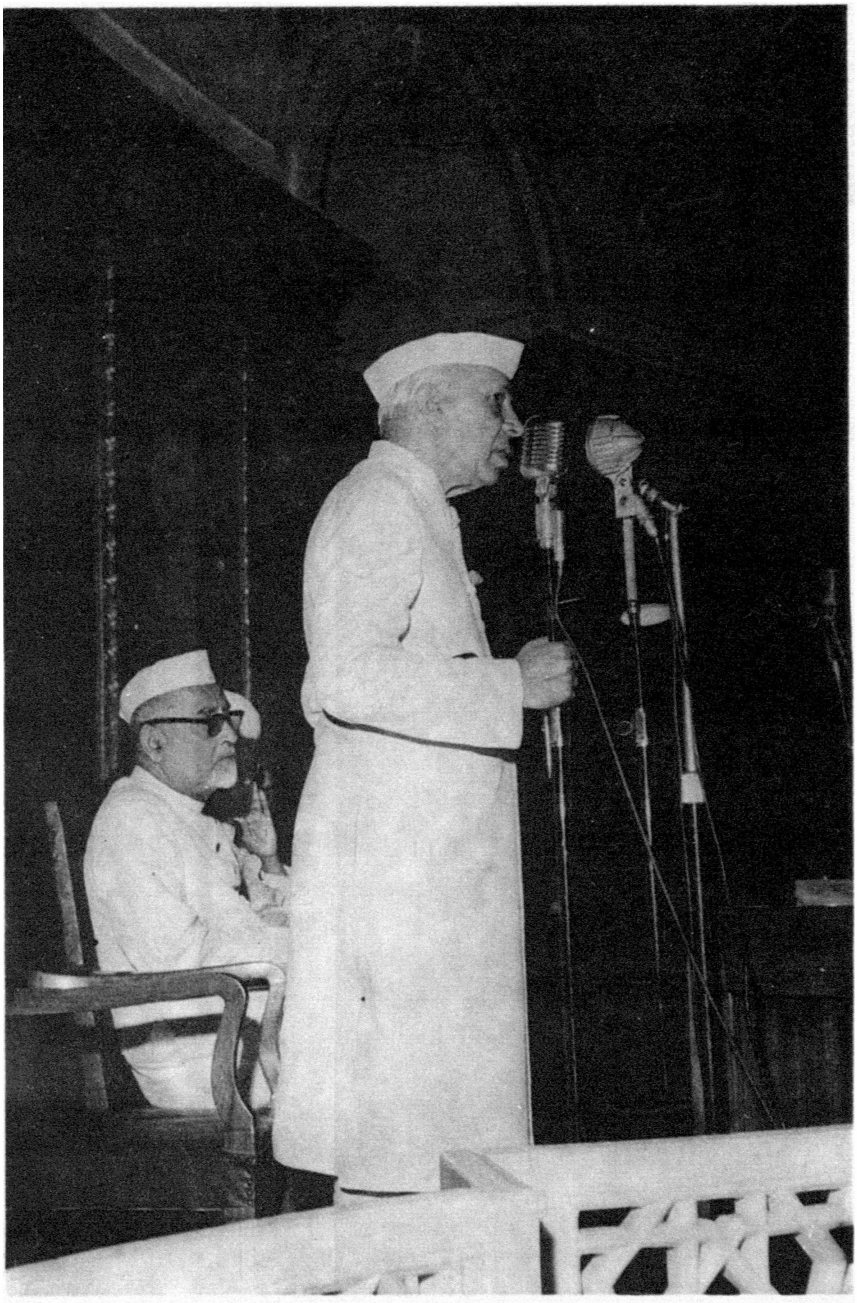

5 मई, 1964 को डा. राजेन्द्र प्रसाद के चित्र के अनावरण के अवसर पर बोलते हुए।

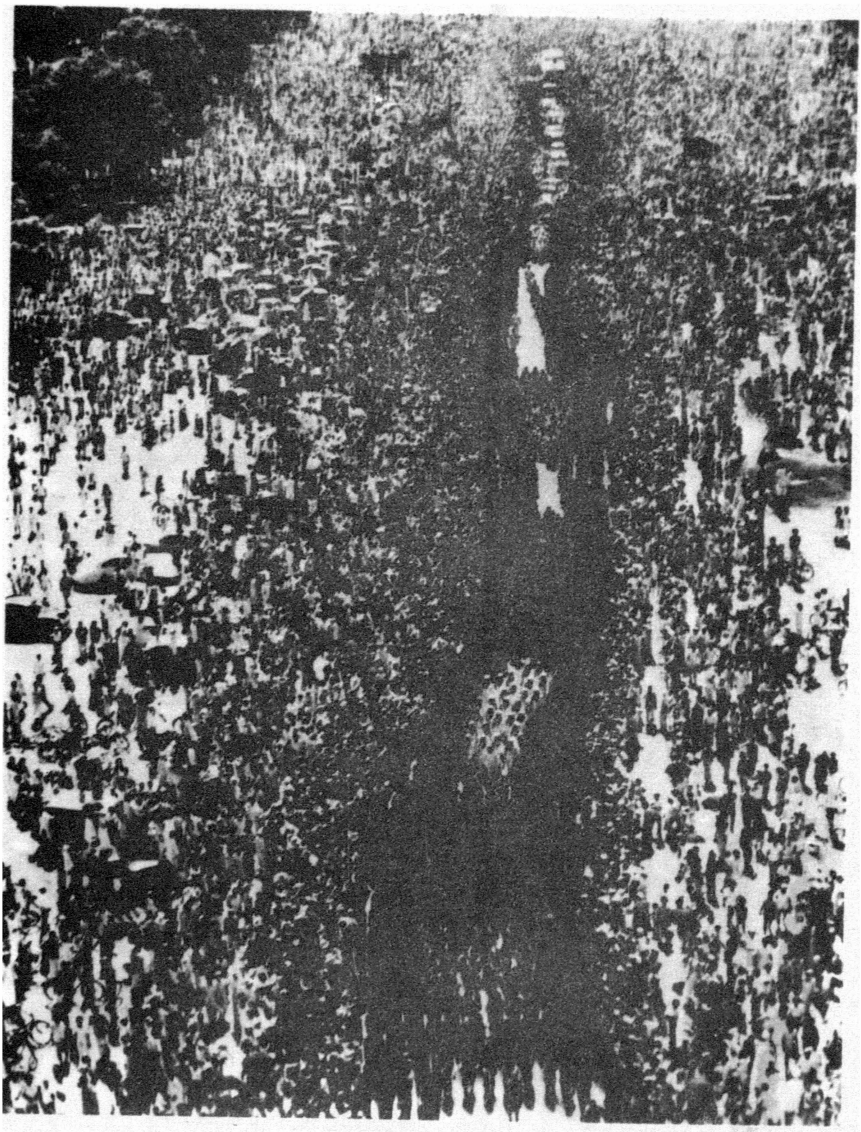

राष्ट्र द्वारा विदाई : अन्तिम यात्रा।

संसद भवन के केन्द्रीय कक्ष में 5 मई, 1966 को जवाहरलाल नेहरू के चित्र का अनावरण करते हुए राष्ट्रपति डा. राधाकृष्णन।

अनुक्रमणिका

अनुक्रमणिका

अ

अंतरिम सरकार 165
अंतर्राष्ट्रीय कांग्रेस 6
अंबेडकर, डा. 209
अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी 97, 153
अजनी सेन्ट्रल जेल, नागपुर 146
अलास साउद 117
अहिंसा 4, 50, 56, 173
अग्नि 1

आ

आइजन,हावर, श्री 200
आचार्य जे.बी. कृपलानी 16, 56, 187
आतंकवाद 52
आदिवासी 8, 9
आधुनिक भारत 160, 162
आनंद भवन 109, 110, 141, 142, 143, 152, 155
आन माई ओन 200
आवडी अधिवेशन 7, 20, 43

इ

इंडियन नेशनल कांग्रेस 235
इंडेपेंडेंट लेबर पार्टी 211
इन्दिरा गांधी 58, 82, 83, 197
इरमा मायर्स आर्थुर 220, 222
इलाहाबाद 109, 110, 113
ईस्ट इंडिया कम्पनी 4

उ

उत्पादन तथा सेवा 43
उपनिवेशवाद 4, 5, 12, 15, 20, 46, 51,52, 54, 63 161, 206, 274
उलीयानावस्की, प्रोफेसर 92, 93

ए

एन्क्रोमा 50
एंग्लो-इंडियन 87
एंथनी ईडन 185
ए.के. गोपालन 16
एटली 13, 201
ए बन्च आफ ओल्ड लैटर्स 215
ए स्टडी आफ नेहरू 195
एलन विल्किन्सन 213
एस. राधाकृष्णन, डा. 82

औ

औद्योगिक क्रांति 5, 7, 231
औद्योगिकीकरण 69, 167, 168
औद्योगिक विकास 52

क

कराची अधिवेशन 20, 163
कराची कांग्रेस अधिवेशन 267
कलकत्ता अधिवेशन 13, 146
कल्याणकारी राज्य 8, 31, 43, 44, 135
कांग्रेस का इतिहास 212
काकीनाडा 146
कामराज योजना 57, 58
कृष्ण मेनन 82
कृष्णा हठी सिंह 197
केन्द्रीय विधान मंडल 85
केबिनेट मिशन 193

ख

खादी आंदोलन 143

खुदाई खिदमतगार 107

ग

गणतंत्र दिवस 9
गांधीजी, बापू 114, 115, 143
गांधीवादी दर्शन 91, 93, 104, 179
गुटनिरपेक्ष 66, 70, 77, 162, 206, 234, 235, 239
गुटनिरपेक्ष आंदोलन 50, 52, 53, 58
गुटनिरपेक्ष नीति 206
गुप्त भूपेश 16
गुरूद्वारा प्रबंधक कमेटी 80
गुरूपद स्वामी एम. एस. 16
गोपाल स्वामी अयंगर; सर 82
गोलमेज सम्मेलन 13, 149, 211

च

चक्रवर्ती राजगोपालाचारी 185, 204
चर्चिल 185
चांग-काई शेक 214
चाऊ एन लाई 186
चार आना वाद-विवाद 45
चार्ल्स एन्ड्रयूज़ 212
चार्ल्स मलिक, डा. 198
चीन 58, 64, 239, 240
चीनी आक्रमण 17, 71, 124, 83
चुनाव प्रक्रिया 120
चौदह सूत्री समाजवादी कार्यक्रम 79

ज

जमींदारी उन्मूलन 207
जय प्रकाश नारायण 16, 79, 186
जयपुर अधिवेशन 14
जलियांवाला बाग 143
जवाहर स्विच 110
जाकिर हुसैन, डा. 10, 82, 83, 203, 115
जार्ज पैटरसन 56
जातिवाद 74, 75, 161, 227, 251
जान मथाई; सर 82
जी.वी. मावलंकर 185, 210

ट

टण्डन और नेहरू 155
टाइबर मेंडे 247, 257, 258
ट्रिब्यून 39
टिडियस स्टोरी 200
टीटो 50, 196
टुवर्ड्स फ्रीडम 220
ट्राइस्ट विद डेसटिनी 184

ड

डान 117
डिजरायली 55
डिसकवरी ऑफ इंडिया 38, 42, 225, 183, 196, 249

त

तटस्थता 53
तलाक 9, 10
तानाशाह 21, 207, 228, 258, 273
तारा चन्द, डा. 82
तारासिंह, मास्टर 79, 80, 81
तिब्बत 58, 65
तेल तथा खनिज भंडार 8

द

दक्षिण अफ्रीका 15
दक्षिण अफ्रीका में जातिवाद 18
दलित वर्ग 9, 29
दादा भाई नौरोजी 4
दिल्ली वार्ता 113
देशबन्धु सी.आर. दास 204, 205
द्विदलीय व्यवस्था 205

ध

धर्म निरपेक्ष 28, 38, 61, 62, 69, 70, 87, 161, 194, 209, 224, 227, 228, 231, 273
धर्म स्वातन्त्र्य 39
ध्यानाकर्षण प्रस्ताव 132

न

नमक सत्याग्रह 147
नयनतारा सहगल 197
नव-साम्राज्यवाद 186
नागरिक प्रशासन 157
नाज़ीवाद 6
नासिक कांग्रेस 157
नासिर 50, 186, 196
निरक्षरता 55
निरस्त्रीकरण 51, 54
नेहरू : आइडियोलोजी एंड प्रेक्टिस 174
नेहरू ब्रिगेड 152
नेहरू युग 11
नौकरशाही 273, 274, 275
न्यू लीडर 212
न्यूयार्क टाइम्स 39
न्यूयार्क पोस्ट 39

प

पंचवर्षीय योजनाएं 5, 6
पंचशील 41, 51, 65, 66, 71 162
पंचायती राज 42, 208, 209, 228, 279, 280
पद्मजा नायडू 197
परमाणु बम 262
पर्यावरण संरक्षण 18
पिता के पत्र पुत्री के नाम 71
पूंजीवाद 48, 176, 181, 229, 236, 237, 245, 247
प्रौद्योगिकी और विज्ञान 8, 28, 30, 208
प्रजा सोशलिस्ट पार्टी 58, 79, 81
प्रजातंत्र और समाजवाद 58, 161, 267, 280
प्रशासनिक प्रणाली 272, 274, 275, 277, 278, 286
प्रावदा 5

फ

फासिस्ट वाद 13, 181
फील्ड माशर्ल स्मट 85
फेनर ब्रोकवे 211, 212
फेबियन समाजवाद 2, 3, 4, 5, 93
फिरोज गांधी 197
फ्रांस की क्रांति 231
फ्रान्सिस गुन्थर 217

ब

बहुराष्ट्रीय कम्पनियाँ 181
बांडुंग सम्मेलन 58, 66, 67, 186, 195
बादशाह खान 111, 112, 114
बारदोली 112, 147
बुर्जुआ वर्ग 93, 175, 176
बेरूबारी मामला 123
बेलग्रेड सम्मेलन 52
बैंकूवर शिखर सम्मेलन 18
बोल्शेविक क्रान्ति 3, 60, 231

भ

भारत एक खोज 26, 71, 259
भारत चीन मैत्री 65
भारत छोड़ो आन्दोलन 116, 153, 175, 176
भारत सोवियत मैत्री 67, 68
भारतीय कांग्रेस कमेटी 200
भारतीय क्रान्तिकारी समाजवादी दल 153
भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस 19, 20, 31, 171, 174, 191, 233, 245, 246
भारतीय वाणिज्य मंडल 90
भारतीय संविधान सभा 238
भुवनेश्वर अधिवेशन 58, 171

म

मजदूर संघ आंदोलन 153
महात्मा गांधी 56, 205
महालानोबिस प्रो. पी. सी. 7, 262, 279
महालानोबिस समिति 45
महिलाओं के अधिकार 9
माइकेल ब्रेकर 39, 195
माऊ-माऊ आन्दोलन 15
मार्क्सवाद 2, 93, 95, 103
मिश्रित अर्थव्यवस्था 48
मुस्लिम लीग 153, 154
मैकमिलन श्री हैरल्ड 17, 197
मैन्चेस्टर गार्जियन टाइम्स 213
मोरारजी देसाई 85, 87
मौलाना अबुल कलाम आजाद 184, 205

र

रंगभेद 18
रंगा, प्रो. एन. जी. 10
रक्षा व्यवस्था 84
रवीन्द्र नाथ टैगोर 57
राजनीतिक एकता 27
राजनीतिक दर्शन 106
रानी झांसी ब्रिगेड 152
राम मनोहर लोहिया 206, 45
राष्ट्र मण्डल 12, 14, 15, 16, 17, 18
राष्ट्रपति कैनेडी 17
राष्ट्रपति रूजवेल्ट 214, 215
राष्ट्रपिता महात्मा गांधी 84, 88, 97
राष्ट्रीय आन्दोलन 129, 244
राष्ट्रीय आयोजना समिति 261, 262
राष्ट्रीय एकता 72, 75, 76, 224, 225
राष्ट्रीय कांग्रेस 6, 13, 14, 75, 92, 93, 97
राष्ट्र गान 85
राष्ट्रीय गीत 85
राष्ट्रीय भाषा 75
राष्ट्रीय विकास परिषद 8, 20, 98
राष्ट्रीय योजना समिति 164, 229
राष्ट्रीय स्वतंत्रता आन्दोलन 36
राष्ट्रीय स्वयं सेवक दल 153
रोमा रोलां 212

ल

लखनऊ कांग्रेस 75, 92
लाइफ बिद अंकल 197
लार्ड बॉयड 198
लार्ड मांटगोमरी 202
लाल बहादुर शास्त्री 157
लाला लाजपतराय 205
लाहौर कांग्रेस 13, 19
लिटमैन ए.डी., डा. 106
लीडर 3
लेडी आस्टर 202
लेनिनवाद 93
लोकतंत्र 32, 34, 38, 48, 257, 258, 273, 274
लोक प्रशासन 269, 270, 280
लोकतांत्रिक प्रणाली 136
लोकतांत्रिक संसदीय संस्थाएं 136
लोकतांत्रिक समष्टिवाद 103

व

वयस्क मताधिकार 120, 205, 228
वामपंथी आंदोलन 174
विकासात्मक आयोजना 163
विकेन्द्रीकरण 251, 279, 274
विट्ठल भाई पटेल, श्री 210
विजयलक्ष्मी पंडित, श्रीमती 85, 197
विज्ञान 8, 250, 251, 252, 253, 254, 279
विज्ञान और प्रौद्योगिकी 161, 187, 229, 259, 260, 261 262, 263, 266, 267, 268, 269, 278
विदेश नीति 12, 13, 15, 68, 232, 233, 236, 237, 238, 239, 240, 257
विदेशी राज 12

विलियम डगलस 201
विवाह विच्छेद 9
विशेष विवाह विधेयक 9
विश्व इतिहास की झलक 71
विश्व शांति 17
विंस्टन चर्चिल; सर 201
वैज्ञानिक अनुसंधान 8, 271
वैज्ञानिक नीति संकल्प 76, 265
वैज्ञानिक विचारधारा 95
वैज्ञानिक समाजवाद 92, 93, 94

श

शरणार्थी समस्या 14, 15, 37, 208
शांति दूत 71, 224
शिकागो डेली 39
शेख अब्दुल्ला 81, 111, 112, 116, 200
श्यामा प्रसाद मुकर्जी 16

स

संविधान सभा 13, 27, 37, 85
संसदीय प्रक्रिया 127, 129, 133, 210
संसदीय प्रणाली 33, 137, 139, 183, 184
संसदीय लोकतंत्र 124, 131, 138, 140, 204, 205, 206
संसदीय संस्थाएं 120, 139
समाजवाद 2, 6, 7, 8, 9, 10, 11, 12, 20, 22, 23, 24, 25, 28, 29, 33, 41, 43, 44, 89, 90, 91, 92, ,93, 94, 96, 97, 98, 103, 104, 105, 106, 106, 151, 161, 164, 169, 171, 175, 176, 179, 180., 184, 206, 211, 215, 224, 228, 229, 230, 231, 243, 246, 247, 248, 250, 256, 258, 259, 261, 267, 274, 275, 276
समाजवादी सिद्धांत 164
सरदार वल्लभ भाई पटेल 56, 57, 109, 115, 202, 204
सर्वेंटस आफ दी पीपुल सोसाइटी 156
सविनय अवज्ञा आन्दोलन 147
सामाजिक आर्थिक दार्शनिक विचारधारा 89
सामाजिक न्याय 31, 35, 36
सामाजिक परिवर्तन 241, 249, 250, 251, 252, 254, 255, 256
साम्राज्यवाद 6, 12, 174, 177, 180, 181, 236, 238, 245, 255
सामुदायिक विकास कार्यक्रम 42, 184, 228
साम्प्रदायिकता 28, 38, 62, 161, 181, 227
साम्प्रदायिक समस्या 74, 79, 80, 193
साम्यवाद 48, 92, 176
सिविल लिबर्टिज यूनियन 228, 181
सुभाष चन्द्र बोस 13, 56, 152, 183
सेराजुद्दीन कांड 124
स्टैफोर्ड क्रिप्स, सर 113
स्वतंत्रता संग्राम 13, 59, 60, 114, 244
स्थगन प्रस्ताव 131, 132
स्वराज आन्दोलन 2, 3, 198
स्वेज संकट 116

ह

हंडिया 147, 148
हिंसा 242, 243, 254, 255, 256
हार्पर्स मैगजीन 34
हिटलर 6
हिमाला और नया शिवाला 112
हिन्दू कोड बिल 30
हिरोशिमा 262
होमरूल लीग 3
होमी जे. भाभा डा. 264
हैराल्ड लास्की 2, 3
होरेस एलेक्जेंडर 211

लोक सभा सचिवालय की कुछ नवीनतम/प्रकाशनार्थ पुस्तकें

संपादक

डा. सुभाष काश्यप

राष्ट्रमंडल की संसदें, 1989 : संसद राष्ट्रमंडल देशों की संसदों और उनके संगठन और कार्यकरण के विषय में जानकारी दी गई है और विभिन्न संसदों की मुख्य बातों के बारे में विस्तृत विश्लेषण किया गया है। (250 रुपये)

दादा साहेब मावलंकर : लोक सभा के जनक : भारत के संसदीय प्रजातंत्र के एक प्रमुख निर्माता और लोकसभा के प्रथम अध्यक्ष दादा साहेब मावलंकर के अनुकरणीय जीवन के विषय में ख्यातिप्राप्त, महानुभावों के लेख। (200 रुपये)।

संसदीय प्रणाली तथा कवहार : कौल, शकधर और काश्यप : भारत की संसदीय प्रणाली तथा व्यवहार के विषय में सर्वाधिक प्रमाणिक एवं प्राधिकृत कृति (चतुर्थ संस्करण-प्रकाशनाधीन)।

भारत की विदेश नीति : एक प्रलेखीय अध्ययन 1947-48 की अवधि तक के मूल पाठों और प्रलेखों सहित तीन खंडों में प्रकाशित। (प्रकाशनाधीन)

राष्ट्रीय नीति अध्ययन : विभिन्न क्षेत्रों में राष्ट्रीय नीतियों और कार्यक्रमों का विश्लेषण। उद्योग, कृषि, स्वास्थ्य, शिक्षा, विज्ञान और प्रौद्योगिकी आदि विषय शामिल किए गए हैं। (प्रकाशनाधीन)।

राजनीतिक गतिविधियां वार्षिकांक : प्रेस और अन्य समाचार माध्यमों द्वारा समय-समय पर प्रकाशित वर्ष 1988 की महत्वपूर्ण राष्ट्रीय और अर्न्तराष्ट्रीय घटनाओं का तिथिकार टिप्पणी (प्रकाशनाधीन)।

मौलाना अबुल कलाम आजाद : भारत की स्वतंत्रता और प्रजातंत्र के अनुकरणीय जीवन और उपलब्धियों का विश्लेषण; विशिष्ट व्यक्तियों के लेख सम्मिलित किए गए हैं (प्रकाशनाधीन)।

बिक्री के लिये उपलब्ध संसदीय प्रकाशन

		रु. पै.
1.	संसदीय विशेषाधिकार-1950 से 1985 तक का मामलों का सार संग्रह	350.00
2.	नेहरू और संसद	150.00
3.	राष्ट्रमंडल की संसदें (1989)	250.00
4.	भारत के संविधान में संशोधन	125.00
5.	ग्लोसरी ऑफ इंडियन्स	80.00
6.	राष्ट्रीय इलेक्ट्रानिकी नीति	20.00
7.	नामीबिया समस्या	20.00
8.	भारत सरकार की पर्यटन नीति	12.00
9.	राज्यों और संघ राज्य क्षेत्रों में राष्ट्रपति शासन	50.00
10.	भारत की विदेश नीति	20.00
11.	हिन्द महासागर शांति क्षेत्र के रूप में	15.00
12.	केन्द्रीय मंत्रिपरिषद 1947-87 (सम्पूरक सहित)	18.00
13.	निरस्त्रीकरण और विकास	20.00
14.	संविधान सभा वाद-विवाद (छः खंड)	475.00
		(डाक व्यय अतिरिक्त)
15.	आठवीं लोक सभा-सदस्य परिचय	65.00
16.	मादक द्रव्यों की विभीणिका	70.00
17.	दक्षिण अफ्रीका और रंगभेद	20.00
18.	संसदीय समितियां	50.00
19.	दक्षेस	40.00
20.	दादा साहेब मावलंकर लोकसभा के जनक	200.00
21.	राष्ट्रपति का निर्वाचन : विधि, प्रणाली और प्रक्रिया	50.00
22.	राजनीतिक घटनाओं का वार्षिकांक 1987	200.00
23.	राजनीतिक घटनाओं का वार्षिकांक 1988	325.00
24.	राष्ट्रीय स्वास्थ्य नीति	15.00
25.	राष्ट्रीय औद्योगिक नीति	15.00
26.	राष्ट्रीय परमाणु ऊर्जा कार्यक्रम	10.00

ISBN 81-219-0394-7

0094